आत्म मार्ग प्रकाशन

अमर गाथा

आत्म मार्ग स्पिरच्यूल साइंटिफिक, एजूकेशनल चैरिटेबल ट्रस्ट

①

शान.. ।

सतिनामु श्री वाहिगुरू,
धंन श्री गुरू नानक देव जीओ महाराज।

डंडउति बंदन अनिक बार सरब कला समरथ।
डोलन ते राखहु प्रभू नानक दे करि हथ॥ पृष्ठ - 256

फिरत फिरत प्रभ आइआ परिआ तउ सरनाइ।
नानक की प्रभ बेनती अपनी भगती लाइ॥ पृष्ठ - 289

धारना - संसा मेरा जी, उतर गिआ - 2, 2
पिआरे जब ते दरशन पाइआ - 2, 2
संसा मेरा जी,.................... - 2

ठाकुर तुम्ह सरणाई आइआ।
उतरि गइओ मेरे मन का संसा जब ते दरसनु पाइआ।
अनबोलत मेरी बिरथा जानी अपना नामु जपाइआ।
दुख नाठे सुख सहजि समाए अनद अनद गुण गाइआ।
बाह पकरि कढि लीने अपुने ग्रिह अंध कूप ते माइआ।
कहु नानक गुरि बंधन काटे बिछुरत आनि मिलाइआ॥ पृष्ठ - 1218

साध संगत जी! गर्ज़ कर बोलो सतनाम श्री वाहिगुरू। आप अपने-अपने कारोबार संकोचते हुए गुरू दरबार में पहुँचे हो। सत्संग की जो पूर्ण विधि है, उसके अनुसार यदि सत्संग किया जाये तो बहुत अधिक फल प्राप्त होता है। जब तक बात हमारी समझ में नहीं आती, घर से आ जाते हैं, कारोबार बन्द करके आते हैं परन्तु पूरा फल प्राप्त कर सकने में हम असमर्थ रह जाते हैं। ऐसा इसलिये होता है कि ऐसे समझ लो, यदि आम भाषा में बात समझनी हो; कोई मशीन हो, उसमें बहुत सी तारें लगी हों, जगह-जगह पर पेचों द्वारा एक दूसरे को जोड़ा गया हो और उसमें से कोई आवाज़, जैसे मेरी आवाज़ आ रही है, इसी तरह से आवाज़ आती हो, तब पूरा लाभ प्राप्त हो सकता है। यदि एक दो तारें टूट जायें या ठीक तरह से न जुड़ी हों तो गड़बड़ हो जायेगी, समझ में नहीं आयेगा, लाऊडस्पीकर नहीं बजेगा, हाल में आवाज़ गूंजेगी, जैसे अब गूंज रही है, उचित तालमेल नहीं होता। जब पूर्ण विधि के अनुसार काम न किया जाये तो परिणाम भी पूरा नहीं निकलता। इसे जितना व्यक्ति चाहे, सुधार कर सकता है, कोई ऐसी बात नहीं है कि यह इतना ही रहता है। आम तौर पर 14 गुण जो सत्संग सुनने आते हैं, उनमें होने चाहिये और इसी तरह से 14 गुण प्रवक्ता (बोलने वाले) में होने जरूरी हैं।

इस सम्बन्ध में छठे पातशाह के पास एक बार चार सिख भाई मनसादार, दरगह तल्ली, तख्त धीर, तीर्थ उप्पल इकट्ठे होकर आए और बोले, ''सच्चे पातशाह! हम सत्संग सुनते हैं, तेरे गुरमुख अनेक प्रकार के अर्थ समझाकर हमें बताते हैं, परन्तु हमारे मन में शान्ति क्यों नहीं आती? मन इधर-उधर भागता रहता है, पर जब हम भाई निवला और भाई निहालु का कीर्तन व्याख्यान सुनते हैं, उस समय हमारे अन्दर विकारों का भय उत्पन्न हो जाता है, दुर्मति को छोड़ने का हमारा मन करता है, हमें गुरमत प्राप्त होने लग जाती है और अन्दर ज्योति जगने लग जाती है। सच्चे पातशाह! ऐसा क्यों होता है? कुछ वक्ताओं का व्याख्यान सुनकर हमारा मन ही नहीं लगता। परन्तु जैसे ही हम भाई निवला और भाई निहालू का

व्याख्यान सुनते हैं, उस समय दूर-दूर तक उड़ानें भरती यह सुरत, एकदम हृदय में सिमट आती है।'' उस समय गुरू महाराज जी ने उन्हें बताया कि, गुरसिखो! सत्संग करने की विधि हुआ करती है जिसका उत्तरदायित्व वक्ता और श्रोता दोनों पर होता है। वक्ता पूर्ण गुणों से भरपूर होना चाहिये और श्रोता में भी पूरे गुण होने चाहिए। आम तौर पर 14 गुण वक्ता में और 14 गुण श्रोता में होने चाहिए, फिर सत्संग का पूरा-पूरा लाभ मिलता है अन्यथा पूरा लाभ प्राप्त नहीं होता।

उस समय गुरू महाराज जी से प्रार्थना की, ''महाराज! आप हमें अच्छे वक्ता और श्रोता के गुण विस्तार पूर्वक बताने की कृपा करें। हम आपके सेवक हैं, हमें बहुत लाभ प्राप्त होगा, जब हम श्रोता तथा वक्ता के गुणों से परिचित हो जायेंगे।''

गुरू महाराज जी ने कहा, ''पहला गुण वक्ता का होता है कि उसका बोल रसीला हो, उखड़ता न हो, बहुत ही मधुर एवं मृदु तथा अभिमान रहित हो। शब्द के अर्थ को पूरी तरह से जानता हो। जितने श्रोता बैठे हों, उतनी ही ऊँची आवाज़ में बोले। यदि श्रोता काफी दूर तक बैठे हैं और वह धीमी-धीमी आवाज़ में बोलता हो तो जो नज़दीक बैठे हैं, उन्हें तो सुनाई दे जायेगा, परन्तु जो दूर बैठे होंगे उन्हें कुछ भी पता नहीं चल पायेगा। छन्द, धारना इतनी ऊँची ध्वनि से गाए या पढ़े जितनी आवश्यकता हो। इसके बाद उसमें यह गुण होना चाहिये कि वह यह अच्छी तरह जानता हो कि विषय का विस्तार कैसे किया जाता है और समेटा किस तरह जाता है। दोनों बातों की जानकारी रखता हो। संगत पर नज़र रखे कि जो कुछ वह बोल रहा है, उसे संगत ध्यान से सुन रही है या नहीं। श्रोताओं की वृत्ति को गहराई से विचारता हो। जितनी बात उनकी समझ में आ जाये, उतना ही विस्तार करे। जहाँ पर वृत्ति उदास होने लगे, मन उचाट होने लगे, वहीं पर ही कथा को समाप्त कर दे। कथा के प्रसंग को वह बहुत ही प्रेम के साथ बखान करना जानता हो। अपने वचनों को इतने प्यार के साथ उच्चारण करे कि श्रोताओं को प्यारा लगने लगे। पाँचवा गुण यह है कि जो भी वचन उसके मुख से निकले वे सत्य वचन हो। निरर्थक वचन सत्संग में न बोले। श्रोताओं की अवस्था के अनुसार, कर्म, उपासना तथा ज्ञान की बात करे। शबद के सिद्धान्त का पूरी तरह से व्याख्यान कर सकता हो, निर्णय लेकर अर्थ सुनाता हो।

छठा गुण यह हुआ करता है कि जो भी संशय कथा करते समय पैदा होता प्रतीत हो, उसे बहुत से उदाहरण देकर स्पष्ट करे। यदि कोई प्रश्न करे तो उसका उत्तर देने की समर्था हो। शबद के आशय को पूरी तरह से निखार कर वर्णन कर सकता हो तथा उसके स्पष्टीकरण में प्राचीन साखियाँ या महापुरुषों द्वारा दिये गये प्रमाणों का उल्लेख हो। श्रोता की बुद्धि का अनुमान लगाकर, ऐसे प्रमाण प्रस्तुत करे, जिन्हें श्रोता अच्छी तरह समझ सकता हो, ऐसा न हो कि श्रोता को समझ ही न आये और वह स्वंय अपनी विद्वता प्रकट करता रहे। जिस प्रकार के ज्ञान को श्रोता जानता हो, उसी प्रकार के दृष्टान्त प्रस्तुत करे। सभी मतों का पूर्ण ज्ञाता हो। शास्त्रों के झंजट तर्क-वितर्क से पूरा परिचित हो। किसी अन्य मत पर तर्क न करने वाला हो और उतने ही वचन उस शास्त्र में से ले, जितने उसके अपने सिद्धान्त से मिलते हों। आठवाँ गुण यह है कि कथा में विक्षेपता पैदा न होने दे। जो कथा का प्रसंग चल रहा हो उसके अनुसार ही वचन बोले। चालू प्रसंग को छोड़कर अन्य इधर-उधर की जो बातें प्रसंग से सम्बन्ध न रखती हों, न करे। दूसरे मतों की केवल वही साखियाँ लें, जो गुरू सिद्धान्त से मिलती जुलती हों और आशय को स्पष्ट करने में सहायक हों। नौवाँ गुण है कि वक्ता का जो आसन हो, वह बिल्कुल दोष रहित हो। रीढ़ की हड्डी को बिल्कुल सीधा करके बैठे, उसी प्रकार मन को भी बहुत साफ रखे। दसवां गुण यह होता है कि जो संगत बैठी हो, उन्हें प्रसन्न करने के लिये भी कभी-कभी समयानुसार हास्य प्रसंग सुनाये, परन्तु वे ऐसे वचन होने चाहिए जिनका रंग, उनके भाव, गुरू से प्यार पैदा

करें। इस प्रकार सारी सभा को अपने वश में रखे। इस बात को जानता हो कि श्रोता, सन्मुख होकर सावधानी से सुन रहे हों, कोई इधर-उधर न झांकता हो। श्रोता इस बात की प्रतीक्षा करते हों कि अब आगे कोई जरूर नई बात बताएगा। उसमें अभिमान नहीं होना चाहिए कि मैं बहुत अच्छा बोल रहा हूँ और श्रोता मेरी बात सुन रहे हैं। हर प्रकार के अभिमान से रहित होकर, मन को सदा विनम्रता में रखे। अपने अन्दर गुण होते हुए भी, मन को विनम्र रखकर, अभिमान न करे, किसी का दिल न दुखाए। जान बूझ कर किसी के सन्मुख तर्क न करे। अपना जीवन पूरी तरह से धार्मिक हो, श्रोताओं में उसके वचन सुनने के लिये श्रद्धा हो। तेहरवां गुण होता है कि जो भी वचन करे, पहले स्वंय उन पर अभ्यास करे, अनुभव प्राप्त करे, फिर वचन करे। चौदहवां बड़ा गुण सन्तोष धारण करना होता है। अपनी प्रालब्ध पर शाकर रहे। ऐसा ढंग प्रयोग न करे कि श्रोताओं से पैसे हासिल करता हो। सहज भाव से ही यदि कोई बाणी का मान करता हुआ भेंट अर्पण करता हो, तो वह ले ले। बिना याचना के जो कुछ भी मिलता है, वह अमृत जैसा होता है। मन में याचना न करे कि मुझे बहुत धन मिले, वस्त्र मिलें। सो ये 14 गुण वक्ता में होने जरूरी हैं। संक्षेप में मैं फिर दोहराता हूँ - 1. रसीले सुर में बोल सकता हो। 2. श्रोताओं की रूचि अनुसार विस्तार से समझा सकता हो 3. आवश्यकता अनुसार संक्षिप्त कर सकता हो 4. दिल लुभाने वाली कथाएं, कहानियाँ 5. स्पष्ट वाक्य बोलना 6. संशय दूर कर सकने की योग्यता हो 7. सभी शास्त्रों से परिचित हो 8. कथा में चल रहे प्रसंग के उलट प्रमाण न दे 9. उचित आसन, सुन्दर लगने वाला आसन ग्रहण करे। ऐसे ही आँख, नाक कानों में अंगुलियाँ न मारता रहे, सिर पर हाथ आदि न फेरता रहे, न ही बिना किसी मतलब के इशारे करता रहे, अच्छी तरह से सीधा बैठे। 10. श्रोताओं के मन को जीतने वाला हो, 11. सभी के दिलों को जीतना 12. अहंकार से रहित हो 13. धार्मिक विचारों वाला हो। कथनी और करनी में कोई भेद न हो। सुने सुनाए, दूसरों के सुनाये हुए वचनों को न बोले 14. महान गुण, सन्तोषी हो, माया की ओर ध्यान न दे।

इसी प्रकार श्रोता के भी 14 गुण हुआ करते हैं। श्रोता में मन, वचन, कर्म से वक्ता के प्रति श्रद्धा होना आवश्यक है। दूसरा श्रोता में अहंकार नहीं होना चाहिए। तीसरा सुनने में पूरी लगन, प्रीत होनी चाहिए। चौथा मन में कुतर्क करने वाला नहीं होना चाहिए। पाँचवां चंचल न हो, शरीर द्वारा, वचनों द्वारा किसी प्रकार की चतुराई न दिखाए। वक्ता के व्याख्यान को समझने वाला हो, मन को एकाग्र करके सुनने वाला हो। छठा उसमें यह योग्यता हो कि सत्संग में सुने गये वचनों में से कोई प्रश्न करने का गुण भी हो। साँतवां सभी ग्रन्थों को उसने सुना हो। आठवाँ आलसी न हो, रीढ़ की हड्डी सीधी रख कर या नेत्र बन्द करके, फुरने रहित होकर सुने, या नेत्र वक्ता के चेहरे पर केन्द्रित हो। नौवां जब वह सुन रहा हो, उस समय नींद तथा आलस्य को पास न फटकने दे। दसवां उसका स्वभाव ऐसा होना चाहिए कि मिलकर, बांट कर खाने वाला हो। ग्यारहवां जो कुछ सत्संग में सुने, उसे मन में धारण करे। बारहवां गुरमत सिद्धान्त का किसी प्रकार भी विरोधी न हो जैसा कि उसने सुना है कि गुरू महाराज जी ने फ़रमान किया है -

काहे रे मन चितवहि उदमु जा आहरि हरि जीउ परिआ।
सैल पथर महि जंत उपाए ता का रिजकु आगै करि धरिआ॥ *पृष्ठ - 10*

इस पर अपनी मति से कुतर्क न करे। इन्हें पूर्ण सत्य वचन समझ कर अपने जीवन में अपनाए। सतगुरू के वचनों पर मन में कुतर्क न करे। तेहरवाँ गुण जो बहुत जरूरी है वह है, संगत में बदबूदार कपड़े पहन कर, बिना स्नान किये ना जाए। यथा शक्ति साफ स्वस्छ कपड़े पहन कर जाये, ऊबासियाँ न ले, पेट साफ करके जाये, गन्दी हवा बदबू न छोड़े। इधर-उधर देखने वाला न हो, वक्ता के वचनों को पूरे ध्यान

के साथ सुनने वाला हो। चौदहवां-श्रोता किसी प्रकार का पाखण्ड न करे, जैसे कहीं बहुत ही प्यार वाली कथा चल रही हो, उसके अन्दर की भावना जागे ही न, परन्तु आँखों में से आँसुओं की धारा बहाकर, दूसरों को जताने की कोशिश करे। जब श्रोता तथा वक्ता में आवश्यक गुण हों तो गुरू महाराज का फ़रमान है -

कई कोटिक जग फला सुणि गावनहारे राम॥ *पृष्ठ - 546*

जब तक ये 28 गुण आपस में मेल नहीं खाते, तब तक जो सत्संग का महान फल है, वह हम प्राप्त करने से वंचित रह जाते हैं।

थोड़ा सा भेद है - इस बात में। सो आप सभी काफी समय से सत्संग करते आ रहे हो, परन्तु यदि जीवन में सावधानी प्रयोग न की जाये, मनुष्य मेहनत बहुत करता है पर उसका परिणाम उसे उतना नहीं मिलता। जैसे एक किसान है, उसके पास जमीन है, खेती करता है। उसे यह न पता हो कि कौन से कोने में कितनी गहराई पर बीज बोया जाये और खाद किस प्रकार की डालनी है, खाद बीज को स्पर्श करनी चाहिये, बीज से अलग नहीं चाहिये; उसके बाद उसे यह भी पता होना चाहिये कि खेत में सुहागा कितना चलाना है, सिंचाई कब करनी है? खाद कब डालनी है? कौन-कौन से दिन इसका नदीन निकालना है? तब जाकर कहीं पूरी फसल ले सकेगा। जिस किसान को न तो वत (मौसम गर्मी सर्दी आदि) का पता हो, न खाद डालने के बारे में जानता हो, न ही अन्य वतरो (खेती सम्बंधी जानकारी) को जानता हो; चैत के महीने में यदि गेहूँ की फसल को काफी पानी लगा दो, तो गेहूँ गिर जाया करती है। फसल चाहे कितनी भी बढ़िया क्यों न हो, आधा झाड़ रह जाया करता है। धान की फसल है, इसमें यूरिया ज्यादा डाल दिया तो काला नज़र आयेगा, दिल बहुत खुश होगा, पर जब फल देखेगा तो उस समय चौथाई हिस्सा भी फल नहीं मिलता। खेत की ओर खड़ा होकर झांकता रह जाता है कि यह क्या हो गया? कहता है सबसे बढ़िया मेरी फसल थी, सभी देखते थे, खुश होते थे। साथ का कमज़ोर निश्चय वाला कहता है, ''न भाई! तेरी फसल तो बढ़िया थी, तूने इस पर काला बर्तन नहीं बान्धा, नज़र लग गई किसी की।'' होता क्या है, नज़र-नुज़र कुछ नहीं होती, उसने यूरिया बहुत डाल दिया होता है। इससे फसल एक दम जोर पकड़ लेती है। जब बीज बनता है तो उस समय गिर जाती है और उसे बिमारी लग जाती है। सो मेहनत में तो कमी नहीं है, कमी किस चीज़ में है कि पूरी विधि का पता नहीं था, पूरा ज्ञान नहीं था। सो इसी प्रकार सारी दुनियाँ के काम, चाहे कोई कारखाना लगाओ, कोई ट्रांस्पोर्ट का काम करके देख लो, कोई व्यापार करके देख लो, यदि पूर्ण विधि नहीं आती, तो मनुष्य को उसका पूरा फल प्राप्त नहीं हो सकता, पैसा चाहे जितना मर्जी खर्च कर ले।

एक प्रेमी मेरे पास आया करता है, ''जी! मैं बहुत अच्छा कारीगर हूँ, लोग इस बात की दाद देते हैं; मेरे हाथों द्वारा किये गये काम के मुकाबले में और कोई भी ऐसा काम नहीं करके दिखा सकता, परन्तु फिर भी पता नहीं क्या कारण है कि मेरे पास ग्राहक बहुत कम आते हैं? अनजान लोगों के पास क्यों ज्यादा जाते हैं?'' उसके चेहरे की ओर देखते हुये मैंने कहा, ''बेटा! शुक्र है कि तेरे पास आ जाते हैं, तेरे पास तो कोई भी नहीं आना चाहिये।'' कहने लगा, ''जी! क्या बात है?'' मैंने कहा, ''तेरे माथे पर त्यौरियाँ चढ़ी हुई हैं, आँखे तेरी इतनी घमंडी हैं जो यह दर्शाती हैं कि मैं बहुत बड़ा काम जानता हूँ। ग्राहक देखकर ही डर जाते हैं, फिर तेरी ग्राहक स्त्रीयाँ हैं, वे तो वैसे ही किसी दुकान पर नहीं जातीं; तू अपने आपको ठीक कर, Smiling face (मुस्कराता हुआ चेहरा) बना, बात करने का तरीका सीख। फिर तेरे पास सभी कुछ आ जायेगा।''

इस तरह से दुनियाँ का कोई काम कर लो, भजन बन्दगी कर लो, सत्संग कर लो, इसका सही ढंग हुआ करता है। जब तक पूरी विधि के साथ सत्संग नहीं होता, तब तक पूरा-पूरा लाभ नहीं उठाया जा सकता। जो कर लेते हैं, वे बहुत जल्दी उन्नति कर जाते हैं। सत्संग सुन लिया, सुन कर मन में बसा लिया तो महाराज फ़रमान करते हैं -

गावीऐ सुणीऐ मनि रखीऐ भाउ। दुखु परहरि सुखु घरि लै जाइ॥ ***पृष्ठ - 4***

दुख तो वहीं पर ही गिर जायेंगे यदि तीनों चीज़ें अपना लीं। सुख लेकर घर जाओगे। यदि साथ निन्दा लेकर गये, चुगलियाँ लेकर गये, ईर्ष्या से मन साफ नहीं हुआ, कोई अच्छा है, परमेश्वर ने उसे ऊँचा उठाया है और उसे नीचा गिराने के लिये दिल में इरादे हैं, तो भाई! तूने अभी सत्संग नहीं किया, अभी तुझ पर सत्संग का प्रभाव नहीं पड़ा। आता तो है पर पर्तें जमी हुई हैं तेरे अन्दर मैल की, तुझे अभी प्राप्ति नहीं हो सकती। बहुत जरूरत है तप की, तपस्या की, अपने मन को साधने की, मन ही असली चीज़ है। जब तक मन नहीं साफ होता, तब तक काम नहीं बनता। पहले मन को यह पता हो कि मैं सत्संग में क्यों जाता हूँ? जो लक्ष्य सामने है - लक्ष्य छोटा भी होता है, बड़ा भी होता है, उस समय जो महान लक्ष्य सामने लेकर आता है, बड़ी-बड़ी उपलब्धियाँ प्राप्त करता है। जो छोटा लक्ष्य सामने रखकर आता है उन्हें छोटी-छोटी प्राप्तियाँ हो जाती हैं। लक्ष्य सामने होना चाहिए। सो मन की तो वही बात है, इसलिये महाराज जी ऐसा फ़रमान करते हैं -

धारना - साध पिआरिआ!
पहिलां मन आपणे नूँ - 2, 2
मन आपणे नूँ, पहिलां मन आपणे नूं - 2, 2
साध पिआरिआ!.................................. - 2

ममा मन सिउ काजु है मन साधे सिधि होइ।
मन ही मन सिउ कहै कबीरा मन सा मिलिआ न कोइ॥ ***पृष्ठ - 342***

यदि मन को सुधार लिया तो सुख प्राप्त होगा। मन बहुत बड़ा मित्र भी है, बहुत बड़ा दुश्मन भी है। यदि शत्रुता पर उतर आए तो मानस जन्म को कौड़ियों के भाव बिकवा देता है। यदि मित्रता पर उतर आए तो गिरे हुये, नीच, महापापी को भी वैकुंठ धाम, सचखण्ड पहुँचा देता है। यह सारा मामला मन का है। पहली बात होती है मन में वैराग धारण करना। दुनियाँ ने रहना नहीं, संसार को झूठा समझना। क्षण भंगुर सुख है इसका। क्षण भंगुर उसे कहते हैं जिसका नाश हो जाये, जो सदा नहीं रहता। कोई भी वस्तु सदा नहीं रहती। जिसकी मन के साथ पकड़ हो जाये वह दुखी हुआ करता है, दुखी बहुत होता है, बेचैनी, तड़पन होती है, अपना मानस जन्म हार जाता है। सो जो मन है, जब यह साथ देने लग जाता है तो सबसे पहले वैराग पैदा होता है, दुनियाँ के सारे रसों को, भोगों को, प्राप्तियों को, तुच्छ समझता हो कि ये तो कुछ भी नहीं है। जिनके मनों में वैराग जाग्रत हुआ उन्होंने बहुत बड़े-बड़े त्याग कर दिये।

गोपी चन्द उज्जैन का राजा था। ऐसा बताते हैं कि उसकी सभी रानियाँ पदमनियाँ थी। पदमनी सौन्दर्य की खास जाति हुआ करती हैं। सौ रानियाँ थी उसकी, अति कोमल गुणों से युक्त, आज्ञाकारिणी, साथ देने वाली। माँ ने एक दिन ऊपर से अचानक गोपी चन्द को आँगन में नीचे स्नान करते देखा। देखते ही भावनाओं में बह गई, चली गई भावनाओं में कि मेरा पुत्र कितना सुन्दर है? कितनी सुन्दर देह है इसकी? कैसा सोने जैसा रंग है इसका? यह बाल, जवानी, बुढ़ापा सब खत्म हो जायेगा। तीन अवस्थाएं शरीर की हुआ करती हैं और अब वह भरपूर जवानी में है और जवानी बीतती चली जा रही है, इसे

किसी दिन बुढ़ापे ने दातों से काटकर खाना शुरू कर देना है। आखिर जवानी का नामों-निशां भी नहीं रहेगा, खत्म कर देना है। बचपन को जवानी खा जाती है, जवानी को बुढ़ापा खा जाता है, फिर एक दिन आता है, जब इसने संसार से जाना होता है और इसकी अर्थी निकाली जा रही होगी और यह सुन्दर देही, जिसको मैंने बड़े प्यार के साथ पाला है और इसे यह रूप देने में सहायता की है, इसे आग की भेंट किया जायेगा और अग्नि ने इसे जला कर राख कर देना है, इसका नामोनिशां मिट जायेगा। ये विचार जहाँ दिमाग में उठ रहे हैं, वहाँ पर साथ ही साथ उसे ये दृश्य भी दिखाई दे रहा था, इसकी चिता जलती नज़र आ रही थी और अपने आप में खो गई। उसी बात में लीन हो गई, वैराग उत्पन्न हो गया, आसुओं का जो प्रबल प्रवाह था, रोक न सकी। बालकोनी में से नीचे झुकी हुई बैठी है। नेत्रों में से आँसू गिरने लगे। गोपी चन्द नीचे स्नान कर रहा था, आखों में से पवित्र आसुओं का गर्म गर्म जल, इसकी पीठ पर जा गिरा, बार-बार आसुओं के कण गिरते हैं और उसकी माँ भावलीन हुई बैठी है। उस समय गोपी चन्द ने ऊपर की ओर नज़र उठाकर देखा और सोचा कि उसकी माँ न जाने क्यों रो रही है? इतने आँसू गिर रहे हैं, एक के बाद दूसरा, दूसरे के बाद तीसरा। जल्दी-जल्दी स्नान करके ऊपर गया। माँ को अपने आँचल में भर लिया, कहने लगा, ''माता! इतना दुख तेरे अन्दर छिपा हुआ है, क्या मेरे से कोई गुनाह हो गया है? कोई गलती हो गई है? किसी रानी ने कोई गलती कर दी है? किसी सेवक ने कोई अपराध किया है? मुझे बता, मैं जल्दी से जल्दी इसका फैसला कर देता हूँ।''

माँ कहने लगी, ''बेटा! किसी ने कुछ नहीं कहा।''

''फिर ऐसे आसुओं की झड़ी क्यों चल रही है?''

''पुत्र! मैं क्या बताऊँ? मैं भविष्य देख रही थी। मानस जन्म की तुझे प्राप्ति हुई है और इस मानस जन्म को सभी ऐसा बताते हैं -

कबीर मानस जनमु दुलंभु है होइ न बारैबार।
जिउ बन फल पाके भुइ गिरहि बहुरि न लागहि डार॥ ***पृष्ठ - 1366***

यह इतना कीमती है कि एक बार यदि हाथों से निकल गया, फिर यह पुनः नहीं लौटता। सभी धर्म ग्रन्थ ऐसा फ़रमान करते हैं -

धारना - वडिआँ भागां नाल,
मिल गई देही-मानस देही - 2, 2

बड़ी मुश्किल से 83,99,999 यौनियाँ बीतने के बाद, करोड़ों वर्षों की अनेक कठिनाईयों के बाद, यह मनुष्य जन्म का जामा, इस जीव आत्मा के हाथ में आया। यह बारी हुआ करती है - परमात्मा को मिलने की -

भई परापति मानुख देहुरीआ। गोबिंद मिलण की इह तेरी बरीआ।
अवरि काज तेरै कितै न काम। मिलु साध संगति भजु केवल नाम।
सरंजामि लागु भवजल तरन कै। जनमु ब्रिथा जात रंगि माइआ कै॥ ***पृष्ठ - 12***

बेटा! यह जिन्दगी भोगों में, रसो-कशों में पड़ कर व्यतीत हो जाती है और एक दिन बुढ़ापा आ जायेगा और फिर बुढ़ापे के पश्चात मौत आ जायोगी और मौत के पश्चात यह सम्भाल कर रखा हुआ सुन्दर शरीर, साथ नहीं जायेगा, आग में जलकर भस्म हो जायेगा। दौलत, रानियाँ किसी ने भी साथ नहीं देना। बेटा! तेरा कितना सुन्दर शरीर है। पर एक दिन इसने भी राख की ढेरी हो जाना है, वह भी हवा ने उड़ा देनी है, कहीं भी नामों निशां नहीं रहेगा, हड्डियाँ पानी में बह जायेंगी, यह सुन्दर चेहरा, सुन्दर

शरीर, पुनः कहीं भी दिखाई नहीं देगा।

गोपी चन्द गम्भीर हो गया। कहने लगा, ''माँ! फिर मैं क्या करूँ?'' कहने लगी, ''बेटा! किसी पूर्ण तत्व वेत्ता महापुरुष को जाकर मिल। उससे जाकर पूछ कि अविनाशी पद कैसे प्राप्त होता है। जहाँ पर पहुँच कर मनुष्य दोबारा जन्म मरण के चक्कर में नहीं पड़ता। जहाँ सदीवी जिन्दगी प्राप्त करके, अविनाशी पद पर पहुँच कर, महान सुख की प्राप्ति होती है। सो बेटा! इसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिये यह मानस जन्म मिला है।''

सुनते ही गोपी चन्द को वैराग हो गया। उस समय एक महात्मा आए हुए थे, जलन्धरी उनका नाम था। उनके पास जाकर गोपी चन्द ने योग शिक्षा ली और उसी समय राज पाट छोड़कर चला गया। इसे वैराग कहते हैं। यह जरूरी नहीं है कि हम घर बार छोड़कर चले जाएं लेकिन हमारा मन मान जाए कि दुनियाँ के भोग, हमारे रास्ते में बहुत बड़ी रूकावट हैं।

जब वैराग उत्पन्न हो जाता है फिर दूसरी अवस्था शुरू हो जाती है - सुनने की। फिर वह सुनता है, पूरा ध्यान लगाकर सुनता है। मन को एक सैकिण्ड के लिये भी इधर उधर नहीं भटकने देता कि कहीं कोई बहुत जरूरी वचन रह न जाये, निकल न जाये। फिर उसे हृदय में धारण करता है, ऐसा नहीं कि सुनकर भूल जाता है। जो कच्चे होते हैं, उन्हें भूलता है परन्तु जो पक्के, दृढ़ इरादे वाले होते हैं, उन्हें नहीं भूला करता। वे तो सोचते ही रहते हैं कि क्या कहा था? क्योंकि गुरबाणी जो है यह हमें रास्ता दिखाती है। फिर जो सुना है, उसे मानते हैं। जब मानता है, फिर काम बनना शुरू हो जाता है -

मंनै पावहि मोखु दुआरु। मंनै परवारै साधारु।
मंनै तरै तारे गुरु सिख। मंनै नानक भवहि न भिख।
ऐसा नामु निरंजनु होइ। जे को मंनि जाणै मनि कोइ॥ ***पृष्ठ - 3***

इस प्रकार जब हम सत्संग करते हैं, इसमें मैंने प्रार्थना की है कि 14 गुण हुआ करते हैं बोलने वाले के अन्दर। बोलने वाले में हों दस गुण, चार न हों, असर नहीं हुआ करता। चौदह के चौदह गुण जरूरी हैं। यदि एक तार काम न करे, मशीन वहीं पर खराब हो जाती है और चलती नहीं है। इसी प्रकार श्रोता में भी 14 गुण होने चाहिये। जब तक ये 28 तारें नहीं मिलती, तब तक सत्संग का असर नहीं हुआ करता। जब ये मिल जाती हैं, तब हम पूरी तरह से सावधान होते हैं और बाणी फिर बाण मारती है हृदय में; घायल करती चली जाती है, इरादे बनते चले जाते हैं, फिर सत्संग का पूरा-पूरा लाभ प्राप्त होता है।

गुरू नानक देव जी सुलतानपुर में मोदी का कार्य भार सम्भाले हुए थे। अभी आपने संसार के उद्धार का कार्य शुरू नहीं किया था। आप जी की जो दैनिक दिनचर्या थी, अमृत बेला में उठकर बेई नदी के जल में स्नान करना, तत्पश्चात बेई नदी के किनारे पर बैठकर, आपने समाधिस्थ हो जाना, दिन निकलने पर घर आना, कुछ थोड़ा बहुत खा पी कर फिर अपने कारोबार में लग जाना और उसके बाद वहाँ अपना कार्य करना और शाम को आकर बहुत से साधु, महापुरुष, बन्दगी करने वाले, जिज्ञासु, दर्शनार्थ आए हुए होते, वहाँ फिर आपने कीर्तन करना, उसके बाद विचार करना। इसी प्रकार काफी देर, रात तक वार्तालाप करते रहते और प्रतिदिन का कार्यक्रम ही ऐसा था, इसके साथ-साथ जो बिछुड़ी हुई रूहें थीं उन्हें प्रेरित करके, अपने पास बुला लेते थे और यदि जरूरत होती तो स्वंय भी चले जाते थे।

आज जब आप अमृत बेला में जागे तो आपने एक विरहायुक्त याचना करती हुई आवाज़ सुनी। कोई रूह विलाप कर रही है, मेरा रास्ता बहुत गलत है, जो कुछ मांगा जा रहा है, वह कुछ मिल नहीं रहा क्योंकि ध्येय गलत है। जिसके पास टार्च न हो, उस समय उससे इस की माँग करे, वह नहीं दे सकता। सो महाराज ने देखा कि यह जिज्ञासु पूरा है, पर इसे रास्ता नहीं मिल रहा, अन्धेरे में आवाज़ें लगा रहा है। उस समय आप कारोबार से निवृत्त होकर, दूसरे दिन मलसीहां चले गये, पास ही था। वहाँ पर जाकर आपने सत्संग किया। उसी इलाके का एक चौधरी था जिसका नाम भगीरथ था, उसने भी सुना कि कोई महापुरुष आए हैं और उनके वचनों में तासीर है। यदि कोई उनके वचन सुनता है तो वह मस्त हो जाता है और अन्दर कई भाव प्रकट हो जाते हैं और चेहरा नरोआ हो जाता है और उसका बातचीत का ढंग भी नया हो जाता है। मुझे रोते हुए कई दिन रात बीत गये, मेरी पुकार सुनकर रात सपने में देवी माता ने गुरू नानक जी का पता बताया कि जिस वस्तु की तुझे जरूरत है, वह मेरे पास नहीं है, वह गुरू नानक जी के पास है जो सुलतानपुर में अभी गुप्त रहकर मोदी का काम कर रहे हैं। हो सकता है, मैं उनके पास जाकर प्रार्थना करूं, वह मेरी सहायता करें।

शाम को भगीरथ वहाँ पहुँच गया, जहाँ गुरू नानक पातशाह ठहरे हुए थे। वहाँ पर इसने वचन सुने, उसके पश्चात ग्यारह बजे, सभी के सभी थोड़ी देर के लिये वहाँ पर बिराजे और फिर डेढ़ बजे उठकर स्नान किया। चौधरी भगीरथ के लिये यह नई क्रिया थी। अब तो हमारे लिये भी नई चीज़ है क्योंकि हम अमृत बेला की सम्भाल करने से हट गये। महाराज कहते हैं, जो अमृत बेला होता है, जहाँ भी हो, जिस देश में भी हो, वह ऐसा समय होता है कि उसे ब्रह्म मुहुर्त कहते हैं और बहुत से महात्मा यह कहते हैं कि रूहानियत की बख़्शीश का दरवाज़ा अमृत बेला में खुला करता है –

जो जागंन्हि लहंनि से साई कंनो दाति॥ ***पृष्ठ - 1384***

जो जागते हैं, वे वरदान प्राप्त कर लेते हैं। सो उनके मनों में चाव होता है –

चउथै पहरि सबाह कै सुरतिआ उपजै चाउ॥ ***पृष्ठ - 146***

उनके अन्दर चाव पैदा होता है कि नाम धन इकट्ठा किया जाए, यह उत्साह होने के कारण हिम्मत करने उठ जाते हैं और स्नान करते हैं, उन्हें अमृत बेला में सोना अच्छा नहीं लगता –

तिना दरीआवा सिउ दोसती मनि मुखि सचा नाउ॥ ***पृष्ठ - 146***

उनका प्यार दरियाओं के साथ हो जाता है। दो प्रकार के दरिया होते हैं – एक तो वह जहाँ पर जाकर स्नान किया जाये। दूसरा दरिया होता है जैसे तुम बैठे हो, यह सत्संग रूपी दरिया बह रहा है। इसमें मन का स्नान होता है। दूसरे दरिया में, पानी में शरीर का स्नान होता है। सो मन तथा शरीर दोनों का स्नान जरूरी हुआ करता है –

गुर सतिगुर का जो सिखु अखाए सु भलके उठि हरिनामु धिआवै।
उदमु करे भलके परभाती इसनानु करे अंम्रितसरि नावै॥ ***पृष्ठ - 305***

अमृतसर में, सत्संग के सरोवर में, मन का स्नान करवाना है और पानी के साथ तन का स्नान करवाना है। उस समय के बारे में ऐसा फ़रमान है –

धारना - अंम्रित बेले ओ, कौण जागदे - 2, 2
कोई जागदे ने राम पिआरे - 2, 2
अंम्रित वेले ओ,.......... - 2

भिंनी रैनड़ीऐ चामकनि तारे। जागहि संत जना मेरे राम पिआरे॥ पृष्ठ - 459

तारे चमक रहे हैं, टिम-टिमा रहे हैं, शान्त वातावरण है, सारा वातावरण स्थिर है, कोई शोर शराबा नहीं है, उस समय *'जागहि सन्त जना मेरे राम पिआरे'* कौन जागते हैं? जिनके हृदय प्रभु के प्यार ने बीन्ध दिये हैं, और कोई नहीं जागता -

सीने खिच्च जिन्नां ने खाधी ओह कर अराम नहीं बहिंदे।
निहुं वाले नैणां की नींदर ओह दिने रात पए वहिंदे।
इको लगन लगी लई जांदी, है टोर अनंत उन्हां दी
वसलों उरे मुकाम न कोई, सो चाल पए नित रहिंदे।

डा. भाई वीर सिंघ जी (मटक हुलारे पृष्ठ - 64)

सो इस प्रकार अमृत बेला में जाग उनकी खुलती है जिनके मन में प्रभु का प्यार हुआ करता है, आकर्षण हुआ करता है, अन्य किसी की नींद नहीं खुलती। सो अमृत बेला में उठे, और भी कई प्रेमी गुरू महाराज जी के पास जाया करते थे, सभी उठे और स्नान करने के बाद समाधिस्थ हो गये। दिन निकला तो उस समय महाराज जी ने वचन किये कि साध संगत जी! जो सत्संग हुआ करता है, वहाँ प्रभु के नाम के अतिरिक्त और कोई बात नहीं हुआ करती, झुन्झलाहट की बातें नहीं हुआ करतीं, वहाँ पर सनातन बातें हुआ करती हैं, टिकाव की बातें हुआ करती हैं, मन जो है वह अपने निज घर को वापिस आया करता है, बाहर भागना, उछलना छोड़कर आनन्द के घर में लीन हो जाया करता है। सो ऐसा फ़रमान है कि वहाँ सबसे उत्तम चीज़ है जिसे 'अमृत' कहते हैं, वह सत्संग में बांटा जाया करता है और लेते कौन हैं? जिन पर परमेश्वर की कृपा हो। वे आते हैं - उठकर और आकर सत्संग किया करते हैं। कष्ट सहन करके, उस अमृत को अपनी श्रद्धा रूपी आंचल में डलवा कर, उसका आनन्द लेते हैं। ऐसे फ़रमान है पढ़ लो -

धारना - सतिसंग विचों ओ, अंम्रित छकदे - 2, 2
हुंदे भाग जिन्हां दे पूरे - 2, 2
सतिसंग विचों ओ,.......... - 2

ओथै अंम्रितु वंडीऐ करमी होइ पसाउ।
कंचन काइआ कसीऐ वंनी चड़ै चड़ाउ।
जे होवै नदरि सराफ की बहुड़ि न पाई ताउ।
सती पहरी सतु भला बहीऐ पड़िआ पासि।
ओथै पापु पुंनु बीचारीऐ कूड़ै घटै रासि॥ पृष्ठ - 146

साध संगत में अमृत, नाम रूपी अमृत, ज्ञान रूपी अमृत बांटा जाता है और जिन पर परमेश्वर की कृपा हो, वे इस अमृत को अपने हृदय में ग्रहण करते हैं।

वहाँ जो शरीर की मनमर्ज़ी की आदतें होती हैं, उन को कसा जाता है, जैसे ढोलक को कसा जाता है, जब इसकी आवाज़ ढीली हो। यदि कृपा दृष्टि हो गई, फिर वह जन्म मरण के दुख में नहीं आता। *'सती पहरी सतु भला बहीऐ पड़िआ पासि'* कहते हैं सात पहर में सबसे अच्छी और भली बात यह है कि पढ़े लिखों के पास बैठे। कहते हैं, ''जी! पढ़े लिखे उलटी-उलटी बातें करते हैं, गलत बातें करते हैं, निन्दा करते हैं, चुगलियाँ करते हैं।'' महाराज कहते हैं -

पड़िआ मूरखु आखीऐ जिसु लबु लोभु अहंकारा॥ पृष्ठ - 140

उन लोगों के पास नहीं बैठना जिनके अन्दर क्रोध है, लोभ है, अहंकार है, निन्दा है, चुगली

है, ईर्ष्या है, वैर है। जिनके मनों में गलत बातें हों, उनके पास नहीं बैठना –

नानक सो पड़िआ सो पंडितु बीना जिसु राम नामु गलि हारु॥ पृष्ठ - 938

जो श्वांस-श्वांस परमेश्वर का नाम जपते हैं, वे पढ़े हुए हैं। कहते हैं, ''महाराज! उनका दर्जा कैसा होता है? जैसे यहाँ सांसारिक पढ़ाई पढ़ी हो तो प्रोफैसर लग जाता है, कोई डाक्टर बन जाता है; इस पढ़ाई का पढ़ा हुआ क्या बनता है? महाराज कहते हैं –

जिना सासि गिरासि न विसरै हरि नामां मनि मंतु।
धंनु सि सेई नानका पूरनु सोई संतु॥ पृष्ठ - 319

पूरे महात्मा होते हैं – ब्रह्मनेष्टी, ब्रह्मस्त्रोती, ब्रह्मवक्ता क्योंकि पढ़े हुए वही होते हैं, शेष संसार तो अनपढ़ ही है, क्योंकि यह पढ़ाई किसी काम की नहीं –

पड़ि पड़ि गडी लदीअहि पड़ि पड़ि भरीअहि साथ।
पड़ि पड़ि बेड़ी पाईऐ पड़ि पड़ि गडीअहि खात।
पड़ीअहि जेते बरस बरस पड़ीअहि जेते मास।
पड़ीऐ जेती आरजा पड़ीअहि जेते सास।
नानक लेखै इक गल होरु हउमै झखणा झाख॥ पृष्ठ - 467

जिन्हें संसार पढ़ा हुआ कहता है, वे हउमै के झखना झाख (फजूल) के कामों में पड़े हुए हैं। पढ़े हुए केवल वही हैं, चाहे उन्हें एक अक्षर भी न आता हो, जिन्होंने आत्मिक विद्या सीख ली, अपने स्वरूप का ज्ञान हो गया, निज स्वरूप की प्राप्ति हो गई और परमेश्वर का ज्ञान, जिनके हृदय में बैठ गया कि वह अन्दर बाहर सभी जगह है –

जिमी जमान के बिखै समसति एक जोत है।
न घाट है न बाढ है न घाटि बाढि होत है॥ अकाल उसतति

यही एक बात है, जिसने पढ़ ली, उसने सभी कुछ पढ़ लिया। महाराज कहते हैं उसकी संगत में बैठो।

''क्या होगा महाराज उनकी संगत में बैठने से?''

''वहाँ पर बुरी बातें, बुरी आदतें छुड़वा दी जायेंगी, पाप पुण्य का निर्णय हो जायेगा।''

सती पहरी सतु भला बहीऐ पड़िआ पासि।
ओथै पापु पुंनु बीचारीऐ कूड़ै घटै रासि॥ पृष्ठ - 146

बता देंगे कि यह पाप का बेड़ा है, यह पुण्य का बेड़ा है, निष्काम कर्म कर ले। उससे तेरे अन्तसकरण की मैल दूर हो जायेगी, पाप का रस अन्दर से कम होना शुरू हो जायेगा, झूठ की रास हृदय में से कम हो जायेगी, मलीन अन्तसकरण पवित्र हो जायेगा, मैल उतर जायेगी। जब पवित्र हो गया, उसमें से झांक कर देखेगा, तुझे अपने आप नज़र आ जायेगा, तेरे अन्दर से परमेश्वर नज़र आ जायेगा, लेकिन जो खोटे हैं, वे वहाँ नहीं पहुँच सकते, वे फैंक दिये जाते हैं –

ओथै खोटे सटीअहि खरे कीचहि साबासि॥ पृष्ठ -146

जो खरे हैं उन्हें शाबाशी मिलती है। पाखण्ड करने वाले कपटी, धोखेबाजों, दूसरों का माल दबाने वालों और पाखण्ड का सहारा लेकर धर्मात्मा कहलाने वाले; इस दुनियां में तो कहते हैं वे धर्मात्मा कहलवा सकते हैं, भेष की आड़ लेकर, लेकिन दरगाह में उन्हें जोर से घुमा कर बाहर फैंक दिया जाता है –

बोलणु फादलु नानका दुखु सुखु खसमै पासि॥ पृष्ठ - 146

वाहिगुरू स्वंय ही जानता है। यदि दुख आ गया, सुख आ गया, मनुष्यों का सहारा लेता फिरता है। वाहिगुरू के पास प्रार्थना कर, तेरा रक्षक, तेरे सारे दुखों का खातमा कर देगा। सो इस तरह से, जहाँ गुरू नानक महाराज की संगत हो, साध संगत जी! आप ही अन्दाज़ा लगाओ, कैसे अमृत की नदियाँ बहती होंगी। वहाँ 33 करोड़ देवता, गुरू नानक की संगत में आकर बिराजमान हो जाया करते हैं। अन्य भी कई मुक्त आत्माएं खण्डों, ब्रह्मण्डों में से, सचखण्ड से, कर्म खण्ड से, सरम खण्ड से, ज्ञान खण्ड से, धर्म खण्ड से आत्माएं, सभी गुरू की संगत की कामना करती हैं क्योंकि उनके पास यह वस्तु नहीं है। सत्संग जो है, वह यहीं पर ही है, आगे जाकर नहीं मिलता; इसके बाद तो भोग दुनियाँ है। पदार्थ बेअन्त होंगे, सुख बेअन्त होगा, पर आत्म रस वहाँ नहीं है। आत्म रस तो यदि किसी ने इकट्ठा करना है, यहीं पर ही है और कहीं भी नहीं है। सो सभी देवता उस स्थान पर बिराजमान होते थे। बिराजमान ही नहीं होते थे, बल्कि स्वंय सेवा किया करते थे। पूर्ण महापुरुषों की सेवा करने से, वहाँ तो वाहिगुरू स्वंय ही आता है –

संतां के कारजि आपि खलोइआ हरि कंमु करावणि आइआ राम। ***पृष्ठ - 783***

वाहिगुरू जी स्वंय आते हैं काम करवाने के लिये। जहाँ परमेश्वर आयेगा – सबसे महान, तो फिर वहाँ पर इन छोटे देवी देवताओं का आना तो स्वाभाविक है।

गुरू दशमेश पिता जी का दीवान सजा हुआ है, यही वचन हो रहे हैं। एक सिंघ खड़ा हो गया और प्रार्थना करते हुए कहने लगा, ''पातशाह! हम बहुत बार सुनते हैं कि देवता होते हैं, सत्संग में आते हैं।'' गुरू महाराज ने कहा, ''हाँ भाई!'' बाणी में तो ऐसा फ़रमान आता है –

कहु कबीर इह कहीऐ काहि। साध संगति बैकुंठै आहि॥ ***पृष्ठ - 325***

जहाँ पर साधु की संगत होती है, पूर्ण महापुरुषों की संगत होती है, वह बैकुंठ धाम होता है और वहाँ पर वाहिगुरू जी स्वंय ही आ जाते हैं। ऐसी ही एक साखी आती है।

नारदमुनि ने एक बार व्रत रखा। उसके मन में विचार आया कि मैं बैकुंठ धाम में विष्णु जी के पास जाकर जल पान करके, उसके बाद अपना व्रत तोड़ूगां। यह जो ऋषि है, इसके बारे में ऐसा बताया जाता है कि यह जहाँ भी फुरना (विचार) करे, इसके सामने कोई सफर नहीं है, जहाँ का भी अक्समात विचार किया, वहीं पहुँच जाता है।

सो नारदमुनि बैकुंठ धाम में पहुँच गये। इरादा किया था कि भगवान को जाकर नमस्कार करूंगा। वहाँ जाकर देखा और पता चला कि भगवान तो वहाँ पर हैं ही नहीं। लक्ष्मी जी से पूछा कि कहाँ गये हैं भगवान? तो लक्ष्मी जी बोली, ''बताकर नहीं गये। किसी भक्त के यहाँ गये होंगे क्योंकि उनके भक्त उन्हें सिंहासन पर टिकने ही नहीं देते। आकर्षित करते ही रहते हैं और उन्हें फिर जाना पड़ता है।''

जह जह काज किरति सेवक की तहा तहा उठि धावै॥ ***पृष्ठ - 403***

लक्ष्मी जी ने नारदमुनि से कहा कि आप तो समरथ पुरुष हो, ध्यान लगाकर देख लो। उस समय नारद जी ने ध्यान लगाया, पहले बड़े-बड़े मन्दिरों में देखा, भगवान वहाँ दिखाई न दिए। पहाड़ों पर देखा, ऋषियों के हृदयों में देखा, समुद्र में देखा और अनेक स्थानों पर, जहाँ तक देख सकते थे देखा परन्तु भगवान कहीं भी नज़र न आए। उस समय प्रार्थना की, ''हे भगवान! कृपा करके आप ही मुझे बताओ कि आप कहाँ हो क्योंकि मेरी दृष्टि वहाँ तक नहीं पहुँच रही जहाँ आप चले गये हैं?'' उस

समय आवाज़ आई, ''नारद! अमुक स्थान पर साधुओं की संगत हो रही है, वहाँ पर आ जाओ।'' फुरना ही करना था, वहाँ पहुँच गये। क्या देखते हैं, भगवान सबसे पीछे बैठे हैं। आस-पास कौन बैठे हैं - गरीब जनता बैठी है पैसे वाले, अमीर नहीं बैठे। क्योंकि अमीर आदमी जो होता है, उसके अन्दर अभिमान होने के कारण, अन्दर मैल होती है, उसका मन विनम्र नहीं होता। धर्म पालन करने वाला तो कोई विरला ही है, जिस पर वाहिगुरू की कृपा हो और सत्संग में आ जाए अन्यथा पैसे वाला तो कभी सत्संग में नहीं जाया करता। यह तो गरीबों की जगह है। ईसा जी कहते हैं कि, ''हाथी को यदि सुई की नोक में से गुज़ार दो तो हो सकता है किसी न किसी विधि से पार हो जाए पर जो अभिमानी पुरुष है, धनी पुरुष है यदि वह यह कहे कि वह खुदा के दर पर जा पहुँचेगा, बिल्कुल असम्भव है, वह पहुँच ही नहीं सकता।'' कहते हैं इसका जो अभिमान है, वह कम नहीं है, वह तो आकाश से भी ऊँचा है। सो इस प्रकार देखा कि गरीब आदमी बैठे हैं। नीचे बिछाने वाले टाट आदि भी फटे हुए हैं, कोई बहुत सुन्दर वस्त्रों वाले नहीं बैठे, कोई बनावटीपन नहीं है, कोई इत्र आदि सुगन्धियों का छिड़काव नहीं हो रहा, कोई सोने का मन्दिर नहीं है, जहाँ बैठे हैं। आम सत्संग साधु कर रहे हैं, महापुरुषों के वचन सुना रहे हैं और आप बैठे हुए सुन रहे हैं और पीछे बैठे हैं। नारदमुनि ने जाकर नमस्कार की और कहा, ''भगवान! आप यहाँ?'' कहते हैं, ''हाँ नारद जी! यह मेरा घर है। मुझे लोग ला-मुकाम कहते हैं, घर नहीं है परमात्मा का, परमात्मा का कोई पुत्र नहीं है, कोई माँ नहीं है, कोई पिता नहीं है। सारे संसार को पता नहीं है कि मेरा घर, मेरे प्यारे, मेरे सम्बन्धी, सत्संग में हुआ करते हैं।''

निज घर मेरो साध संगति नारद मुनि, दरसन साध संग, मेरो निज रूप है।
साध संग मेरो माता पिता औ कुटंब सखा, साध संग मेरो सुत स्रेसट अनूप है।
साध संगत सरब निधान प्रान जीवन मै, साध संग निज पद सेवा दीप धूप है।
साध संग रंग रस भोग सुख सहज मै, साध संग सोभा अति उपमा औ ऊप है॥

(कबित भाई गुरदास जी)

गुरू दशमेश पिता जी कहने लगे, ''प्रेमी! इसी तरह से भाई गुरदास जी ने लिखा है।'' कहते हैं, ''सच्चे पातशाह! लिखा तो जरूर है पर आप समरथ हो, एक बार यदि नज़ारा भी दिखा दो तो ठीक है।'' उस समय महाराज जी ने कृपा की, दिव्य दृष्टि खोल दी -

सरब भूत आपि वरतारा। सरब नैन आपि पेखनहारा॥ ***पृष्ठ - 294***

इतना कहने की देर थी, सभी के दिव्य नेत्र, अनुभव खोल दिये। क्या देखा, जगमग-जगमग हो रही है। बहुत ही प्रसन्न हुए, सभी के सभी हैरान भी हैं कि यहाँ तो सारे देवी देवता निवास किए हुए हैं, जहाँ पर हरि की कथा होती है -

हरि की कथा होत है जहाँ॥ गंगा भी चल आवत तहाँ॥

अठसठ तीर्थों के अभिमानी देवता भी वहाँ पर आकर, जैसे बाज़ार लगते हैं, दुकान लगाकर बैठ जाते हैं कि माँगे कोई चीज़ हम से, हम दें। माँगना क्या है?

तीरथ कीए एक फल, संत मिले फल चार।
गुरू मिले फल अनेक हैं, कहित कबीर वीचार।

यदि गुरू मिल जाये तो फलों की प्राप्ति कोई गिनती नहीं हुआ करती। फिर गुरू से ही माँगो, उनसे क्यों मांगते हो? सो इस तरह से सभी बड़े-बड़े महान देवता जो हैं, वे सभी आते हैं सन्तों के दर्शन करने के लिये। इसी तरह बाणी में भी फ़रमान आता है -

धारना - शिव जी खोजदे फिरदे ब्रहमगिआनी नूँ - 2, 2

ब्रहमगिआनी कउ खोजहि महेसुर। नानक ब्रहमगिआनी आप परमेसुर॥ पृष्ठ - 273

उसे वाहिगुरू के दर्शन ब्रह्मज्ञानी द्वारा हो जाते हैं अन्यथा नहीं होते, इन्हें वाहिगुरू जी के दर्शन नहीं होते क्योंकि ऐसा महाराज जी का फ़रमान है -

एका माई जुगति विआई तिनि चेले परवाणु।
इकु संसारी इकु भंडारी इकु लाए दीबाणु।
जिव तिसु भावै तिवै चलावै जिव होवै फुरमाणु।
ओहु वेखै ओना नदरि न आवै बहुता एहु विडाणु॥ पृष्ठ - 7

वाहिगुरू जी तो देख रहे हैं, इन सभी देवताओं को, पर वाहिगुरू जी इन्हें नज़र नहीं आ रहे। नज़र कहाँ आते हैं? उसके प्यारों में नज़र आते हैं क्योंकि उसके प्यारों में तथा परमेश्वर में कोई अन्तर नहीं हुआ करता। इस तरह फ़रमान है -

धारना - सांई ही वरगे ने,
विसरे ना नाम जिन्हां नूँ - 2, 2
विसरे ना नाम जिन्हां नूँ - 2, 2
सांई ही वरगे ने,.......... - 2

जिन्हा न विसरै नामु से किनेहिआ॥ पृष्ठ - 397

प्रश्न उठता है, जिन्हें श्वांस-श्वांस नाम नहीं भूलता, हर समय परमेश्वर में अभेद अवस्था में लीन रहते हैं, वे कैसे होते हैं? महाराज फ़रमान करते हैं -

भेदु न जाणहु मूलि सांई जेहिआ॥ पृष्ठ - 397

वे तो वाहिगुरू जैसे ही हैं -

संत अनंतहि अंतरु नाही। पृष्ठ - 486

सन्त और वाहिगुरू में कोई अन्तर नहीं है -

आतम रस जिह जानही, सो है ख़ालस देव।
प्रभ महि, मो महि, तास महि रंचक नाहन भेव॥ सरब लोह ग्रन्थ में से

जिसने आत्म रस को अनुभव कर लिया, गुरू दशमेश पिता जी कहते हैं कि मुझ में, वाहिगुरू में और उस कोई अन्तर नहीं हुआ करता, एक रूप हो जाते हैं। यह बात बहुत ही ज्ञान की है। जिनके नेत्र खुले हुए हैं, उन्हें पता चलता है कि यह बात ठीक है।

ऐसे ही एक बार की बात है कि शिव जी महाराज और पार्वती संसार में इस धरती पर भ्रमण करते हुए एक ऐसे स्थान पर चले गये जहाँ थोड़ी सी ऊँची जगह झाड़ियाँ आदि हैं; शिव जी महाराज ने उस स्थान को नमस्कार की, सिर झुकाया। पार्वती कहने लगी, ''यहाँ तो कुछ भी नज़र नहीं आ रहा, न तो कोई मन्दिर है, न कोई महात्मा है; यहाँ पर शीश झुकाने का क्या काम?'' उसने शिव जी महाराज से पूछा, ''मुझे एक बात समझ में नहीं आई कि आपने किसे मस्तक नवाँया है?'' शिव जी बोले, ''पार्वती! यह जो ढ़ेर है, यह जो ऊँचा टीला है, किसी समय यहाँ पर एक महात्मा रहा करते थे। उस महात्मा ने अपना जीवन, प्रभु में लीन होकर, एक रूप होकर, यहाँ बिताया था और उनका जो स्पर्श था वह इस धरती के कण-कण में समा गया और आज तक आत्मिक सुगन्धि दे रहा है, हज़ारों वर्षों के बाद भी।'' पार्वती बोली, ''यह क्या हुआ करता है महाराज?'' आपने कहा, ''जैसे घी वाला मटका किसी स्थान पर टूट जाये और टुकड़ियाँ को पड़े-पड़े सैकड़ों साल बीत जाने के बाद भी यदि सूर्य की

गर्मी उन पर पड़ती हो, तो उन टुकड़ियों में चिकनाहट निकल कर सूरज की चमक उसमें से परावर्तित होती हुई नज़र आती है, उसमें से सूरज दिखाई देता है। इसी तरह से जो परमेश्वर का प्यार होता है, जिस स्थान पर बैठ कर वह भजन करता है, उस स्थान पर पवित्रता फैल जाती है और उसकी सुगन्धि जैसे कोई इत्रादि की शीशी टूट जाये, काफी समय बीत जाये, लेकिन उस में से सुगन्धि वैसे ही आती रहती है। इसी प्रकार प्रभु प्यारों की चरण स्पर्श प्राप्त करके धरती सुहावनी रहती है, वहाँ पर बैठकर भजन करने को मन करता है क्योंकि वह महापवित्र स्थान होता है –

जिथै बैसनि साध जन सो थानु सुहंदा॥ *पृष्ठ - 319*

वह सुहावना स्थान बन जाता है।

सो महाराज कहने लगे कि इस तरह भाई गुरमुख! जहाँ परमेश्वर का सत्संग होता हो वहाँ तो देवता चलकर आते हैं; जहाँ गुरू नानक पातशाह स्वयं सत्संग करते हों, वहाँ क्या होगा? क्योंकि आप निरंकार का साकार रूप थे। निरंकार परमेश्वर रूप, रंग, रेख, भेख से न्यारा है। करोड़ों शक्तियाँ हैं परमेश्वर में, अरब-खरब कहना ही गलत है, नाम लेना भी गलत है, बेअन्त-बेअन्त कह दें, तो ठीक है और उनमें से जो सर्वोत्तम शक्ति है उसका रूप, गुरू रूप, गुरू ज्योति जिसे कहते हैं, वह परमेश्वर स्वंय ही हुआ करता है क्योंकि भेद नहीं हुआ करता–

समुंदु विरोलि सरीरु हम देखिआ इक वसतु अनूप दिखाई॥ *पृष्ठ - 442*

कहते हैं जिस प्रकार समुद्र को देवताओं और असुरों ने रिड़का था और चौदह रतन निकाले थे, इसी प्रकार शरीर की खोज करके देख कि सतगुरू स्वंय परमेश्वर ही होता है। दोनों में कोई अन्तर नहीं होता इस प्रकार उपमा रहित परमेश्वर को गुरू रूप में देखकर हमारे सारे भ्रम दूर हो जाते हैं जैसे समुद्र को मथा जाता है, ऐसे ही हमने इस शरीर में देखा, उपमा से रहित, इसके अन्दर एक चीज़ देखी है और उससे हमारे तो भ्रम दूर हो गये। कहते हैं क्या देखा?

गुर गोविंदु गुोविंदु गुरू है नानक भेदु न भाई॥ *पृष्ठ - 442*

गुरू और गोबिन्द में कोई भेद नहीं, क्योंकि वह अकाल पुरुष का रूप है, वह सबसे महान हुआ करता है।

भाई भगीरथ बैठा है, नानक पातशाह के दर पर और अभी प्राचीन संस्कारों के होने के कारण देवी का ध्यान लगाया करता था। किसी साकत ने प्रभु प्रेम जगाने की बजाये, शक्ति की पूजा में लगा दिया। सो महाराज कहते हैं, एक वाहिगुरू की पूजा होती है और एक वाहिगुरू के बनाये हुए देवी देवताओं की पूजा हुआ करती है। ये मुक्ति नहीं दे सकते –

तू कहीअत ही आदि भवानी। मुकति की बरीआ कहा छपानी॥ *पृष्ठ - 874*

नामदेव जी ने पूछा, कहने लगे, ''तुझे सभी आदि भवानी कहते हैं, जब तेरे से मुक्ति माँगते हैं, फिर तू छिप जाती है।''

कहने लगी, ''भगत जी! मेरे पास मुक्ति नहीं है, मेरे जो सेवक हैं, वे गलत हैं, मेरे पास विभूतियाँ हैं, माया है। वे माया ही माँगते हैं। मुक्ति तो मेरे से कोई माँगता ही नहीं, न ही मैं मुक्ति देने में समर्थ हूँ, न ही मैं स्वंय मुक्त हूँ क्योंकि हमारे अन्दर अनेक भ्रम हैं, भ्रम मिटते नहीं। ऐसा फ़रमान है सतगुरू का –

धारना - माइआ विच भरमदे,
सुर नर सभ देवी देवा - 2, 2

सुर नर सभ देवी देवा - 2, 2
माइआ विच भरमदे,.......... - 2

सभी जितने भी देवी देवता हैं, ये सभी माया में से उत्पन्न हुए हैं -

एका माई जुगति विआई तिनि चेले परवाणु॥
इकु संसारी इकु भंडारी इकु लाए दीबाणु॥ *पृष्ठ - 7*

प्रमुख देवता जो हैं, ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव जी, ये माया के ही पुत्र हैं। सो ये भ्रम में पड़े हुए हैं -

भरमे सुरि नर देवी देवा। भरमे सिध साधिक ब्रहमेवा॥ *पृष्ठ - 258*

भ्रम नहीं टूटता, वाहिगुरू की पहचान नहीं हो पाती -

भरमि भरमि मानुख डहकाए। दुतर महा बिखम इह माए।। *पृष्ठ - 258*

इस माया से पार होना इतना कठिन है कि मनुष्य तो भ्रमित होता ही है, देवी-देवता भी इस माया के चक्कर में पड़कर भ्रमित हो जाते हैं, वे भी इससे नहीं छूट पाते। इसलिये संसार का कल्याण करने के लिये, ईश्वर रूप में होते हैं, देवता तो गुरू के द्वार पर आकर, जैसे हम सेवा करने जाते हैं, इसी प्रकार ही सेवा करते हैं।

भगीरथ के मन में बार-बार अपने ध्येय का ध्यान आता है, देवी का बार-बार ध्यान आता है और नेत्र खोलकर देखता है कि एक अति सुन्दर महिला, आठ भुजाओं वाली और हाथ में झाड़ू है, वह झाड़ू लगा रही है।

भगीरथ ने पूछा, ''माता! तू कौन है?'' कहने लगी, ''मैं वही हूँ जिसका तू भजन करता है।''

वह बोला, ''हैं! यहाँ झाड़ू लगा रही हो?''

वह बोली, ''गुरू नानक जी स्वंय निरंकार ब्रह्म रूप हैं, आप परमेश्वर का स्वरूप हैं और हम सारी शक्तियाँ प्रभु से प्राप्त करते हैं।''

भगीरथ ने कहा, ''फिर मैं तो आपको ही मानता हूँ।''

उसने कहा, ''बेटा! तू भी इन्हें ही मान, हम भी इन्हीं से शक्ति लेते हैं। मेरे पास विभूतियाँ हैं, सिद्धियाँ हैं, पैसा है, यह तो मैं दे सकती हूँ, लेकिन जो असली चीज़ है परम पद, वहाँ तक तो हम भी नहीं पहुँचे हुए। वह तो गुरू नानक के पास है।''

इतना कहने की देर थी, पलक झपकते ही अकारण नेत्र खुल गये कि मेरी सारी जिन्दगी ऐसे ही बीत गई, मुझे तो पता ही नहीं चला। देवी बोली, ''वह पूर्ण हैं, स्वंय निराकार साकार रूप धारण करके दरगाह में से, गुरू रूप में प्रकट हुए हैं और 'नानक' नाम रखवाया है, उनकी चरण शरण प्राप्त कर ले बेटा, यहीं से ही तुझे सभी कुछ प्राप्त होगा।''

सारी जिन्दगी की मेहनत के पश्चात यदि उसका ध्येय गलत है फिर तो बहुत हैरानी की बात है। उसी समय नानक के साथ सौदा कर लिया। तन भी दे दिया, मन भी दे दिया, धन भी दे दिया, सभी कुछ दे दिया। महाराज जी फ़रमान करते हैं कि संसार में जितने भी देवी देवता हैं, जैसे हम प्रभु के गीत गाते हैं, ये भी सभी प्रभु का यश गा रहे हैं -

धारना - ईसर ब्रहमा दे समेत देवी देवते,
तेरा जस गाउण मालका - 2, 2

तेरा जस ओ, गाउण मालका - 2, 2
ईसर ब्रहमा दे समेत देवी देवते,........ - 2

गावहि तुहनो पउणु पाणी बैसंतरु गावै राजा धरमु दुआरे।
गावहि चितुगुपतु लिखि जाणहि लिखि लिख धरमु वीचारे।
गावहि ईसरु बरमा देवी सोहनि सदा सवारे।
गावहि इंद इंदासणि बैठे देवतिआ दरि नाले।। पृष्ठ - 6

जितने भी बड़े-बड़े महान देवता हैं, वे परमात्मा की स्तुति (प्रशंसा) करते हैं। सो साध संगत जी! जब भगीरथ ने यह दृष्टान्त देखा, उसी समय गुरू का हो गया। थोड़ा बहुत नहीं हुआ, अपना आपा, तन बेच दिया, मन बेच दिया, धन दे दिया, सभी कुछ गुरू के अर्पण कर दिया। जब महाराज जी ने सत्संग की समाप्ति की तो उस समय इसने प्रार्थना की कि पातशाह! मैं तो अपना जन्म तांत्रिक साधना में बिता चुका हूँ, मुझे पता नहीं था कि आत्म प्राप्ति कोई और चीज़ होती है; मैं समझता था देव पूजा से ही प्राप्ति हो जायेगी, यहीं से ही मेरे स्वरूप का ज्ञान हो जायेगा, यहीं से ही मुझे परम पद की प्राप्ति हो जायेगी। इसके लिये मैंने बहुत कठिन साधन किये, बड़े-बड़े व्रत किये। पातशाह! अब मैं दो दिन से लगातार रो रहा हूँ, न ही मैंने जल-पान किया है। इसलिये मैंने भी दृढ़ निश्चय कर लिया है कि जब तक मुझे देवी जी के दर्शन नहीं होते, तब तक कुछ भी नहीं खाना पीना। क्योंकि मैंने सन्तों की संगत में से सुन लिया था कि सबसे बड़ी से बड़ी चीज़ है 'अविनाशी पद' की प्राप्ति -

अबिनासी खेम चाहहि जे नानक सदा सिमरि नाराइण॥ पृष्ठ - 714

पातशाह! मैंने कौतुक देखा, सारे कौतुक का वर्णन किया। तब उस समय कहने लगा, "हे प्रभु! मुझ पर कृपा करो, मुझे रास्ता बताओ, किस तरह से परमेश्वर का मेल हो, कृपा करो।" उस समय महाराज जी बोले, "प्रेमी! देख, एक गड्डा (बैलगाड़ी) चलता है, उसके दो पहिए हैं; पक्षी उड़ते हैं उनके दो पंख हुआ करते हैं। सो दो बातें तू दिल में सबसे पहले धारण कर। एक तो यह धारण कर कि वाहिगुरू सभी जगह परिपूर्ण है, वह सभी कुछ अन्दर बाहर की बात जानता है और उसके भय में रह। दूसरी बात यह मन में बिठा ले कि वह इतना अच्छा है कि बिना मांगे संसार को देता रहता है -

देदा दे लैदे थकि पाहि। जुगा जुगंतरि खाही खाहि॥ पृष्ठ - 2

जैसे माँ बाप बच्चों को पालते हैं, वह भी ऐसे ही पालता है। हमारे शरीर की रचना उसने की है, खाने पीने का प्रबन्ध वह हमारा कर रहा है। हमने तो कुछ भी नहीं किया। धरती में से चीज़ें पैदा कर दीं, जिन्हें खाकर हम जीवित रह सकते हैं और जिन्दगी का सफर तय कर सकते हैं। फिर वह दयालु है, कृपालु है, क्षमा करने वाला है, पतितों का उद्धार करने वाला है, महा पापियों को पार लगाने वाला है। वह सभी कुछ है, वह कभी साथ नहीं छोड़ता, दुनियाँ साथ छोड़ देती है। जिनके साथ तेरा मेल है, वे सभी साथ छोड़ देते हैं। यदि कोई निभाता है तो केवल गुरू ही निभाता है। यहाँ भी जन्म में साथ रहता है और जहाँ जायेंगे वहाँ भी साथ ही रहेगा -

जह जह पेखउ तह हजूरि दूरि कतहु न जाई।
रवि रहिआ सरबत्र मै मन सदा धिआई।
ईत ऊत नही बीछुड़ै सो संगी गनीऐ।
बिनसि जाइ जो निमख महि सो अलप सुखु भनीऐ।
प्रतिपालै अपिआउ देइ कछु ऊन न होई।
सासि सासि संमालता मेरा प्रभु सोई॥ पृष्ठ - 677

वह कभी भी दूर नहीं होता और ऐसे दयालु, कृपालु पिता के साथ, तू हृदय से प्यार पैदा कर। सो जब ये दो चीज़ें हो जायेंगी, इनका जब अपने मन में श्रृंगार कर लेगा, उस समय परमेश्वर की कृपा दृष्टि तुझ पर पड़ जायेगी, यदि यह श्रृंगार नहीं करता, तो भेष चाहे जितने मर्ज़ी बना ले, कितने कर्म क्यों न कर ले क्योंकि –

इहु तनु माइआ पाहिआ पिआरे लीतड़ा लबि रंगाए।
मेरै कंत न भावै चोलड़ा पिआरे किउ धन सेजै जाए॥ पृष्ठ – 721

महाराज जी आगे लिखते हैं –

इआनड़ीए मानड़ा काइ करेहि। आपनड़ै घरि हरि रंगो की न माणेहि।
सहु नेड़ै धन कंमलीए बाहरु किआ ढूढेहि।
भै कीआ देहि सलाईआ नैणी भाव का करि सीगारो॥ पृष्ठ – 722

भय (अदब) का सुरमा नेत्रों में डाल, यह जो तू वस्त्र पहनता है, सोने के गहनों का श्रृंगार करता है, अच्छे-अच्छे सुन्दर वस्त्र पहनता है, इनकी जगह तू प्रभु के प्यार का श्रृंगार कर। जब प्यारे का श्रृंगार करेगा उस समय, यही शरीर, यह जो जीव आत्मा है, यह परमेश्वर को रुच जाया करती है, पसन्द आ जाती है। सो फ़रमान है –

धारना – भै ते प्रेम दा श्रृंगार अंदर कर लै,
फेर उहनूँ भाअ जावेंगा – 2, 2
फेर उहनूँ जी भाअ जावेंगा,......... 2, 2
भै ते प्रेम दा श्रृंगार अंदर कर लै,....... – 2

पेवकड़ै धन खरी इआणी।। पृष्ठ – 357

जब इस संसार में हम होते हैं, महाराज कहते हैं बिल्कुल अनजान होते हैं क्योंकि वाहिगुरू जी की सार न समझी –

तिसु सह की मै सार न जाणी।
सहु मेरा एकु दूजा नही कोई। नदरि करे मेलावा होई। पृष्ठ – 357

जब यहाँ से गये, फिर पता चला – सच की पहचान का –

साहुरड़ै धन साचु पछाणिआ॥ सहजि सुभाइ अपणा पिरु जाणिआ। पृष्ठ – 357

गुरू की कृपा से ऐसी मति आई –

गुरपरसादी ऐसी मति आवै॥ तां कामणि कंतै मनि भावै॥ पृष्ठ – 357

तो यह कामिनी वाहिगुरू को रुच गई –

कहतु नानकु भै भाव का करे सीगारु। सद ही सेजै रवै भतारु॥ पृष्ठ – 357

जो श्रृंगार करना है, भय तथा भाओ का कर। प्यार और अदब का श्रृंगार कर फिर बिछौड़ा नहीं होता उसका।

महाराज कहते हैं, ''देख प्यारे! वाहिगुरू जी को हाज़िर नाज़िर समझना, कभी भी नहीं कहना कि वह है नहीं। जब उसे हाजिर नाजिर समझेगा, वह करोड़ों ब्रह्मण्डों का स्वामी है और उसकी हजूरी में चला जायेगा फिर वहाँ से भय (अदब) का श्रृंगार करना। वह निर्मल भय (अदब) होता है, ऐसा भय नहीं जैसे साँप का डर होता है। प्यार भरा भय कि कभी गलत काम मेरे से न हो जाये। सो भय और प्यार का श्रृंगार करना और प्यार में रह, इससे तेरी नाम वाली वृत्ति, ऊँची होती चली जायेगी।

सो इस तरह से नाम की दात दे दी। खीवा (सम्पूर्ण) हो गया उस समय। नाम रस आ गया, तान्त्रिक मैल हट गई, गुरमत दृढ़ हो गई, नाम में मन टिक गया, मन दौड़ने से रुक गया। पहले जो रुचि थी, उसमें एकाग्रता तो आ गई थी - त्राटक में, पर रस नहीं आता था, Frustration निराशा, उदासीनता रहती थी, क्रोध आता था। जो नाम का प्यार है, वह रस से भरा पड़ा है।

प्रभु प्यार के बिना भोग, रुचियाँ खत्म नहीं होतीं और भोगों की जो रुचि है, यह मनुष्य के मन को कमज़ोर कर देती हैं और जब मन और तन की शक्ति खर्च हो गई तो महाराज कहते हैं -

खसमु विसारि कीए रस भोग। तां तनि उठि खलोए रोग॥ *पृष्ठ - 1256*

जब वाहिगुरू जी को हम भूल गये, भोगों में प्रवृत्त हो गये; भोग आज तक किसी ने नहीं भोगा, बल्कि भोगों ने आदमी को भोगा है। शराब खत्म नहीं होती, शराब व्यक्ति को भोग जाती है, फेफड़े और हृदय को कमज़ोर कर देती है। शराब भोग लेती है इसे, इसने शराब को न भोगा। कोई भी विषय ले लो संसार का, वह मनुष्य को भोग जाता है। भरथरी हरि जी कह गये कि हैरानी की बात है, हमें ऐसा लगता है कि हम भोगों को भोग रहे हैं, स्वादिष्ट भोजन खा रहे हैं परन्तु वे भोग हमें भोग रहे हैं। फ़रमान है -

बहु सादहु उपजै रोग।।

महाराज कहते हैं जितने स्वादिष्ट भोजन खायेगा, वे तुझे भोग जायेंगे और फिर यह शरीर रोगी हो जायेगा। सो इस तरह से शरीर की शक्ति खत्म हो जाती है। जैसे आतिश़बाजी जलती है, इस तरह से शरीर की जो ताकत है, खत्म होती जाती है, फिर भोगों के संस्कार मन को मैला कर देते हैं, मन नाम में नहीं टिकता। मनुष्य जितने भोग भोगता है, मन की भूख कभी नहीं मिटती और अधिक बढ़ती जाती है। भोगे हुए भोग मनुष्य को कभी तृप्त नहीं करते -

धारना - बहु रंग तमासे - 2, 2
अखीआं देख न रज्जीआं - 2, 2

अखी वेखि न रजीआ बहु रंग तमासे। उसतति निंदा कंनि सुणि रोवणि तै हासे।
सादीं जीभ न रजीआ करि भोग बिलासे। नक न रजा वासु लै दुरगंध सुवासे।
रजि न कोई जीविआ कूड़े भरवासे। पीर मुरीदाँ पिरहड़ी सची रहरासे॥
भाई गुरदास जी, वार 27/9

आज तक संसार में भोग भोगता हुआ कोई भी व्यक्ति तृप्त नहीं हुआ। न तो नेत्र देख-देख कर थकते हैं, न कान सुन-सुन कर थकते हैं, न जीभ स्वाद चख चख कर तृप्त होती है, न नाक वासनाएं सूंघ-सूंघ कर शान्त होती है और अधिक जीने की जो वासना है, वह भी कोई जी भर कर नहीं जी सका। दो सौ वर्ष की आयु हो गई, कहते हैं कि अभी कम ही है, पाँच सौ साल की हो गई, कहते हैं जल्दी चला गया -

रजि न कोई जीविआ कूड़े भरवासे॥ *भाई गुरदास जी, वार 27/9*

सो जितनी भी ज्ञानेन्द्रियाँ हैं -

अखी वेखि न रजीआ बहु रंग तमासे॥ *भाई गुरदास जी, वार 27/9*

जो पीरों तथा मुरीदों का प्यार है, वही सच्चा रास्ता है, सच्ची रहरास है। सो इस प्रकार भोग की रूचि खत्म हो गई। अच्छे भोग की रूचि, मनुष्य हर समय मांगता है, चाहता है। दुनियाँ का कोई

ऐसा व्यक्ति नहीं जो परमेश्वर को प्यार में मांगे या उसके दर्शनों की माँग करे, कोई बिरले-बिरले ही होते हैं, सारे नहीं होते। जरूरत के लिये, अपने भोगों के लिये, दिन रात उसके पास प्रार्थनाएं होती हैं। ये कभी समाप्त नहीं हुआ करतीं। पहले थोड़ा सा पैसा मांगता है कि मेरे पास 20 हज़ार रूपये हो जायें, फिर कहता है 20 लाख हो जायें, वह हो गया। अब कहता है 20 करोड़ हो जायें। आगे ही आगे बढ़ता चला गया -

त्रिसना बिरले ही की बुझी हे।
कोटि जोरे लाख क्रोरे मनु न होरे। परै परै ही कउ लुझी हे॥ *पृष्ठ - 213*

सो वासनाओं में, भोगों में रूचि कभी खत्म नहीं हुआ करती-

भुखिआ भुख न उतरी जे बंना पुरीआ भार॥ *पृष्ठ - 1*

बेशक चौदह पुरियों का बोझ क्यों न बान्ध ले तो भी जो भोगों की रूचि है, उसकी भूख कभी नहीं मिटा करती और फिर यह कितनी बुरी है? जब मनुष्य शरीर छोड़ता है, उस समय वह रूचि बहुत तंग करती है। वह वासना बन जाती है, फिर वासना से हम जन्म मरण के चक्कर में आते हैं। मकान की वासना, मकान-मकान मनुष्य करता रहता है। होगा क्या? प्रेत बन जायेगा। पैसा, पैसा, पैसा, पैसा, सारी जिन्दगी करता रहता है, मरने के बाद साँप की यौनि में पड़ जायेगा। स्त्रीयों की ओर ध्यान देता है, मरने के बाद वेश्या बन जायेगा, पुत्रों की ओर ध्यान देता है कि और चाहिए, हुआ नहीं, मर गया - पुत्र को याद करता करता, सूअर बन जायेगा, बारह बारह इकट्ठे ही पैदा होते हैं फिर। यदि परमेश्वर की ओर रूचि हो तो महाराज फ़रमान करते हैं -

अंति कालि नाराइणु सिमरै ऐसी चिंता महि जे मरै।
बदति तिलोचनु ते नर मुकता पीतंबरु वा के रिदै बसै॥ *पृष्ठ - 526*

वाहिगुरू इसके हृदय में बस जाता है, फिर मुक्ति प्राप्त हो जाती है। सो इस प्रकार भाई भगीरथ बन्दगी करता है। महाराज जी की उच्चारण की हुई बाणी इकट्ठी कर ली, उसकी विचार करता है, सिमरण करता है।

जो गुरबाणी है, इसकी विचार नाम की ओर प्रवृत्त करती है। नाम में रूचि जाग्रत ही गुरबाणी से होती है। यदि व्यक्ति अकेला नाम ही जपता रहे, थोड़ी देर के बाद जैसे ईंधन (Fuel) खत्म हो जाता है, इसी तरह उसकी रूचि ठण्डी पड़ जाती है। यदि बाणी का भी साथ-साथ विचार करता है, तो रोज़ दिन दुगुनी रात चौगुनी उन्नति करता है क्योंकि विचार आते रहते हैं, इरादा बनता रहता है। सो जो नाम है, यह मैल दूर करता है, इससे मन के अन्दर प्रकाश आता है। जब गुरमुख की सेवा करता है, उस समय जो हउमैं मनुष्य के अन्दर होती है यह निज हउमै सेवा करने से टूटती है और फिर इससे आपा नरोआ होता है। साध संगत जी! बाणी नाम की कीमत बता कर चाव पैदा करती है क्योंकि बाणी हमें बार-बार बताती है -

धारना - इच्छा होण सभे तेरीआं पूरीआं,
सतिनामु जप के वाहिगुरू - 2, 2
मेरे पिआरे, सतिनामु जप के वाहिगुरू - 2, 2
इच्छा होण सभे तेरीआं पूरीआं............ - 2

बाणी बताती है -

प्रभ कै सिमरनि पूरन आसा॥ *पृष्ठ - 263*

प्रभ कै सिमरनि रिधि सिधि नउ निधि॥ *पृष्ठ - 262*

नवनिधी अठारह सिधी पिछै लगीआ फिरहि जो हरि हिरदै सदा वसाइ॥ *पृष्ठ - 649*

रूचि पैदा होती है मनुष्य के मन में। सो बाणी नाम की ओर प्रेरित करती है, बताती है -

साई नामु अमोलु कीम न कोई जाणदो।
जिना भाग मथाहि से नानक हरिरंगु माणदो॥ *पृष्ठ - 81*

बाणी बार-बार हमें बताती है कि नाम का धन तेरे साथ जायेगा, शेष कर्मों-धर्मों द्वारा जितना धन कमाया है, वह सारा यमदूत, परलोक के रास्ते में लूट लेते हैं। जिसके पास नाम धन है उसे यहाँ भी सभी आदर पूर्वक नज़रों से देखते हैं और जब दरगाह में जाते हैं, वहाँ भी आदर होता है -

रे रे दरगह कहै न कोऊ। आउ बैठु आदरु सुभ देऊ॥ *पृष्ठ - 252*

बहुत बड़ी बात है यह यदि दरगाह में जाकर आदर मान मिल जाये। वहाँ कहते हैं, 'आओ जी, बैठो जी, धन्य हैं आप, आप तो बहुत अच्छा काम करके आए हो।' फिर सारी चिन्ताएं मिट गई तेरी, सारा दुख दूर हो गया क्योंकि वही डर मनुष्य को मार रहा है। कहाँ भेज दें वाहिगुरू जी, कोई पता नहीं है? साध संगत जी! जिसके पल्ले में नाम है -

जिसु वखर कउ लैनि तू आइआ। राम नामु संतन घरि पाइआ।
तजि अभिमानु लेहु मन मोलि। राम नामु हिरदे महि तोलि।
लादि खेप संतह संगि चालु। अवर तिआगि बिखिआ जंजाल॥
धंनि धंनि कहै सभु कोइ। मुख ऊजल हरि दरगह सोइ॥ *पृष्ठ - 283*

दरगाह में मुख उजला हो जाता है। पर महाराज कहते हैं, इतनी बातें सुनने के बाद भी, संसार को होश नहीं आती, बेसुरत ही पड़ा रहता है क्योंकि Ego (हउमैं) की सुरत में रह रहा है, आत्मिक सुरत में नहीं आया और महाराज इसे बार-बार ताकीद करके इस तरह फ़रमान करते हैं-

धारना - मन भोलिआ हउमै सुरति विसार - 2, 2
हउमै सुरति विसार - 4, 2
मन भोलिआ,...................-2

कौन सी बातों के चक्कर में पड़ गया तू? जीवन की सुरत है तुझे? यह मेरा पुत्र है, ये मेरी पुत्रियाँ हैं, यह मेरे भाई हैं, यह मेरी जायदाद है, यह मेरा मित्र है, ये मेरे दुश्मन हैं, यह हमारे गाँव का है, यह हमारे भाईचारे में से है, यह फलाना है, यह अमुक है, हउमै की सुरत में रहता है, कभी नहीं कहता कि यह मेरा वाहिगुरू है, कोई भी नहीं कहता। महाराज कहते हैं, हैरानी की बात है -

संगि सहाई सु आवै न चीति। जो बैराई ता सिउ प्रीति। *पृष्ठ - 267*

जिन्होंने नुक्सान करना है, दुख देना है, उनके साथ तो प्रीत लगाई हुई है - काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ईर्ष्या, द्वैष, चुगली, आसा, अन्देशा आदि अवगुणों से और जिस वाहिगुरू ने सदा ही साथ रहकर, इसे सदा ही सुख देना है, उसे चित्त से भुलाए बैठा है क्योंकि सुरत हउमैं की है। सो महाराज कहते हैं -

इहु वापारु विरला वापारै॥ *पृष्ठ - 283*

यह नाम का धन कोई विरला ही पुरुष है जो इकट्ठा करता है -

नानक ता कै सद बलिहारै॥ *पृष्ठ - 283*

महाराज जी कहते हैं, सौ बार हम बलिहार जाते हैं उस पर, जो नाम धन इकट्ठा करते हैं। सो बाणी में से यह प्रेरणा मिलती है, साध संगत जी!

भाई भगीरथ गुरू नानक जी की संगत में रहकर सेवा करता है और चन्द दिनों के अन्दर ही इसकी सुरत ऊँची उठती चली गई। जो सफर तय करने में काफी आयु बीत जाती है, कितने-कितने जन्म लेता है, यह सफर इसने कुछ ही देर में तय कर लिया। गुरू महाराज जी की उस पर नदर हो गई -

नानक नदरी नदरि निहाल॥ ***पृष्ठ - 8***

उच्च पद पर पहुँचा दिया। द्वैत भाव खत्म करके अभेद अवस्था में पहुँच गया।

आज गुरू नानक पातशाह जी सुलतान पुर बैठे हैं और भाई भगीरथ मलसीहां से गुरू महाराज जी के साथ सुलतानपुर आ गए। वह भी साथ ही आ गया। महाराज मोदीखाने में काम करते हैं, वह भी साथ ही रहता है, पास ही गाँव है पर यह फिर वापिस गाँव गया ही नहीं। एक सैकिण्ड के लिये भी महाराज से बिछौड़ा नहीं चाहता। सो बार-बार हर समय टकटकी लगाकर महाराज जी के दर्शन करता रहता है और थोड़ी देर के लिये भी महाराज जी आखों से ओझल हो जाएं, दिल में धड़कन मच जाती है, एक सैकिण्ड के लिये भी नेत्रों से दूर नहीं होने देना चाहता। ऐसी प्रीत महाराज जी के साथ इसकी पड़ गई जैसे चाँद चकोर की प्रीत है -

चँद चकोर परीत है, लाइ तार निहाले। चकवी सूरज हेत है, मिलि होनि सुखाले।
नेहु कवल जल जाणीऐ, खिड़ि मुह वेखाले। मोर बबीहे बोलदे, वेखि बदल काले।
नारि भतार पिआरु है, माँ पुत समाले। पीर मुरीदा पिरहड़ी, ओहु निबहै नाले॥

भाई गुरदास जी, वार 27/4

गुरू महाराज जी के पास आज एक गरीब आदमी, अच्छा खाते पीते परिवार से सम्बंध रखने वाला, हालातों ने गरीब बना दिया, जिसे सफेदपोश कहते हैं, (कई भाई मरदाना आया है ऐसा लिखते हैं) महाराज जी के पास आकर प्रार्थना करने लगा कि पातशाह! आप सभी को रूहानी उपदेश देते हैं और आध्यात्मिक दृष्टि से उन्नति करवाते हैं और साथ ही साथ आप व्यवहार का भी ज्ञान देते हो और आपके पास ग्राहक भी आते हैं। जब आपके पास आते हैं और जब धड़ी तोलते-तोलते तेरह की गिनती पर पहुँचते हो, उस समय पता नहीं कितनी धड़ियाँ भरकर तेरह-तेरह की डाले जाते हो, तेरा, तेरा, तेरा से समाधि लग जाती है। व्यवहार भी पूरा करते हो, आप दीन और दुनियाँ दोनों के रखवाले हो। पातशाह! मैं गरीब तकलीफ में हूँ। सफेदपोश हूँ, किसी के आगे आज तक हाथ नहीं फैलाया, लड़की विवाह योग्य हो गई, घर में बिठाई नहीं जा सकती क्योंकि आजकल जमाना जो है, यहाँ अपना राज नहीं है, गुलामी का जमाना चल रहा है और बाहर के पठानों का राज है, जवान लड़की को रहने नहीं देते, उठाकर ले जाते हैं, इसलिये छोटी उम्र में ही विवाह कर दूँ और अपने घर चली जाये। पातशाह! मैं दिन रात इसी चिन्ता में रहता हूँ। मुझे कोई रास्ता बताओ, कृपा करो। महाराज जी ने दर्द भरी अपील सुनी और आपने फ़रमान किया कि प्रेमी! तू चिन्ता मतकर, तू यह बता, तुझे क्या चाहिए? लिख दे। उस समय सारी रसद जो थी, जो कपड़ा लत्ता, जो वस्तु चाहिए थी, वह सारी कागज़ पर लिख दी। महाराज जी ने अपने दस्त-ए-मुबारक के साथ स्वंय लिखी और कहा कि तू चिन्ता मत कर, दो चार दिनों के अन्दर सारा प्रबन्ध हो जायेगा। उस समय आप जी ने माया दी, भाई भगीरथ को बुलाया और कहा, ''गुरसिख! ऐसे कर, लाहौर जा और वहाँ से ये चीज़ें खरीद कर ला और यह पैसे ले जा, यह सारा काम जल्दी-जल्दी करना है; लाहौर केवल एक रात रहना है, दूसरी रात नहीं रहना।'' बात समझा दी, पैसे दे दिये। भाई भगीरथ लाहौर पहुँच गया।

वहाँ से जब गया, जाकर अच्छा व्यापारी देखकर, जिसका नाम भाई मनसुख था, उसको जा कर सारे सामान की सूची दिखाई और कहा, ''शाह जी! एक विवाह है और यह सामान की सूची है,

इसके अनुसार हमें विवाह के लिये सौज (श्रृंगार आदि) जल्दी से जल्दी चाहिए। जो कुछ आपके पास है, वह दे दीजिए, जो कुछ तुम्हारे पास नहीं है, वह हमें किसी और जगह से मंगा कर दिलवा दें।'' भाई मनसुख ने सूची पढ़ी और कहने लगा, ''भाई आपका नाम क्या है?'' इसने कहा, ''मुझे भगीरथ कहते हैं।''

उसने कहा, ''भाई भगीरथ! यह जो लिस्ट है, बाकी सारा सामान तो है और वह मैं अभी तैयार कर देता हूँ परन्तु चूड़ा नहीं बनेगा, इसे बनवाने के लिये, जिस तरह का चूड़ा लिखा हुआ है, वैसा बनवाने के लिये दो दिन लगेंगे।''

भाई भगीरथ ने कहा, ''देख भाई मनसुख जी! पर मैं एक रात से अधिक नहीं ठहर सकता क्योंकि मुझे आज्ञा नहीं मिली है।'' कहने लगा, ''आप दौलत खान लोधी की नौकरी करते हो। उन्होंने हुक्म दिया है कि एक रात से अधिक न रहना। मैं आपको सलाह देता हूँ कि आप दो रातें यहाँ बिताओ, यहाँ पर मुलतानी घोड़ियों वाला यक्का बहुत तेज चलता है, वह थोड़े से समय में ही सुलतानपुर पहुँचा देगा, फिर उसमें जहाँ तुम दो रातें बिताओगे, एक रात इधर मुजरे (आतिथ्य) में डाल दो, तुम्हारा काम बन जायेगा, साथ ही तुम्हारा सामान भी ठीक ठाक रहेगा, कहाँ उठाये फिरोगे? वहाँ से फिर आप तांगे में बैठकर, यक्के में बैठकर चले जाना।''

भाई भगीरथ कहने लगे, ''ठीक है, ये सारी बातें मैं जानता हूँ, पर हुक्म डाहढे (सर्वशक्तिमान) का है।'' वह कहने लगा, ''आप कोई नौकरी करते हो, पठान का हुक्म है या किसी और हाकिम का हुक्म है?''

भाई भगीरथ ने कहा , ''हाकिम का हुक्म होता तो मुझे कोई कठिनाई नहीं थी। पर वह हुक्म डाहढे का है जिसकी अदूली (हुक्म न मानना) करके, मेरी दीन और दुनियाँ दोनों ही बिगड़ते हैं।''

भाई मनसुख यह सुनते ही एकदम चौंक पड़ा। कहने लगा, ''हैं! ऐसा भी कोई हाकिम आज के संसार में है, जिस की हुक्म उल्लंघना करके दीन भी बिगड़ता हो और दुनियाँ भी बिगड़ती हो? दुनियाँ तो हमने सुनी है लेकिन दीन की बात तो हाकिमों के पास होती ही नहीं।'' कहने लगा, ''भाई भगीरथ! इतनी कठिन बात है?''

भाई भगीरथ जी ने कहा यह बहुत ही मुश्किल बात है क्योंकि जो सेवा मैंने सिर पर उठाई हुई है, वह तन्खाह लेने वाली नहीं है, वह तो आपा (निजित्व) देने वाली है, देते ही चले जाना है, अपने पास कुछ नहीं रखना क्योंकि मुश्किल सेवा है, बहुत कठिन बात है। इस तरह से फ़रमान है –

धारना - गुर की सेवा औखी है - 2, 2
सिरु दीजै आप गवाइ - 2, 2

सतगुर की सेवा गाखड़ी सिरु दीजै आपु गवाइ।
सबदि मिलहि ता हरि मिलै सेवा पवै सभ थाइ। ***पृष्ठ - 27***

भाई भगीरथ जी ने कहा, ''भाई मनसुख! मैं गुरू की सेवा में हाज़िर हूँ और मेरे गुरू का हुक्म है कि एक रात से अधिक नहीं ठहरना और जो महापुरुषों की सेवा है, वह बहुत कठिन होती है। इसके अन्दर यदि आपा 'मैं' भाव बचा कर रख लें तो यह सेवा नहीं होती कि 'मैं' भी रहूँ, 'मेरा' अस्तित्व भी रहे और सेवा भी हो। अपने आप को समाप्त करना पड़ता है।''

गुर कै ग्रिहि सेवकु जो रहै। गुर की आगिआ मन महि सहै।

आपस कउ करि कछु न जनावै। हरि हरि नामु रिदै सद धिआवै।
मनु बेचै सतिगुर कै पासि। तिसु सेवक के कारज रासि।
सेवा करत होइ निहकामी। तिसु कउ होत परापति सुआमी॥ *पृष्ठ - 287*

परमात्मा तो उसे मिलता है जो अपने आप को मिटा दे। यदि 'मैं' वैसे ही बनी रहे और सेवा भी करता है और अपने आप की भी गिनती करता है कि मेरी भी महिमा हो, मुझे भी लोग अच्छा कहें, मेरा भी कहना मानें; फिर तो भाई सेवादार नहीं है, फिर तो शरीक हो जाता है। उसकी सेवा का सही मूल्य नहीं मिला करता, गुरू की गोद में समाना पड़ता है। एक स्थान पर ये दोनों चीज़ें इकट्ठी नहीं रह सकतीं -

हउमै नावै नालि विरोधु है दुइ न वसहि इक ठाइ॥ *पृष्ठ - 560*

सेवादार में यदि 'मैं' है तो उसकी सेवा को महत्व नहीं दिया जाता। सेवा उसी की मानी जाती है जो 'मैं' गवाँ दे और जब तक हउमै है, महाराज जी फ़रमान करते हैं -

पहिला मरणु कबूलि जीवण की छडि आस।
होहु सभना की रेणुका तउ आउ हमारै पासि॥ *पृष्ठ - 1102*

यदि 'मैं' को रखकर सेवा करता है, कहते हैं वह सेवक नहीं हुआ करता। सेवादार नहीं हुआ करता।

एक महात्मा था, आपके पास एक डाकू आ गया, पुलिस पीछे लगी हुई थी और जब पास आ गई तो मन में कहने लगा कि सन्त जी मुझे अवश्य बचा लेंगे। सन्तों के पास जाते ही उनके चरणों में गिर पड़ा। कहने लगा, ''महाराज! मैं डाकू हूँ, मैं आपसे कुछ भी छिपा कर नहीं रखना चाहता और मेरे पीछे वह देखो, पुलिस आ रही है, यदि आज बचा लें, तो मैं सारी ज़िन्दगी आपका एहसान नहीं भूलूंगा।'' सन्त कहने लगे, ''प्यारे! अब तो बातें करने के लिये समय नहीं है, जा! वहाँ से माला उठा ले और बैठकर वाहिगुरू-वाहिगुरू करने लग जा।'' उसी समय पुलिस आ गई। यह बैठा माला फेर रहा है।

पुलिस के सिपाही बोले, ''सन्त जी! यहाँ चोर आया है?'' सन्त जी ने कहा, ''भाई! हमारे लिये तो चोर भी सन्त और सन्त भी सन्त।''

चोर साध सभ ब्रहम पछानो॥ *पैंतीस अखरी*

हमें तो कोई भी बुरा नहीं दिखाई देता, मैं ही सबसे बुरा हूँ, मेरे से तो आप सभी अच्छे हो, चोर भी अच्छे हैं -

हम नही चंगे बुरा नही कोइ॥ *पृष्ठ - 728*

मैं अच्छा नहीं हूँ और मुझे कोई बुरा दिखाई नहीं देता। मुझे तो कोई भी चोर दिखाई नहीं देता -

मन मेरे जिनि अपुना भरमु गवाता।
तिस कै भाणै कोइ न भूला जिनि सगलो ब्रहमु पछाता॥ *पृष्ठ - 610*

वाहिगुरू जी ही है सभी रूपों में। यह बात कहने की नहीं हुआ करती, साध संगत जी! महात्मा सभी में ब्रह्म पहचान कर चलते हैं।

यू. पी. में जहाँ मेरा फार्म था, साथ ही एक नगर कैमरी नाम का था, थाना था वहाँ पर। वहाँ एक साधु रहा करते थे - अणगउले (अपरिचित) से, उन्हें कोई नहीं जानता था। मैंने भी कई बार सुना था। एक बार मन में आया कि दर्शन करके आएं, सन्तों के दर्शन का बहुत महातम होता है -

कबीर एक घड़ी आधी घरी आधी हूं ते आध।

भगतन सेती गोसटे जो कीने सो लाभ॥ *पृष्ठ - 1377*

सन्तों के पास जाने से कभी भी नुकसान नहीं हुआ करता, लाभ ही हुआ करता है। मैं चला गया, जाकर नमस्कार की, मैंने कहा, ''हे महापुरुषो! मुझे पता चला है कि तुम्हारे पास डाकू आ गये थे और तुम्हें बहुत मारा-पीटा।'' सन्त कहने लगे, ''नहीं, नहीं वह तो भगवन आये थे। उनका रूप ही ऐसा था और भगवन मुझे कहते थे कि बता, तेरे पास क्या है? मैंने कहा, आप तो अर्न्तयामी हो, देख लो जो कुछ देखना है। आपने हमारी डयूटी लगाई है कि गजा करके (पका पकाया भोजन इकट्ठा करना) लाओ और यहीं पर ही खा-पी लो, साधुओं को खिला दो। सो भगवन! आपने माया तो हमें दी ही नहीं।'' वे कहने लगे कि भगवन! फिर मुझे पीटने लग गये। कहने लगे, बता, भगवन, भगवन छोड़, पैसे देने के नहीं और भगवन मुझे मारते रहे। मैंने कहा, भगवन! यह शरीर तुम्हारा है, जितना मारना है, मार लो। फिर भगवन ने कई स्थानों पर जख्म कर दिये, कई जगह से हड्डियाँ मरोड़ दी और चले गये। गाय खड़ी थी, मैंने कहा, यह गाय है, आपकी संगतों को दूध पिलाने के लिए है, यह ले जाइये यदि संगतों को दूध नहीं पिलाना। फिर भगवन चले गये।

मैंने कहा, ''सन्त जी! आपने फिर पुलिस में रिपोर्ट नहीं करवाई?'' कहते, ''ना, भगवन की रिपोर्ट कहाँ दी जाती है?'' मैंने कहा कि आपकी बड़ी निष्ठा है, डाकुओं को भी भगवन समझ रहे हो।'' उन्होंने कहा कि यहाँ सभी भगवन ही तो हैं।

उस समय मैं उनके कमरे में घुसने लगा। सन्त कहने लगे, ''आगे एक भगवन है, देख लेना।'' मैंने देखा, बहुत बड़ा साँप पड़ा हुआ है। मैंने कहा, ''यह यहीं पर ही रहता है सन्त जी?'' कहते हैं, ''हाँ, यहीं रहते हैं हम दोनों। ये भी यहीं रहते हैं, मैं भी यहीं रहता हूँ।'' मैंने कहा, ''रात को बाहर भी निकलते हो?'' कहते हैं, ''हाँ।'' मैंने कहा, ''सोते कहाँ हो?'' कहते हैं, ''मैं तो धरती पर ही लेट जाता हूँ चटाई पर, यह भगवन भी आ जाते हैं, कई बार मेरे ऊपर ही सो जाते हैं, कई बार साथ पड़े रहते हैं।'' फिर मैंने कहा, ''आप जगाते हो?'' कहते हैं, ''मैं आवाज़ लगाता हूँ कि भगवन अमृत बेला हो गया है। अब हमने स्नान करना है, अब जाओ। आप आराम करो।'' फिर कहने लगे, रोज़ चले जाते हैं। यह सुनकर भगवान (साँप) अन्दर विश्राम करते हैं। सन्त जी ने बताया कि ऐसे इस आश्रम में भगवान जी कई रूपों में निवास करते हैं। ऐसे 50-60 साँप यहाँ रहते हैं, भगवन दर्शन देते रहते हैं। सो साध संगत जी! उन सन्तों की दृष्टि ऐसी थी -

मनि साचा मुखि साचा सोइ।
अवरु न पेखै एकसु बिनु कोइ। नानक इह लछण ब्रहमगिआनी होइ॥ *पृष्ठ - 272*

ब्रह्म दृष्टि थी उनकी।

सो उस चीज़ में लाभ ही हुआ करता है क्योंकि जब हउमैं टूट जाती है, उस समय एक ही दिखाई देना शुरू हो जाता है। जो सेवादार हउमैं धारण करके सेवा करता है उसकी सेवा को मान्यता नहीं दी जाती। सेवा उसी की मानी जाती है जो हउमै को खत्म कर दे तथा मन और तन गुरू को सौंप दे-

धारना - हउमैं विचों मार, तन सउंप दे गुरां नूँ - 2, 2
सउंप दे गुरां नूं तन सउंप दे गुरां नूं - 2, 2
हउमै विचों मार,.............- 2

'मैं' को खत्म करके, मन भी तथा धन भी सौंप कर क्या होता है? दो बाजे बजते हों, यदि

एक की सुर गलत बज रही है, दूसरे बाजे की सुर भी गलत बज रही हो, अपने आप मर्ज़ी से बाजा बज रहा है, वह सुर नहीं हुआ करती, फीकी पड़ जाती है। इसी तरह से जो गुरू के पास, सन्तों के पास सेवक होते हैं, यदि वह मन-मति करे तो वह सुर तालमेल नहीं खाती, दोनों की आवाज़ एक नहीं होती। उसकी उन्नति रुक जाती है। उन्नति रूकने के साथ-साथ बहुत बड़े दोष का भागी बन जाया करता है। सो ऐसा फ़रमान है -

सो सेवकु हरि आखीऐ जो हरि राखै उरि धारि॥ *पृष्ठ - 28*

जो हर समय प्रभु को हृदय में धारण करके रखता है, वह सेवक है -

मनु तनु सउपे आगै धरे हउमै विचहु मारि।
धनु गुरमुखि सो परवाणु है जि कदे न आवै हारि॥ *पृष्ठ - 28*

सो भाई भगीरथ कहने लगा, ''मनसुख जी! यदि कोई राजा होता, नवाब होता, दौलत खां लोधी होता, तो मुझे कोई चिन्ता नहीं थी। मैं एक रात की बजाए, दो रातें भी ठहर जाता।''

साध संगत जी! श्रद्धा धारण कर लो, यदि प्रतीति बना लोगे, सभी कुछ हो जायेगा, बन्धन कट जाएंगे क्योंकि गुरू जी आप परमेश्वर रूप हैं -

कलीकाल तारन करतारा। निज सरूप कीनो अवतारा॥श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथ, पृष्ठ - 356

उसने तो निज स्वरूप, गुरू रूप किया हुआ है, इस तरह से फ़रमान करते हैं -

धारना - परमेशर पूरा है, सतिगुर मेरा, सतिगुर मेरा - 2, 2
सतिगुर मेरा, सतिगुर मेरा.............. - 2, 2
परमेशर पूरा है,............ - 2

कहने लगे, ''भाई मनसुख जी! आप निश्चय बनाइये, प्रतीति मन में धारण करो। जो गुरू नानक पातशाह हैं, वह मेरे गुरू हैं। यह मत कहो कि कलि काल में कोई नहीं है। यह जो तुम्हारे अनुभव हैं कि कलि काल में कोई पूरा नहीं है; ठीक है, आपने देखा है क्योंकि तुम्हारा कच्चे लोगों के साथ पाला पड़ा है, पर मेरा पक्कों के साथ पाला पड़ा है -

गुर की महिमा किआ कहा गुरु बिबेक सतसरु।
ओहु आदि जुगादी जुगह जुगु पूरा परमेसरु॥ *पृष्ठ - 397*

वह तो पूरा परमेश्वर है। सो यह -

सफल मूरति गुरदेउ सुआमी सरब कला भरपूरे।
नानक गुरु पारब्रहमु परमेसरु सदा सदा हजूरे॥ *पृष्ठ - 802*

गुरु समरथु गुरु निरंकारु गुरु ऊचा अगम अपारु।
गुर की महिमा अगम है किआ कथे कथनहारु॥ *पृष्ठ - 52*

सो ऐसा जो सतगुरू है उसके तो दर्शन करते ही मनुष्य के मन में धर्म पैदा हो जाता है -

सतिगुरु धरती धरम है तिसु विचि जेहा को बीजे तेहा फलु पाए। *पृष्ठ - 302*

सो प्रतीति (विश्वास) की बात हुआ करती है, मुझे तो पूरा विश्वास है। सारी बात बताई कि किस तरह से मैं परमात्मा की पूजा किया करता था और मेरे नेत्र बन्द थे, मुझे भविष्य वाणी सुनाई दी कि भगीरथ! यदि तूने मुक्ति प्राप्त करनी है तो सुलतानपुर में गुरू नानक गुप्त रूप में रहकर मोदी का काम

कर रहे हैं, उनकी शरण में चला जा, वह मुक्ति दे सकते हैं; मैं तो पदार्थ दे सकती हूँ, मुक्ति की वस्तु जो है, वह मेरे पास नहीं है। परमेश्वर के दर्शन तो मुझे भी नहीं हुए, मैं तुझे नहीं करवा सकती। सो उसी समय से मेरे मन में प्रतीति बैठ गई।

साध संगत जी! सारी बात प्रतीति की हुआ करती है -

धारना - होवे प्रतीत जी,
सतिगुरू दी पूरी मन विच - 2, 2

सतगुर की प्रतीति जब तक हमारे मन में नहीं बैठती, संशय में रहता है कि क्या भवजल में से पार निकाल देंगे? यह नाम 'वाहिगुरू' मन्त्र हमें पार कर देगा या नहीं? गुरू नानक हमारी सुन लेगें या नहीं? क्या माता रानी जल्दी सुनती है या कोई देवता जल्दी प्रसन्न होता है या कोई पीर, यह मन के भावों की अवस्थाएं हुआ करती हैं। गुरू सरब कला समरथ हुआ करता है, उसकी प्रतीति यदि मन में बस जाए तो नाम चित्त में समा जाता है और नाम सारे दुखों का नाश कर देता है। प्रतीति होनी चाहिए कि मेरा गुरू हर समय मेरे साथ रहता है, वह हाज़िर है, समरथ है, पारब्रह्म का सगुण रूप है। यह प्रतीति हुआ करती है कि मेरा सतगुरू आपके साथ रहता है, हर जगह हाज़िर नाज़िर रहता है -

जेहा सतगुरु करि जाणिआ तेहो जेहा सुखु होइ॥ ***पृष्ठ - 30***

यदि प्रतीति कम है, तो काम सिद्ध नहीं हुआ करता। पूरा विश्वास हो - सौ प्रतिशत, फिर वहाँ बात बन जाया करती है; जैसा उसे समझो, वैसा ही सुख होता है।

गुरू अंगद साहिब महाराज के पास भाई बाला जी बैठे हैं, बाबा बूड्डा जी भी बैठे हैं। गुरू महाराज जी ने भाई बाला जी से पूछा, ''भाई बाला जी! आपने नौ खण्डों, सात द्वीपों, जहाँ तक धरती की आबादी है, सभी जगह जाकर गुरू नानक पातशाह के कौतुक देखे, आप गुरू नानक पातशाह को क्या समझते रहे?'' क्योंकि साध संगत जी! आजकल नक्शे बनाए जाते हैं कि गुरू नानक साहिब वहाँ तक गये। गुरू नानक साहिब तो भाई गुरदास जी कहते हैं कि जहाँ तक सृष्टि थी, वहाँ तक गये थे। फिर कहते हैं कि वह अंग्रेजी, अफ्रीकी आदि बोली कैसे बोलते थे?

साध संगत जी! सभी के अन्दर जो बाणी है, यह चार प्रकार की हुआ करती है। पहला भाग जो हुआ करता है, उसे परा बाणी कहते हैं। उसे आप भी नहीं समझते, ऐसे ही उठ खड़ी होती है, हमारे अन्दर। दूसरी हुआ करती है हृदय की बाणी, जिसे पसन्ती कहते हैं। यदि इसे अंग्रेजी में कहें तो टैलीपैथी कहते हैं, उसके अन्दर भाव होते हैं, अक्षर कोई भी नहीं हुआ करता। तीसरी होती है, 'कंठ की बाणी' जिसे मधमा कहते हैं। चौथी जैसे मैं बोल रहा हूँ, यह वैखरी है। यह वैखरी बाणी तो हुआ करती है, अपने-अपने देश की, जो मधमा बाणी हुआ करती है, वह दोनों की मिली जुली होती है, कुछ अपने देश की, कुछ अक्षर बन रहे हैं। जो हृदय की बाणी है, 'पसन्ती' जिसे कहते हैं, वह भावों की बाणी हुआ करती है, उसमें अक्षर नहीं हुआ करते, टैलीपैथी होती है। जो टैलीपैथी समझता है वह तो जानवरों की बाणी, वृक्षों की भाषा, परिन्दों की भाषा, कीड़ों की भाषा, ऐसी बाणियाँ सभी समझ लेता है।

कई महात्माओं की साखियाँ आती हैं कि जानवर उनके साथ बातें करते थे। जानवर सारे ही बोलते हैं, पर एक दूसरे के साथ टैलीपैथी से बातें करते हैं। कुछ इनके चिन्ह भी होते हैं।

सो गुरू नानक पातशाह सभी के भावों की बाणी समझते थे, सभी को अन्दर से समझा दिया

करते थे। दूसरी बात, वह सभी कुछ जानते थे, कोई बात ऐसी नहीं थी कि अमुक बाणी नहीं जानते थे, अंग्रेजी नहीं पढ़े थे, ऐसी कोई बात नहीं है। जहाँ तक धरती थी, वहाँ तक गुरू नानक पातशाह गये, सभी का उद्धार किया। आप मिश्र गये, सूडान गये, अफ्रीका गये, साखियाँ बताती हैं कि ऐसे-ऐसे लोग थे जो आदमियों को ही खा जाया करते थे, उनका भी आपने उद्धार किया।

सो गुरू अंगद पातशाह ने पूछा कि भाई बाला जी! आप गुरू नानक पातशाह को क्या समझते रहे? भाई बाला जी ने कहा, ''पातशाह! वे तो पूर्ण सन्त थे।'' महाराज जी भी चुप कर गये कि भाई बाला जी साथ रहते हुए भी गुरू नानक पातशाह को समझ न सके। आशीष दी, ''अच्छा भाई! तू भी सन्त हुआ।'' बाबा जी से पूछा, ''बाबा जी! आप तो गुरू नानक पातशाह के साथ 8 वर्ष की आयु से ही लगे हुए हैं और आपने गुरू नानक पातशाह के बड़े खुलकर दर्शन किये हैं और बहुत कुछ उनके बारे में जानते हो, आप क्या समझते रहे?''

बाबा जी ने कहा, ''महाराज! वह तो पूर्ण ब्रह्मज्ञानी थे।'' कहते हैं, ''अच्छा! तुम ब्रह्मज्ञानी हुए।'' इस तरह से आपने बारी-बारी सभी से पूछा, भाई भगीरथ को, भाई मनसुख को। सभी ने अपने-अपने मत तथा निश्चय के अनुसार जवाब दिये। जब सभी गुरू नानक पातशाह के बारे में बता चुके, उस समय सभी ने प्रार्थना की, ''पातशाह! आप गुरू नानक पातशाह को क्या समझते हैं?'' उस समय आपके नेत्रों के पलकों में से एक एक कणी आसुओं की बह चली, काफी देर आप मौन बैठे रहे। उसके बाद बोले, ''साध संगत जी! गुरू नानक पातशाह के बारे में पूछते हो, वह तो करोड़ों ब्रह्मण्डों के स्वामी स्वंय निरंकार, गुरू नानक रूप होकर, गुरू ज्योति में प्रकट हुए थे।'' सभी ने नमस्कार की और कहा, ''पातशाह! तो आप भी गुरू नानक पातशाह का रूप हो गये।''

सो साध संगत जी! निश्चय का फर्क है। चार प्रकार के निश्चय हुआ करते हैं। पहला निश्चय होता है कि मेरा जो गुरू है - वह अच्छा सन्त है; दूसरा निश्चय होता है कि मेरा गुरू सारे सन्तों से अच्छा सन्त है, तीसरा निश्चय होता है कि मेरा गुरू तो प्रभु जैसा ही है, चौथा निश्चय हुआ करता है कि मेरा गुरू साक्षात आप ही परमेश्वर है। सो जैसा कोई मानता है, जानता है वैसा ही फल पाता है -

जेहा सतगुरु करि जाणिआ तेहो जेहा सुखु होइ॥
एहु सहसा मूले नाही भाउ लाए जनु कोइ॥ ***पृष्ठ - 30***

गुरू महाराज कहते हैं कि परमेश्वर के साथ 'भाओ' लगाकर देख लो, प्यार करके देख लो, संशय तो इस में है ही नहीं -

नानक एक जोति दुइ मूरती सबदि मिलावा होइ॥ ***पृष्ठ - 30***

ये तो शबद के साथ जुड़े होते हैं, एक ही हुआ करते हैं, दो नहीं हुआ करते -

सो कहने लगे, ''मनसुख जी! आप इस बात पर संशय मत करो।''

'कलीकाल तारन करतारा। निज सरूप कीनो अवतारा।'
श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथ, पृष्ठ - 356

वह तो करतार ने अपना निज स्वरूप बनाया है -

जिह के जागहि भाग महाना। सो महिमा जानहि मतिवाना।
श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथ, पृष्ठ - 356

वे मत वाला बनता है – इस चीज़ की महिमा को जानने के बाद। आप अब आजकल अपने आप को गुप्त रूप में रखे हुए हैं, मोदी बने हुए हैं। कई बार मौज में आकर आप तुलाई का काम करने लग जाते हैं। जब बारह के बाद तेरह आता है तो 13 नहीं बोलते, तेरा कहते हैं, तेरा, तेरा तेरा........ समाधि लग जाती है। समाधि खुलती नहीं, तराजू रूक जाती है, ग्राहक प्रतीक्षा करते रहते हैं कि तेरा ने क्या कर दिया। कहते हैं फिर वह बाँट उठाते हैं – सेर का, दो सेर का, डाले जाते हैं, पाँच सेर का डाल देते हैं, दस सेर का डाल देते हैं और जब 'पाओ' को हाथ लगाते हैं तो धन्य पाओ, धन्य पाओ, धन्य तू; फिर पा ही पा कहे जाते हैं; वज़द में आ जाते हैं –

लोकिक रीति करहिं निरबाहू। रिदे ग्यान घन अगम अथाहू॥

श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथ, पृष्ठ - 356

भाई भगीरथ कहने लगा कि वे तो चौदह लोकों के ज्ञाता हैं। भाई मनसुख कहने लगा, ''भाई बिल्कुल ठीक है, तेरा अनुभव तेरे लिये ठीक है पर मैंने तो जगह-जगह घूम फिर कर, जैसे मछली पत्थर चाट कर वापिस मुड़ जाती है, मेरा विश्वास इसी तरह से हिला हुआ है। मेरी जब तक पूरी निशा (संशय निवृत्ति) नहीं होती, तब तक मैं इतना विश्वास तो नहीं कर सकता, जितना तुम करते हो।'' सो कहने लगा, ''ठीक है, आप निशा करवा दीजिये।''

मुझे तो जब से उन्होंने नाम दिया है, मैं हल्का फुलका हो गया, अन्तसकरण की सारी मैल उतर गई है तथा अपने स्वरूप का दर्शन होता है। इस तरह फ़रमान है –

धारना - अंम्रित नाम रिदे महि दीनो,
जनम जनम की मैल गई - 2, 2
जनम जनम की मैल गई - 4, 2
अंम्रित नाम रिदे महि दीनो,..........-2

गुरि पूरै मेरी राखि लई।
अंम्रित नामु रिदे महि दीनो जनम जनम की मैलु गई।
निवरे दूत दुसट बैराई गुर पूरे का जपिआ जापु।
कहा करै कोई बेचारा प्रभ मेरे का बड परतापु॥ ***पृष्ठ - 823***

कहने लगे, ''मनसुख जी! देखो मनुष्य अपनी-अपनी अक्ल के अनुसार काम करता है, मैं तो जो मेरे साथ आपबीती है, वह मैंने आपसे प्रार्थना की है कि भरोसा ही सब कुछ होता है, श्रद्धा ही सारी चीज़ होती है। यदि गुरू से कुछ लेना है, महापुरुषों से कुछ लेना हो तो श्रद्धा से मिल जाता है। यदि श्रद्धा न हो, फिर कुछ नहीं मिलता।''

एक बार एक राजा अपने वज़ीर से कहने लगे, ''वज़ीर साहिब! एक बात मेरी समझ में नहीं आ रही।'' वज़ीर कहने लगे, ''बताईये।'' राजा ने कहा, ''पीर बड़ा कि यकीन बड़ा? इन दोनों में से कौन बड़ा है?'' वज़ीर कहता, ''जी, दोनों बड़ी हैं – पीर भी बड़ा और भरोसा भी बड़ा।'' राजा कहने लगा, ''मैंने यह बात नहीं सुननी, दोनों में से एक बताओ, कौन सी चीज़ बड़ी है?'' वज़ीर ने कहा, ''महाराज! दोनों बड़े हैं।'' आखिर में जब पाँच सात बार ऐसा हुआ तो राजा ने कहा, ''तू मुझे दोनों में से एक क्यों नहीं बताता?'' वज़ीर ने कहा कि महाराज! फिर बता देता हूँ? वह यह है कि भरोसा बड़ा है? यदि पीर में कमज़ोरी भी हो, भरोसा पूरा हो, तो भी तर जाता है। धन्ने का जो मुरशद था, जिसने पत्थर दिया था, उसका निश्चय कमज़ोर था, लेकिन जो धन्ने का भरोसा था वह पूरा था। भरोसे के कारण उसे प्रत्यक्ष दर्शन हुए –

प्रत्यक्ष होकर, परमात्मा मिल गया। भोजन खा लिया - परमेश्वर ने, और बाद में जो त्रिलोचन पण्डित था, जब उसे पता चला कि धन्ने को प्राप्ति हो गई तो वह धन्ने के पास गया और जा कर कहने लगा, ''धन्ना! ठाकुर को भोजन खिलाया करता है?'' धन्ने ने कहा, ''हाँ, पण्डित जी।'' वह अभिमान में नहीं आया, वैसा ही रहा। सो पण्डित ने कहा, ''भोजन खिलाया करता है?'' धन्ने ने कहा, ''हाँ जी।''

''सच है कि अपने आप ही ऐसे ही कह देता है?''

''नहीं महाराज! वह तो रोज़ ही खाते हैं।''

''वह रहते कहाँ हैं?''

''मेरे पास से जाते ही नहीं, यहीं रहते हैं।''

''अब भी हैं?''

''हाँ।''

''कहाँ है?''

''देखो, वह जो लाल गाय है, गोरी गाय, उसके पास खड़े हैं।''

''कौन सी?''

''वह देखो, वृक्ष के उस ओर।''

''गाय तो खड़ी है, मुझे तो इसके साथ दिखाई नहीं देते।''

''अब खड़े हैं, वह देख, अब इधर की तरफ चले आ रहे हैं।''

''धन्ना! तेरी नज़र तो ठीक है? कोई दिमाग में नुक्स तो नहीं है, लगता है तेरे दिमाग में कोई गर्मी या खुश्की हो गई है और तुझे कुछ और सा दिखाई देता है।''

धन्ने ने कहा, ''पण्डित जी! ऐसी बात नहीं है। प्रभु तो हलट भी चलाते हैं, खेतों में पानी भी लगाते हैं, फसल काटते भी वही हैं, भैसों का दूध भी वही निकाल देते हैं।''

पण्डित ने कहा, ''फिर तू क्या करता है?''

धन्ने ने कहा, ''मुझे वे कहते हैं कि तू यहाँ बैठ, राम-राम कहे जा, मुझे यही अच्छा लगता है, मुझे आदत पड़ गई है। मैंने तो जब से संसार की उत्पत्ति की है, तभी से सन्तों के काम किए जाता हूँ और पण्डित जी! वह मुझे काम करने ही नहीं देते।''

पण्डित समझ गया कि कुछ गड़बड़ जरूर है, कोई बात जरूर है, कोई न कोई बात है ऐसा तभी यह कह रहा है। लोग भी कहते हैं कि धन्ने का कुआं स्वंय ही चलता है, नक्के भी आप ही छूटते हैं और धन्ना आँखें बन्द करके बैठा रहता है। यही बात होगी। दिखाई तो किसी को देता नहीं। पण्डित ने प्रार्थना की, ''धन्ना! मैं तुझे सच कहता हूँ कि मैंने तो तुझे ऐसे ही कह दिया था कि मैं ठाकुर को भोग लगाता हूँ, प्रभु मेरा तो भोजन कभी खाते ही नहीं थे, मैं तो खुद ही खाया करता हूँ।'' कहने लगा,

"धन्ना! तू ठाकुर से प्रार्थना कर कि मुझे भी दर्शन दें।"

उस समय धन्ने ने जाकर प्रभु से प्रार्थना की कि महाराज! मुझे इसने इस ओर लगाया है, वह मेरा गुरू है, मुरशद है, आप इसे दर्शन दें। प्रभु कहने लगे, "धन्ना! यह तो चलाक है। चलाकों को मेरे दर्शन नहीं हुआ करते।"

रे जन मनु माधउ सिउ लाईऐ। चतुराई न चतुरभुजु पाईऐ। *पृष्ठ - 324*

कहु कबीर भगति करि पाइआ। भोले भाइ मिले रघुराइआ॥ *पृष्ठ - 324*

तेरे मन में भोलापन था, तर्क-वितर्क करने वालों को मैं दर्शन नहीं दिया करता। धन्ना! मैं तो प्यार के वश हुआ करता हूँ, जहाँ प्यार होता है, वहाँ मैं बन्ध जाता हूँ। प्यार वाले, मेरे से जो भी उनका मन करता है, काम करवा लेते हैं, मैं उनके वश में आ जाता हूँ -

सभु को तेरै वसि अगम अगोचरा। तू भगता कै वसि भगता ताणु तेरा॥ *पृष्ठ - 962*

सो इसे दर्शन नहीं हो सकते। धन्ना कहने लगा, "नहीं महाराज! कृपा करो। यदि यह मुझे आपके पीछे न लगाता तो मेरा क्या हाल होता?" प्रभु ने कहा, "धन्ना! तूने बात मान ली, जो मान लेता है - ***'मंनै तरै तारे गुरुसिख। पृष्ठ - 2'*** जिसके मन में निश्चय होता है, वह सिख गुरू को भी भवजल पार करा देता है। "जा धन्ना! उसे कह दे कि एक बार दर्शन देंगे। इसने जो अनघड़ पत्थर पकड़ाया था उससे यह अपनी जूतियों की कीलें ठोका करता था। तुझे कह दिया कि यह ले जा।"

धन्ने ने कहा, "पातशाह! मेरे कारण इसे दर्शन दे दीजिए।"

धन्ने के कहने पर प्रभु ने पण्डित को दर्शन दिये।

सो वज़ीर कहने लगा, "महाराज! यदि पीर बुरा भी है पर भरोसा पूरा हो, तो भरोसा बड़ा होता है, महान होता है। उसी से तर जाया करते हैं। बाकी यदि यह बात पूरी तरह से दृढ़ विश्वास के साथ देखनी है, तो 6 महीने की मोहलत दे दीजिये। सो राजा ने मोहलत दे दी। वह कुछ राज मज़दूरों को साथ लेकर चला गया। एक जगह पर जाकर कहने लगा कि यहाँ एक पीर जुत्तेशाह हुए हैं। उनका किसी ने मज़ार नहीं बनाया, बहुत बड़े पीर थे, हमारे पूर्वज वहाँ जाया करते थे। अपने पैर का एक जूता उतार कर बक्से में बन्द कर दिया। वीरवार का मेला रख दिया। इश्तहार बाँट दिये। बहुत सारे लोग वहाँ चले आते हैं क्योंकि सारी बात भरोसे की होती है। सुख वरदान आने लग गये, शोर मच गया, बहुत महान इकट्ठ होने लग पड़ा।

6 महीने के बाद, राजा का पुत्र बीमार हो गया। हकीम घबरा गये। वज़ीर को पूछा, "वज़ीर साहिब हकीम दवाई देते हैं पर लगती नहीं है।" वज़ीर ने कहा, "लो महाराज! पीर जुत्तेशाह का मज़ार है, वहाँ पर मनौत मान लो कि पीर जी! मैं आपका बहुत बड़ा मज़ार बनवा दूंगा, मेरे लड़के को तन्दरूस्त कर दो।" थोड़े दिनों के बाद लड़का ठीक हो गया और राजा बहुत बड़े जलूस के साथ बैण्ड बाजे बजवाता हुआ, मनौत देने के लिये वहाँ जा रहा था। वह वज़ीर वहाँ पहले ही चला गया। मज़दूर साथ हैं। इसने वहाँ पहुँच कर मज़ार को गिराना शुरू कर दिया। राजा जब वहाँ पहुँचा तो आधा मज़ार गिर चुका था। राजा ने कहा, "वज़ीर साहिब! यह क्या करने लगे हो?" कहता है, "महाराज! आपके सवाल का जवाब देने लगा हूँ। मैंने आपको यह बात कही थी कि पीर की अपेक्षा भरोसा महान है। सो यह कोई मज़ार नहीं है, मैंने अपने पैर की एक जूती, नींव में रखकर बनाया हुआ है। अभी थोड़ी देर के बाद निकल आयेगी।"

नींव खोदी गई, बक्सा बाहर निकाला, राजा को जूती निकाल कर दिखाई कि यह जूती मेरी है, इसका एक पैर दबाया हुआ था। यह मैंने मशहूर करवा दिया था भरोसे से, क्योंकि चेतन सभी जगह परिपूर्ण है, कहीं भी भरोसा कर लो, वहीं पर ही पूरा होने लग जायेगा। इसीलिये कहते हैं कि यकीन, विश्वास बड़ा है। सो भाई भगीरथ ने कहा, ''मनसुख जी! सारी बात प्रतीति की है।'' भाई मनसुख बोला, ''मैं भी मानता हूँ पर इस कलयुग के समय में सभी ओर पाखण्ड फैला हुआ है। बहुत साधु हैं, अपने ऐजेन्ट बनाये हुए हैं, ढिंढोरा पिटवाते हैं, अखबारों में अपने नाम के इश्तहार छपवाते हैं, दूर-दूर तक अपनी महिमा करवाते हैं, बांटने वालों को पैसे देते हैं, बड़े-बड़े नये-नये ढंग अपनाते हैं तथा कई प्रकार के पाखण्ड अपनाते हैं, पर अन्दर से नास्तिक हैं और हउमैं ने सारे संसार को घेरा हुआ है। हो सकता है कि कोई एक-आध ब्रह्मज्ञानी हो, शेष कथनी ही कथनी है, वास्तविकता नहीं।

उस समय भाई भगीरथ कहने लगा, ''महाराज भी तेरी तरह ही कहते हैं, मनसुख! उन्होंने भी सारा जमाना देखा है, अन्तरात्मा से सारे स्थान देखे हैं और आपका फ़रमान है कि सच जो है बहुत कम रह गया -

मान अभिमान मंधे सो सेवकु नाही। तत समदरसी संतहु कोई कोटि मंधाही॥ पृष्ठ - 51

जो सभी स्थानों पर अकाल पुरुष के दर्शन करता है वह करोड़ों में से कोई एक है। महाराज जी फ़रमान करते हैं, बाकी सारा पाखण्ड ही पाखण्ड है -

कहन कहावन इहु कीरति करला। कथन कहन ते मुकता गुरमुखि कोई विरला॥
पृष्ठ - 51

बातें सभी बनाते हैं, रूहानियत का सिद्धान्त बताते हैं, कहते ही रहते हैं, निश्चय नहीं है किसी पर -

पंडित वाचहि पोथीआ ना बूझहि वीचारु॥ पृष्ठ- 56

वे ग्रन्थ पढ़ते, कथाएं करते हैं कि 'राम' हर एक के अन्दर है, लेकिन वे बूझते नहीं, केवल बाते ही बातें रह गईं-

अन कउ मती दे चलहि माइआ का वापारु॥ पृष्ठ - 56

कीर्तन सुनाएंगे बहुत बढ़िया, उपदेश देंगे, पर प्रबन्धकों के साथ झगड़ पड़ेंगे कि तुम कम पैसे क्यों देते हो? मैं कहीं इतने कम पैसे लेकर आया करता हूँ? मुझे ग्यारह हज़ार एक घंटे के कीर्तन का देना पड़ेगा। मेरा रेट बिल्कुल मत बिगाड़ो।'' वे कहते हैं कि यह तो बहुत है, हम गरीब हैं।

सो न इन्हें कुछ लाभ हुआ और न ही उन्हें कुछ प्राप्त हुआ। कुछ कहते हैं कि अमुक आदमी का नाम लेने से पैसे बहुत आयेंगे। कोई कहता है कि वह न पैसे ले जाये, मैं ही ले जाऊँ सारे पैसे। यही शोर शराबा है। महाराज कहते हैं, ***'पण्डित वाचहि पोथियाँ न बुझहि वीचारु।'*** अन्दर से माया की बातें हुआ करती हैं -

कथनी झूठी जगु भवै रहणी सबदु सु सारु॥
केते पंडित जोतकी बेदा करहि बीचारु॥ पृष्ठ - 56

वैर विरोध की बातें करते हैं, वाद की बातें करते हैं अमुक का युद्ध अमुक से हुआ, ऐसे युद्ध हुआ। ऊँचा बोलते हैं और युद्धों के प्रसंग सुनाते हैं। आत्म ज्ञान, अपने स्वरूप की पहचान, अन्दर ज्योति प्रकाश की कोई बात नहीं करते, अन्धा अन्धों को कुएं में धकेल रहा है। माया का व्यापार करते हैं -

वादि विरोधि सलाहणे वादे आवणु जाणु।
बिनु गुर करम न छुटसी कहि सुणि आखि वखाणु॥ पृष्ठ - 56

सो कहने लगे, ''मनसुख! गुरू महाराज भी तेरे वाली ही बात कहते हैं। ठीक है, संसार में पाप बहुत अधिक है, सच दिखाई नहीं दे रहा और यह युग आ रहा है कलि काल का, यह क्लेश तथा कलह का युग है, यहाँ बेताले, भूत प्रेत बने फिरते हैं, मनुष्य बने हुए -

कली अंदरि नानका जिंनां दा अउतारु।
पुतु जिनूरा धीअ जिंनूरी जोरू जिंना दा सिकदारु॥ पृष्ठ - 556

बेताल बने फिरते हैं और यह कलयुग का जो रथ है वह आग का हो गया, तृष्णा का, वैर, विरोध का, बासों की तरह आपस में भिड़ते हैं। परिवार आपस में खहिंदे (जलते) हैं, एक परिवार दूसरे परिवार से जलता है ईर्ष्या करते हैं, एक मोहल्ला दूसरे मोहल्ले से ईर्ष्या करता है, एक धर्म वाला दूसरे धर्म वाले के साथ ईर्ष्या करता है। एक देश वाली कौम दूसरे देश वाली के साथ जलती है, कहते हैं - आग लगी हुई है, इस युग में। वैर विरोध में आकर बांसों की तरह जल-जल मर रहे हैं। धर्महीन होने के कारण जीव जो है, भूत बन गया है। जो पूर्व युग थे, उन में सत्य था। सतयुग में -

सतजुगि सतु तेता जगी दुआपरि पूजाचार॥ पृष्ठ - 346

इन तीन युगों के अन्दर सतयुग जो था उसके चार पैर थे, उसमें सत्य था, यज्ञ था, पूजा थी, दान था, फिर क्या हुआ सतयुग बीत गया -

सतजुगि धरमु पैर है चारि॥ पृष्ठ - 880

चार पैर थे - सत्य का, यज्ञ का, पूजा का और दान का।

त्रेतै इक कल कीनी दूरि॥ पृष्ठ - 880

त्रेता युग के लोग सत्यवादी न रहे और तीन पैर रह गये - यज्ञ रह गया, पूजा रह गई और दान रह गया, सत्य खत्म हो गया -

दुआपुरि धरमि दुइ पैर रखाए॥ पृष्ठ - 880

द्वापर में दो पैर टूट गये - एक सत्य टूट गया; एक यज्ञ टूट गया, पूजा और दान ने आकर धर्म का बैल तोड़ दिया -

कलजुगि धरम कला इक रहाए। इक पैरि चलै माइआ मोहु वधाए॥ पृष्ठ - 880

अब एक ही पैर से चले जा रहा है, इसे भी कलयुग तोड़ने लगा हुआ है। यह दान का पैर है, पर यह चलता नहीं है। क्यों नहीं चलता? महाराज कहते हैं -

तीरथ बरत अरु दान करि मन मै धरै गुमानु।
नानक निहफल जात तिहि जिउ कुंचर इसनानु।। पृष्ठ - 1428

दान देकर व्यक्ति अपना आपा निजित्व, प्रकट कर रहा है। तीन तरह के दान हैं - तमोगुण दान, रजोगुण दान, सतोगुण दान। तमोगुण - खींझ कर दिये गये दान को कहते हैं कि मुझे बुरा या गरीब न समझा जाये। अपनी ताकत से अधिक दे रहा है। रजोगुण वाला कहता है जी! मेरे नाम का पत्थर लगवा दो। मेरा नाम लिखो, लोगों को पता चले कि मैंने दान दिया है। ये तो दोनों हो गये नष्ट। सतोगुण वाला कहता है - गुप्त दान ले लो, लिखना विखना कुछ नहीं है, ठीक है, मुझे परमेश्वर ने दिया है उसमें से कुछ हिस्सा निकाल कर दे रहा हूँ।

सो इस तरह कहते हैं कि चारों पैर टूट गये, अब गुब्बार भर गया। काली घनेरी अमावस्या

का अन्धकार छा गया, धर्म रूपी चन्द्रमा अलोप हो गया। कलयुग में कर्म-धर्म नहीं चल सकते, अब क्योंकि मौसम बदल गया -

कलजुग महि बहु करम कमाहि। ना रुति न करम थाइ पाहि।
कलजुग महि राम नामु है सारु॥ *पृष्ठ - 1130*

कलयुग में एक परमेश्वर के नाम के साथ चलना है। सो महाराज कहते हैं कि नाम है नहीं, नाम अलोप हो गया, वाद-विवाद रह गया, झगड़े फसाद रह गये, एक धर्म दूसरे धर्म के साथ ईर्ष्या करता है, एक दूसरे को मारकर दफनाना चाहते हैं, जबरदस्ती धर्म परिवर्तन करवाते हैं, चलाकियों से धर्म परिवर्तन करवाते हैं, अपने पीछे लगाते हैं। जो सच था वह तो दिखाई देता ही नहीं -

कूड़ु अमावस सचु चंद्रमा दीसै नाही कह चड़िआ॥ *पृष्ठ - 145*

पता नहीं कि सच कहाँ चला गया। इस तरह पढ़ लो -

धारना - पिआरे कूड़ दा हो गिआ वरतारा,
सच्च वाला काल पै गिआ - 2, 2
पिआरे जी! सच्च वाला काल पै गिआ- 2, 2
पिआरे कूड़ दा हो गिआ वरतारा,............-2

सचि कालु कूड़ु वरतिआ कलि कालख बेताल।
बीउ बीजि पति लै गए अब किउ उगवै दालि।
जे इकु होइ त उगवै रुती हू रुति होइ।
नानक पाहै बाहरा कोरै रंगु न सोइ।
भै विचि खुंबि चड़ाईऐ सरमु पाहु तनि होइ।
नानक भगती जे रपै कूड़ै सोइ न कोइ॥ *पृष्ठ - 468*

जैसे तू कहता है कि तुझे भी सच का कहीं भी पता नहीं चल पाया, मेरे सतगुरू तो संसार को देख कर कहते हैं कि सच्च का अकाल पड़ गया और कलयुग की कालिख ने लोग भूत बना दिये, मनुष्य तो नज़र ही नहीं आ रहे - ***'कलि कालख बेताल'*** कालिमा लग गई सभी के हृदयों में जो भूतने बन गये। फिर ***'बिओ बीज पति लै गए।'*** जिनका निश्चय एक पर ही है, उस वाहिगुरू पर है वे तो अपनी मत ले गये ***'अब किऊ उगवै दालि।'*** कभी इसे मान, कभी उसे मान, यह निश्चय तो दाल का है, कभी दाल भी हरी हुई है? प्यार तो एक के साथ होता है कि सभी के साथ होता है? यहाँ भी सिर झुका, वहाँ भी सिर झुका, अमुक देवता को भी मान ले, उसे भी मान ले, इसे भी मान ले। ऐसे कुछ नहीं बनने वाला क्योंकि गलत रास्ते पर चल पड़ा मनुष्य। यह दाल तूने बो दी, पर दाल अभी तक उगी नहीं। ***'जे इकु होइ त उगवै रूती हू रुति होइ।'*** *(पृष्ठ - 468)*

ऋतु होनी चाहिए, तब दाना हरा होता है, यदि उसी मौसम का दाना बोया जाये और फिर एक पर भरोसा हो। एक दाना हो, तब उगता है। दाने के दो टुकड़े कर दो, नहीं उगेगा। यहाँ तो दाने के कई-कई टुकड़े हुए पड़े हैं। कितनों पर भरोसा है हमारा? कितनी चीज़ों को हम मानते हैं? फिर एक के साथ तो बात न हुई। सो महाराज कहते हैं - ***'नानक पाहै बाहरा कोरै रंगु न सोइ॥'*** *(पृष्ठ - 468)*

सतगुरू के बिना इस कोरे को रंग नहीं चढ़ा करता ***'भै विचि खुंबि चड़ाईऐ सरमु पाहु तनि होइ।'*** गति जाती रही, प्रेमा भक्ति अलोप हो गई। उसके साथ दया भी अलोप हो गई, धर्म भी चला गया, क्षमा, अहिंसा, सत्य, दान, धीरज आदि सभी चीज़ें अलोप हो गई और अन्धेरा छा गया। अब शेष रह क्या गया? अन्धेरा रह गया या चतुराई रह गई। चाहे साधु है, चाहे सन्त है, चाहे डेरे वाला है, चाहे

कोई भी है, साध संगत जी! शोर शराबा ही है, सभी जगह कहते हैं कि वह सन्त यहाँ दीवान न लगा जाये, यदि एक भी दीवान लगा गया, तो मेरी कीर्ति कम हो जायेगी। वह बहुत पैसे लेता है, उसकी निन्दा किसी न किसी तरीके से करें। ये तो साधु सन्तों की बातें हैं, बाकी दुनियाँदारों को तो तुम जानते ही हो। अब रह क्या गया, पापों का व्यवहार हो गया।

सो भगीरथ ने कहा, "मनसुख जी! आप इस बात में ठीक हो, पर सच है, सच का सूरज निकल आया है।"

सो इस प्रकार वचन करते हैं, बहुत ही गौर के साथ सुन रहा है भाई मनसुख! कहने लगा, "भाई भगीरथ! तूने तो आज बहुत ही अज़ीब बातें सुनाई हैं, मेरे हृदय के अन्दर कुछ होने लग पड़ा है और अब हम सौदा इकट्ठा कर लें और रात को आप मेरे पास ही ठहरना। आप कृपा करना, कुछ थोड़ा बहुत समय निकाल लेना, हम और वचन भी जारी रखेंगे क्योंकि बहुत ही आनन्द आ रहा है और मुझे भी कुछ-कुछ प्रकाश की किरण दिखाई देने लग पड़ी है। सो अब समय इज़ाज़त नहीं देता। यहीं पर ही मैं समाप्त करता हूँ इससे आगे अगले दीवान में विचार की जाएगी।

- आनन्द साहिब -

- गुरू सतोतर -

- अरदास -

2

शान..।

सतिनामु श्री वाहिगुरू।
धंन श्री गुरू नानक देव जीओ महाराज।

डंडउति बंदन अनिक बार सरब कला समरथ।
डोलन ते राखहु प्रभू नानक दे करि हथ॥ *पृष्ठ - 256*

फिरत फिरत प्रभ आइआ परिआ तउ सरनाइ।
नानक की प्रभ बेनती अपनी भगती लाइ॥ *पृष्ठ - 289*

धारना - आप मुकत मोहि तारे जी,
ऐसे गुरां तों बल बल जाईए - 2, 2
ऐसे गुरां तों बलि बलि जाईए - 2, 2
आप मुकत मोहि तारे जी,........... - 2

नाराइन नरपति नमसकारै।
ऐसे गुर कउ बलि बलि जाईऐ आपि मुकतु मोहि तारै।
कवन कवन कवन गुन कहीऐ अंतु नही कछु पारै।
लाख लाख लाख कई कोरै को है ऐसो बीचारै॥
बिसम बिसम बिसम ही भई है लाल गुलाल रंगारै।
कहु नानक संतन रसु आई है जिउ चाखि गूंगा मुसकारै॥ *पृष्ठ - 1301-1302*

साध संगत जी, गर्ज़ कर बोलो, ''सतनाम श्री वाहिगुरू।'' कारोबार संकोचते हुए, आप गुरू दरबार में पहुँचे हो, चित्त वृत्तियों को एकाग्र करो, नेत्रों से गुरू स्वरूप के दर्शन करो, कानों से बाणी श्रवण करो, मन में नम्रता धारण करो, श्रद्धा लाओ, चित्त में एकाग्रता धारण करो, बुद्धि से विचार करो। अपनी विद्वता, अपनी जान पहचान, अपना ज्ञान, थोड़ी देर के लिये गुरू चरणों में अर्पण कर दो। खाली होकर बैठेंगे तो पूरा-पूरा रस आयेगा।

गुरू छठे पातशाह महाराज से गुरसिखों ने पूछा, ''पातशाह! हम रागों में कीर्तन भी सुनते हैं, वैसे कथा भी सुनते हैं, पर हमारे ऊपर असर क्यों नहीं होता?''

महाराज जी ने फ़रमान किया, ''प्रेमियों! दोनों तरफ अन्तर होता है। चौदह गुण वक्ता में होने चाहिए और 14 गुण श्रोता में होने चाहिए। जब 28 कलाएं एक दूसरे के साथ मिल जाती हैं फिर पूरा-पूरा लाभ हुआ करता है। यदि वक्ता पूरा गुणी हो, पर श्रोता, उसकी वृत्ति इधर-उधर भागी फिरती हो, उसके अन्दर नास्तिकता हो, समझने की कोशिश ही न करता हो कि क्या बोला जा रहा है और बुद्धि से उस पर विचार न करता हो फिर प्रभाव नहीं हुआ करता। अमृत तो बरस रहा है, परन्तु यदि बोतल का मुँह उसके नीचे सीधा नहीं रखा हुआ है, इधर-उधर बोतल हिल रही है फिर उसके अन्दर अमृत की बूंद नहीं गिरा करती। इसी प्रकार बख्शीश तो अकाल पुरुष द्वारा हो रही हैं -

कई कोटिक जग फला सुणि गावनहारे राम॥ *पृष्ठ - 546*

पर हमारी जो वृत्ति, यदि शीश झुकाने वालों को देखती हो, इधर-उधर देखती हो, फुरने करने वाली हो, फिर वह पूरी तरह समझ नहीं सकती।

ऐसे विचार लगातार चल रहे हैं। जो प्रेमी इससे पूर्व के दीवानों में आए हैं, उन्हें पता है कि पिछला प्रसंग क्या चल रहा था। संक्षेप में इस प्रकार है कि लाहौर में एक प्रेमी रहता था। उसके मन में बड़ी लालसा थी कि वह किसी तरह से उस पद को प्राप्त करे, जिसके बारे में साधु, महापुरुष संकेत करते रहते हैं कि सबसे श्रेष्ठतम पद जो संसार में है, जिसे 'अविनाशी क्षेम' कहते हैं और मेरे हृदय में तो अभी शान्ति ही नहीं आई, कोई कमी जरूर है। सो गुरू नानक पातशाह ने ऐसा कौतुक रचा कि एक प्रेमी बहुत गरीब है, कहने लगा, "पातशाह! मेरे पास विवाह करने के लिये सामान नहीं है, लड़की जवान होती जा रही है। **जिस घर में लड़की जवान हो, सिर पर शत्रु खड़ा हो, कर्ज़ा देना हो और बीमारी हो, इन चार प्रकार के लोगों को नींद नहीं आया करती।** नींद की गोलियाँ खाने के बाद भी नींद बड़ी मुश्किल से आया करती है। पातशाह! मेरे मन में बहुत ही बेचैनी और तड़पन है, भजन मैं कर नहीं सकता, अन्य कोई क्रिया या कर्म मैं कर नहीं सकता, मुझ पर कृपा करो। मैंने आपके दानी स्वभाव के बारे में सुना है कि आप तो बांटते ही जाते हो, दिये ही जाते हो, लेते कुछ नहीं हो, तेरा तेरा कहते हुए धड़ियों की धड़ियाँ देते चले जाते हो। तेरह के बाद कभी चौदह नहीं होता। कृपा करके मेरे मन्द भाग्यों को सौभाग्य में बदल दो।"

महाराज जी ने मलसीहां वाले चौधरी भाई भगीरथ को बुलाया और कहा, "ऐसे कर, सामान की सूची बना ले, साथ चला जा, पर एक रात से अधिक नहीं ठहरना।" सो इस प्रकार हुक्म मानकर चला गया। भाई मनसुख वहाँ पर व्यापारी था, उसे जाकर सारी बात बताई, सारे सामान की सूची लिखवाई और साथ ही यह भी कहा कि एक चूड़ा (कंगन) भी चाहिए। वह कहने लगा, "प्यारे! और तो सभी कुछ अभी तैयार है, मैं एक घन्टे में तोल देता हूँ। एक तो तुम समय पर नहीं आए हो, थोड़ी देर में दिन छिप जायेगा और रात को कोई काम नहीं होगा। चूड़ा बनाने में दो दिन लगते हैं। सो तुझे दो रातें यहाँ पर रूकना पड़ेगा।" कहने लगा, "सेठ जी! मैं एक दिन से ज्यादा नहीं रह सकता। यदि मैं दो रात रह गया तो मेरा जन्म मरण बिगड़ जायेगा।" हैरान हो गया, कहने लगा, "हैं! यदि तो किसी हाकिम का नौकर हो, किसी गलती के कारण जन्म तो बिगड़ जायेगा, नौकरी में से निकाल दिया जायेगा पर यह जन्म मरण, लोक परलोक दोनों कहता है; परलोक को बिगाड़ने वाला कौन है आज संसार में?" कहने लगा, "तू नवाब का नौकर है - दौलत खान लोधी का?"

इसने कहा, "नहीं, उसका नौकर होता तो मुझे कोई चिन्ता नहीं थी। दो रातें तो क्या मैं तीन रातें भी रह जाता, कोई बात नहीं थी?"

भाई मनसुख ने कहा, "फिर कोई है ऐसा संसार में जिसकी हुक्म अदूली करने से जन्म-मरण बिगड़ जाये?"

भाई भगीरथ ने कहा, "हाँ, संसार में गुरू नानक पातशाह, अभी आप किरत करते हैं, मोदी का काम कर रहे हैं और साथ ही साथ संसार का उद्धार भी कर रहे हैं और उनका हुक्म है कि एक रात से अधिक नहीं ठहरना।"

वह उसकी बातों में बड़ी रूचि लेने लगा। कहने लगा, "ऐसा है कोई? लेकिन मैं तो ढूँढ-ढूँढ कर थक गया, बातें करने वाले ही मिलते हैं, करनी वाला कोई नहीं मिलता। जो कुछ मुख से बोलते हैं, उन पर चलने वाला, उन वचनों का पालन करने वाला कोई नहीं मिलता। जब मैं निकट जाकर देखता हूँ, पाखण्ड ही दिखाई देता है, माया का लालच है, धोखा है, फरेब है, छल है साथ ही भूख है, और मैंने तो ऐसा देखा नहीं।"

भाई भगीरथ ने कहा, ''भाई मनसुख जी! जब देख लेगा, तब पता लग जायेगा।'' कहता है, ''नहीं, मेरा मन नहीं मानता कि आज कलयुग के अन्दर भी कोई है ऐसा, जो सच्चा हो।''

भाई भगीरथ ने कहा, ''प्यारे! मेरे सतगुरू भी इसी तरह फ़रमान करते हैं।''

धारना - कूड़ दा वरतिआ वरतारा,
सच्च वाला काल पै गिआ - 2, 2
पिआरे जी! सच्च वाला काल पै गिआ - 2, 2
पिआरे, कूड़ दा वरतिआ वरतारा,........ - 2

सचि कालु कूड़ु वरतिआ कलि कालख बेताल।
बीउ बीजि पति लै गए अब किउ उगवै दालि।
जे इकु होइ त उगवै रुती हू रुति होइ।
नानक पाहै बाहरा कोरै रंगु न सोइ॥ *पृष्ठ - 468*

महाराज जी कहते हैं, ''भाई! संसार में कलयुग आने से झूठ का व्यवहार शुरू हो गया, बेताला, भूत हो गया है आदमी। आदर्शों से हट गया है, न समाज की बात मानता है, न धर्म की बात मानता है, न माँ-बाप की बात मानता है, किसी की भी नहीं मानता। बेताला होकर घूम रहा है, विश्वासहीन हो गया है। कभी किसी को सिर झुकाता है, कभी कहीं जाकर शीश झुकाता है। कहते हैं, दाना साबत हो तो कुछ पैदा हो सकता है, जब विश्वास ही खण्डित हो चुका हो, दाना टुकड़े-टुकड़े हो चुका हो तो फिर दाल नहीं उग सकती। सो दाल जैसा मन हो गया है। बेअन्त देवी-देवता, बेअन्त कब्रें, मड़ियाँ-मसानें हैं। पता ही नहीं, कितनों को मानने लग पड़ा है। अब किसके साथ प्यार करने लायक हैं हम? प्यार तो एक के साथ हुआ करता है। एक के साथ हो जाये फिर सारे संसार के साथ हो जाया करता है यदि -

इकु सजणु सभि सजणा इकु वैरी सभि वादि॥ *पृष्ठ - 957*

सो भाई भगीरथ कहने लगे, ''भाई मनसुख जी! मेरे सतगुरू जी भी यही बात कहते हैं। कहीं भी सच दिखाई नहीं दे रहा -

कलि आई कुते मुही खाजु होइआ मुरदार गुसाई॥ *भाई गुरदास जी, वार 1/30*

कुत्ते को मरी हुई चीज़ें अच्छी लगती है। मृत मांस की जो चीज़ें हैं, वे मनुष्य की खुराक बन गई, ख्वाज़ा बन गया, फिर कौन चेला, कौन गुरू, क्या ज्ञान देने वाला, क्या पढ़ाने वाले? कहते हैं सभी अपनी मर्यादाओं से हिल गये हैं और अन्धेरे में धक्के खाते हुए व्यर्थ हाथ पैर मार रहे हैं, किसी को कोई रास्ता नहीं दिखाई दे रहा। दूसरा जो शासक है - तत्कालीन समय का, जिसे हुक्म देने वाला कहते हैं, उन्होंने लब तथा पाप का बुर्का पहन लिया है। लब के साथ कहते हैं कि सभी कुछ मेरे अधीन हो जाये, कोई गरीब चाहे कितना भी गरीब क्यों न हो, बेशक वह अपनी जमीन, गहने, बाल बच्चों या स्वंय को भी गिरवी रख दे, पर हमारी जो निश्चित की गई रिश्वत है, वह इसे देनी ही पड़ेगी, चाहे कितनी भी क्यों न हो? अब भी इसी तरह ही है, साध संगत जी! बहुत अधिक अन्तर नहीं है, अब तो पहले से भी अधिक है। जमाना निम्न स्तर की ओर गिरता जा रहा है। एक बच्चा पढ़ता है, अच्छे नम्बर लेता है, नौकरी के लिये हाथ पैर मारता है। उदास हो जाता है कि मेरे माँ-बाप गरीब हैं, उन्होंने मुझे पढ़ाया ही नहीं क्योंकि वे हज़ारों रूपये फीस तथा दाखिले के लिए पैसा कहाँ से लाएं? उसको पूछो, ''उदास क्यों होता है, बेटा?'' कहता है, ''अजी वह तो 50 हज़ार रूपये माँगते हैं। नम्बर देखते ही नहीं। लाख रूपये माँगते हैं। दाखिल होने के लिये जाता है तो स्कूलों, कालिजों वाले कहते हैं, पहले एक लाख रूपये

लाओ, डाक्टरी में प्रवेश दे देंगे। एक लाख रूपये ले आओ, इन्जिनियरिंग में दाखिला दे देंगे।'' इस देश का क्या बनेगा। जहाँ हर काम पैसे से चलता हो, जहाँ योग्यता की कोई कीमत नहीं है? ऐसे हालात में देश की अधोगति हो जाया करती है। महाराज कहते हैं इस प्रकार अधोगति जब बढ़ जाये फिर अचेतपन आ जाता है। अचेतपन आने से बर्बादी हो जाया करती है -

अगो दे जे चेतीऐ तां काइतु मिलै सजाइ॥ *पृष्ठ - 417*

भाई मनसुख जी! गुरू नानक देव जी कहते हैं कि कौम चरित्रहीन हो चुकी है। लम्बी गुलामी के कारण अज्ञान के अन्धेरे में मार्ग हीन हो चुकी है, राजा कसाई का रूप धारण कर चुका है। वज़ीर लोभी होकर सुरत गवाँ बैठे हैं। झूठे सिक्के बनाने वाला सरदार है वह झूठ रच-रच कर प्रवचन कर रहा है। काम नाइब है जिससे सलाह मशवरा किया जाता है। प्रजा मुर्दा होकर वफादारी कर रही है। ज्ञानी लोग रासों में नाटय करते हैं, सत्य असत्य के निर्णय करने वाले उपदेश के स्थान पर लड़ाई झगड़े, युद्धों के वाद-विवाद ज़ोर-ज़ोर से सुनाते हैं। पण्डित लोगों में भक्ति भाव के स्थान पर तर्क-वितर्क आ गया है तथा धन इकट्ठा करना मुख्य उदेश्य बन गया है।

सभी ओर अन्धेरा ही अन्धेरा छा गया है -

लबु पापु दुइ राजा महता कूड़ु होआ सिकदारु॥ *पृष्ठ - 468*

इस तरह से फ़रमान करते हैं -

धारना - लब पाप दोनों राजा महिता हो गए
कूड़ सिकदार हो गिआ - 2, 2
मेरे पिआरे, कूड़ सिकदार हो गिआ - 2, 2
लब पाप दोनों राजा महिता हो गए.......... - 2

लबु पापु दुइ राजा महता कूड़ु होआ सिकदारु।
कामु नेबु सदि पुछीऐ बहि बहि करे बीचारु।
अंधी रयति गिआन विहूणी भाहि भरे मुरदारु।
गिआनी नचहि वाजे वावहि रूप करहि सीगारु।
उचे कूकहि वादा गावहि जोधा का वीचारु॥ *पृष्ठ - 468*

कहने लगे, ''भाई मनसुख! ठीक है, तेरा अनुभव भी ठीक है। मेरे सतगुरू भी ऐसा ही कहते हैं कि भाई! काल पड़ गया, परमेश्वर के बताये रास्ते पर कोई चल ही नहीं रहा। न राजा चल रहा है न प्रजा चल रही है। धर्म के चार पैर हुआ करते हैं चारों टूट गये - सच्चे धर्म के चार पैर 1. धर्मात्मा राजा 2. तीर्थ 3. विद्वान 4. पवित्र शस्त्र और साधु सन्त होते हैं। हर जगह मिलावट आ चुकी है। राजा अपने धर्म से विमुख हो गया, प्रजा अपने धर्म से विमुख हो गई, तीर्थ पाखण्डियों के वश में आकर अपवित्र हो गया, पाप शुरू हो गये, तीर्थों पर कोई भी पवित्रता नहीं रह गई। जो धर्म शास्त्र हैं उसके अर्थों के अनर्थ करके मनमर्ज़ी से विचार करते हैं। मनसुख जी मैं यह फिर से कहता हूँ, ''लब राजा बन गया है और जो वज़ीर है वह पाप बन गया है, जो हकूमत करने वाले हैं उन सभी ने झूठ का बुर्का पहन लिया है। *'काम नेबु सदि पुछीऐ'* उनके वज़ीरों के नायब हैं, कहते हैं वे भी अपनी-अपनी कामनाओं के वश में हो गये हैं, *'बहि बहि करे बीचारु'।* जो प्रजा है वह भी अन्धी हो गई है, न परमेश्वर का पता है, न अपने अधिकारों का पता है और उस अन्धी हो चुकी प्रजा को कोई रास्ता नहीं मिल रहा। *'भाहि भरे मुरदारु'* जो नाचने वाले हैं, नाटक करने वाले हैं, उन्हें ज्ञानी कहते हैं। ज्ञानी वह होता है जिसे वाहिगुरू की विचार का निर्णय हो। कहते हैं वे नाचने वालों को, बोलने वालों को ही

ज्ञानी कहते हैं। बाजे बजाते हैं, श्रृंगार करते हैं, नाटक करते हैं, बहुरूपिये बनते हैं, रास लीलाएं करते हैं –

उचे कूकहि वादा गावहि जोधा का वीचारु॥ *पृष्ठ - 468*

ऊँचा-ऊँचा चिल्ला-चिल्ला कर बोलते हैं। आत्म रस से हीन हैं, प्रभु के यश गाते नहीं हैं। योद्धाओं की बातें करते हैं, लड़ाई और झगड़े दंगों की बातें करते हैं। ऐसे गीत गा रहे हैं – बताओ, शान्ति कहाँ से आ जाये? बाकी जो विद्वान पण्डित हैं वे हुज्जतों (अनावश्यक शरारतों) में पड़े हुए हैं, चितवनियों में पड़े हुए हैं, गरबे (ललचाए) हुए हैं। प्रेमा भक्ति का कहीं भी नामो-निशां नहीं रहा, जो अपने आपको यह कहलवाते हैं कि हम रूहानी मार्ग बताते हैं। महाराज जी कहते हैं, ''वे तो बाहर ही बाहर रह गये, अर्न्तमुख वृत्ति किसी की भी नहीं हुई।''

लिखि लिखि पड़िआ तेता कड़िआ।
बहु तीरथ भविआ तेतो लविआ। बहु भेख कीआ देही दुखु दीआ॥ *पृष्ठ - 467*

भेष बनाए फिरते हैं, किसी ने कोई भेष बनाया हुआ है, किसी ने कोई भेष धारण किया हुआ है। आम समाज से अलग दिखाई देते हैं। महाराज कहते हैं, ''इसमें कौन सी बात है, यदि कपड़े नहीं पहनता? गर्मी आयेगी, तुझे धूप सतायेगी, लूँ लगेगी। सर्दियों में ठण्ड की वज़ह से तुझे सर्दी लगेगी। यदि जूते नहीं पहनता तो पैरों को ठण्ड लगेगी, काँटे चुभेंगे, कंकर पत्थर लगेंगे। ऐसा करने से तेरी रूहानियत तो कोई बनेगी नहीं। रूहानियत तो जब तक तू अपने अन्दर परमेश्वर को नहीं देखता, बाहर से तो कुछ भी नहीं मिलेगा, क्यों अपने शरीर को दुख देता है – भेष बना बना कर? इस तरह फ़रमान करते हैं –

धारना - देही नूँ दुख देवें ओ,
करके तूं भेख साध दा - 2, 2
करके तूं भेख साध दा - 2, 2
देही नूँ दुख देवें ओ,............ - 2

भेष धारण करने के बाद निश्चय हो गया कि परमेश्वर हमारे पर इस भेष से खुश हो जायेगा? कितने प्रकार के भेष हैं – हिन्दुस्तान में?

एक महापुरुष गणेशा सिंघ जी हुए हैं, उन्होंने गिनती करने के बाद यह लिखा है कि मैं सभी भेषों की गिनती तो न कर सका, परन्तु जितने मैंने गिने हैं – जगह-जगह जाकर पूरे भारत वर्ष में, वे 38200 भेष हैं। सभी यही कहते हैं कि आप हमारा यह अमुक भेष धारण कर लो, तुम्हें परमेश्वर मिल जायेगा। कोई कहता है, कान छिदवा लो, कोई कहता है ऐसा तिलक लगवा लो, कोई कहता है ऐसी कंठी गले में डाल लो, कोई कहता है पीले रंग के कपड़े पहन लो, कोई कहता है नीले कपड़े पहन लो, कोई कहता है सफेद कपड़े पहन लो, कोई कहता है रोटी नहीं खानी, कोई कहता है जूते नहीं पहनने, कोई कहता है नंगे पाँव चलना है, कोई कहता है धरती पर कुछ नहीं बिछाना, धरती पर ही सोना है, कोई कहता है घर में नहीं रहना, कोई कहता है घर में ही रहना है। कोई कहता है तीर्थों पर जाओ तो ठीक है। कोई एक भेष थोड़े ही है? महाराज कहते हैं – बेअन्त हैं। कोई कहता है अन्न नहीं खाना। बातें करते हैं कि अमुक सन्त ने तो पाँच बार से अधिक अन्न को मुँह नहीं लगाया। उसका तो अन्न पानी खत्म हो गया होगा प्यारे! इसमें बड़प्पन किस बात का है? अन्न में तो प्राण हैं, और कुछ खाता होगा क्योंकि भेष है यह। अमुक सन्त तो धरती पर सोते हैं, चारपाई पर नहीं, बाहर ही सो जाते हैं, वह तो जी साबुन से कपड़े ही नहीं धोया करते? साबुन से नहाते ही नहीं – दस दस दिन। ये हमने

सन्तों की qualifications (योग्यताएं) निकाल ली हैं – कलयुग में। यदि इस देही को दुख दिये, ***'सहु वे जीआ आपणा कीआ'*** किसी ने तो तुझे दुख नहीं दिया, तेरे कपड़े तो किसी ने नहीं उतरवाए। यदि राजस्थान में जाकर इन दिनों में गर्म कोट पहन कर घूमें, गर्म कफ़नी पहन कर घूमता रहे, किसी ने जबरदस्ती तो तुझे नहीं पहनाई? यदि सर्दियों में शिमला में जाकर मलमल का ही चोला पहन कर घूमता रहे, किसी ने जबरदस्ती तो तुझे नहीं पहनाया? कहते है, जी! इन्हें तो ठण्ड ही नहीं लगती। बारहसिंगे का कुश्ता खाया होगा क्योंकि वह इतना गर्म होता है, सौ घड़े पानी के शरीर पर डालते जाओ, तब जाकर शरीर बचता है, अन्यथा फट जाता है। धोखा किया है घरवालों के साथ तथा श्रद्धालुओं के साथ। महाराज कहते हैं –

सहु वे जीआ अपणा कीआ। अंनु न खाइआ सादु गवाइआ।
बहु दुखु पाइआ दूजा भाइआ। बसत्र न पहिरै अहिनिसि कहरै॥ ***पृष्ठ - 467***

वस्त्र नहीं पहनता तो फिर मौसम का कहर सहन कर –

मोनि विगूता किउ जागै गुर बिनु सूता।
पग उपेताणा अपणा कीआ कमाणा॥ ***पृष्ठ - 467***

चुप कर गया कि मैंने तो बोलना ही नहीं। जुबान तो परमेश्वर ने दी थी। मौन तो उस समय चुप होगा जब गुरू का ज्ञान हो जायेगा। जूते नहीं जी पहनने, तुझे किसी ने मज़बूर तो नहीं किया। कांटे चुभते हैं, निकाले जा –

अलु मलु खाई सिरि छाई पाई। मूरखि अंधै पति गवाई॥ ***पृष्ठ - 467***

अन्त में फैसला करते हैं, you are blind and fool (तू अन्धा और मूर्ख है) अपनी इज्जत गवाँ बैठा है तू नाम के बिना सही पौष्टिक खुराक खानी बन्द करके गन्दे अपवित्र पदार्थ खाता रहा है –

विणु नावै किछु थाइ न पाई।
रहै बेबाणी मड़ी मसाणी। अंधु न जाणै फिरि पछुताणी।
सतिगुरु भेटे सो सुखु पाए। हरि का नामु मंनि वसाए॥ ***पृष्ठ - 467***

नाम का तो तुझे पता ही नहीं चला, जंगल बीयाबानों में रहकर उम्र बिता दी। नाम प्राप्ति के बिना पछताना पड़ेगा। इन बातों ने कहीं भी काम नहीं आना, ये बातें किसी महत्व की नहीं।

भाई भगीरथ मनसुख से कहने लगा, ''तेरी जो श्रद्धा खत्म हो गई है वह केवल कोई न कोई भेष धारण करके शरीर को दुखी करने वाले अज्ञानियों के साथ मिलकर हुई है। सच का काल पूरे सतगुरू के बिना पड़ रहा है। सतगुरू नाम रतनु है। जब नाम मन में बस गया उस समय द्वैत भाव, अहम भाव समाप्त होकर सारी वासनाओं का नाश हो जाता है तथा मायिक मन का भी नाश हो जाता है। सच का प्रकाश अन्तसकरण में होने से परम आनन्द अवस्था प्राप्त कर लेता है। इस तरह पढ़ लो –

धारना - ओहीओ सुख पाउंदे ने
मिलदा है सतिगुर जिन्हां नूँ - 2, 2
मिलदा है सतिगुर जिन्हां नूँ - 2, 2
ओहीओ सुख पाउंदे ने ....-2

दुखु दरवाजा रोहु रखवाला आसा अंदेसा दुइ पट जड़े।
माइआ जलु खाई पाणी घरु बाधिआ सत कै आसणि पुरखु रहै॥ ***पृष्ठ - 877***

वाहिगुरू जी हर घट में बसते हैं, सारे शरीर में उनका वास है। कोई परमाणु, किटाणु,

वाहिगुरू जी के अस्तित्व के बिना नहीं है, उनके दर्शन दसवें द्वार में सुरत पहुँच कर होते हैं क्योंकि वहाँ दिव्य नेत्र प्राप्त हो जाते हैं जिसके द्वारा प्रभु के दर्शन सारे ब्रह्मण्डों में हो जाते हैं। पर वह दरवाज़ा दुखों को सुख समझकर तथा क्रोध की जगह क्षमा का शृंगार करके पार किया जाता है। आशाओं और अन्देशों के बज्र कपाट खुल जाते हैं। गुरू महाराज फ़रमान करते हैं कि जब पूरा सतगुरू मिल जाता है, उसके दिए शब्द की साधना करके निहकेवल (मुक्त) हो जाया करते हैं, उच्च अवस्था में प्रवेश कर जाता है और जो हउमैं है, उसे वाहिगुरू गुरूमन्त्र का अभ्यास करने से खत्म होकर सच का प्रकाश हो जाता है। हउमैं एक नुकता है, केवल एक नुकता। इसका बहुत बड़ा विस्तार नहीं है। यह seed (बीज) है जैसे बहुत ही छोटा बोहड़ (बरगद) का बीज होता है, खसखस के दाने से भी छोटा होता है पर विस्तार कितना है – उस बीज के अन्दर। इसी तरह यह एक नुकता है। यह 'महिरम' था। उर्दू का अक्षर है 'महिरम'। यदि इसके नीचे नुकता लग जाये तो 'मुज़रम' बन जाता है। एक नुकते का अन्तर है केवल। उस हउमै के नुकते ने इसे परमेश्वर से अलग करके दुखी कर दिया। इसका यदि हउमै का नुकता टूट जाये, नाम जपने से फिर क्या होता है? सारा संसार ही अपना बन जाता है, पता ही नहीं चलता कि मैं संसार में हूँ या संसार मेरे अन्दर है। एक दूसरे में घुल मिल जाते हैं, किसी को भी बुरा नहीं समझता, कोई बेगाना दिखाई नहीं देता –

मन मेरे जिनि अपुना भरमु गवाता।
तिस कै भाणै कोइ न भूला जिनि सगलो ब्रहमु पछाता॥ पृष्ठ – 610

एक नुकते ने ही इसे मुज़रम बनाया हुआ है। वह नुकता टूट गया फिर आप ही आप हो जाता है। सो इस प्रकार महाराज जी कहते हैं जो हउमै है इसे शबद जला देता है। कोई दुकान तो है नहीं इसकी लेकिन गुरू महाराज जी ने संकेत कर दिया है –

जिसु वखर कउ लैनि तू आइआ। राम नामु संतन घरि पाइआ॥ पृष्ठ – 283

फिर मूल्य क्या देना चाहिए इसका; पैसा, टका, घर बार? गुरू महाराज फ़रमान करते हैं, ''नहीं, हंगता और ममता को इसके बदले में दे दो।'' जो I and my (मैं और मेरी) है, इसे इसके हवाले कर दो, यह बहुत बुरी चीज़ है। इतनी गन्दी एवं अपवित्र वस्तु को यह संसार अपने पास रखकर बैठा हुआ है अन्यथा यह परमात्मा बन जाये, जो इसका असली स्वरूप है, असली मैं है। यदि यह दो चीज़ें अपने अन्दर से निकाल दे, फिर अन्तर नहीं हुआ करता –

कबीर तूं तूं करता तू हूआ मुझ महि रहा न हूं।
जब आपा पर का मिटि गइआ जत देखउ तत तू॥ पृष्ठ – 1375

'मैं' क्यों था? 'हंगता' को अपने आप रखकर बैठा हुआ था। जब हंगता और ममता छोड़ दी, फिर शेष क्या रह गया? 'मैं' मर गई, कहते हैं 'हऊ मूआ, खुदा हुआ' फिर तो बाकी कुछ भी न रहा, एक परमेश्वर रह गया। पहले भी परमेश्वर है–

आदि पूरन मधि पूरन अंति पूरन परमेसुरह।
सिमरंति संत सरबत्र रमणं नानक अघ नासन जगदीसुरह॥ पृष्ठ – 705

पहले भी वही था और आज सभी के अन्दर भी वही है और अन्त में भी यही है फिर 'मैं' और 'तू' कहाँ से बन गये? कहते हैं, हउमैं ने बना दिये –

हउमै विचि जगु उपजै पुरखा नामि विसरिऐ दुखु पाई।। पृष्ठ – 946

नाम को भूल गया। यह जो ज्ञान था, यह तू भूल गया कि यह सभी एक ही है, दूसरा नहीं है –

पउण पाणी बैसंतर माहि। चारि कुंट दहदिसे समाहि।

तिस ते भिंन नही को ठाउ। गुर प्रसादि नानक सुखु पाउ॥ पृष्ठ - 294

कोई भी नहीं है उसके बिना। कहते हैं गुरमुख की कृपा से इस ज्ञान को हृदय में बसा कर परम सुखी हो जा, पर यह मिलता नहीं है जब तक गुरूमन्त्र नहीं मिलता, तब तक यह हउमै नहीं मिटती। अब नाम का मोल क्या देना है? पहले ही कह दिया महाराज जी ने कि नाम लेना है? कहता है, ''हाँ जी।''

हमारे यहाँ तो ऐसे ही गिनती करते रहते हैं कि इतने प्राणियों को अमृतपान करवा दिया। बहुतों को अमृतपान करवा दिया।

इतना सस्ता तो नाम नहीं मिलता। प्यारे! नाम तो बहुत कठिन है, बहुत मुश्किल से मिलता है ज़िन्दगी में। यदि कृपा हो जाये पूरी, तब मिलता है। इसे चाहे अमृत कह लो, चाहे नाम कह लो, बात एक ही है क्योंकि महाराज जी ने ऐसा फ़रमान किया है कि यह नाम ही अमृत है -

संत संगि अंतरि प्रभु डीठा। नामु प्रभू का लागा मीठा।
सगल समिग्री एकसु घट माहि। अनिक रंग नाना द्रिसटाहि।
नउ निधि अंम्रितु प्रभ का नामु। देही महि इस का बिस्रामु॥ पृष्ठ - 293

नाम बाहर से नहीं मिलता, यह तो रोम-रोम में रमी ज्ञान की प्रकाशमयी प्रबल शक्ति हैं, यह गुरू शब्द की पूरी साधना करके हउमै नाश होने के उपरान्त अन्दर से ही गुरू कृपा द्वारा प्रकाश हो जाता है -

सुंन समाधि अनहत तह नाद। कहनु न जाई अचरज बिसमाद॥ पृष्ठ - 293

इतना आनन्द है, ऐसी अफ़ूर अवस्था है कि वह बताई ही नहीं जा सकती। सुरत आनन्द तो लूटती है पर उस आनन्द में, पूर्ण रूप से लीन हो जाने के कारण कुछ बता नहीं सकती-

तिनि देखिआ जिसु आपि दिखाए॥ नानक तिस जन सोझी पाए॥ पृष्ठ - 293

जिस पर कृपा करता है, उसने देख लिया और उसे ही ज्ञान हो गया - इस बात का। सो यह नाम जिसे अमृत नाम कहते हैं, इसे ढूँढता फिरता है सारा संसार परन्तु यह हाथ में नहीं आता। इस तरह फ़रमान है -

धारना - बिनां गुरां तों नाम नहीओं मिलदा,
खोजदी है सारी दुनीआं - 2, 2
मेरे पिआरे, खोजदी है सारी दुनीआं - 2, 2
बिनां गुरां तों नाम नहीओं मिलदा.........2

बिनु सतिगुर नाउ न पाईऐ बुझहु करि वीचारु। पृष्ठ - 649

विचार कर लो, पूरे सतगुरू के बिना नाम की प्राप्ति नहीं हुआ करती, पूरे सौभाग्य की भी शर्त है। पूरे सौभाग्यशालियों को सतगुरू कैसे मिलता है? महाराज फ़रमान करते हैं -

नानक पूरै भागि सतिगुरु मिलै सुखु पाए जुग चारि॥ पृष्ठ - 649

पूरे भाग्य जागें तब -

जिन मसतकि धुरि हरि लिखिआ तिना सतिगुरु मिलिआ राम राजे॥ पृष्ठ - 450

गुरू मिलने पर वह फिर क्या करेगा? कहते हैं नाम होता है उसके पास। जिसके द्वारा वह भवजल संसार को पार करवा देता है -

सतिगुर की सेवै लगिआ भउजलु तरै संसारु॥ पृष्ठ - 1422

नाम रूपी रतन उसके (गुरू) पास हुआ करता है वह प्रकाश कर देते हैं – रतन निकाल कर, जब अति दयालु हो जाते हैं। बाकीयों को नहीं मिलता, अन्य सभी वंचित रह जाते हैं –

सिध साधिक नावै नो सभि खोजदे थकि रहे लिव लाइ।
बिनु सतिगुर किनै न पाइओ गुरमुखि मिलै मिलाइ।। पृष्ठ - 650

नाम की प्राप्ति के लिए सतगुरू की दयालुता जरूरी है। गुरू जीव भाव का नाश करके आत्म भाव दृढ़ करके जीव ब्रह्म को एक करके निश्चय करा देता है –

जिस नो दइआलु होवै मेरा सुआमी तिसु गुरसिख गुरू उपदेसु सुणावै॥ पृष्ठ - 306

बिना गुरू के नाम प्राप्त नहीं हुआ करता। सो इस प्रकार फ़रमान है –

जिसु वखर कउ लैनि तू आइआ। राम नामु संतन घरि पाइआ॥ पृष्ठ - 283

मोल क्या देगा? महाराज कहते हैं –

तजि अभिमानु लेहु मन मोलि॥ पृष्ठ - 283

अभिमान किसे कहते हैं? हंगता और ममता को, I and my ये दो चीज़ें छोड़ दे। बार-बार उल्लेख आता है इसका –

पहिला मरणु कबूलि जीवण की छडि आस॥ पृष्ठ - 1102

हंगता और ममता, ये चीज़ें जब तक तेरे पास हैं और तू कहता है, मैं जीवित हूँ परन्तु दुनियाँ में जीता है, परमात्मा के घर में तू जीवित नहीं है। परमात्मा के घर ज़िन्दा तब माना जायेगा, जब ये दो चीज़ें तेरे अन्दर से छूट जायेंगी। फिर परमात्मा के घर जीवित होगा, फिर परम जीवन (नाम वाला जीवन) तुझे प्राप्त हो जायेगा। जब तक तेरे पास हंगता और ममता है, तू मृत है, जब हंगता और ममता नहीं रहेगी फिर नाम हृदय में बस जाता है –

सो जीविआ जिसु मनि वसिआ सोइ। नानक अवरु न जीवै कोइ।
जे जीवै पति लथी जाइ। सभु हरामु जेता किछु खाइ॥ पृष्ठ - 142

यह तो हराम का खाना है, इसे जीना नहीं कहते हैं। यह तो एक मशीन है। जैसे मशीन में, चक्की में दाने डालते जाओ, आटा निकलता चला जाता है। ये तेरे अन्दर खाने के पदार्थ जाते हैं प्यारे! बढ़िया से बढ़िया, कीमती से कीमती; विष्ठा बनाकर बाहर निकालता रहता है। तेरे से तो पशु ही अच्छे हैं। गाय का गोबर लेते हैं, रसोई (चौका) लीपते हैं, उसे पवित्र माना गया है। कुछ अच्छा होता होगा, तभी तो लिखा गया है। पर तेरे द्वारा खाये जाने के बाद बाहर निकाले गये पदार्थों को कोई देखता भी नहीं है, मुँह से थूक देते हैं। तू खुद भी नाक सिकोड़ कर निकल जाता है। सो यह जिन्दा नहीं, मरा हुआ है।

दो प्रकार की जिन्दगी हुआ करती है, एक तो यह जो चलती फिरती मशीन है, इसे गलती से ज़िन्दगी कहते हैं। यह जीवन नहीं है। महाराज कहते हैं, यह तो मरा हुआ है, मृत है। एक मुर्दा वह होता है जिसके शरीर में से चेतन कला निकल जाती है, जिसमें नाम की धारा नहीं बहती। बैट्री के बारे में सारी दुनियाँ जानती है कि जब बैट्री दुकान पर पड़ी हो, तो दुकानदार को कहते हैं कि यह बैट्री दे दो, मैं कार स्टार्ट कर लूँ। दुकानदार कहता है, "भाई! मेरी बैट्री तो Dead (खत्म) है।" अभी तो तेरी दुकान से ही बाहर नहीं आई, Dead कैसे हो गई? कहता है, "इसमें करन्ट नहीं है, ये चार्ज़ नहीं हुई।"

सो यह शरीर चार्ज़ होता है नाम के साथ। यदि Body (शरीर) चार्ज़ नहीं हुआ नाम के द्वारा, तो क्या होगा? कहते हैं मुर्दा है, महाराज जी ने भी मुर्दा ही कहा है। इस तरह से महाराज जी कहते हैं कि हंगता और ममता छोड़ दे। फिर भाई! तू सन्तों की संगत, सत्संग कर –

सतसंगति कैसी जाणीऐ। जिथै एको नामु वखाणीऐ॥ ***पृष्ठ - 72***

जहाँ नाम की विचार होती है, नामियों की विचार होती है, नाम की महिमा की विचार होती है, परमेश्वर की विचार होती है, भाई! उसे सत्संग कहते हैं। उन सन्तों की संगत कर।

बाकी जितनी बातें हैं, जंजाल हैं, जिनके अन्दर तू फसा हुआ है, उन्हें तू छोड़ने का यत्न कर, जब यह चीज़ तेरे पास आ जायेगी, तू संसार को छोड़कर जायेगा, तब संसार में भी तुझे 'धन्य है, धन्य है' कहेंगे और दरगाह में जायेगा, जितने मण्डलों में से गुज़रकर जायेगा, तेरा आदर मान ही होता चला जायेगा -

धंनि धंनि कहै सभु कोइ। मुख ऊजल हरि दरगह सोइ॥ ***पृष्ठ - 283***

मुख उजला हो जायेगा दरगाह में क्योंकि नाम का व्यापार किया है। परन्तु महाराज कहते हैं, अफसोस! संसारी व्यक्ति सुनते तो हैं पर हमारे वचनों पर भरोसा नहीं करते, दृढ़ इरादा नहीं करते, यत्न नहीं करते कि नाम का धन इकट्ठा कर लें। रात सोते-सोते बीत जाती है, दिन बातें करते-करते बीत जाता है, खाते-पीते बीत जाता है। कहते हैं, यह जो बहुमूल्य शरीर प्राप्त हुआ है, वह अपने हाथों से स्वंय ही गवाँ देता है-

धारना - तेरा जनम अमोलक हीरा,
कौडीआं दे भाअ जांवदा - 2, 2
मेरे पिआरे, कौडीआं दे भाअ जांवदा - 2, 2
तेरा जनम अमोलक हीरा,......... -2

रैणि गवाई सोइ कै दिवसु गवाइआ खाइ।
हीरे जैसा जनमु है कउडी बदले जाइ॥ ***पृष्ठ - 156***

इतना कीमती शरीर बिना नाम के, कौड़ियों के बदले जा रहा है -

इहु वापारु विरला वापारै। नानक ता कै सद बलिहारै॥ ***पृष्ठ - 283***

संसार इस बात को सुनकर नहीं मानता क्योंकि जब तक मन साथ नहीं देता तब तक कोई बात नहीं बनती। इस तरह महाराज कहते हैं ***'सिध साधिक नावै नो सभि खोजदे थकि रहे लिव लाइ॥' (पृष्ठ - 650)*** सिद्ध भी, साधक भी, देवता भी, मुनि भी, नाम को खोजते फिरते हैं परन्तु नाम की प्राप्ति नहीं होती क्योंकि यदि गुरू मिल गया, तब तो नाम की प्राप्ति हो जाया करती है, यदि न मिला, फिर नहीं होती। भाई मनसुख जी! आप जानते ही होंगे कि आजकल गुरूओं का क्या हाल है, कलयुगी गुरू चेले ढूँढते फिरते हैं, चेले साज बजाते हैं, गुरू ताल पर नाचते हैं। गुरू स्वंय ही नाम से हीन हैं, पाखण्ड में आप भी लीन और चेलों को भी पाखण्डी बना देते हैं। कच्चे गुरू, अन्धे गुरू, पण्डित गुरू, संसार से अनुभवहीन आप भी डूबते हैं और चेलों को भी छलांगें लगाते हुए भवजल रूपी सागर में डुबो देते हैं। मनसुख जी! गुरू नानक जी का मत है कि वाहिगुरू जी सभी के अन्दर रहते हैं, समरथ गुरू शरीर रूपी घर में ही वाहिगुरू जी का घर दिखा देते हैं -

घर महि घरु देखाइ देइ सो सतिगुरु पुरखु सुजाणु॥ ***पृष्ठ - 1291***

जो इस शरीर के अन्दर परमेश्वर का घर दिखा देवे, वह सतगुरू होता है। पहले गुरू से गुरूमन्त्र मिलता है गुरूमन्त्र का जाप करते हुए सोई हुई सुरत एकाग्रता के घर में पहुँचती है तथा फिर अन्दर ही अन्दर चढ़ाई करती है। एक समय ऐसा आता है जब हउमै का रोग घटता-घटता बहुत कम हो जाता है। हउमैं दूर होते ही नाम का प्रकाश हो जाया करता है। साध संगत जी बाणी में फ़रमान आता है -

वाहिगुरू गुरमंत्र है जपि हउमै खोई॥ ***भाई गुरदास जी, वार 13/2***

वाहिगुरू मन्त्र मिल गया, फिर इसने हउमै का नाश कर देना है। जब हउमैं का नाश हो गया, फिर नाम की भी प्राप्ति हो जाती है। मन्त्र के लिये ही महाराज ने कहा है –

गुरमंत्र हीणस्य जो प्राणी ध्रिगंत जनम भ्रसटणह॥ पृष्ठ - 1357

जिन्हें अभी तक गुरू से मन्त्र ही नहीं मिला; गुरू घर में पाँच प्यारे मन्त्र देते हैं, जिन्हें नहीं मिला, उनका जन्म धिक्कारने लायक है, भ्रष्ट हो गया जन्म है –

कूकरह सूकरह गरधभह काकह सरपनह तुलि खलह॥ पृष्ठ - 1357

कुत्ता, बिल्ला, साँप, गधा, कौए के बराबर उनका जीवन है, बेशक पढ़े लिखे हैं, चाहे पैसे वाले हैं, कुछ भी हैं। इस तरह भेष धारण करने से कुछ भी नहीं बनेगा, चाहे जितने मर्जी भेष धारण कर लो, नही मन में शान्ति आती। यह शान्ति तो तभी आती है, जब नाम की प्राप्ति हो जाती है और इस नाम की जो चाबी है, वह गुरू के सुपुर्द की गई है –

जिस का ग्रिहु तिनि दीआ ताला कुंजी गुर सउपाई।
अनिक उपाव करे नही पावै बिनु सतिगुर सरणाई॥ पृष्ठ - 205

जब तक गुरू की शरण में नहीं जाता, चाबी नहीं मिलती। इस तरह फ़रमान करते हैं –

धारना - कुन्जी पिआरिआ!
मिल जाऊ पूरिआं गुरां तों - 2, 2

गुरु कुंजी पाहू निवलु मनु कोठा तनु छति।
नानक गुर बिनु मन का ताकु न उघड़ै अवर न कुंजी हथि॥ पृष्ठ - 1237

बिनु सबदै अंतरि आनेरा। न वसतु लहै न चूकै फेरा।
सतिगुर हथि कुंजी होरतु दरु खुल्है नाही गुरु पूरै भागि मिलावणिआ॥ पृष्ठ - 124

इस तरह से जब तक गुरू की प्राप्ति नहीं होती, गुरू का मिलाप नहीं होता, तब तक आन्तरिक मार्ग का पता नहीं चलता। बाकी जो नाचना, उछलना, नंगे रहना, भूखे रहना ये क्या है? महाराज कहते हैं ये सारे फोकट कर्म हैं, एक कौडी भी मूल्य नहीं है – इनका। दुनियाँ को तो बेशक ठग ले, दुनियाँ को धोखा दे सकता है क्योंकि अन्धी है, ज्ञान नहीं है इनके अन्दर, पता नहीं चलता, धोखा खा जाते हैं। थोड़ी देर के लिये यहाँ कोई पाखण्डी सिर के बालों को फैलाकर बैठ जाये, सभी धोखा खा जायेंगे, चार दस ऐजेन्ट रख ले कि तुम्हारा इतना-इतना हिस्सा है, सारे शहर में प्रचार करवा देगें कि सन्त जी तो दस दिनों से धूप में ही बैठे हैं, फिर परिणाम क्या निकलेगा? धोखा देगा। महिमा करवा लेगा, धन आ जायेगा; बात तो बनी नहीं? महाराज कहते हैं, देख, तू बहुत भारी जुल्म करने चला है। हो सकता है, अभी दुनियाँ में कानून न बना हो पर परमात्मा की कचहरी में कानून है, वहाँ जाकर हिसाब देना पड़ेगा –

धारना - अंत वासा नरकां विच होवे,
भेख न दिखाईं जग नूँ - 2, 2

भेख दिखाइ जगत कउ लोगन को बसि कीन।
अंत कालि काती कटिओ बास नरक मो लीन॥ पातशाही १०

भेष बनाना अपने आपको धोखा देना है, भेष बनाकर संसार को धोखा देता है। महाराज कहते हैं, यहाँ तो धोखा दे देगा, लोगों को वश में कर लेगा लेकिन ***'अंत काल काती कटिओ'*** काल की कैंची से काट दिया जायेगा ***'बास नरक मो लीन',*** नरकों में वास मिलेगा।

सो इस तरह से कहने लगे भाई मनसुख! मेरे सतगुरू तो साफ-साफ बातें कहते हैं। वह कहते हैं कि किरत करो, नाम जपो और मिलकर, बाँट कर खाओ। किसी से नहीं कहते कि कारोबार छोड़कर चले जाओ, किसी को नहीं कहते कि काले, पीले, नीले या सफेद रंग के वस्त्र पहन लो। जिसने पहने हैं, देश गुलाम हो चुका है। भारत वासियों ने अपनी बोली बदल ली है, भारतीय बोली छोड़ दी है और मीयां जी, मीयां जी कहलवाने लग गए हैं। तुरकों और पठानों की स्पर्धा करके उन जैसे वस्त्र पहनते हैं –

नील बसत्र ले कपड़े पहिरे तुरक पठाणी अमलु कीआ। *पृष्ठ - 470*

घरि घरि मीआ सभनां जीआं बोली अवर तुमारी॥ *पृष्ठ - 1191*

गुरू नानक मना करते हैं इन बातों के लिए कि ऐसे मत करो। यह वचन सुनकर भाई मनसुख कहने लगा, ''भाई भगीरथ! ठीक है, तेरी बातें मुझे अच्छी भी लगती हैं। मुझे अन्दर ही अन्दर आकर्षित भी करती हैं, पर मैं भरोसा कैसे करूँ क्योंकि मैं सारी जिन्दगी धोखा ही खाता रहा। एक योगी मिला, उसने मुझे यह बात कही कि देख प्यारे! रिद्धियाँ-सिद्धियाँ, शक्तियाँ बहुत अच्छी चीज़ होती हैं, लोग पीछे लग जाते हैं, कारोबार इतना बढ़िया चल जाता है, रिद्धियों सिद्धियों की ताकतें बहुत बढ़ जाती हैं कि हिसाब-किताब रखना भी कठिन हो जाता है। शक्तियाँ अन्दर प्रवेश कर जाती हैं, लेकिन उन्हें पाने के लिये कुछ साधना करनी पड़ती है। उसने मुझे अष्टयोग की क्रिया बताई। मैं इस योग की साधना भी करता रहा।''

भगीरथ ने पूछा, ''यह कैसे होती है।''

वह बोला, ''छह चक्र हुआ करते हैं – रीढ़ की हड्डी में। इसके इर्द-गिर्द दो नाड़ियाँ चलती हैं – इड़ा और पिंगला। एक नाड़ी बीच में है, वह अक्षर 8 का आकार बनाती हैं और उसे सुखमना नाड़ी कहते हैं। यह छह स्थानों पर बन्द है। वहाँ पर माँस के लोथड़े हैं, उसके नीचे की ओर एक भुजंगा नाड़ी है, वहाँ पर कुण्डलनी है, Electronic centre है सारे शरीर का। यदि वह हिल जाये, सोयी हुई जाग जाये, कहते हैं, सारी की सारी शक्तियाँ, अर्न्तजामता, प्रेरणा शक्ति सभी आ जायेंगी। कहने लगे, पहले उन्होंने मुझे हठयोग के कर्म करवाए – धोती क्रिया, नेती क्रिया, बसती, कपाली, भाठी और त्राटक।

''ये क्या होते हैं?''

यह कर्म तथा क्रिया होती हैं – धोती की क्रिया इस प्रकार है – चार अँगुल लम्बी कपड़े की पट्टी सी होती है और 15 हाथ लम्बी (लगभग साढ़े 22 फुट) उसे पानी में भिगो देते हैं, वह अन्दर ले जाकर मैदा में से ले जानी होती है फिर बाहर खींचनी होती है। मैदा साफ हो जाता है। फिर दूसरी क्रिया होती है – नेती। यह दो गिठ का सूत का धागा होता है। इससे नाक को साफ किया जाता है। तीसरी क्रिया होती है – बसती। पानी में बैठकर बांस की नाली द्वारा पानी अन्दर खींचकर मलमूत्र साफ किया जाता है। फिर चौथी क्रिया जिसे त्राटक कहते हैं। यह एक नुकता लेकर उस पर तब तक देखते रहना जब तक नेत्रों में से जल न आने लगे। जब त्राटक सिद्ध हो जाता है तो शक्ति आ जाती है। पाँचवीं होती है – कपाली। ज़ोर ज़ोर से जैसे धौंकनी होती है, अपने पेट को हिलाना होता है, अन्दर भी और बाहर भी ज़ोर से सांस खींचते हैं। गुरू महाराज ने तो बहुत ही सहज बताया है –

सुखु सहजे जपि रिदै मुरारि॥ *पृष्ठ - 222*

आराम से सुख पूर्वक नाम जपो, शरीर का पता ही न चले। यह तो क्रियाएं यान्त्रिक चीज़ हो जाती हैं। वाहिगुरू ऐसे वश में नहीं आया करता। यह तो बात ही और है। यह शरीर से सम्बन्ध रखती हैं।

छठी 'भाठी' है। जीभ को लम्बी करके नेत्रों के ऊपर वाले भाग तक ले जाना। भाई भगीरथ जी ने कहा कि प्राणायाम की क्रिया द्वारा श्वांस दसवें द्वार को रोकने के लिए लम्बी हो चुकी जीभ से श्वांस का ऊपर जाने वाला रास्ता रोक लेना और नीचे नहीं उतरने देना। इसमें तो परमेश्वर को मिलाने वाली कोई भी चीज़ नहीं है। यह तो एक क्रिया सी ही बताई गई है।

प्राणायाम की क्रिया करते हैं। 42 बार औंकार का मन्त्र अन्दर की ओर साँस खींचकर जपना है, 84 बार सांस रोक कर जपना है तथा 42 वार औंकार का जाप करके सांस बाहर निकालता है। ऐसे करने से साँस, 2 मिनट के लिये रूक जाता है। फिर इस प्रकार समय अवधि को बढ़ाते चले जाते हैं, रोज़ के अभ्यास से कई-कई मिनट साँस रूकने लग जाती है। श्वाँस का दबाव, रीढ़ की हड्डी जहाँ खत्म होती है, वहाँ पर पड़ता है। प्राण तथा अपान वायु मिलकर बहुत गर्म हो जाती है। प्राण, अपान, वायु दबाव पड़ने से वह स्थान गर्म हो जाता है, गर्म होने पर उसका जो छोटा सा सुराख है, रीढ़ की हड्डी के सिरे पर है वह खुल जाता है। इस सुराख का मुँह एक भुजंगा नाम की नाड़ी की ओर किया होता है। जब उस नाड़ी का मुँह खुल जाता है तो प्राण सुखमना नाड़ी में प्रवेश कर जाते हैं। इस प्रकार पहले चक्र मूलधार में श्वांस दाखिल हो जाते हैं तथा कुण्डलनी शक्ति जाग पड़ती है।

कहने लगे, ''दिखाई भी देता है कुछ?''

हाँ, फिर अन्दर दिखाई देने लग जाता है। यह व्यवहारिक knowledge (ज्ञान) है। ऐसे ही अन्दाज़े वाली बात नहीं है। कहते हैं चार पंखुड़ियों वाला पीले रंग का, उलटा मुँह होता है उस फूल का। नीचे की ओर मुँह होता है, ऊपर की ओर नहीं होता। जब वह चक्र तोड़ लिया, फिर दूसरा पेडू के साथ काम कुण्डल की जड़ में चक्र हुआ करता है, उसे स्वाधिष्ठान चक्र कहते हैं और वह छह पंखुड़ियों वाला होता है, सिन्दूरी रंग होता है, वह उलटा होता है। तीसरा चक्र नाभि के पास का चक्र होता है, इसे मणिपूरक चक्र कहते हैं। इसके फूल का रंग नीला और दस पत्तियाँ होती हैं। चौथा हृदय के पास जहाँ कौड़ी होती है, इस जगह से थोड़ा सा ऊपर होता है, जहाँ छाती जुड़ती है। इसमें 12 पंखुड़ियाँ होती हैं और रंग सिन्दूर जैसा हो जाता है। फूल यहाँ पर भी उलटा ही होता है। इस चक्र को अनाहत चक्र कहते हैं। इसके ऊपर कंठ के पास 6 पंखुड़ियाँ धूर्म रंग की होती हैं। इसके बाद 'आज्ञा चक्र' में आ जाते हैं जहाँ दो आँखें तथा नाक की जड़ है। वहाँ पर पहुँच कर हम इसे फिर तोड़ते हैं और इसके अन्दर दो पत्तियाँ होती हैं और रंग बदल जाता है, इसका मुख भी उलटा होता है। भिन्न-भिन्न चक्रों पर ध्यान करने से जो फल प्राप्त होते हैं, वे वहाँ आज्ञा चक्र में ध्यान करने से सभी प्राप्त हो जाते हैं। जहाँ मन स्थिर हो जाता है, सम्प्रज्ञात समाधि की योग्यता प्राप्त हो जाती है। इसी स्थान पर इड़ा, पिंगला तथा सुखमना नाड़ियाँ त्रिवेणी के रूप में मिल जाती हैं, इस स्थान को गंगा, यमुना, सरस्वती का संगम भी कहा जाता है। इस स्थान पर वृत्ति जुड़ जाने से सारे पापों का नाश हो जाता है। इसे हृदय कहा जाता है, यहीं पर ही दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है। इसके बाद फिर त्रिकुटी में चले जाते हैं। त्रिकुटी खुलने के पश्चात हज़ार दल वाले कमल में प्रवेश प्राप्त होता है। वहाँ एक हज़ार पत्तियों वाला फूल होता है। इसी के अन्दर रिद्धियाँ-सिद्धियाँ शक्तियाँ हुआ करती हैं। यहाँ पर पहुँच कर जिज्ञासु भूल जाता है क्योंकि बहुत मनोहर स्थान है, शक्तियाँ ही शक्तियाँ हैं यहाँ। वहाँ रंग सफेद होता है। गुरू कृपा से यदि इससे आगे निकल जाये फिर दसवाँ द्वार आता है। दसवाँ द्वार तालु के नीचे है और एक हज़ार पंखुड़ियों वाला सफेद रंग इस फूल का होता है और वहाँ सुन्न है, फुरना कोई नहीं है, जिसे गगन मण्डल भी कहते हैं और सुन्न मण्डल भी कहते हैं और दसवाँ द्वार भी कहते हैं, तीसरी आँख, तीसरा तिल तथा बिअन्न अखड़ियाँ भी कहते हैं। कई नाम रखे हुये हैं इस स्थान के। वहाँ पर, प्रकाश ही प्रकाश हुआ

करता है। महाराज भी इसी तरह फ़रमान करते हैं –

नउ दरवाजे काइआ कोटु है दसवै गुपतु रखीजै।
बजर कपाट न खुलनी गुर सबदि खुलीजै।
अनहद वाजे धुनि वजदे गुर सबदि सुणीजै।
तितु घट अंतरि चानणा करि भगति मिलीजै।
सभ महि एकु वरतदा जिनि आपे रचन रचाई॥ *पृष्ठ – 954*

भाई भगीरथ ने मनसुख से राज योग का मार्ग सुनकर कहा, ''भाई मनसुख जी! गुरू महाराज जी इस रास्ते का खण्डन नहीं करते परन्तु इस मार्ग को चींटी मार्ग कहते हैं। दसवें द्वार तक तो हम भी पहुँचते हैं पर कुण्डलनी शक्ति द्वारा चक्र भेद कर नहीं पहुँचते। गुरू महाराज जी का नाम मार्ग है, इसके द्वारा हम आज्ञा चक्र से चढ़ाई शुरू करके दसवें द्वार में सुरत द्वारा प्रवेश करते हैं। श्वांस, प्राणायाम द्वारा नहीं, आप शबद सुरत का मार्ग बताते हैं। प्राणायाम की क्रिया द्वारा श्वांस दसवें द्वार में तो पहुँच जाते हैं पर बहुत मेहनत करनी पड़ती है। शरीर को पूरी तरह से शोधना पड़ता है। खाली समय तथा एकान्त वातावरण में स्त्रियों से दूर रह कर ये क्रियाएं करनी पड़ती हैं जो एक काम काजी व्यक्ति के लिए करनी बहुत कठिन है। कलयुग का समय आचार, व्यवहार तथा आहार की मर्यादा कायम न होने के कारण, भोगों में फंसा हुआ प्राणी मानसिक तौर पर कमज़ोर हो चुका है। वह यदि प्राणायाम की क्रिया करे तो दिमागी सन्तुलन को बिगाड़कर रोगों में ग्रस्त हो जायेगा। प्राणायाम का मार्ग कुछ चुने हुए लोगों के लिये है पर गुरू नानक जी ने जो मार्ग शबद सुरत का संसार को बताया है, वह हर प्रकार के काम काजी व्यक्ति के लिये, स्त्री, पुरुष, बच्चा, बड़ा बूढ़ा सभी आसानी से चल सकते हैं। सुरत को शब्द (वाहिगुरू) की ओर लगाना है, हाथ पैरों से काम करो पर चित्त में निरंकार की याद हर समय बनी रहती है। इसे आप सिमरण कहते हैं। नाम जप भी कहते हैं। नाम जपने से जन्म जन्मांतरों की मन को लगी हुई मैल उतरनी शुरू हो जाती है तथा निर्मलता प्राप्त हो जाती है पर प्राणायाम के मार्ग में जन्म जन्मांतरों की मैल नहीं उतरा करती। मन मैला ही रहता है। यदि मन मैला है तो सभी कुछ मैला है। तन धोने से तो मन निर्मल नहीं होता। पापों की मैल धोने के लिये तो केवल नाम मार्ग ही सहज मार्ग है। वाहिगुरू जी स्वंय निर्मल मन हैं, जो इनका नाम मार्ग द्वारा ध्यान करेगा उसका मन भी निर्मल हो जायेगा, अन्तसकरण की सारी मैल धुल जायेगी।

भाई मनसुख जी! इस बात को और अच्छी तरह से समझाने के लिये प्रार्थना करता हूँ कि देखो, एक कूएं का हौज़ गन्दे पानी से भरा पड़ा है, जब कुएं के टयूब्वैल का पानी उस हौज़ में गिरना शुरू हो जायेगा तो मैला पानी बाहर निकलना शुरू हो जायेगा, अन्त में धीरे-धीरे हौज़ का जल निर्मल हो जायेगा। इसी तरह से जब नाम मार्ग द्वारा हम वाहिगुरू जी को अपने हृदय में चितवते हैं, याद करते हैं तो उनकी याद की निर्मल धारा हमारे अन्तसकरण में लगी हुई मैल को खत्म कर देगी। विचार करके देखो, रिद्धि-सिद्धि क्या है। यह केवल मायावी खेल है। इनके द्वारा मन का फैलाव बढ़ जाता है। वासनाएं और बढ़ जाती हैं। वासनाओं में फंसा मन जन्म-मरण का हेतु बनता है। मनसुख जी! दसवें द्वार में प्राण खींचने से मन की मैल दूर नहीं हुआ करती। मेरे सतगुरू जी बताते हैं, संसार हउमै रोग से पीड़ित है, अपनी दिव्य दृष्टि गवाँ चुका है। हर समय साथ रहने वाले वाहिगुरू जी को यह हउमै भुला कर रखती है। हउमै सभी मानसिक मैलों तथा रोगों का मूल है। हउमै का इलाज नाम का प्रकाश हो जाना ही हुआ करता है। जब तक नाम मार्ग पर नहीं चला जाता, वाहिगुरू जी की प्राप्ति होना असम्भव है। रिद्धियों-सिद्धियों वाले योगी शराबें पीते हैं; आचरणहीन काम करते हैं क्योंकि उनका लक्ष्य वाहिगुरू की प्राप्ति की अपेक्षा भभूति प्राप्ति है। वाहिगुरू जी निरा प्यार हैं। वह प्यार से ही प्राप्त हो सकते हैं। अष्टांग योग में

तो आपने प्यार के बारे में कुछ नहीं बताया, क्रियाओं के बारे में ही बताया है। भाई मनसुख जी आपने मेरी बात समझ ली होगी, केवल मार्ग का ही अन्तर है। गुरू महाराज जी दसवें द्वार त्रिकुटी की बात करते हैं पर शब्द सुरत के मार्ग द्वारा चलना बताते हैं।

त्रिकुटी का भी उल्लेख करते हैं ***'त्रिकुटी छुटै दसवा दर खुले।'*** लेकिन ऐसे नहीं, वे शबद सुरत का मार्ग अपनाते हैं। शबद को सुरत के साथ बान्धकर, जिस बिन्दु पर हमने पहुँचना है, उसका ध्यान लगाकर, भजन करते हैं, चित्त को एकाग्र करते हैं। जब एकाग्रता बढ़ जाती है, उस समय वह निशाना खुल जाया करता है। शबद सुरत के साथ मन निर्मल हो जाता है, विकार खत्म हो जाते हैं। सो इस तरह कहने लगे कि महाराज जी यह भी रास्ता बताते हैं। ***'नउ दरवाजे काइआ कोटु है दसवै गुपतु रखीजै। बजर कपाट न खुलनी गुर सबदि खुलीजै।'*** ये बज्र कपाट जो आसा तथा अन्देशा के लगे हुए हैं, ये खुलते नहीं है, गुरू के शब्द में जब सुरत टिक जाती है, सुरत में शबद टिक जाता है, दोनों बन्ध जाते हैं, एकाग्रता आ जाया करती है। फिर वह मुकाम खुल जाया करता है। कितना आसान रास्ता है। न निऊली करनी, न धोती करनी, न कपाली, न त्राटक, न भाती, न बसती आदि। गृहस्थियों के पास इतना समय कहाँ है? यह तो खाली बैठे लोगों का काम है। एकान्त स्थान हो, रोटी कपड़े की चिन्ता न हो, पूरी तरह छूट हो, तब जाकर मनुष्य कहीं रास्ता ढूँढ सकता है अन्यथा नहीं पहुँच सकता। सो यह तो महाराज गुरू नानक पातशाह जी ने देख लिया, आप सब रास्तों का भेद जानते हैं। इन्होंने ही उन्हें सब कुछ करते हुए देखा है। सभी अनुभव किये हैं। आसान से आसान रास्ता, उन्होंने बताया है। इस तरह से गुरू के शबद के साथ बज्र कपाट खुलेंगे। जब खुल जाते हैं, महाराज कहते हैं, फिर भाई! ***'अनहद वाजे धुनि वजदे'*** अनहद नाद बजते हैं शबद समेत ही अकेला नाद नहीं बजता, शबद साथ गूंजता है। अकेले का क्या लाभ? जब नाम साथ चलता है, गुरू का दिया हुआ शबद साथ रहता है क्योंकि शबद ही चाबी है, आगे से आगे दरवाज़े खुलते जाते हैं इसके। जब यह सुन लिया फिर उसके बाद –

तितु घट अंतरि चानणा करि भगति मिलीजै॥ ***पृष्ठ - 954***

करोड़ों सूर्यों का प्रकाश है उसके अन्दर, जो महा सूक्ष्म तत्व है –

सूछम ते सूछम कर चीने ब्रिधन ब्रिध बताए।
भूम अकास पताल सभै सजि एक अनेक सदाए॥ ***पातशाही १०***

वह कितना छोटा है? कोई अन्दाज़ा ही नहीं लगा सकता। एक बार सभी महात्मा बैठे, यह विचार कर रहे थे, बड़े-बड़े महान पुरुष थे – भारत वर्ष के, जिन्हें Authority (अधिपति) कहा जाता था, क्या वशिष्ट जी, क्या विश्वामित्र जी तथा अन्य बड़े -बड़े महान ऋषि यह विचार कर रहे थे, शिव जी भी पहुँच गये। कहने लगे, ''क्या विचार कर रहे हो?'' इन्होंने कहा, अच्छा हुआ महाराज! आप भी आ गये। आप कृपा करके यह बताइये कि यह विचार चल रही है कि जो चेतन है कितना छोटा है अर्थात सूक्ष्म होता है? मतलब जो चेतन है? शिव जी महाराज कहने लगे, ''उसका अन्दाज़ा तो कुछ भी नहीं लग सकता।'' उन्होंने कहा, ''महाराज! कृपा करके बताइये?'' आपने कहा, ''आप सभी जानते ही हो, सभी अनुभवी हो।''

''नहीं महाराज! आपके मुख से निकली हुई बात Authority बन जाती है, कृपा करके बताईये।'' उस समय वे बोले, ''प्यारे! मिट्टी जो है न, इससे दस गुणा सूक्ष्म है पानी। दस गुणा पानी हो और एक गुणा मिट्टी हो तो वह उसमें घुल जाती है। पानी से सौ गुणा सूक्ष्म आग है। अग्नि से सौ गुणा सूक्ष्म हवा है। आग दिखाई देती है लेकिन हवा नज़र नहीं आती। हवा के साथ गर्द (धूल) मिल

जाये, फिर दिखाई देती है, वृक्षों के पत्ते हिलने लग जायें तो पता चलता है। सौ मील की दूरी पर हवा चल रही हो, वृक्षों को गिरा दे तब महसूस होती है नज़र फिर भी नहीं आती। शरीर को भी उठा-उठा कर फैंकती है। बल है - उसके अन्दर लेकिन देखी नहीं जा सकती क्योंकि बहुत ही सूक्ष्म हो गई मिट्टी से दस गुणा, यह हो गया हज़ार और हज़ार को सौ से फिर गुणा कर दो, एक लाख गुणा है। कहते हैं हवा से करोड़ गुणा सूक्ष्म है आकाश। हवा तो महसूस भी हो जायेगी, आकाश महसूस नहीं होता जिसे space (अन्तरिक्ष) कहते हैं, पर यह महसूस भी नहीं होता क्योंकि ताना तो उसने ताना हुआ है। हवा तो समाप्त हो जाती है थोड़े मील की ऊँचाई पर जाकर। कुछ मील ऊपर जाओ 30 मील के लगभग, वहाँ हवा खत्म हो जाती है, पहाड़ों पर चले जाओ वहाँ आक्सीजन गैस खत्म हो जाती है, दम घुटने लग जाता है लेकिन आकाश तो फैला हुआ है। कहते हैं, चेतन को तो अब ऐसे करो कि इसे एक राई का दाना मान लो, अब इसके बाद सिक्का बना लो चेतन एक राई के दाने के समान, उसके मुकाबले पर 40 हज़ार मील गहरा, 40 हज़ार मील चौड़ा, 40 हज़ार मील ऊँचा, जिसे सुमेरू पर्वत कहते हैं नाप लें इन दोनों की जितनी निसबत (अनुपात मात्रा) वह राई के दाने की और उसकी, अनुमान के लिये, हम चेतन भी कह सकते हैं लेकिन यह भी गलत है क्योंकि वह सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है, जहाँ गिनती की पहुँच नहीं है, Infinity (अनन्त) है, जब प्रकाश हो गया, आन्तरिक प्रकाश हो गया Realisation (अनुभव) हो गया, फिर क्या देखेगा -

सभ महि एकु वरतदा जिनि आपे रचन रचाई॥ ***पृष्ठ - 954***

सभी के अन्दर वही रमा हुआ है। 'मैं' का ही सारा हल्ला-गुल्ला है। नुकता लगने से महिरम से मुज़रम बन जाता है, वह फारसी के अक्षरों के अनुसार। 'मैं' का मुज़रम बन जाता है। जब महिरम बन जाता है, जानकार बन जाता है फिर 'मैं' नहीं रहती, फिर कहता है -

कबीर जाकउ खोजते पाइओ सोई ठउरु।
सोई फिरि कै तू भइआ जाकउ कहता अउरु॥ ***पृष्ठ - 1369***

जिज्ञासु अपनी असलीयत खोज करता हुआ हैरान हो गया कि जिसे मैं अपने आप से अलग करता था वह तो स्वंय ही सभी कुछ है, सभी के अन्दर-बाहर भरपूर अपनी खेल कर रहा है वह स्वंय ही है -

वाहु वाहु सचे पातिसाह तू सची नाई॥ ***पृष्ठ - 947***

भाई भगीरथ जी भाई मनसुख से कहने लगा, "गुरू महाराज राज योग के मार्ग से इन्कार नहीं करते। ये बातें भी ठीक हैं पर यह रास्ता बहुत कठिन है। गृहस्थियों के करने लायक नहीं है, काम-काज़ करने वाले आदमी इस रास्ते को नहीं अपना सकते प्राणायाम 42 बार ओंकार के जाप से तो शुरू हुआ करता है, 84 बार औंकार कहकर साँस अन्दर रोका जाता है, 42 बार यही जाप कहकर धीरे-धीरे साँस बाहर छोड़ा जाता है। इसे छोटा प्राणायाम कहते हैं - मामूली सा, सबसे छोटा। यह फिर घंटों तक समय बढ़ाना पड़ता है। इतना कौन कर सकेगा? दिमाग में गर्मी हो जायेगी। वह दिमागी गर्मी आज का आदमी सहन नहीं कर सकता। अब तो यदि छोटा सा प्राणायाम करने का तरीका बता दो, आज के साधक से तो वह भी नहीं हो पाता क्योंकि ब्रह्मचर्य जैसा स्वास्थ्य वर्धक साधन का पालन ही नहीं हो पाता। वृत्ति कामुक होने के कारण कमज़ोर हो जाती है।

संक्षेप में यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रतिहार, धारणा, ध्यान, समाधि इन आठ अंगों वाले

साधन समूह को राजयोग, अष्टांग योग कहा जाता है। ये आठ योग के अंग ज्ञान प्राप्ति के साधन हैं। इनमें से धारणा, ध्यान, समाधि अन्तरंग साधन बताये जाते हैं। ये अन्तरंग साधन बाहरी रूकावटों, हिंसा, निन्दा, चुगली, धोखा आदि रूकावटों को यम नियम के पालन द्वारा, दूर करके समाधि को सिद्ध करते हैं। पिछले तीन आसन, प्राणायाम, प्रतिहार यह कार्य करते हैं कि जब आसन सिद्ध हो गया तो प्राणायाम स्थिर हो जाता है। प्राणायाम की स्थिरता हो जाने के बाद प्रतिहार सिद्ध हो जाता है।

धारणा, ध्यान, समाधि बिना अभ्यास, वैराग के प्राप्त नहीं होती क्योंकि सम्प्रज्ञात समाधि में एकाग्रता की, एक वृत्ति के भाव में रहने की अति आवश्यकता है। राग तथा द्वैत वृत्ति में से पूरी तरह से निकलना अति आवश्यक है।

भाई मनसुख जी! यह तो बताओ, अष्टांग योग में यम नियम आदि गुण क्यों जरूरी हैं? भाई भगीरथ जी! इस अष्टांग योग का अन्तिम ध्येय निर्बीज समाधि की प्राप्ति है। उसकी प्राप्ति के लिये वृत्ति को जिन बाधाओं का सामना करना पड़ता है, वह यम तथा नियम की पालना करने से दूर हो जाती हैं। साधन की बर्हिमुख क्रिया के लिये यमों की जरूरत होती है। व्यवहारिक जीवन को दिव्य बनाने के लिये राग, द्वैष, अभिनिवेष, क्लेश दूर करने जरूरी हैं, जो दस नियमों का पालन करने से दूर हो जाते हैं।

नियमों का सम्बन्ध व्यक्तिगत जीवन से है, इससे तमोगुणी मैल उतर जाती है। सारा बाहरी व्यवहारिक जीवन, राजसी, तामसी तथा आवरण रूप मैल को धोकर, दिव्य वृत्ति के उत्पन्न होने में सहायक होते हैं।

आसन द्वारा, राजसी प्रभावों की मैल, तम रूप आलस्य प्रमाण, दूर होकर सात्विक प्रभाव अनुभव होता है। इसी तरह प्राणायाम द्वारा प्राण को सतोगुणी बनाया जाता है।

प्रतिहार द्वारा मन को बार-बार रोककर, इन्द्रियों को आलस्य, प्रमाद की तामसी तथा राजसी वृत्ति से सुन्न करके, सतोगुणी वृत्ति में रखा जाता है। इसी तरह साधना द्वारा, चित्त की मूढ़ तथा विक्षेपता प्राप्त वृत्ति को दूर करके, सात्विक विषय पर मन को रोका जाता है, फिर ध्यान की क्रिया द्वारा, दिव्य सात्विक रूप पर वृत्ति केन्द्रित की जाती है और एक ध्येय पर ध्यान लगाना पड़ता है फिर समाधि की अवस्था प्राप्त हो जाया करती है। यहाँ ध्याता, ध्यान, ध्येय मिट कर वृत्ति समाधि में लीन हो जाती है।

इन आठ अंगों में पहले पाँच अंग बहिरंग साधन कहलाते हैं, अन्तिम तीन अन्तरंग साधन हैं। भाई भगीरथ जी! इस से आगे असम्प्रज्ञात समाधि की प्राप्ति हो जाती है, इस समाधि का अन्तरंग साधन पर-वैराग है, जिसके सिद्ध हो जाने पर आत्म साक्षात्कार हो जाता है।

भाई मनसुख की बातें सुनकर भाई भगीरथ जी ने मन में विचार किया कि भाई मनसुख है तो उत्तम जिज्ञासु, पर इसे अभी तक पूर्ण सतगुरू का मिलाप नहीं हुआ, यह अभी तक इसीलिये अपूर्ण है। सुनने के पश्चात भाई भगीरथ जी ने कहा, ''भाई मनसुख जी! आप की लगन पर मैं कुर्बान जाता हूँ कि इतना बड़ा व्यापारी होते हुए भी इतनी व्यस्तताओं में से भी तुमने चित्त लगाने वाले साधन किए। नाराज़ मत होना, मैं कह ही देता हूँ कि अभी तुम्हें पूरे सतगुरू का मिलाप नहीं हुआ।''

सो आपने जो यम-नियम आदि बताए हैं। मेरे सतगुरू जी इन नियमों को सदगुण कहते हैं और फ़रमान करते हैं - ***'विणु गुण कीते भगत न होइ'*** गुरू महाराज जी अन्य महात्मा द्वारा बताए गये

जीवन उत्थान के लिये किये जाने वाले सत्य कर्मों को भी अपनाते हैं और सभी श्रेष्ठ कर्म - नशों के प्रयोग से मनाही, जो खुराक, पौशाक विकार पैदा करती है, तन को पीड़ा देती हो तथा मन में रजो तथा तमोगुणों का प्रभाव डालती हो, उससे भी मना करते हैं।

गुरू महाराज जी (1) सत्य दृष्टि ज्ञान (2) सत्य संकल्प (3) सत्य वचन (4) सत्य कर्म (5) सत्य कृत (6) सत्य कर्म की दृढ़ लालसा (सत्य-व्यायाम) इन्द्रिय दमन, कु-भावना को रोकना, चित्त को एकाग्र करना (7) सत्य सिमरण तथा परम सत्य में लीन होकर समाधि आदि अनेक गुणों को धारण करने की प्रेरणा देते हैं। एक नारी पर ईमान रखकर परस्पर प्यार को ही ब्रह्मचर्य कहते हैं, उसे जति कहते हैं। गृहस्थ जीवन में हर विषय पर संयम रखना जरूरी बताते हैं।

गुरू महाराज जी किसी मार्ग की उच्चता, प्रभु की सदीवी याद तथा श्रेष्ठ कर्मों के अनुसार प्रदान करते हैं।

मुझे भय लगता रहता है, मनुष्य का दिमाग (Brain) तो है नहीं, खाया हुआ है। ब्रह्मचर्य इसके अन्दर है नहीं, खुराक इसकी सतोगुणी और पौष्टिक नहीं है, आचरण इसका अच्छा नहीं, व्यवहार इसका उच्च नहीं, पोशाक इसकी अच्छी नहीं, विचार सारे ही इसके अपवित्र हैं। खुराक सारी तमोगुणी, रजोगुणी है, मन में अनेक तरंगें पैदा करने वाली बन गई है। पहरावा भी सारा ही रजोगुणी और तमोगुणी बन गया है। यह जीव तो भागा फिरता है - एक कर्ज पूरा करने के लिये। एक ऐसे भ्रम के कारण इसके अन्दर कुछ भी नहीं है। साहसत (ऊर्जा शक्ति को) घुन लग गया है, यह नाम कैसे जप लेगा? न वृत्ति ठीक, न विनम्र होकर बैठ सकता है, न कोई अनुभव ही कर सकता है, महाराज जी ने आसान सा रास्ता दिखाया।

मनसुख कहने लगा, ''भाई भगीरथ! मुझे एक और महात्मा मिले। उन्होंने मुझे राज योग के बारे में बताया।''

''राज योग क्या होता है?''

मनसुख कहने लगा, ''राज योग है तो बहुत सुन्दर। इसमें दस यम होते हैं, दस नेम होते हैं। पहले आचरण को पवित्र किया जाता है।'' भाई मनसुख से सारी बात सुनकर समझ ली। उच्च आचरण तो आत्म मार्ग के लिए बहुत जरूरी है। गुरू महाराज जहाँ शब्द सुरत का मार्ग बताते हैं वहाँ निर्मल कर्म करने पर भी ज़ोर देते हैं -

सरब धरम महि स्रेसट धरमु। हरि को नामु जपि निरमल करमु॥ ***पृष्ठ - 266***

कर्म निर्मल हों और हरि का नाम जपता हो। कहने लगे, ''भाई मनसुख! यह जो तू कर्मों की बात करता है, गुरू महाराज जी भी यह कहते हैं कि यदि कर्म बुरे हैं, तेरे नाम ने कुछ भी सहायता नहीं करनी। कर्म भी तू साथ निर्मल बना। यदि निन्दा करता है, चुगलियाँ करता है, ईर्ष्या करता है, एक तरफ तू बाणी पढ़ता है; क्या कर दिया तूने? तू तो नीचे ही चला गया-

निंदा भली किसै की नाही मनमुख मुगध करंनि।
मुह काले तिन निंदका नरके घोरि पवंनि॥ ***पृष्ठ - 755***

प्रेमियो! सुखमनी साहिब पढ़ा हुआ किसी काम का नहीं, कुछ नहीं कर सकेगा, तू तो घोर नरकों की ओर जा रहा है क्योंकि तूने शुभ गुण धारण नहीं किये। अहिंसा सत्य, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य

पालन करना, धीरज, क्षमा, दया तथा चित्त को कोमल रखना, मीठा बोलना, अल्प आहार करना, पवित्रता रखना, इसे पवित्र रहना कहते हैं; ये तो यम हैं। तप, दान, सन्तोष, आस्तिक बुद्धि, पूजा, निष्कामता, पाखण्ड का त्याग, इन्द्रियों का व्रत रखना – आँखों का, कानों का, नाक का, दया व्यवहार में लाना, मन में शान्ति पैदा करना, स्वास्थ्य के लिये व्रत हुआ करते हैं। बहुत अधिक खाने से शरीर भारी हो जाता है। एक दिन विश्राम कर लेना। खुराक एक जैसी ही खाये जाते हो, एक दिन बदल कर खा लो ताकि कुछ परिवर्तन हो जाये। व्रत इसलिये नहीं हुआ करते कि इससे कोई रूहानी सम्बन्ध है, ये तो शरीर को स्वस्थ रखने के लिये हुआ करते हैं। महाराज भोजन न खाने के लिये नहीं कहते, अन्न के बारे में तो कहते हैं –

अंनु न खाइआ सादु गवाइआ॥ *पृष्ठ - 467*

खाने से मना नहीं करते। शरीर को स्वस्थ रखो। सो इसके अन्दर व्रत भी आता है फिर मन का व्रत रखना, वासनाओं में मन को भटकने नहीं देना, फिर होम करना – भूखे को भोजन खिलाना, लंगर चलाने। सो कहने लगे, यह तो फिर ठीक हो गये।

तीसरी बात जो बताई है, उसे आसन कहते हैं। महाराज जी कहते हैं, जब बन्दगी करते हो तो हिलना जुलना नहीं, टिक कर, स्थिर होकर बैठो, चित्त को एकाग्र करो। भाई भगीरथ कहने लगा, चौथी बात हमारे यहाँ प्राणायाम की कही है वह है चन्द्रायण – सूर्यांग। ये प्राणायाम की विधियाँ हुआ करती हैं – छोटा प्राणायाम और बड़ा प्राणायाम।

भाई भगीरथ कहने लगे, महाराज बताते हैं कि जब नाम जपोगे तो श्वांस अपने आप ही संयम में आकर रस से पूरी तरह भीगे हुए, ठहरना शुरू कर देते हैं, पता ही नहीं चलता कि श्वांस चल भी रहा है या नहीं। फिर न जीभ हिलती है, न होठ हिलते हैं, न कंठ में नाम होता है, न हृदय में, न नाभि में। वह तो अजपा जाप सारे शरीर में –

गुरमुखि रोमि रोमि हरि धिआवै॥ *पृष्ठ - 941*

सभी ओर से नाम की धुन आया करती है। जहाँ सुरत लगा लो, वहीं से ही नाम की धुन आया करती है और नाम के अन्दर जब सुरत चली जाती है Mental (मानसिक) नाम में लीनता प्राप्त होती है उसे अजपा जाप कहते हैं –

चंद सत भेदिआ नाद सत पूरिआ सूर सत खोड़सा दतु कीआ॥ *पृष्ठ - 1106*

महाराज कहते हैं नहीं, ऐसे नहीं। यह तो तुमने कोई और ही तरह का प्राणायाम करना है, गुरू से सीखी हुई शिक्षा को अन्दर ग्रहण कर लेना है, मन को शोधित किया जा रहा है, जो इसके शुभ विचार हैं, उन्हें अन्दर ग्रहण करो। फिर कुम्भक करना – अन्दर धारण कर लेना। उसके बाद बाहर बुरे विचार निकाल दो, तो उस समय रेचक होता है। पूरक के फलस्वरूप सभी अच्छे विचार धारण कर लेना, फिर जो बुरे विचार हैं उन्हें बाहर निकाल देना। ऐसा प्राणायाम करते हैं, सांस नहीं खींचते हैं। हम गुरू की बाणी द्वारा सुनकर उपदेश अन्दर ले जाते हैं, फिर हम देखते हैं कि मन में कौन-कौन सा खोट (दोष) है। निर्मलता वहीं अन्दर रख लेते हैं, खोट (दोष) बाहर निकाल देते हैं। तुम्हारे और हमारे प्राणायाम में इतना अन्तर है। जल्दी ही मन निर्मल हो जाता है।

फिर पाँचवी चीज़ प्रतिहार होती है, इसमें ऐसा होता है कि मन विषयों में भटकता है, वासनाओं में फंसता है, भजन नहीं करने देता, बार-बार ख्याल इधर-उधर जाते हैं, उन्हें फिर रोकना। यह तो महाराज जी भी बता रहे हैं, इस तरह मन को रोको, दौड़ने से रोको, इसे बार-बार शबद की धुन

में लाओ।

इसके बाद धारना होती है। वह ऐसे होती है कि मन को एकाग्र करने के लिये बार-बार ध्येय पर ध्यान लगाना। यह भी महाराज जी कहते हैं -

गुर की मूरति मन महि धिआनु॥ ***पृष्ठ - 864***

गुरू शबद पर ध्यान केन्द्रित करना है, गुरू की मूरत पर ध्यान लगाना है, ज्योति पर लगाना है, परिपूर्ण परमेश्वर पर ध्यान केन्द्रित करना है। मन बाहर भटकता है, उसे बार-बार रोक कर प्रभु याद में लगाना है।

फिर उसके बाद ध्यान आता है। हम गुरू की मूरत का ध्यान लगाया करते हैं। गुरू शब्द की धुन में ध्यान लगाते हैं, गुरू के सिद्धान्त का ध्यान लगाते हैं। गुरू पातशाह ने इस प्रकार बताया है।

उसके बाद समाधि हुआ करती है। समाधि दो प्रकार की हुआ करती है। एक तो सम्प्रज्ञात समाधि है जिसमें हम अपने आपको जानते हैं कि मेरी समाधि लगी हुई है, उसमें ध्येय सामने होता है। दूसरी होती है 'असम्प्रज्ञात समाधि' कि अपने आप को इसी के अन्दर मिटा देना, पता ही न रहना लेकिन रहना चेतन और जागते रहना, इसे साविकल्प तथा निर्विकल्प समाधि भी कहते हैं। कहने लगा मनसुख जी! गुरू महाराज उससे भी ऊपर सहज समाधि बताते हैं। उसके बारे में बताते हैं कि उसका रस समाधि लगाने वाले के सिवाय और कोई अनुमान ही नहीं लगा सकता, जान ही नहीं सकता -

धारना - सहिज समाधि लगी लिव अंतर,
सो रस सोई जाणै - 2, 2
सो रस सोई जाणै, सो रस सोई जाणै - 2, 2
सहिज समाधि लगी लिव अंतरि,......... - 2

सहज समाधि लगी लिव अंतरि सो रसु सोई जाणै जीउ॥ ***पृष्ठ - 106***

महाराज इस तरह की समाधियाँ नहीं बताते कि सांसारिक कर्तव्यों से विमुख हो जाओ। खुले नेत्रों सहित समाधि लगी हो, काम काज भी पूरे उत्तरदायित्व से करता हो और चित्त की सुई का रूख सदीव प्रभु प्यार में रहे तथा परम आनन्द मण्डल में प्रवेश रखता हो। क्या ऐसा हो सकता है? गुरू महाराज कहते हैं कि हाँ, गुरू का शबद जब प्राप्त हो जाता है, खुले नेत्रों से परमेश्वर के दर्शन होते हैं, फिर नेत्र बन्द करने की जरूरत ही नहीं पड़ती। अपना आपा भाव मिट जाता है जीव हंगता का, ब्रह्महंगता का सत भाव प्रकट होकर हर स्थान पर अपना आप ब्रह्म ही ब्रह्म, एकंकार ही एकंकार का सत प्रकाश हो जाता है।

सो इस प्रकार विचार कर रहे हैं। भाई मनसुख के मन में गुरू महाराज जी के प्रति प्यार जाग उठा। भाई भगीरथ ने कहा मनसुख जी! जो आपने हठयोग कर्म किये हैं -

उलटत पवन चक्र खटु भेदे सुरति सुंन अनरागी॥ ***पृष्ठ - 333***

सुन्न के अन्दर आप सुरत को ले गये, जहाँ Nothing (कोई चीज़ नहीं) है, देखो, यहाँ एक अन्तर है इसको ध्यान से समझना यदि समझ सकते हो। वह यह है कि जो ये समाधियाँ थीं, गुरू नानक देव जी से पहले लगाई जाती थीं। उनके सामने कोई भी चीज़ नहीं थी, कोई ध्येय नहीं था, केवल अफूर अवस्था में ले जाते थे, Dead (मृत अवस्था) में ले जाया करते थे, जहाँ कुछ नहीं

होता था, Nothing में जाकर कोई शक्ति नहीं मिलती। यह तो ठीक है कि मन मौन हो गया लेकिन वहाँ पर कोई भी वस्तु तो सामने है नहीं जिसे रचना रचने के लिये माया शक्ति की जरूरत है, इस तरह समझने से बात अब ऐसे बन जाती है कि जगत रचयिता केवल अकेला ईश्वर नहीं है, उसने माया की सहायता से संसार की रचना की है। इसलिये शास्त्रों ने जिस ईश्वर की कल्पना की है, वह कमज़ोर ईश्वर है, सर्व-कला समरथ नहीं है। क्या यह भी अनादि है? माया कहाँ से आ गई? बहुत से चिन्तक कहते हैं, माया शक्ति है प्रभु की तरह। कहते हैं माया आदि से ही है, पहले से ही थी। यदि वे कहें कि माया चेतन में ही समाई हुई थी, वे कहते हैं, माया थी चेतन के अन्दर, फिर वह अलग हो गई। उसमें से ईश्वर निकला, माया सबल ब्रह्म को ईश्वर कहते हैं, देवताओं की रचना इस माया में से ही हुई है जैसे कि -

एका माई जुगति विआई तिनि चेले परवाणु।
इकु संसारी इकु भंडारी इक लाए दीबाणु।
जिव तिसु भावै तिवै चलावै जिव होवै फुरमाणु।
ओहु वेखै ओना नदरि न आवै बहुता एहु विडाणु॥ पृष्ठ - 7

जीव अलग था, माया अलग थी और ईश्वर का जीव के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। जीव के सामने अब केवल एक कल्पना है कि मैं, माया तथा ईश्वर से अलग हूँ, इसका हमदर्द कोई नहीं है, क्योंकि माया शक्ति ने इस चेतन अंश को घेर कर बेबस कर दिया। यहाँ पर आकर हमारे और इनके मध्य अन्तर पैदा हो जाता है। गुरू नानक कहते हैं कि नहीं प्यारे -

अपनी माइआ आपि पसारी आपहि देखन हारा।
नाना रूपु धरे बहुरंगी सभ ते रहै निआरा॥ पृष्ठ - 537

उसने अपनी माया स्वंय ही फैलाई है, स्वंय ही एक से अनेक हुआ है, परमेश्वर स्वंयमेव ही, वही शुद्ध साक्षी चेतन माया पर प्रतिबिम्बत होकर जीव चेतन कहलाता है। यह अवस्था भेद है -

ऐक मूरति अनेक दरसन कीन रूप अनेक।
खेल खेल अखेल खेलन अंत को फिर एक॥ जापु साहिब

यह सारी उसके हुक्म की क्रिया चलती है। हर हालत में वाहिगुरू सर्व कला समरथ, माया से निर्लेप, हमारे सामने ऐसे रहता है जैसे सूरज हमारे सामने होता है। उसकी शक्ति और उसका प्यार किसी से रूक नहीं सकता, उस प्यार के कारण ही हम रूहानी ऊचाईयों तक पहुँचते हैं, वहाँ पर हम रूकते नहीं हैं कि Nothing (कुछ नहीं) के अन्दर चले गये, निर्चिन्हता में चले गये। हमारे सामने हस्ती हुआ करती है, परम हस्ती जो प्यार करती है क्योंकि उसका रूप जो है वह सत है, चित्त है, आनन्द है, फिर उसके अन्दर गुण हैं कि सभी शक्तियाँ उसका हुक्म मानती हैं। उसमें हम अपना आपा लीन करते हैं, अपने आपको मिटाते हैं। जब अपना आपा, निजित्व मिट जाता है, फिर उसी का स्वरूप ही हो जाता है। जो सत अवस्था है प्रतिबिम्ब में से समा कर कुछ अलगपन शेष नहीं होता, भ्रम, हउमैं, मैं तथा मेरी के कारण उत्पन्न होता है जो झूठ है -

जिउ जल महि जलु आइ खटाना। तिउ जोती संगि जोति समाना॥ पृष्ठ - 278

बाकी संसार में किसी शक्ति के अन्दर ताकत नहीं जो यह बता सके कि हमारा कुछ बकाया रहता है कि नहीं रहता। यह बात कहने की नहीं है क्योंकि अनुभव की है -

कबीर चरन कमल की मउज को कहि कैसे उनमान।
कहिबे कउ सोभा नही देखा ही परवानु॥ पृष्ठ - 1370

सो इस प्रकार महाराज जी का फ़रमान है कि संसार भूल गया। गुरू के बिना इसे समझ नहीं आ रही। यह अहमभाव हउमैं की बुद्धि नहीं त्यागता, अपने आपको कायम रखता है, हउमैं को कायम रखता है। आत्म पदार्थ इसे अन्दर से मिलता है पर यह जीव तो अन्दर खोजता नहीं है और भ्रमों में पड़ा हुआ संसार में भटक रहा है। सो यह केवल गुरू ही है जो संसार में पाँच भ्रमों को तोड़ने में समरथ है, भ्रमों को आत्म पदार्थ की लखता करवा कर तोड़ता है, इसे परमात्मा के साथ मिला देता है। शेष जितने कर्म हैं, महाराज कहते हैं, संसार भ्रमित हुआ पड़ा है, पढ़ लो –

धारना – प्यारे जी, भरमां विच भुल्ली दुनीआं – 2, 2
इहनूँ मूल दी समझ ना आवे – 2, 2
पिआरे जी, भरमां विच भुल्ली दुनीआं....... -2

कहने लगे, ''मनसुख जी! कितने भ्रम हैं जो गुरू नानक ने दूर किये हैं, कितना मुश्किल काम करते हैं परमात्मा से मिलाने के लिये। फिर भी हम अहम बुद्धि नहीं छोड़ते, कर्म किये जाते हैं?'' महाराज कहते हैं, ''सभी फोकट कर्म हैं–

निवली करम भुअंगम भाठी रेचक पूरक कुंभ करै।
बिनु सतिगुर किछु सोझी नाही भरमे भूला बूडि मरै॥ *पृष्ठ – 1343*

पूरे गुरू के बगैर डूब कर मर जाते हैं, मानस जन्म तो प्राप्त हो जाता है पर आत्म वस्तु गुरू के बिना प्राप्त नहीं होती। यह ठीक है, पवन को उलटा दिया, प्राण, अपान वायु को मिलाकर, छह चक्र बीन्ध दिये, कुण्डलनी शक्ति जाग्रत कर ली और जो मन है सुन्न में चला गया, Nothing (अनास्तित्व) में चला गया पर जो प्यार का रूप प्रभु है, जो तेरे अन्दर है, उससे तो वंचित रह गया –

आवै न जाइ मरै न जीवै तासु खोजु बैरागी॥ *पृष्ठ – 333*

उसकी खोज कर, वह तेरे अन्दर समाया हुआ है, तूने तो रास्ता ही और पकड़ लिया, सुन्न में चले गये, वह सुन्न तो नहीं है, वह तो परम चेतन है, जान है हमारी। हमारे प्राणों का भी प्राण है, परम आपा है, तू उसकी खोज कर–

मेरे मन मन ही उलटि समाना॥ *पृष्ठ – 333*

यह क्या चीज़ है? इस मन ने संसार से विमुख होकर परमेश्वर की ओर लग जाना है, मन ने उलट जाना है, संसार की ओर से मर जाना है। जब जीवित मृत हो गया, उस समय इस बात का ज्ञान हो जायेगा, फिर नाम के मण्डल में, आत्मिक मण्डल में यह जीवित हो जायेगा। ऐसे समझ लो कि इस जीव का मन एक किरण है, समष्टि मन सूरज अपने आप किरण रूप में समझ कर अल्पज्ञता धारण करके यह जीव भटकता है। जब गुरू कृपा से इसका असत्य छोटा आपा (निजभाव) सत रूप, कुल रूप में तदरूप हो जाता है तो भटकन खत्म हो जाया करती है, जीव मन परम मन में समा जाता है उनमनी अवस्था का अनुभव प्रत्यक्ष रूप में दिखाई देता है –

गुर परसादि अकलि भई अवरै नातरु था बेगाना॥ *पृष्ठ – 333*

हमें तो गुरू की कृपा से अक्ल आ गई, अन्यथा हम भी बेपरवाह हुए घूमते थे, हमारा कोई नहीं था –

निवरै दूरि दूरि फुनि निवरै जिनि जैसा करि मानिआ।
अलउती का जैसे भइआ बरेडा जिनि पीआ तिनि जानिआ।। *पृष्ठ – 333*

एक अलउती का वृक्ष है, अमेरिका में भी है, उसमें से शर्बत निकलता है, बिना चीनी आदि के, अपने आप ही शर्बत निकलता रहता है। इसी तरह से वहाँ भी अलउती का वृक्ष था जो उसका रस

पी लेता था, उसके बारे में वही जान सकता था, दूसरे को बता नहीं सकता था। इसी तरह से वाहिगुरू निकट ही है पर यह निकट को दूर समझता है। पवन उलटाने से बात नहीं बनती, न ही निऊली कर्म, न भुअंगम न भाठी, न रेचक, पूरक कुम्भक करने से कुछ मिलना है। *'बिनु सतिगुर किछु सोझी नाही भरमे भूला बूडि मरै। पृष्ठ - 1343'* भ्रम में भूला हुआ डूब-डूब कर मरता है। बाकी जो कर्म करता है, महाराज कहते हैं, ये सभी फोकट कर्म हैं। एक आम चूसता है, आम का गूदा तो निकाल-निकाल कर फैंके जाता है, जब गुठली आ गई, उसे दाँतों से चबाए जाता है। गूदा तो तूने किसी काम में न लिया, वही तो असली चीज़ थी और छिलके को लेकर तू बैठ गया। खाने तो बदाम हैं परन्तु छिलके चबाए जाता है, जो बीच का हिस्सा है, वह फैंकता चला जा रहा है। केला खाने लगता है तो जो छिलका है उसे खाने लग जायेगा जो बीच का गूदा है, उसे फैंक देता है। यही संसार का हाल है प्यारे-

अंधा भरिआ भरि भरि धोवै अंतर की मलु कदे न लहै॥ *पृष्ठ - 1343*

अन्दर तो मैल से भरा पड़ा है, तीर्थों पर स्नान करके सोचता है कि मैं पवित्र हो गया हूँ, परन्तु अनेक प्रकार की मैलों से अन्तसकरण गन्दा हुआ पड़ा है। अन्धे पुरुष को क्या पता है कि वस्त्र को मैल कहाँ लगी हुई है, फिर अन्धा हो गया है -

नाम बिना फोकट सभि करमा जिउ बाजीगरु भरमि भुलै॥ *पृष्ठ - 1343*

बाजीगर की बाजी देखकर जैसे हम भूल जाते हैं, ऐसे भूल गया। नाम के बिना सब कर्म फोकट हैं एक कथा है एक राजा था। उसके पास एक त्राटक करने वाला जादूगर आया, हिपनोटिज़म वाला। उसने कहा, ''सरकार! आप की जय हो।'' राजा ने कहा, ''तुम कौन हो?'' उसने कहा, ''जी मैं तमाशा दिखाने वाला हूँ, मुझे जादूगर कहते हैं।''

बाजीगरि जैसे बाजी पाई। नाना रूप भेख दिखलाई।
सांगु उतारि थंम्हिओ पासारा। तब एको एकंकारा।। *पृष्ठ - 736*

इसने कहा, ''मैं स्वांग बनाकर अकेला ही दिखा सकता हूँ।'' राजा ने कहा, ''देख भाई! तमाशे तो हमने बहुत देखे हैं, पर कोई ऐसा जादू दिखा, जिसे देखकर समय बर्बाद न हो और उसमें से हमें कोई रूहानी शिक्षा भी मिले।'' वह कहने लगा, ''सरकार! मैं दिखा तो दूँ पर मेरी पत्नी मेरे साथ है।'' राजा ने कहा, ''फिर क्या बात है?'' उसने कहा कि, ''मैं देवताओं के साथ युद्ध करके तुम्हें दिखाना चाहता हूँ। मेरे अन्दर इतनी सामर्थ्य है कि मैं स्वर्ग में पहुँच सकता हूँ, वहाँ बड़े-बड़े देवताओं को चुनौती दे सकता हूँ, वे शक्तियाँ जिन्हें तुम शीश झुकाते हो, मैं उनके साथ युद्ध कर सकता हूँ।'' फिर कोई बात नहीं तेरी पत्नी के लिये मैं वचन देता हूँ कि वह मेरी लड़की के साथ रहेगी। मैं इसे अपनी लड़की की तरह रखूंगा।'' जादूगर बोला, ''यह आदमी तो ऐसे ही कहा करते हैं, मुझे विश्वास नहीं आता, वह बहुत सुन्दर है। ऐसा न हो कि बाद में मुझे दो ही न।'' राजा ने कहा कि, ''नहीं जादूगर! तू तमाशा दिखा।'' राजा ने उसकी पत्नी को अपनी लड़की के साथ बिठा दिया और तमाशा देखने लग गये। उस समय एक बहुत बड़ा गोला निकाल कर उसने ऊपर फैंका। देखते ही देखते वह आँखों से ओझल हो गया और फिर पकड़ कर खींचा। कहने लगा, ''महाराज! मैंने स्वर्ग लोक में कमन्द डाल दी है और अब मैं चढ़ रहा हूँ।'' रस्सी पर चढ़ते-चढ़ते सभी की आँखों से ओझल हो गया और ऊपर जाकर आवाज़ लगाई, ''सरकार! सबसे पहले मैं वरुण देवता के साथ युद्ध कर रहा हूँ पानी के देवता के साथ। थोड़ी देर के बाद खट-खट की आवाज़ सुनी और मारो, मारो की आवाज़ भी सुनाई दी। फिर आवाज़ आई, ''सरकार! मैंने वरुण देवता को मार कर धरती पर फैंक दिया है, दर्शन करो।'' क्या देखते हैं कि आसमान में से धड़ आता दिखाई दे रहा है, शरीर लुढ़कता आ रहा है, चेहरा आ रहा है - कटा हुआ और पानी ही

पानी बरसना शुरू हो गया। राजा ने कहा, ''कितना बहादुर है? देखो, वरुण देवता के साथ युद्ध किया है इसने। थोड़ी देर बाद आवाज़ आई, ''महाराज! अब मैं और देवता के साथ युद्ध कर रहा हूँ। इसका प्रकाश मुझे जला रहा है परन्तु मैं जीत जाऊँगा।'' थोड़ी देर बाद उसका कटा हुआ सिर नीचे आने लग जाता है, महाराज दर्शन करो, आग ही आग लग गई जहाँ पर धड़ गिरा।'' सभी ने दाँतों तले अंगुली दबा ली। बादशाह भी हैरान हो गया कि इतना महान वीर, बहादुर। इतना बहादुर तो दुनियाँ में सुना ही कोई नहीं। मैं इसे अपनी फौज में सबसे बड़ा आफिसर बना दूँगा। वह अपने हित की बात सोचता है कि फिर मुझे किसी चीज़ की कमी नहीं रहेगी, मैं चाहे किसी के साथ भी युद्ध कर सकता हूँ। जो इतने बड़े-बड़े महान योद्धाओं को मार-मारकर फैंके जा रहा है, यहाँ के योद्धाओं को तो कुछ भी नहीं समझेगा। इस प्रकार पता नहीं कितने धड़ उसने नीचे फैंक दिए? अन्त में आवाज़ आई कि, ''मैं अब इन्द्र के साथ युद्ध कर रहा हूँ। एक वज्र अस्त्र मेरे साथ आ रहा है, मेरे साथ परमाणु युद्ध कर रहा है।'' उसी समय आवाज़ आई कि, ''महाराज! मैं मर रहा हूँ।'' एक शरीर धड़ाम से नीचे आकर गिरा। इसकी जो पत्नी थी, वह बैठी हुई देखती है और अपने पति के मरने पर बहुत विलाप करने लग जाती है। बहुत रोती है, कहती है, ''अब मैं क्या करूँगी? तू क्यों युद्ध करने गया था? आराम से जीवन बिता रहे थे?'' राजा भी अफसोस कर रहा है, सारी प्रजा शोक में बैठी है। आखिर उसने कहा कि इसका संस्कार कर दो और मैंने भी इसके साथ सती होना है। बहुत समझाया। कहने लगी, ''नहीं मैं पतिव्रता नारी हूँ, मैंने तो इसी के साथ ही सती होना है। जब सती हो गई, उसके बाद जादूगर आ गया। कहने लगा, ''महाराज! खेल पसन्द आया?'' पहले यह बताओ, ''मेरी पत्नी कहाँ है?'' सारे हैरान हो गये। कोई भी बोलता नहीं। कहने लगा, ''महाराज! मेरी पत्नी के बारे में बताओ कहाँ है? मैंने आपसे वचन लिया था, कहाँ गई?'' उन्होंने कहा कि, ''वह तो सती हो गई।'' कहने लगा, ''आप झूठ बोलते हैं, वह तो आपने सात तालों के अन्दर महल में बन्द कर रखी है। मैं आवाज़ लगाता हूँ, वह मेरी आवाज़ का जबाब देगी, तुम झूठ बोलते हो।'' सभी कहने लगे, ''जी नहीं! बादशाह तो इतने अच्छे हैं कि ऐसी बात नहीं कर सकते। हम सभी के सामने सती हो गई है।'' उसने कहा कि, ''तुम सभी झूठे हो, राजा का पक्ष ले रहे हो। मैं परदेसी अकेला गरीब रह गया हूँ और मुझे कोई भी तुम्हारे में से मेरे पक्ष में बोलने वाला नज़र नहीं आ रहा।'' सो उस समय उसने बहुत ज़ोर से आवाज़ लगाई, जैसे बादल गर्ज़ते हैं। उधर से आवाज़ आई कि, ''मुझे राजा ने कैद किया हुआ है।'' सभी हैरान हो गये कि यह क्या हो गया? दरवाज़े खोले, अन्दर से वह निकल आई। कहने लगा, ''यही वचन होते हैं? तुम राजाओं के वचनों का कोई भरोसा नहीं होता।'' राजा को कोई उत्तर नहीं सूझ रहा था, हैरान है और जादूगर से कहने लगा, ''मुझे समझ में नहीं आ रहा।'' अन्त में जादूगर ने खेल समाप्त करके कहा, ''महाराज! मेरा इनाम दीजिये।''

कहने लगा, ''महाराज! मेरे साथ कोई स्त्री नहीं थी? मैं कहीं भी नहीं गया था? मैं यहीं पर ही खड़ा रहा हूँ, यह जो तुम्हें धरती पर पहले आग लगी हुई दिखाई दे रही थी, देखो पौधे वैसे ही नज़र आ रहे हैं, अब देखो नज़र मार कर, कोई पानी का निशान नहीं - वहाँ? जलती हुई चिता नज़र आ रही थी। देखो महाराज! यहाँ पर कहीं चिता है? कहने लगा, ''सरकार! मेरे साथ मेरी कोई पत्नी नहीं। मैं तो अकेला ही आया था तुम्हारे सामने।''

राजा कहने लगा, ''बाजीगर! आश्चर्य जनक (Wonderful) खेल दिखाया है तूने इसका भाव क्या है, शिक्षा क्या है जो तू हमें देना चाहता है?''

बाजीगर ने कहा, "सरकार! भाव यह है कि मैं एक छोटा सा मनुष्य हूँ, मेरे अन्दर इतनी ताकत है कि सभी जो तुम यहाँ बैठे हो मैंने एक खेल करके तुम्हें दिखा दिया। मैंने सभी को हिपनोटाईज़ कर दिया। किसी भी देवता के साथ मैंने कोई युद्ध नहीं किया, यह तो मेरी Will power (स्वः इच्छा शक्ति) थी, जैसे मैं कहता जाता था, तुम्हें वैसा ही नज़र आता जाता था, सो परमेश्वर जो है करोड़ों ब्रह्मण्डों का स्वामी, उसका भी एक जादू हो रहा है, एक खेल हो रही हैं इस संसार में सच नज़र आ रही हैं। अरबों-खरबों वर्षों से सृष्टियाँ से बन रही हैं, नष्ट हो रही हैं, विज्ञान बनी हुई है, बेअन्त विद्यायें चल रही हैं। वास्तव में यह है कुछ भी नहीं। यह एक सपने में हो रहा है। जब जाग जाता है, कुछ भी नहीं है यहाँ। एक परमेश्वर होता है, अपने आप ही होता है, दूसरा होता ही नहीं। भ्रम में भूल कर संसार ***'अंधा भरिआ भरि भरि धोवै अंतर की मलु कदे न लहै।' पृष्ठ - 1343***

बाहर की बातें किये जाता है, अन्दर की मैल नहीं धोता जो जैसे मैले शीशे में अपना चेहरा साफ नहीं दिखाई देता ऐसे ही मैले मन को, अपने असली स्वरूप का दर्शन नहीं होता। सो परिपूर्ण परमेश्वर ही है ***'नाम बिना फोकट सभि करमा जिउ बाजीगरु भरमि भूलै।'***

जैसे बाजीगर ने बाजी दिखाई और हम भूल गये ऐसे ही संसार भूल गया -

खटु करम नामु निरंजनु सोई॥ पृष्ठ - 1343

तीन गुणों के अन्दर संसार भ्रमित हो गया है, यह यात्रा खत्म नहीं होती। महाराज इस प्रकार फ़रमान करते हैं -

धारना - प्यारे इन बिधि मिलण न जाईं
कीए करम अनेकां जी - 2, 2
इन बिधि मिलीण न जाईं - 2, 2

पाठु पड़िओ अरु बेदु बीचारिओ निवलि भुअंगम साधे।
पंच जना सिउ संगु न छुटकिओ अधिक अहंबुधि बाधे॥ पृष्ठ - 641

लेकिन हुआ क्या? कहते हैं काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, इनका साथ तो न हटा बल्कि पहले से भी अधिक बन्ध गया -

पिआरे इन बिधि मिलणु न जाई मै कीए करम अनेका।
हारि परिओ सुआमी कै दुआरै दीजै बुधि बिबेका॥ पृष्ठ - 641

शेष मौन धारण करके बिता दिये वर्षों के वर्ष। अजी! अमुक सन्त मौनी है, बोलते नहीं किसी के साथ। महाराज कहते हैं, फिर कौन सी बड़ी बात हो गई इसमें? गुरू दसवें पातशाह फ़रमान करते हैं, ये मृग बोलते हैं किसी के साथ? ये बैल बोलते हैं? फिर तो बैल और हिरन का यह बड़प्पन हुआ। भगवान ने जुबान दी हुई है, इसलिये कि स्वंय भी नाम जपो और दूसरों को भी नाम जपाओ। स्वंय अच्छे मार्ग पर चल और जुबान पर नियन्त्रण करके दूसरे लोगों को भी अच्छे रास्ते पर चला लो। मौन रखना कोई तेरा काम था। चुप हो गया इससे तो अच्छा है मन को चुप करवा, जुबान को चुप करवा, मन को विषय विकारों की ओर मत जाने दे, भागने मत दे, इसे चुप करवा -

मोनि भइओ करपाती रहिओ नगन फिरिओ बन माही॥ पृष्ठ - 641

कपड़े उतार दिए, मौन धारण कर लिया, सब कुछ छोड़ दिया, हाथों को बर्तन बनाकर रोटी खा लेना, अंजुली बनाकर पानी पी लेना, वस्त्र उतार कर पशुओं की तरह नग्न हो गया और जंगलों में घूमता रहा। सभी तीर्थों तथा धरती पर घूमता रहा, परन्तु अन्दर द्वन्द की मैल लगी हुई है वह तो इन

फोकट साधनों से नहीं उतरा करती -

तट तीरथ सभ धरती भ्रमिओ दुबिधा छुटकै नाही॥ *पृष्ठ - 642*

यदि दुविधा तो न टूटी। वहीं का वहीं खड़ा है आदमी।

भरथरी हरि महाराजा था। ऐसी साखी आती है कि पिंगला रानी उसकी सबसे प्यारी रानी थी। किसी ब्राह्मण ने तप करके देवताओं से अमर फल प्राप्त किया - जो इसे खा लेगा, वह काफी समय तक अमर रहेगा और काफी समय तक काल से बचा रहेगा। राजा, रानी को बहुत प्यार करता था। उसने कहा कि चलो, अगर मैं पहले चला जाऊँ तो कोई बात नहीं, कहीं मेरी रानी मेरे से पहले न चली जाये, यह फल उसने रानी को दे दिया। बादशाह निश्चिंत हो गया। रानी से कहने लगा, "यह फल तुम खा लो। वह रानी एक महावत को प्यार करती थी। उसने वह फल उसे दे दिया। यह जो हाथी-खाने का महावत था, उसने यह फल एक वेश्या को दे दिया। वह वेश्या मन में सोचने लगी, "मेरा जीवन तो पापों से भरा हुआ है और मैं तो पाप की जड़ हूँ, मैंने अधिक ज़िन्दा रहकर क्या करना है और हो न हो, बादशाह बहुत धर्मात्मा है, क्यों न यह फल मैं उसे दे दूँ?" वेश्या वह फल बादशाह के पास ले आई। राजा ने पहचान लिया कि यह तो वही फल है, यह चक्कर लगाकर फिर मेरे पास ही लौट आया। कैसे आ गया? उसने अपनी रानी से पूछा। वह कहने लगी मैंने तो खाया नहीं, यहाँ से कोई उठा कर ले गया। पता नहीं कहाँ फैंका होगा?" पड़ताल की गई और अन्त में महावत को बुलाया गया। राजा ने कहा, "सच सच बोलना अन्यथा मैं तुझे बहुत कठोर दण्ड दूँगा।" महावत कहने लगा, "हजूर! चाहे मारो या माफ करो, मुझे यह फल आपकी महारानी ने दिया था। वह मुझे प्यार करती है।" राजा ने कहा, "तू नहीं करता?" वह कहने लगा, "मैं नहीं करता क्योंकि मेरा प्यार तो एक वेश्या के साथ है। मैंने वेश्या को यह फल दिया था, उसने आपको दे दिया, वह आपको अच्छा समझती है।"

राजा भरथरी को वैराग आ गया। कोई न कोई कारण हुआ करता है - वैराग्य का। तीव्रतम वैराग पैदा हो गया, घर बार छोड़ दिया। गोरख नाथ के पास जाकर उसका चेला बन गया। उसने कहा, "जा, पहले रानियों को माता कहकर उनसे भिक्षा लेकर आ।" उसने घर छोड़ते समय छोटी-छोटी तीन चीज़ें साथ ले लीं। एक सिरहाना ले लिया, एक छोटी सी दरी ले ली, छोटी सी, एक लोटा ले लिया। एक दिन वृक्ष के नीचे सिरहाना रख कर लेटा हुआ है। पास ही रास्ते पर कुछ महिलाएं जा रही थी। कुछ लायक थीं, विचार कर रही हैं और एक कहने लगी, "देख बहन! इस साधु ने घर बार छोड़ दिया, सुखों की लालसा इसे अब भी छूटी नहीं है? सिरहाना रख कर सोता है। इसके मन को यह बात चुभ गई उसने उसी समय सिरहाना फैंक दिया और लोटे में पानी डलवा लेता और पी लिया करता, पास रख लिया करता। एक दिन कोई अन्य प्रेमी वहाँ आए और कहने लगे, "सन्त जी! घर बार छोड़ा, सभी कुछ छोड़ दिया, तुम यह लोटा क्यों साथ उठाये फिरते हो? पानी पीने के लिये परमेश्वर ने तुझे दो हाथ दिए हैं। कभी पानी पीना हो तो दोनों हाथों से अंजलि बनाकर पी लिया कर। यदि कोई पानी पिलाने वाला मिल जाये तो अंजुलि बनाकर होठों से लगा लिया करो और पानी पी लिया करो लोटा क्यों उठाये फिरते हो? तुझे बेचैनी रहती है कि इसे कोई चुरा कर न ले जाये। सो इसने लोटा भी छोड़ दिया। इसके बाद कोई और मिल गया उसने कहा, "सन्त जी! तेरे अन्दर से अभी सुखों की लालसा खत्म नहीं हुई। रात को सोते समय दरी बिछाता है। सन्त तो गहरी नींद आये तो सो जाते हैं फिर पता नहीं रहता कि रेशमी गद्दों पर लेटे हुए हैं या धरती पर ही लेटे पड़े हैं। दरी का त्याग कर दे।" दरी छोड़ दी, वस्त्र पहनने भी छोड़ दिये। करपात्री बन गया, दिगम्बर बन गया।

आज पूर्णमाशी का चन्द्रमा चमक रहा है और सामने घास में जहाँ बैठा है, नज़र पड़ी तो हैरान रह गया कि इतना कीमती लाल यह तो मैंने देखा ही नहीं, बिना सोचे समझे हाथ डाल दिया। हाथ में क्या आया? पान खाकर बाद में किसी ने पींक थूक कर फैंकी हुई थी। बहुत पछताया कि मेरा मन तो वश में नहीं हुआ, मैंने राज्य भी छोड़ दिया, सभी कुछ छोड़ दिया, करपात्री बन गया, नग्न ही फिरता हूँ –

मोनि भइओ करपाती रहिओ नगन फिरिओ बन माही।
तट तीरथ सभ धरती भ्रमिओ दुबिधा छुटकै नाही॥ ***पृष्ठ – 641***

परन्तु वासना तो अभी मेरी खत्म ही न हुई। बहुत पछताता है। उसने एक पुस्तक लिखी है, 'वैराग शतक' एक 'नीति शतक' भरथरी हरि की लिखी हुई ये पुस्तकें बहुत अच्छी हैं। इसमें लिखते हैं कि जब तक मन दुश्मन जीवित है, सभी शत्रु जीवित हैं, जब मन दुश्मन मर गया तो सभी दुश्मन मर जाते हैं। अक्षर एक जैसे हैं, भाव दो हैं –

मन रिपु जीते सभु रिपु जीते। मन रिपु जीते सभु रिपु जीते॥ ***वैराग शतक***

मन शत्रु को जिसने जीत लिया, सभी दुश्मनों को जीत लिया। जब तक मन दुश्मन जीवित है, तब तक सभी दुश्मन जीवित हैं। महाराज कहते हैं फिर भाई! दुविधा तो न छूटी –

मन कामना तीरथ जाइ बसिओ सिरि करवत धराए।
मन की मैलु न उतरै इह बिधि जे लख जतन कराए॥ ***पृष्ठ – 642***

तीर्थ पर चला गया कि वहाँ जो मरता है, वह स्वर्ग को चला जाता है, काशी में ऐसा मशहूर है। काशी को शिवा का शहर कहते हैं, यहाँ जो मरेगा वह स्वर्ग को जायेगा। वेद व्यास ने अपना शहर अलग बसा लिया – 'मगहर'। उसने कह दिया कि जो वहाँ पर मरेगा, वह बैकुण्ठ में जायेगा क्योंकि स्वर्ग नीचे है, पाँच सात मंज़िले बैकुण्ठ ऊपर है। शिव जी को जब पता चला कि ये सभी काशी के लोग मगहर में जाकर बसने लग गये हैं तो थोड़ी सी चिन्ता में पड़ गये कि सन्त का वचन है, मेरे अन्दर इतनी शक्ति नहीं कि मैं वचनों को टाल दूँ। अब उपाय क्या किया जाये? गणेश जी के पास चले गये। कहने लगे, "गुरू जी! यहाँ जो मरेगा, वह कहाँ जायेगा?" कहते हैं, "बैकुण्ठ।"

थोड़ी देर बाद फिर पूछा, कई बार पूछा, अब आँठवी या नौंवी बार पूछा, तो उन्हें क्रोध आ गया, थोड़ा सा गुस्से में आ गये। कहने लगे, "महाराज! मैं समझा नहीं कि यहाँ जो मरेगा, वह कहाँ जायेगा?"

कहते हैं, "गधा बनेगा।"

"तथा अस्तु।"

उस दिन के बाद मगहर उजड़ गया। कबीर साहिब ने सारी आयु काशी में बिताई। जब शरीर त्यागना था तो मगहर में पहुँच गये। सभी हैरान हो गये और कहने लगे, "यह तो उलटी बात आ गई तुम्हारे दिमाग में? यहाँ पर मरने वाला तो गधा बनेगा?" कबीर साहिब ने कहा, "प्यारे! जो परमेश्वर का प्यारा है –

हरि का संतु मरै हाड़ंबै त सगली सैन तराई॥ ***पृष्ठ – 484***

उस समय जो यहाँ मर जाता है, वह नरकों में नहीं जाता। वह तो ज्ञानवान होता है, परमगति को प्राप्त होता है। ये तो हउमैं से भरे लोगों की बातें हो सकती हैं।" सो ***'मन कामना तीरथ जाइ बसिओ***

सिरि करवत धराए' करवत ही सिर पर धरा लिया, आरे से शरीर कटवा लिया – *'मन की मैलु न उतरै इह बिधि जे लख जतन कराए।'* इन साधनों से हउमै की मैल किसी तरह भी रंचक मात्र भी नहीं उतरती। बल्कि अहम बुद्धि धारण करके मैल और लग जाती है –

कनिक कामिनी हैवर गैवर बहु बिधि दानु दातारा।
अंन बसत्र भूमि बहु अरपे नह मिलीऐ हरि दुआरा॥ *पृष्ठ - 642*

दान देने पर स्वर्ग की प्राप्ति हो जाती है। कनक (सोना) भी दान दे दे, कामिनी (स्त्री) भी दान दे दे, हाथी भी दे दे घोड़े भी दे दे, अनेक विधियों से सामान जायदाद दान कर दे महाराज कहते हैं –

अंन बसत्र भूमि बहु अरपे नह मिलीऐ हरि दुआरा। *पृष्ठ - 642*

लेकिन परमात्मा का द्वार तो दूर रह गया भाई। ऐसे यह गुरू के बिना द्वार हाथ नहीं आता –

धारना - बिनां गुरां तों ना मिलदा दुआरा,
दान भावें लख कर लै - 2
मेरे पिआरे, दान भावें लख कर लै - 2
बिनां गुरां तों ना मिलदा दुआरा...... - 2

पूजा अरचा बंदन डंडउत खटु करमा रतु रहता॥ *पृष्ठ - 642*

जो षट कर्म हैं, वह भी करता है, पूजा भी करता है, अर्चना भी करता है, बन्दना भी करता है, डण्डोत भी करता है, बेशक ये कर्म नवधा भक्ति में शामिल हैं, पर अन्दर से हउमैं का नुकता जब तक दूर नहीं होता, महाराज कहते हैं फिर कुछ नहीं बनेगा। ये बन्धन ही बनते जायेंगे। हउमैं मण्डल में किये गये कर्म पुण्य बनकर बन्धन का मूल हुआ करते हैं।

जब गुरू दशमेश पिता जी को पीर बुद्धू शाह मिला उसने कहा, ''पातशाह! मैंने रोज़े भी बहुत रखे, मक्का शरीफ की हज-यात्रा पर भी गया, बड़े-बड़े चालीसे भी रखे, बहुत सावधानियाँ प्रयोग कीं, हठयोग भी किये, राज योग भी किया, परन्तु मुझे रास्ता नहीं मिलता।''

महाराज कहते हैं, ''यह तो तू बन्धन लपेटता रहा कि मैंने यह किया है, वह किया है, ऐसा किया वैसा किया है। हउमैं और भी मोटी बना ली। यह तो नुकते और लगाए जा रहा है। नुकता तो एक ही बहुत था जिसने महिरम से मुज़रम बना दिया। महिरम 'वाकफकार' जानकार को कहते हैं। यदि नुकता नीचे लग जाये, उर्दू का अक्षर है महिरम, 'हे' के साथ मीम है रे, मीम। 'हे' के नीचे यदि नुकता लगा दें तो जीम बन जाता है, मुज़रम बन जाता है। गुनाहागार बन जाता है। उस एक नुकते ने ही फसाया हुआ है। तूने तो कितने नुकते लगा लिये? मैं काबा भी गया, मैं लंगर भी चलाता हूँ, मैं हज यात्रा पर भी गया, मैंने नमाज़ें भी पढ़ीं, मैंने रोज़े भी रखे, मैंने जकात भी की। इससे नुकते बने जा रहे हैं प्यारे! जंज़ीर लपेटता जा रहा है तू अपने आपको। इन सभी बातों को छोड़, किसी काम के नहीं, आजा परमेश्वर के हुक्म में, गुरू के प्यार में आ जा, वज़द में आ जा। नेत्र खुल गये उसी समय सकाम कर्मों की गठड़ी को उतार कर, गठड़ियों की गठड़ियाँ व्यर्थ समझकर दूर फैंक कर मारीं कि मैं पीर हूँ, मेरे चेले हैं, सभी जन्जीरें उतार कर फैंक दीं। महाराज फ़रमान करते हैं –

पूजा अरचा बंदन डंडउत खटु करमा रतु रहता।
हउ हउ करत बंधन महि परिआ नह मिलीऐ इह जुगता॥ *पृष्ठ - 642*

यह तो 'मैं' 'मैं' किये जाता है –

जोग सिध आसण चउरासीह ए भी करि करि रहिआ।

वडी आरजा फिरि फिरि जनमै हरि सिउ संगु न गहिआ।। पृष्ठ - 642

गुरू दसवें पातशाह महाराज जी के बारे में साखी आती है, एक गाँव था जिसे जोगीपुरी कहते थे। आप खिदराणे की ढाब से जिसे आजकल मुक्तसर कहते हैं, वहाँ घायलों की देख भाल करने के पश्चात, शहीदों का संस्कार करने के बाद, आपने यहीं पर एक तालाब के किनारे डेरा लगाया हुआ है। पानी के सरोवर के किनारे कीर्तन हो रहा है, पाठ हो रहे हैं। कोई ऊँची आवाज़ में कर रहा है तो कोई धीमी-धीमी आवाज़ से कर रहा है, कोई जयकारा बोल रहा है, जैसा जिसका विचार है वही कर रहा है। कहीं घोड़े हिनहिना रहे हैं, कहीं किले गाढ़े जा रहे हैं, दूसरे किनारे पर एक जोगी रहता था। उस जोगी ने अपने चेलों से पूछा कि, ''यह कौन है? आज यहाँ पर किसकी खटखट की आवाज़ आ रही है?'' कहने लगे, ''महाराज! यहाँ पर दसवें गुरू नानक आए हुए हैं, जिनका नाम गुरू गोबिन्द सिंघ है और उन्होंने बहुत भारी युद्ध किये हैं, देश पर सारा परिवार कुर्बान कर दिया। ऐसे समझ लो कि हिन्दू धर्म की रक्षा, बलहीन तथा मानहीन हो चुके मुसलमानों की रक्षा, पीरों फकीरों की रक्षा करने के लिये सारा परिवार कुर्बान कर दिया और अब खिदराणे की ढाब पर बड़ा भारी युद्ध करने के बाद यहाँ आए हुए हैं।'' कहने लगे, ''फिर तो हमें दर्शन करने चाहिए।'' चेलों ने कहा, ''हुक्म करो महाराज।'' कहते हैं, गुरू की उम्र कितनी है?

''जी, 40 साल से कम ही है।''

कहने लगा, ''फिर नहीं जाना।''

चेलों ने कहा, ''क्यों महाराज?''

कहने लगा, ''उसने कौन से खट कर्म किये होंगे? नेती, धोती कर्म किस समय किये होंगे? कब प्राणायाम सिद्ध किये होंगे? नहीं, फिर नहीं जाते, फिर यह तो योद्धा ही है।''

वहाँ कुछ सिंघ घूमते थे, उन्होंने आकर गुरू महाराज जी को बताया कि, ''महाराज, वह ऐसे कहता है। गुरू महाराज जी ने कहा कि यह जो जोगी है, इसकी आयु 500 वर्ष की है, यह 500 वर्षों की समाधि लगाता है, आप मठ में बैठ जाता है, अपने चौगिर्दे पत्थर चिनवा देता है और उसके बाद लोग सीने ब-सीने बताते चले आते हैं कि 500 साल के बाद, अमुक साल में इसकी समाधि खुलेगी और उस समय फिर इसे निकाल लेते हैं। इस प्रकार फिर थोड़े से वर्ष रहता है फिर समाधि लगा लेता है। जोगी है, अभ्यासी है। पुराना खल्लड़ उठाये फिरता है।

इस बड़ी उम्र वाले जोगी को इसके चेलों ने गुरू महाराज जी के वचन बता दिये। वह हैरान हो गया कि आप तो सचमुच ही परमेश्वर रूप गुरू हैं। पालकी में बैठकर गुरू महाराज जी के दरबार में हाज़िर हुआ। गुरू महाराज जी ने कहा कि, ''योगी राज! आप शरीर रूपी पुराना खल्लड़ उठाये फिरते हो बताइये, यहाँ पर क्या-क्या हुआ?'' योगी ने कहा, ''महाराज! कभी यहाँ जंगल हुआ करता था, कई बार जब समाधि खुलती थी तो बहुत बड़ा शहर होता था, यहाँ आबादी होती थी। बहुत समय मैंने देखा कि परिवर्तन होता ही रहता है। कृपा करो, मुझे परमपद का ज्ञान करवाओ।'' महाराज ने कृपा की, ज्ञान की बख्शीश की और उद्धार किया।

महाराज कहते हैं, ''लम्बी आयु कर लेने से क्या होता है भाई! इसे परमेश्वर का द्वार नहीं मिलता। ये तो हठ कर्म हैं, फोकट कर्म है'' सारे -

राज लीला राजन की रचना करिआ हुकमु अफारा।
सेज सोहनी चंदनु चोआ नरक घोर का दुआरा॥ पृष्ठ - 642

ये सभी जितने कर्म हैं इन सभी को महाराज कहते हैं, ''प्यारे! ये कर्म मन के हठ करने के कारण है, इनमें कुछ भी नहीं रखा। इनके करने से परमात्मा नहीं मिलता। ऐसा फ़रमान करते हैं –

धारना – सभ थक्के करम कमाए जी – 2, 2
मन हट्ठ किने न पाइओ पिआरे – 2, 2
सभ थक्के करम कमाए जी – 2

बड़े-बड़े सिद्ध साधक, नाथ, मुनि थक गये, भरथरी जैसे सभी थक गये। गुरू नानक देव जी से मिले, तब जाकर कोई बात बनी। कोरे को तो रंग ज़रा सा भी नहीं लगता –

मनहठि किनै न पाइआ करि उपाव थके सभु कोइ।
सहस सिआणप करि रहे मनि कोरै रंगु न होइ॥ *पृष्ठ – 40*

सुरत तो माया में है, ध्यान लगाता है बगुले की तरह –

जपु तपु करि करि संजम थाकी हठि निग्रहि नही पाईऐ।
नानक सहजि मिले जग जीवन सतिगुर बूझ बुझाईऐ॥ *पृष्ठ – 436*

भाई भगीरथ कहने लगे, ''मनसुख जी! ये जितने कर्म तुमने बताए हैं, गुरू महाराज जी ने ये सभी रद्द कर दिये, कहने लगा, ''महाराज ने फिर रखे कौन से कर्म? गुरू महाराज के घर में कौन सी चीज़ प्रवान है।'' कहते हैं, ''गुरू नानक ने प्रवान किया है –

हरि कीरति साध संगति है सिरि करमन कै करमा।
कहु नानक तिसु भइओ परापति जिसु पुरब लिखे का लहना॥ *पृष्ठ – 642*

हरि कीर्तन और साधु की संगत यह सारे कर्मों का शिरोमणी कर्म है लेकिन प्राप्त उसे होता है *'कहु नानक तिसु भइओ परापति जिसु पुरब लिखे का लहना'* जिसके भाग्य पर लेख लिखे हों –

बिनु भागा सतसंगु न लभै बिनु संगति मैलु भरीजै जीउ॥ *पृष्ठ – 95*

तेरो सेवकु इह रंगि माता।
भइओ क्रिपालु दीन दुख भंजनु हरि हरि कीरतनि इहु मनु राता॥ *पृष्ठ – 642*

सो इस प्रकार जब सारी बातचीत हो चुकी तो कहने लगा, ''देख भाई भगीरथ! मुझे तो तू ऐसे लगता है जैसे तेरे गुरू ही बोलते रहे हों। कितना समय हो गया तुझे उनके पास रहते हुए?'' इसने कहा, मुझे अधिक समय तो नहीं हुआ पर मुझे भी चेटक (लगन) लगी हुई थी, मैं देवी की पूजा किया करता था, साधु सन्तों की संगत भी किया करता था, पर कोई रंग चढ़ाने वाला नहीं मिला था। एक मिल गया और रंग चढ़ गया। पूरे को देर नहीं लगती, वह तो एक सैकिण्ड लगाता है। गुरू महाराज इस तरह फ़रमान करते हैं –

धारना – विचों मार कढीआं बुरिआईआं,
गुरां ने सिर ते हथ रख के – 2, 2
मेरे पिआरे, गुरां ने सिर ते हथ रख के – 2, 2
विचों मार कढीआं बुरिआईआं,........ –2

कहने लगे, ''मनसुख! जिसे गुरू नानक पातशाह मिल जाये उसे तो तुरन्त ही प्राप्ति हो जाया करता है। उसकी तो दृष्टि हुआ करती है –

नानक नदरी नदरि निहाल॥ *पृष्ठ – 8*

मैं भी भ्रम में पड़ा हुआ, वहमों में पड़ा हुआ, कर्म धर्म करता था गुरू नानक साहिब के मिलते ही, बिना पढ़े ही सभी कुछ पढ़ गया और बिना बताए ही सभी कुछ सीख गया, अन्दर के द्वार

खोल दिये। जब नुकता आ गया, चाबी मिल गई फिर सभी कुछ दिखाई देने लग गया, सभी कुछ महसूस होने लग गया, ज्ञान अपने आप ही आ गया। समरथ की कृपा का फल है।

भाई मनसुख कहने लगा, ''देखा, मैं तुझे बताता हूँ, मेरी प्रतिज्ञा है, मैं मान तो गया हूँ, 100 प्रतिशत तेरी बातों में रस बहुत है, आकर्षण बहुत है। मैंने गुरू नानक के दर्शन नहीं किये पर मेरे अन्दर आकर्षण पैदा हो गया है और ऐसे मन करता है कि भाग कर उनके पास पहुँच जाऊँ, पर मैं पहले कई बार धोखा खा चुका हूँ।''

यह बात मेरा स्वभाव बन गई है या यह समझ लो, चाहे मेरी मज़बूरी समझ लो, यदि मुझे अज़मत (करामात) दिखा दी, तब तो मैं मान जाऊँगा, अन्यथा नहीं मानूंगा क्योंकि मेरे हृदय में शान्ति नहीं आई। साधु तो मैंने बहुत बड़े-बड़े देखे हैं हजारों, उनके पास सोने-चाँदी के ढेर लगे हुए देखे हैं, मैंने भी अपना ज़ोर लगाया, चरण भी धोए, सभी कुछ किया लेकिन मेरी कसौटी यह थी कि यदि मेरे हृदय में शान्ति आ गई फिर तो वह पूरा, यदि शान्ति न आई तो फिर मन नहीं माना। इस तरह मुझे बहुत साधु मिले हैं। इस तरह कहने लगा-

धारना - दंभी तां मैं देखे बहुते, हिरदे 'च शान्त ना आई - 2, 2
मेरे पिआरे, हिरदे च शान्त न आई - 2, 2
दंभी तां मैं देखे बहुते................. - 2

कहने लगा, ''भाई भगीरथ! कहते हैं दूध का जला छाछ को भी फूँक-फूँक कर पीता है। मैंने आधी जिन्दगी बिता दी, शौक मुझे बचपन से ही है पर आज तक मुझे पूर्ण समरथ कोई नहीं मिला। वह यदि मुझे कुछ दिखा दे न, फिर मैं सारी जिन्दगी के लिये दिल का सौदा कर लूंगा, सभी कुछ दे दूंगा और वे मेरे तथा मैं उनका हो जाऊँगा -

जो मुझ दे हैं कुछ कला दिखाई। तब होवों मैं सिख इकदाई॥ श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथ

प्यार लेकर फिर मैं सिख बन जाऊंगा -

दंभी साध मिले बहुतेरे। सांत न प्राप्त तां वी कित हेरे॥ श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथ

हृदय में शान्ति नहीं आई -

यां ते मुझ न उपजत परीता। बिन अज़मत नहीं होए परतीता॥ श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथ

मैं क्या करूं? बिना करामात (कौतुक) देखे, बिना शान्ति प्राप्त किये मेरे मन की प्रतीति नहीं बनती?

भाई भगीरथ कहने लगा, ''मनसुख जी! मुझे पता है कि आप बहुत सियाने हो पर तुम्हे पता है कि करामात तो कुछ भी नहीं हुआ करती, यह तो जिसका मन एकाग्र हो जाये वे तो बड़े-बड़े कौतुक करके दिखा देते हैं। हिपनोटाईज़ कर देते हैं। यह सन्तों की निशानी नहीं हुआ करती। सन्तों की पहचान तो यह हुआ करती है -

इह नीसाणी साध की जिसु भेटत तरीऐ। पृष्ठ - 320

आवै साहिबु चिति तेरिआ भगता डिठिआ॥ पृष्ठ - 520

जिसके देखते ही, अन्दर वाहिगुरू-वाहिगुरू होने लग जाये, राम-राम, अल्लाह-अल्लाह होने लग जाये, वह साधु होते हैं, यह निशानी हुआ करती है - साधु की। करामात नहीं हुआ करती। करामात तो कोई चीज़ ही नहीं हुआ करती। महाराज तो यह कहते हैं कि करामात तो धिक्कारने योग्य हैं -

बिनु नावै पैनणु खाणु सभु बादि है धिगु सिधी धिगु करमाति।
सा सिधि सा करमाति है अचिंतु करे जिसु दाति।

नानक गुरमुखि हरि नामु मनि वसै एहा सिधि एहा करमाति।। *पृष्ठ - 650*

यदि नाम मन में बस गया तो सिद्धि। यदि नाम मन में नहीं बसा फिर यह सिद्धि धिक्कारणीय है -

रिधि सिधि सभु मोहु है नामु न वसै मनि आइ॥ *पृष्ठ - 593*

बाकी जब नाम हृदय में बस गया, फिर क्या होगा?

नवनिधी अठारह सिधी पिछै लगीआ फिरहि जो हरि हिरदै सदा वसाइ॥ *पृष्ठ - 649*

ये मामूली बातें हुआ करती हैं, नाटक चेटक हैं -

नाटक चेटक कीए कुकाजा। प्रभ लोगन कह आवत लाजा॥ *बचित्र नाटक*

करामात कोई परख नहीं हुआ करती, यह तो आम ही ऐसे सहज स्वभाव ही गुरसिखों में होती है, कितनों का पता है जिनके अन्दर बेअन्त शक्तियाँ थी? हैरान हो जाते हैं कि सहज स्वभाव रहने वाला कितनी शक्ति का मालिक है। शक्ति कोई परख नहीं हुआ करती, अच्छा यदि तेरे मन में यही बात है यह भी करके देख ले, पर मेरे गुरू ने सिद्धि को पसन्द नहीं किया। वे तो सिद्धि को तिरस्कार करते हैं क्योंकि यह परमेश्वर से विमुख कर देती है। मनुष्य वाहिगुरू से बिछुड़ जाता है और इस तरह से आप फ़रमान करते हैं -

धारना - किते भुल्ल न जाईं ओ मना मेरिआ,
सिद्धीआं दे रूप वेख के - 2, 2
मेरे पिआरे सिद्धीआं दे रूप वेख के - 2, 2
किते भुल्ल न जाईं ओ मना मेरिआ,........... - 2

मोती त मंदर ऊसरहि रतनी त होहि जड़ाउ।
कसतूरि कुंगू अगरि चंदनि लीपि आवै चाउ।
मतु देखि भूला वीसरै तेरा चिति न आवै नाउ॥ *पृष्ठ - 14*

मेरे सतगुरू तो इन चीज़ों को कोई महत्व ही नहीं देते कि रिद्धि-सिद्धि आ जाये और हृदय की बात बता देना, किसी को प्रेरित कर लेना, कोई बात दूर से ही देख लेना आदि-आदि। मेरे सतगुरू सारी शक्तियों से सम्पन्न हैं पर वे गुरसिखों को इन बातों में पड़ने नहीं देते और न ही स्वंय खुलकर कोई रिद्धि-सिद्धि दिखाते हैं। वह तो यह फ़रमान करते हैं कि जिस हृदय में नाम बस गया उसके पास सारी ही सिद्धियाँ आ गई। *'नवनिधी अठारह सिधी पिछै लगीआ फिरहि जो हरि हिरदै सदा वसाइ।'*

यदि नाम अन्दर नहीं बसा तो जो हृदय का कौल (कमल) मकान, सवारियां आदि सभी सुख होते हुए भी वह जला हुआ है -

धारना - जल बल जावे जिउड़ा नाम तों बिनां - 2, 2
नाम तों बिनां पिआरे नाम तों बिनां - 2, 2
जल बल जावे जिउड़ा नाम तों बिनां - 2

हरि बिनु जीउ जलि बलि जाउ॥ *पृष्ठ - 14*

यदि परमेश्वर का नाम भूल जाये तो यह जो कमल फूल है, कहते हैं जल कर राख हो जाता है। कितनी ही विभूतियों का मालिक क्यों न हो?

सुंदर सेज अनेक सुख रस भोगण पूरे। ग्रिह सोइन चंदन सुगंध लाइ मोती हीरे।
मन इछे सुख माणदा किछु नाहि विसूरे। सो प्रभु चिति न आवई विसटा के कीरे।
बिनु हरि नाम न सांति होइ कितु बिधि मनु धीरे॥ *पृष्ठ - 707*

कहते हैं, ''प्यारे! मेरे गुरू नानक तो नाटक-चेटक को कोई भी किस प्रकार की भी पहल नहीं देते। वह तो कहते हैं कि जीवन रौ कितनी इसके अन्दर बह रही है। जिसके अन्दर नाम नहीं जो नाम से वंचित है, टूटा हुआ है, मेरे सतगुरू तो उसे मुर्दा ही कहते हैं और ज़िन्दा उन्हें कहते हैं जिनके अन्दर नाम की धारा current (बहती) हो, शेष सारे संसार को महाराज ने मुर्दा कहा है, बौरा कहा है, पागल कहा है, हलकाया हुआ कहा है क्योंकि भोगों में पड़कर शान्ति प्राप्त नहीं होती। यह केवल 'नाम' है जो मनुष्य की जिन्दगी को कायम रखता है, रूह चढ़ती कला में कायम रहती है, अन्यथा मुरझा जाता है। पहले मुरझा जाता है, फिर मर जाता है।

तीन चीज़ों की जरूरत है - कुली-गुली-जुली (रोटी-कपड़ा-मकान) बाकी क्या है? बाकी तो तू रखवाला बना हुआ है, चौकीदार है। करोड़ों रूपया तेरा जमा है, बता तेरे किसी काम आयेगा? तुझे इसकी चिन्ता ने ही मार देना है, यदि थोड़ी सी भी कोई गलत बात हो गई, ऐसा न कर प्यारे तू बात समझ -

दमड़ा तिसी का जो खरचै अर खाइ। देवै दिलावै रजावै खुदाइ।
होता न राखै अकेला न खाइ। तहकीक दिलदानी वही भिशत जाइ॥ ***नसीहतनामा***

यह तो तीन चीज़ें काम आती हैं, जीवन में प्रयोग करते हैं, यह आदमी तो -

तीनि सेर का दिहाड़ी मिहमानु। अवर वसतु तुझ पाहि अमान॥ ***पृष्ठ - 374***

बाकी तो तेरे पास अमानतें रखी हुई हैं, थोड़ा सम्भाल ले, चाहे बहुत सम्भाल कर रख ले। जैसा शरीर को बना लेगा, वैसा ही समय बीत जाता है। समय नहीं रूकता, खुशी-गमी, दुख-सुख सभी अपना-अपना प्रभाव डालते हुए बीत जाते हैं, इस प्रकार समय बीत जाता है। इसे वातानुकूलित कमरों में भी नींद की गोलियाँ खाये बिना नींद नहीं आती। यह और बात है, नाम की और बात है। मेरे सतगुरू तो यह बताते हैं कि जीवित वही है जिनके हृदय में नाम बसा हुआ है -

धारना - जिउंदे जग ओही ने,
हिरदे है नाम जिन्हां दे - 2, 2
हिरदे है नाम जिन्हां दे - 2, 2
जिउंदे जग ओही ने,........ - 2
सो जीविआ जिसु मनि वसिआ सोइ। नानक अवरु न जीवै कोइ।
जे जीवै पति लथी जाइ। सभु हरामु जेता किछु खाइ॥ ***पृष्ठ - 142***

नाम के बिना जो खाते हैं, पीते हैं, पहनते हैं सभी हराम है 'राज रंगि' कहते हैं, राज के साथ प्यार हो गया है, 'माल रंगि' अर्थात धन से प्यार हो गया है, झूठे प्यारों में पड़ा हुआ नंगा नाचता है -

राजि रंगु मालि रंगु रंगि रता नचै नंगु॥ ***पृष्ठ - 142***

इन चीज़ों के साथ नाम के बिना नंगा हुआ नाचता है संसार में -

नानक ठगिआ मुठा जाइ। विणु नावै पति गइआ गवाइ।
किआ खाधै किआ पैधै होइ। जा मनि नाही सचा सोइ॥ ***पृष्ठ - 142***

क्या कर लेगा यदि सौ रूपये गज़ का, दो सौ रूपये गज़ का कपड़ा पहन लेगा यदि पेट भर कर खा लेगा, रोगी भी हो जायेगा -

खसमु विसारि कीए रस भोग। तां तनि उठि खलोए रोग।। ***पृष्ठ - 1256***

किआ खाधै किआ पैधै होइ। जा मनि नाही सचा सोइ।

किआ मेवा किआ घिउ गुड़ु मिठा किआ मैदा किआ मासु।
किआ कपड़ु किआ सेज सुखाली कीजहि भोग बिलास।
किआ लसकर किआ नेब खवासी आवै महली वासु।
नानक सचे नाम विणु सभे टोल विणासु॥ *पृष्ठ - 142*

यह तो सभी नाशवान चीज़ों के साथ प्यार कर लिया तूने। नाम तेरे हृदय में बसा नहीं।

सो कहने लगे, ''मनसुख जी! मेरे सतगुरू का दृष्टिकोण और है। करामात वाले को ज़िन्दा नहीं गिनते वह। वह तो कहते हैं, ज़िन्दा वे हैं, जिनके हृदय में नाम बसा है। बाकी तो जितने भभूति वाले हैं, धन वाले हैं इनके बारे में महाराज का इस तरह फतवा है -

धारना - वड्डे वड्डे दुनीआं ते होए,
रोंदे जांदे नाम तों बिनां - 2, 2
मेरे पिआरे, रोंदे जांदे नाम तों बिनां - 2, 2
वड्डे-वड्डे दुनीआं ते होए,.................. - 2

सहंसर दान दे इंद्रु रोआइआ। परसरामु रोवै घरि आइआ।
अजै सु रोवै भीखिआ खाइ। ऐसी दरगह मिलै सजाइ।
रोवै रामु निकाला भइआ। सीता लखमणु विछुड़ि गइआ।
रोवै दहसिरु लंक गवाइ। जिनि सीता आदी डउरू वाइ।
रोवहि पांडव भए मजूर। जिन कै सुआमी रहत हदूरि।
रोवै जनमेजा खुइ गइआ। एकी कारणि पापी भइआ।
रोवहि सेख मसाइक पीर। अंति कालि मतु लागै भीड़।
रोवहि राजे कंन पड़ाइ। घरि घरि मागहि भीखिआ जाइ।
रोवहि किरपन संचहि धनु जाइ। पंडित रोवहि गिआनु गवाइ।
बाली रोवै नाहि भतारु। नानक दुखीआ सभु संसारु।
मंने नाउ सोई जिणि जाइ। अउरी करम न लेखै लाइ॥ *पृष्ठ - 954*

बड़े-बड़े संसार में आए हैं और संसार से रोते चले गये क्योंकि नाम का भेद इन्हें प्राप्त न हो सका। हर समय संसार में तीन ताप चढ़े रहते हैं - नाम के बिना पाँच क्लेश मनुष्य के अन्दर अविद्या, अभिनिवेष, अस्मिता, राग तथा द्वैष, जैसे मधानी चलती है, ऐसे चलते हैं। सुखी कैसे हो जायेगा नाम के बिना? फिर ईर्ष्या, निन्दा, चुगली, आसा, अन्देशा की डायनें वहाँ खेरू (शोर-शराबा) डालती हैं -

आधि बिआधि उपाधि रस कबहु न तूटै ताप।
पारब्रहम पूरन धनी नह बूझै परताप।
मोह भरम बूडत घणो महा नरक महि वास।
करि किरपा प्रभ राखि लेहु नानक तेरी आस।। *पृष्ठ - 297*

सो इसीलिये कहते हैं, नाम के बिना संसार रोता फिर रहा है। ''भाई भगीरथ! गुरू नानक समाधि लगाते हैं? या किसी अन्य विधि से साधना करवाते हैं?''

कहते हैं, ''नहीं, यह भी भ्रम ही था हमें । गुरू नानक किरती हैं, आप किरत करते हैं, संसार को किरत करने की जांच बताते हैं, सच्ची किरत कैसे की जाती है? दिन-रात आने जाने वाले साधुओं को, जरूरत मन्दों को, मोदी खाने में से चीज़ें देते रहते हैं, जब हिसाब-किताब होता है, गुरू नानक का फालतू ही निकलता है, इतनी बरकत (लाभ) है। हर एक को देते हैं। पहले जो कर्मचारी थे वे खा जाया करते थे, लेकिन अब बढ़ता ही जा रहा है। नौ सौ नौ (909) रूपये उन दिनों का आजकल के

नौ लाख के बराबर हैं, इतना इतना लाभ होता था। मेरे सतगुरू किरत करनी बताते हैं। अमृत बेला में उठते हैं, उस बेला में नाम जपते हैं। स्नान करते हैं, स्नान करने के बाद जाकर बैठ जाते हैं, स्व स्वरूप का चिन्तन करते हैं। दिन निकल आता है, बाणी पढ़ते हैं, उसके बाद खेतों में चले जाते हैं, किरत करते हैं। उसके बाद वहाँ से फ़ारिग होकर, फिर आये गये साधुओं, महापुरुषों, जिज्ञासुओं से वचन वार्ता करते हैं। फिर शाम को कथा कीर्तन होता है। उसके बाद फिर विराजमान हो जाते हैं। यह मेरे सतगुरू का सारा कार्यक्रम है।

कहने लगे, ''यह बात मेरी समझ में नहीं आती कि नाम कैसे जपवाते हैं? मन एक है कि दो हैं?''

''कहते हैं, मन तो एक ही है, भाई भगीरथ जी।''

मन जब कारोबार में व्यस्त हो फिर भजन में कैसे लग जाता है? भजन में तो लग ही नहीं सकता। मन तो एक है, दो तो नहीं हैं। कारोबार में व्यस्त आदमी, कारोबार में मन लगाता है फिर भक्ति में कैसे लग जाता है?''

भाई भगीरथ जी ने कहा, ''मेरे सतगुरू यह बताते हैं कि जो चीज़ मन की गहरी पर्त में चली जाये, वह कायम रहती है, ऊपरी पर्त की जो चीज़ें हैं वह कर्म करते हुए भी, गहरी पर्त वाले काम होते चले जाते हैं। कोई मर जाये, बहुत प्यारा हो, कारोबार चलता रहेगा, व्यापार भी होता रहेगा और मन कहाँ होगा? उसके विछोड़े में, उसकी विरह में ठण्डी आहें भरेगा, नेत्रों में से आँसू टपकेंगे। जब नाम के साथ मन लग गया, नाम गहरा चला गया, उस समय प्यारे! सारे कारोबार करते हुए भी मन 'नाम' की ओर रहेगा। मन को भी परख में रखना है –

चिंतत ही दीसै सभु कोइ। चेतहि एकु तही सुखु होइ।। पृष्ठ – 932

चित्त हर समय कुछ न कुछ सोचता रहता है, जो नाम के अन्दर अपना मन रखता है, वह काम को तो विघ्नकारी नहीं होता ऐसा फ़रमान है –

धारना – चित्त हरी दे नाम नाल लाईए,
हत्थीं पैरीं कंम करीए – 2, 2
मेरे पिआरे, हत्थीं पैरीं कंम करीए – 2, 2
चित्त हरी दे नाम नाल लाईए,.......... – 2

नामा कहै तिलोचना मुख ते रामु संम्हालि।
हाथ पाउ करि कामु सभु चीतु निरंजनु नालि॥ पृष्ठ – 1376

काम हाथ पैरों ने करना है, चित्त जो है वह परमेश्वर के साथ जुड़ा रहे। यह तो भला, किसानों की बात कर दी हाथ पैरों से काम करने वालों की बात कर दी, जो दिमाग से काम करते हैं?

वह कहने लगे, ''यह भी बात है। दिमाग से मनुष्य काम करता है, रोटी खा लेता है। वह रोटी हज़म कौन करता है? वह अचेतन मन करता है। अब अचेत मन के अन्दर जिसे अर्ध चेतन कहते हैं, उसके अन्दर कोई संस्कार चला जाये तो अपने आप ही जुबान से वाहिगुरू, वाहिगुरू, वाहिगुरू होता रहेगा। दिमाग अपना काम करेगा, नाम ने अपना काम करना है। केवल जरूरत है नाम को गहरी पर्त में ले जाने की।

मनसुख कहने लगा, ''मेरी समझ में बात नहीं आई।'' भाई भगीरथ ने चार उदाहरण दिये कि

जैसे बालक छत पर चढ़ कर पतंग उड़ाता है। चित्त उसका कहाँ होता है कि मेरी पतंग कहीं गोता न खा जाये? डोरी को झटका देता रहता है। इस तरह से एक कोई गहना बनाने वाले सुनार उसका चित्त कहाँ होता है? जुबान से बातें भी करता रहता है, हार बन जायेगा, कंगन बन जायेगा, कानों में डालने वाले झुमके बन जायेगें पर ठुक-ठुक करना बन्द नहीं करता, मन को वहीं रखता है, मुँह से बातें किये जाता है। इसी तरह से महिलाएं सरोवर से पानी लेने जाती हैं और दो-दो तीन-तीन मटके उठाकर लाती हैं, बातें भी करती रहती हैं, पर ध्यान कहाँ होता है कि मेरा मटका कही टेढ़ा होकर गिर न जाए?'' भाई मनसुख कहने लगा, ''मान लिया, ऐसा तो ठीक है।'' भाई भगीरथ ने कहा, ''गाय प्रसूति हो चुकी है, दस कोस या पाँच कोस चरने के लिये भेज दी। गाय चरती रहती है, पर बार-बार अपने बछड़े को याद करके रम्भाती रहती है। उसका ध्यान बछड़े में रहता है। मन बहुत गहरा चला जाता है बिन्ध जाता है -

कबीर सतिगुर सूरमे बाहिआ बानु जु एकु।
लागत ही भुइ गिरि परिआ परा करेजे छेकु॥ पृष्ठ - 1374

जिसके हृदय में छेद हो गया, वह नहीं भूला करता। सो दुनियादारी के साथ हमारा मन पतंग बना हुआ है। उसे हमने प्यार की डोरी में बान्धा हुआ है। इस तरह पढ़ लो -

धारना - मन मेरा ओ, गुडीआ बणे - 2, 2
ओ तां बंनिआ प्रेम वाली डोरी - 2, 2
ओ तां बंनिआ प्रेम वाली डोरी पिआरिओ! गुडीआ बणे,
मन मेरा ओ गुडीआ बणे........।

आनीले कागदु काटीले गूडी आकास मधे भरमीअले।
पंच जना सिउ बात बतऊआ चीतु सु डोरी राखीअले।
मनु राम नामा बेधीअले। जैसे कनिक कला चितु मांडीअले।
आनीले कुंभु भराईले ऊदक राजकुआरि पुरंदरीए।
हसत बिनोद बीचार करती है चीतु सु गागरि राखीअले।
मंदरु एकु दुआर दस जा के गऊ चरावन छाडीअले।
पांच कोस पर गऊ चरावत चीतु सु बछरा राखीअले।
कहत नामदेउ सुनहु तिलोचन बालकु पालन पउढीअले।
अंतरि बाहरि काज बिरूधी चीतु सु बारिक राखीअले॥ पृष्ठ - 972

माँ काम करती है लेकिन ध्यान बच्चे में रहता है कि कहीं बच्चा उठ तो नहीं गया, रोया तो नहीं है। ध्यान पूरा होता है।

सो इस तरह से भाई मनसुख! महाराज किरत करवाते हैं, जिम्मेवारियों से दूर नहीं करते कहते हैं कि सभी उत्तरदायित्व निभाओ, गृहस्थ में रहो, लेकिन युक्ति बताते हैं।

सो ऐसे विचार करते-करते रात बहुत हो गई। भाई मनसुख ने कहा, अब तो हम सो जाएं, अमृत बेला में जागना भी है। बाकी जो गुरू नानक की बातें हैं वह फिर बताना।

सो साध संगत जी! अब समय इजाजत नहीं देता, यहीं पर ही समाप्त करते हैं। सभी प्रेमी अब गुरू सतोतर में बोलो, जो अभी तक भी नहीं बोले, वे भी अपनी रसना गुरू महाराज के नाम से पवित्र करो।

- आनन्द साहिब -

- गुर सतोतर -

- अरदास -

3

शान...।

सतिनाम श्री वाहिगुरू,
धंन श्री गुरू नानक देव जीओ महाराज।

डंडउति बंदन अनिक बार सरब कला समरथ।
डोलन ते राखहु प्रभू नानक दे करि हथ॥ पृष्ठ - 256

फिरत फिरत प्रभ आइआ परिआ तउ सरनाइ।
नानक की प्रभ बेनती अपनी भगती लाइ॥ पृष्ठ - 289

धारना - सावण आइआ सखीए,
मोरां ने रुण झुण लाइआ - 2, 2
मोरां ने रुण झुण लाइआ - 4, 2
सावण आइआ सखीए........... - 2

मोरी रुण झुण लाइआ भैणे सावणु आइआ।
तेरे मुंध कटारे जेवडा तिनि लोभी लोभ लुभाइआ।
तेरे दरसन विटहु खंनीऐ वंञा तेरे नाम विटहु कुरबाणो।
जा तू ता मै माणु कीआ है तुधु बिनु केहा मेरा माणो।
चूड़ा भंनु पलंघ सिउ मुंधे सणु बाही सणु बाहा।
एते वेस करेदीए मुंधे सहु रातो अवराहा।
ना मनीआरु न चूड़ीआ ना से वंगुड़ीआहा।
जो सह कंठि न लगीआ जलनु सि बाहड़ीआहा॥ पृष्ठ - 557

धारना - सावण आइआ सखीए,
मोरां ने रुण झुण लाइआ - 2

सभि सहीआ सहु रावणि गईआ हउ दाधी कै दरि जावा।
अंमाली हउ खरी सुचजी तै सह एकि न भावा।
माठि गुंदाई पटीआ भरीऐ माग संधूरे।
अगै गई न मंनीआ मरउ विसूरि विसूरे॥ पृष्ठ - 558

धारना - मैं रोवंदी सभ जग रुंना,
रुंनड़े वणहु पंखेरू जी - 2, 2
रुंनड़े वणहु पंखेरू जी - 4, 2
मैं रोवंदी सभ जग रुंना,..............2

मै रोवंदी सभु जगु रुना रुंनड़े वणहु पंखेरू।
इकु न रुना मेरे तनु का बिरहा जिनि हउ पिरहु विछोड़ी।
सुपनै आइआ भी गइआ मै जलु भरिआ रोइ।
आइ न सका तुझ कनि पिआरे भेजि न सका कोइ।
आउ सभागी नीदड़ीए मतु सहु देखा सोइ।
तै साहिब की बात जि आखै कहु नानक किआ दीजै।
सीसु वढे करि बैसणु दीजै विणु सिर सेव करीजै।
किउ न मरीजै जीअड़ा न दीजै जा सहु भइआ विडाणा॥ पृष्ठ - 558

साध संगत जी! गर्ज़ कर बोलो सतनाम श्री वाहिगुरू! कारोबार संकोचते हुए आप गुरू दरबार में पहुँचे हो। जितने कदम कोई सत्संग चलकर आता है, उतना ही उसे लाभ प्राप्त हुआ करता है। सावन का महीना है और इस महीने के अन्दर जिसे गुरू से मिलाप का चाव हो, उसके अन्दर एक हूक उठा करती है, तड़प उठती है, विछोड़े का दुख न सहन करने वाले दिल में आकर्षण होता है, नेत्रों में आसुओं की झड़ी लग जाती है और प्यार भरी हूक, हृदय को आन्तरिक रूप से झकझोरती है। प्यार से भरी जिन्दगी के साथ, जो कुछ बीतता है वही जानता है। पक्षी, वनस्पति, चाहे पशु हैं, चाहे स्त्रियां हैं, चाहे कोई भी है, सभी के मन खुशियों से झूम उठते हैं। तड़प उसी के हृदय में होती है, जिसे प्यारे का मिलाप नहीं होता। उसके विलाप को हृदय में अनुभव करते हुए बोलो -

सुपनै आइआ भी गइआ मै जलु भरिआ रोइ।
आइ न सका तुझ कनि पिआरे भेजि न सका कोइ।
आउ सभागी नीदड़ीए मतु सहु देखा सोइ॥ ***पृष्ठ - 558***

नींद में उसकी प्रतीक्षा की जाती है कि शायद दिखाई दे जाये हमें; सभी मर्यादाओं को तोड़कर, बेड़ियों को तोड़कर शायद सपने में आकर दर्शन दे दे, सपने में मैं उसे जी भर कर प्यार करूं। मैं उस पर अपना सभी कुछ कुर्बान करने को तैयार हूँ जो मेरे प्यारे की बात सुना दे -

तै साहिब की बात जि आखै कहु नानक किआ दीजै।
सीसु वढे करि बैसणु दीजै विणु सिर सेव करीजै॥ ***पृष्ठ - 558***

जो प्यारे की कोई बात सुनाये उसे क्या दिया जाये? ***'सीसु वढै करि बैसणु दीजै विणु सिर सेव करीजै'*** बिना सिर के सेवा की जाये; सारा ही अभिमान, अपनी हउमै, अन्तसकरण समेत उसके चरणों में अर्पण कर दिया जाये। सो इस प्रकार सावन का महीना चल रहा है, लगभग आधा सावन बीत चुका है, वर्षा बहुत अधिक न होने के कारण मनों में उदासी छाई हुई थी, खेतों में भी नीरसता छाई हुई थी, गर्मी बहुत बढ़ रही थी और ऐसा लगता था शायद मानसून आए ही न। बहुत सुहावना मौसम बना हुआ है और इस मौसम में हम सत्संग कर रहे हैं। आज सौ नम्बर वीडियो फिल्म महाराज जी की अपार कृपा से हमारे सामने बन रही है और इससे पहले बहुत सी विचार हो चुकी हैं और विचार ऐसी चल रही थी कि गुरू नानक पातशाह सुलतानपुर में मोदी का काम कर रहे हैं और आपके पास कोई गरीब प्रेमी आ गया। उसने प्रार्थना की कि महाराज! लड़की जवान हो गई है और जवान लड़की का घर में अविवाहित रखना, समाज में उस समय के रीति रिवाजों के अनुसार पाप माना जाता था। जिस घर के अन्दर 18 साल की लड़की होती, उस घर में आकर कोई दूसरा व्यक्ति अन्न जल ग्रहण नहीं किया करता था। सो महाराज मेरी लड़की का वर मिल गया है परन्तु मेरे पास धन बिल्कुल भी नहीं है, कृपा कीजिये, मेरी सहायता कीजिए। पता चला था कि गुरू नानक पातशाह सभी के कार्य सिद्ध करते हैं।

सो आपने कहा, ''भाई! लिख दे, जो कुछ तुझे चाहिये।'' सारे सामान की सूची लिखवा दी जिसको भाई भगीरथ मलसीहां वाले जो सिखी के दायरे में आ चुके थे, उसे गुरू महाराज जी ने कहकर भेजा, ''जाओ लाहौर जाकर यह सामान ले आओ पर एक रात से ज्यादा नहीं ठहरना। यदि एक रात से अधिक ठहरा तो तेरी दरगाह (परलोक) बिगड़ जायेगी, तेरा भविष्य बिगड़ जायेगा।'' हुक्म के मुताबिक भाई भगीरथ वहाँ पहुँच गया। सभी चीज़ें मिल गईं पर एक चूड़ा (हाथों का आभूषण) तैयार नहीं था और भाई मनसुख जी, जो बहुत बड़ा व्यापारी था, उसने इसे कहा, ''भाई! चूड़े के लिये एक दो दिन रूकना पड़ेगा।'' भाई भगीरथ ने कहा, ''नहीं, शाह जी! मैं रुक नहीं सकता क्योंकि मुझे हुक्म नहीं है यहाँ ठहरने का। यदि मैं यहाँ ठहर गया तो मेरा भविष्य बिगड़ जायेगा।'' भाई मनसुख एक दम

चौंक पड़ा क्योंकि वह स्वंय जिज्ञासु था, कहने लगा, ''है कोई संसार में जिसका हुक्म न मानने से भविष्य बिगड़ जायेगा? तू किसी बादशाह का नौकर है?'' इसने कहा कि यदि बादशाह का होता तो मुझे कोई परवाह नहीं थी।

''फिर किसी और कारिन्दे का नौकर है?''

''नहीं, मैं तो गुरू नानक पातशाह का एक अदना सा गुलाम हूँ।''

''ऐसा है कोई जो सच्चे रास्ते पर चलता हो?''

सारी रात बीत गई और भाई भगीरथ ने अपना सारा अनुभव नाम जपने का तथा गुरू नानक पातशाह की जो नियमावली थी, वह बताई। उसने एक बात कही कि यदि चूड़ा न मिला, यह भी हुक्म की उलंघना के समान है। भाई भगीरथ जी की ऐसी अवस्था देखकर मनसुख जी ने कहा, ''प्यारे! मेरे घर चूड़ा पड़ा है, वह लेकर मैं भी तेरे साथ, ऐसे गुरू के दर्शन करने के लिये चलता हूँ, जिसके हुक्म को न मानकर परलोक बिगड़ जाता है। यदि मेरी तसल्ली हो गई फिर मैं भी अपने दिल का सौदा वहीं पर कर आऊंगा क्योंकि मुझे अभी तक खरीददार नहीं मिला जिसके चरणों में अपना दिल भेंट कर दूँ।'' भाई भगीरथ कहने लगा, ''यह बात अच्छी तो नहीं परन्तु तू कर लेना, ये तो मामूली बातें होती हैं। महापुरुषों की परीक्षा (अन्तावारा) नहीं लिया करते, श्रद्धा धारण करके ही घर से चलो।''

इस तरह जब वे सुलतानपुर आये तो गुरू नानक पातशाह ने फ़रमान किया कि भाई भगीरथ! सामान ले आया है, सौदा ले आया है और साथ ही भाई मनसुख को भी साथ ले आया है? मनसुख ने मन में यह धारण किया हुआ था कि गुरू नानक पातशाह मेरा नाम लेकर बुलायें और मेरे मन की बात बतायें? उसी समय चरणों पर गिर पड़ा। गुरू नानक पातशाह ने नाम की दात दे दी। दोबारा लौटकर नहीं गया, फिर तीन साल गुरू नानक पातशाह के चरणों में रहा। घर की पिछली बातें भूलकर दिन रात भजन बन्दगी करके ऐसी अवस्था प्राप्त कर ली जिसे सहज समाधि कहते हैं, सुन्न मण्डल कहते हैं -

अनहत सुंनि रते से कैसे। जिस ते उपजे तिस ही जैसे॥ ***पृष्ठ - 943***

सो वह मन भावन सेवक बन गया -

हरि के सेवक जो हरि भाए तिन्ह की कथा निरारी रे।
आवहि न जाहि न कबहू मरते पारब्रहम संगारी रे॥ ***पृष्ठ - 855***

पूर्ण पद की प्राप्ति करके, अब गुरू नानक पातशाह को दरगाह से सन्देशा आ गया कि जिस काम के लिये आपको भेजा था, दुनियाँ में बेअन्त भ्रम तथा कर्म काण्ड के बादल छाए हुए हैं, किसी भी जिज्ञासु को कोई रास्ता नहीं मिल रहा, इतने अलग-अलग मत-मतान्तर हो गये हैं कि मनुष्य भूल-भुलैया में पड़कर दुखी हो रहे हैं। कोई किसी की पूजा करता है, तो कोई किसी की आराधना करता है तथा जो सभी का कर्ता-धर्ता अकाल पुरुष, वाहिगुरू, करोड़ों ब्रह्मण्डों का मालिक है, उसकी तरफ से सभी का ध्यान उठ चुका है। किसी को पता नहीं चलता कि परमेश्वर कौन है, कहाँ रहता है। उसकी प्राप्ति कैसे होती है। और उस समय महाराज जी ने बेई नदी में डुबकी लगाई। सभी को विदा कर दिया। कौतुक रचाया। उस समय भाई मनसुख के नेत्रों में प्रेमाश्रु भरे हैं, अति वैराग में आ गया, विरहायुक्त हो गया क्योंकि बिछौड़ा बहुत कठिन हुआ करता है। साध संगत जी! जिसका प्यार सच्चा होता है, उससे बिछुड़ना बहुत कठिन हो जाया करता है, मन नहीं करता। एक तरफ प्यार है, एक तरफ हुक्म है। हुक्म मानने में कल्याण है, प्यार को अपने अन्दर ही समा देने में मजबूर है और हुक्म में बन्धा हुआ महाराज

जी से विदा होता है और साथ ही प्रार्थना करता है, इस तरह पढ़ो सभी –

धारना – ना विसरो महाराज,
हीए ते ना विसरो – 4, 2

कबहू न बिसरै हीए मोरे ते नानक दास इही दानु मंगा॥ पृष्ठ – 824

भाई मनसुख प्रार्थनाएं करता है –

काम क्रोध लोभ झूठ निंदा इन ते आपि छडावहु।
इह भीतर ते इन कउ डारहु आपन निकटि बुलावहु।
अपुनी बिधि आपि जनावहु। हरि जन मंगल गावहु॥ पृष्ठ – 617

तीन साल गुरू नानक पातशाह के पास रहकर अपने कार्य में फिर आ फंसता है। महाराज जी फ़रमान करते हैं, ''भाई मनसुख! जो सिख गुरू के साथ मिल गया, गुरू उससे कभी बिछुड़ा नहीं करता, हर समय उसकी रक्षा करता है।''

सतिगुरु सिख की करै प्रतिपाल। सेवक कउ गुरु सदा दइआल॥ पृष्ठ – 286

दयालु रहता है। तू बन्दगी करना, जिस जगह भी जायेगा उन्हें भी बन्दगी करने में लगाना क्योंकि बन्दगी करने वाले पुरुष यदि एक स्थान पर बैठे रहें तो उनके लिये वातावरण तो शुद्ध हो जाया करता है परन्तु यदि दूर दराज़ चले जायें तो जहाँ भी जायेंगे, वहीं पर ही संगत बना लिया करते हैं।

गुरू नानक पातशाह एक नगर में गये। नगर वालों ने बैठने न दिया और कोई जगह भी न दी, जलपान के लिये भी न पूछा और यहाँ तक कह दिया कि आप यहाँ नहीं ठहर सकते, वृक्षों के नीचे भी नहीं बैठ सकते, जल्दी ही यहाँ से कहीं और चले जाओ। गुरू नानक पातशाह ने उन्हें वचन दिया कि अच्छा भाई, आप यहीं पर बसो। यह कहकर आगे चल दिये। आगे जाकर एक नगर में देखा कि वहाँ पर बहुत सेवा हो रही है। एक से बढ़कर एक सेवा कर रहा है, बन्दगी कर रहा है, नाम जप रहा है। आपकी भी बहुत सेवा की। कीर्तन श्रवण किया और आपके प्रवचन बहुत ही प्यार के साथ, ध्यान के साथ, एकाग्रचित्त होकर सुनते रहे। जब आप वहाँ से चलने लगे तो आशीष दी कि आप भाई उजड़ जाओ। मरदाना हैरान हो गया और कहने लगा, ''पातशाह! मेरी समझ से बात बाहर हो गई। जिन्होंने आपको बैठने भी नहीं दिया, उन्हें तो आपने आर्शीवाद दिया कि बसते रहो और जिन्होंने तन-मन-धन के साथ सेवा की, उन्हें आपने उजड़ जाने का आर्शीवाद दिया।'' गुरू नानक पातशाह ने कहा, ''मरदाना! हमने कहा था, बसते रहो क्योंकि वे बदबूदार जीवन थे, बहुत बुरे जीवन थे, परमेश्वर को भूले हुए, नास्तिक, साकत, बेमुख, मनमुख, दुनियाँ भर की बुराईयाँ उनमें समाई हुई हैं। वे इस तरह समझ लो जैसे छूत की बीमारी को एक जगह बन्द कर दें। वह छूत की बीमारी थी, जहाँ भी वे जाते, वहीं पर नास्तिकता ही फैलाते, बद-अमनी फैलाते, बे-मरियादा फैलाते तथा हमने इसीलिये कहा था कि आप यहीं पर ही सीमित रहो, यहीं पर ही बन्द रहो। मरदाना! जो यहाँ पर प्रेमी रहते हैं इनके अन्दर प्यार है, जहाँ भी ये जाएंगे, वहीं पर ही अपनी संगत बना लेंगे। यहाँ का प्रत्येक व्यक्ति, जहाँ भी जायेगा, अपना चौगिर्दा प्रेम से भरपूर कायम कर लेगा, सच का ढिंढोरा बजायेगा, सच का ज्ञान देगा। मरदाना, ऐसे लोगों का एक स्थान पर टिके रहना ठीक नहीं हुआ करता और इन्हें तो दूर-दराज़ तक फैल जाना चाहिए। इसलिये हमने इन्हें यह जो उजड़ जाओ कहा था, यह एक वरदान दिया है।'' सो इस प्रकार गुरू महाराज जी कहने लगे, ''भाई मनसुख! जहाँ भी तू जाए, वहाँ जाकर संगत बना लेना। स्वयं भी बन्दगी करते रहना। गुरू घर की जो भी मर्यादा है, उसे प्रचलित करना और भूले भटकों को परमेश्वर का ज्ञान करवाना।'' इस प्रकार भाई मनसुख जाकर अपने कारोबार में व्यस्त हो गया। काफी समय बीत गया। गुरू

महाराज जी पहली उदासी के पश्चात वापिस लौट आये। कितने वर्ष बीत गये और उसके बाद एक दिन आप सहज स्वभाव बिराजमान हैं। दुनियाँ को भ्रम होता है कि सन्त सोये हुए हैं, जो पूर्ण महात्मा होते हैं, वे सोया नहीं करते कभी भी।

एक बार महाराज जी (श्री 108 सन्त ईशर सिंघ जी महाराज) के पास वचन चल पड़ा। महाराज जी ने स्वाभाविक ही फ़रमान कर दिया कि भाई! हम रात को सोते नहीं हैं। और मैंने कह दिया, ''महाराज! आप चारपाई पर बैठे रहते हो?'' महाराज जी ने कहा, ''चारपाई पर हमारा शरीर हुआ करता है, पर हम नहीं होते।'' मैंने पूछा, ''महाराज! आप कहाँ होते हैं?'' आपने कहा, ''हम दूर-दराज़ जहाँ कोई याद करता हो, किसी को हम सपने में दर्शन देते हैं, किसी की हम उसके कार्य में सहायता करते हैं, जैसी जिसकी भावना होती है, वैसा ही हो जाया करता है। हमें जागते रहने की अपेक्षा, जब हम आराम करके शरीर में से निकलते हैं उस समय बहुत काम हुआ करते हैं।'' तीसरा प्रश्न मैंने फिर और कर दिया। मैंने कहा, ''महाराज जी! फिर आप शरीर में वापिस कैसे आते हो, जब आप शरीर से चले ही गये?'' तब आपने बहुत ही रहस्यमयी बात बताई। कहने लगे, ''एक सिल्वर कोड होती है, एक तार होती है प्रकाश की। उस प्रकाश की तार के द्वारा शरीर से सम्बन्ध जुड़ा रहता है। इसलिये सन्तों महापुरुषों को कभी भी आवाज़ देकर जगाना नहीं चाहिये। धीरे-धीरे किसी वस्तु का ऐसा प्रबन्ध हो जिससे वह धीरे-धीरे जाग जायें, शरीर में आ जायें। यदि वह सिल्वर कोड टूट जाए तो फिर बाहर रह जाया करते हैं।

सो गुरू नानक पातशाह महाराज दृश्य रूप में बिराजमान हैं और उस समय माता त्रिपता जी ने दासी को कहा, ''तुलसां! मैंने भोजन तैयार कर लिया है, नानक जी को बुलाकर ला, वह सामने चारपाई पर बिराजमान हैं।'' सो वह वहाँ चली गई, जब वहाँ जाकर देखती है तो इसकी हिम्मत नहीं पड़ती। गुरू नानक जी के दर्शन किये। जिसने भी गुरू नानक के दर्शन किये हैं, अपने आप ही उन्हें ज्ञान हो जाता है क्योंकि प्रभाव ही इतना था। स्वंय अकाल पुरुष, गुरू रूप धारण करके, गुरू नानक रूप में प्रकट हुए थे। सो वह बात को समझ गई, उसने चरणों के अँगूठे के साथ मस्तक लगा दिया ताकि इस स्पर्श से जाग जायें। मस्तक चरणों के अँगूठे से स्पर्श करने की देर थी, साध संगत जी! उसी समय जो बज्र कपाट होते हैं, वे तड़ाक से खुल गये। खुलते ही उसे आगम-निगम का ज्ञान हो गया। क्या देखती है, गुरू नानक पातशाह शरीर में नहीं हैं, कहीं गये हुए हैं, गये हुये कहाँ हैं? भाई मनसुख जहाज लेकर जा रहे हैं, माल भरा हुआ है और लंका के समुद्र के आस पास जहाज जा रहा है। संगलाद्वीप के निकट पहुँचे ही थे कि ऐसा ज्वारभाटा आया, ऐसी लहरें ऊँची-ऊँची उठनी शुरू हो गई कि कदम-दर-कदम जहाज बरेते की ओर बढ़ता चला आ रहा है और मल्लाह पूरा ज़ोर लगा रहे हैं, परन्तु कुछ भी कर सकने में असमर्थ हैं। उस समय मल्लाहों ने कहा, ''शाह जी! गुरू पीर का ध्यान धरो, इस समय हमें कोई भी नहीं बचा सकता, यदि बरेते में जहाज चढ़ गया तो महीनों हमें भूखे प्यासे इन्हीं जंगलों में रहना पड़ेगा। उस समय भाई मनसुख जी नेत्र बन्द करते हैं, गुरू नानक के चरणों में तो हर समय रहता था उस समय सावधान होकर गुरू के पास इस प्रकार प्रार्थना करता है -

धारना - बेड़े डुबदे नूं पार लंघा दे,
पैज रक्खीं मेरी मालका - 2, 2
पैज रखीं जी मेरी मालका - 2, 2
बेड़े डुबदे नूं पार लंघा दे............ - 2

राखु पैज नाम अपुने की करन करावन हारे। प्रभ जीउ खसमाना करि पिआरे।

बुरे भले हम थारे। सुणी पुकार समरथ सुआमी बंधन काटि सवारे।
पहिरि सिरपाउ सेवक जन मेले नानक प्रगट पहारे॥ *पृष्ठ - 631*

प्रकट होकर महाराज जी ने बेड़े को किनारे लगा दिया। जो उथल पुथल समुद्र में हो रही थी, शान्त हो गई, बेड़ा स्थिर हो गया, समुद्र भी शान्त स्थिर हो गया और अपने रास्ते संगलाद्वीप की ओर चल पड़ा। इधर यह काफी देर तक खड़ी कौतुक देखती रही। आवाज़ आई, ''तुलसां! जगाया नहीं नानक को।'' कहती है, ''जी, मैं कैसे जगाऊँ?''

''क्यों?''

''वह तो समुद्र में गुरसिख का, जिसका नाम मनसुख है, उसका बेड़ा पार करवा रहे हैं। उसका जहाज डूब रहा था, मैं नानक जी को कैसे जगाती?''

माता त्रिपता स्वंय आ गई, आकर आवाज़ लगाई, ''बेटा, नानक! अब तो घर के दास और दासियाँ भी मखौल करने लग पड़ी हैं, पहले तो भाईचारा ही कहा करता था।''

आपने कहा, ''माता! क्या किसी ने तुम्हारे साथ मखौल किया है?''

कहने लगी, ''इस तुलसां दासी ने यह बात कही है।''

आपने कहा, ''लो, वह तो मस्तानी है।'' बेबे नानकी जी, जो गुरू महाराज जी की बड़ी पूजनीय बहन थी, ने हाथ जोड़ लिये और बोली, ''भैया! और कठोर वचन मत करना, बेचारी गरीबनी है।''

आपने कहा, ''बेबे जी! यह अनजान भोली नहीं होगी, अजर को जर (पचा) जायेगी, क्योंकि इसे त्रिभुवन का ज्ञान हो गया है, इसके बज्र कपाट खुल चुके हैं? यह ठीक कह रही है, हम सिख का बेड़ा पार करवा रहे थे परन्तु यह बात प्रकट नहीं करनी चाहिए थी।''

सो इस प्रकार भाई मनसुख जी ने अपना जहाज किनारे पर जा लगाया। सामान बन्दरगाह पर उतार कर शहर में जाकर सुन्दर रमणीक सथान पर जहाँ बाज़ार था, वहाँ पर अपने जहाज में लदा सामान उतार कर सुरक्षित स्थान पर रख दिया। और धीरे-धीरे सामान बिकना शुरू हो गया। आपने एक जगह पर एकान्त में डेरा लगाकर, गुरसिखी की मर्यादा के अनुसार अमृत बेला में उठ जाना, पहर रात रहते स्नान करना, चौकड़ी लगाकर बैठ जाना, अढ़ाई घंटे प्रभु का सिमरण करना। उसके पश्चात जो बाणी इकट्ठी करके ले गये थे, वह सारी बाणी गा कर पढ़ना। उसके बाद कोई कथा हुआ करती। वहाँ के लोगों ने आकर बैठ जाना और उनकी बोली में भाई मनसुख ने गुरू नानक सिद्धान्त को समझाना। इसके पश्चात प्रसाद बांटना। देग बांटने के पश्चात अपना काम-काज शुरू करना और शाम के समय फिर वही हरि यश करना, आरती करनी, कीर्तन सोहिला पढ़कर फिर बिराजमान हो जाना। इस तरह से यह आपका नितनेम था क्योंकि अमृत बेला को गुरू महाराज जी ने रूहानी सफर के लिये बहुत श्रेष्ठ तथा सहायक बताया है -

धारना - अंम्रित वेले ओ सुणी तैं पुकार - 2, 2
भागां वालिआं नूं अंम्रित मिलदै - 2, 2
अंम्रित वेले ओ,............ - 2

अमृत बेला में, पहर रात रहते जाग जाना, स्नान करना और प्रभु की याद में इस तरह बैठ जना है, जैसे सावन के महीने में पपीहा बोला करता है, स्वाति बूंद की प्रतीक्षा में रहता है। यदि सावन

में स्वाति बूंद मिल जाये तो प्यास बुझ जाती है, यदि न मिले तो उसका दर्द वही जानता है। सो महाराज जी कहते हैं इसी तरह से जो जिज्ञासु है, वह पपीहे की तरह अमृत बेला में वाहिगुरू के पास पुकार करता है। उसके नाम की स्वाति बूंद मांगता है। भाग्यशाली हैं वे, जिन्हें नाम अमृत की दात प्राप्त हो जाया करती है –

बबीहा अंम्रित वेलै बोलिआ..........॥ पृष्ठ - 1285

जब बोला तो आगे सुन्न-मुन्न तो नहीं है, महाराज जी कहते हैं –

.............तां दरि सुणी पुकार। पृष्ठ - 1285

पुकार सुनी गई। उस समय –

मेघै नो फुरमानु होआ वरसहु किरपा धारि॥ पृष्ठ - 1285

जाओ, नाम की झड़ी लगा दो, इसी प्रकार जब पपीहे के समान कूकते हुए जिज्ञासु की पुकार सुनी जाती है तो नाम अमृत की झड़ी लग जाती है –

झिमि झिमि वरसै अंम्रित धारा॥ पृष्ठ - 102

अमृत की धारा झिम-झिम बरसनी शुरू हो जाती है –

हउ तिन कै बलिहारणै जिनी सचु रखिआ उरिधारि।
नानक नामे सभ हरीआवली गुर कै सबदि वीचारि॥ पृष्ठ - 1285

इस तरह से अमृत बेला में उठ जाता है, स्वंय नाम जपता है, जितना गुरसिखी का मण्डल तैयार किया है, वे सभी अमृत बेला में उठ जाते हैं तथा सभी इकट्ठे हो जाते हैं; नाम जपने की विधि बताई हुई है। इकट्ठे बैठकर नाम जपते हैं, फिर दिन निकल आता है –

फिरि चड़ै दिवसु गुरबाणी गावै बहदिआ उठदिआ हरिनामु धिआवै॥ पृष्ठ - 305

फिर परमेश्वर के ध्यान में रहता है, हाथों से काम करता है तथा चित्त गुरू नानक के चरणों में एक सैकिन्ड के लिये भी नहीं बिछुड़ता क्योंकि पूर्ण सतगुरू मिल गया; ज्ञान करवा दिया। इसके बाद काफी समय बीत गया और आज एकादशी का दिन आ गया। इस समय बहुत से व्रत रखते हैं। सारे भारत वर्ष में व्रत रखते हैं तथा बहुत सख्त नियमों का पालन किया जाता है। एकादशी के व्रत में, यदि कोई अन्न खा ले तो उसे इतना दोष लगता है कि उसे यमों के चक्कर में पड़ना पड़ता है और बहुत दुख दिये जाते हैं। उस पर गरीबी छा जाती है। वहाँ के राजा को जैसा कर्मकाण्डियों ने बताया हुआ था, उसी तरह से उसने घोषणा करवा दी दशमी वाले दिन, कि कल एकादशी है, कोई भी व्यक्ति चूल्हे में आग नहीं जलायेगा। सभी ने व्रत रखना है तथा दशमी के दिन भोजन करने के बाद द्वादशी वाले दिन, एक दिन छोड़कर व्रत खोलने से पहले सभी ने मन्दिर जाना है, वहाँ पर सालिग्राम की पूजा करनी है और चरणामृत लेना है, उसके बाद चरणामृत लेकर व्रत खोलना है।

भाई मनसुख ने भी सुना, सालिग्राम की पूजा और तुलसी की पूजा के बारे में भी सुना। गुरू नानक का सिद्धान्त कोई और था। वह जीवित सालिग्राम (ठाकुर) को मानते थे और नरोआ व्रत रखते थे। नरोआ व्रत एक दिन नहीं रखवाया करते थे गुरसिखों से हर वक्त रखवाते थे – अल्प आहार का। सो इस समय आप जी ने नितनेम के हिसाब से देग तैयार की, उसी तरह से कड़ाह प्रसाद बांटा गया। शोर मच गया कि यहाँ तो किसी ने चूल्हे में आग जलायी है और धुआं निकल रहा है। सुबह होते ही लंगर तैयार हो गया। जितने जरूरतमन्द थे, सभी ने प्रसाद खाया। शाम को फिर लंगर तैयार हुआ, फिर जरूरतमन्दों ने भोजन खाया। सभी जगह शोर मच गया। अकेला-अकेला व्यक्ति आकर उससे बातें करता

है, ''परदेसी! तूने यह क्या किया। राजा का हुक्म था कि आग नहीं जलानी। तूने दिन में तीन बार आग जलायी है, यह तूने क्या किया? बहुत बुरा काम किया है। हमारे देश की जो प्रथा थी वह तूने तोड़ दी।'' बहुत हिम्मत थी मनसुख में, बहुत ज्ञान था, पूरा ज्ञान था, विश्वास था – गुरू का। मनसुख ने कहा, ''हमने तो कुछ भी नहीं किया। जैसा हमारे गुरू ने हमें बताया हुआ है, हमने वैसा ही किया है।'' उस समय राजा के दरबार में शिकायत पहुँची। राजा ने कहा, ''हैं! इस जज़ीरे (टापू) पर भी कोई ऐसा व्यक्ति आ गया? क्योंकि भारत वर्ष पर, हमने सुना है, यवनों (इस्लाम वालों) का राज्य हो गया है। उन्होंने मन्दिरों की मर्यादा तोड़ दी है, ज़ोर जबरदस्ती करके जनता को इस्लाम धर्म कबूल करवाना शुरू कर दिया है और कर्म-धर्म का पालन करना बहुत कठिन हो गया है। मेरे टापू पर, मेरे राज्य में तो सभी जगह हिन्दू धर्म है, बुद्ध धर्म को मानने वाले बौद्धी हैं, यहाँ तो ऐसी बात नहीं होनी चाहिये। कौन है ऐसा व्यक्ति जिसने मेरे हुक्म की उलंघना की है? उसे हाज़िर किया जाये। मैं पूछना चाहता हूँ कि वह किस धर्म का मानने वाला है?''

सो भाई मनसुख जी को हाज़िर किया गया। भाई मनसुख जी का पूरे जलाल वाला चेहरा इतना प्रभावशाली था, चेहरे पर इतनी आभा थी कि राजा शिवनाभ ने जब दर्शन किये, उस समय अन्दर से डर गया। एक कम्पन सी हुई। उसकी पवित्रता के सामने वह बोल न सका। राजा शिवनाभ को उसने बिठा लिया और पूछा, ''परदेशी! क्या नाम है तुम्हारा?''

इसने कहा, ''इस शरीर को मनसुख कहा जाता है।''

तुझे पता नहीं मैंने परसों क्या ऐलान किया था? फिर भी तूने कल चूल्हे में आग जलाई है, एक बार नहीं, तीन बार जलायी है। न ही तू मन्दिर आया, न ही तूने ठाकुर जी की पूजा की है, न ही तूने सालिग्राम का चरणामृत लिया है, न ही तुलसी की पूजा की है और यह तूने मर्यादा का उल्लंघन किया है; तू हिन्दू है या तेरा कोई अन्य धर्म है?''

मनसुख ने कहा, ''जन्म मेरा हिन्दू है लेकिन मुझे पूरा सतगुरू मिल गया। राजन! दो रास्ते हुआ करते हैं। एक चींटी का रास्ता हुआ करता है, एक विहंगम रास्ता होता है या पन्छियों वाला हुआ करता है। वृक्ष पर फल लगा हो, चींटी जो है वह धीरे-धीरे जाती है, पता नहीं फल तक पहुँच सके या न भी पहुँचे, दूरी पर फल लगे हों लेकिन जो पन्छी है वह एक दम उड़ान भर कर, फल तक पहुँच कर, फल चख लेता है, खा लेता है।

भारत वर्ष में कर्म काण्डों की प्रधानता है। आपके देश में भी वही मर्यादा है। आप कर्मों में प्रवृत्त हो। सकाम कर्मों के फल स्वर्ग लोक तक पहुँचाते हैं, परम पद की प्राप्ति के लिये रास्ता और है। कलयुग का समय है, तीर्थ, व्रत, दान आदि फल देने में असमर्थ हैं। कर्म करने के बाद प्रभु को समर्पण करने की बजाए, हंगता धारण करते हैं तथा अपने कर्मों का अभिमान करने के फलस्वरूप, जो फल मिलना चाहिये था, वह नहीं मिलता, विफल हो जाता है –

तीरथ बरत अरु दान करि मन मै धरै गुमानु।
नानक निहफल जात तिहि जिउ कुंचर इसनानु॥ — *पृष्ठ – 1428*

व्रत रखना, तीर्थ यात्रा करना, दान करना, ये जितने भी कर्म हैं, यदि कोई यह कहता है कि मुझे ये कर्म करने से परमेश्वर मिल जायेगा, नहीं मिल सकता। महाराज जी ने इन्हें फोकट कर्म कहा है। थे तो ये कर्म अच्छे, पर अच्छे तभी हैं यदि नाम साथ हो। यदि नाम नहीं है तो जीरो-जीरो (zero) लगाते चले जाओ, जितने मर्ज़ी लगा लो। यदि नाम का ऐका लगा लो, तब कर्म की कीमत पड़ सकती

है, यदि ऐका नाम का न लगाओ तो कोई मूल्य नहीं हुआ करता। सो ये जितने भी कर्म हैं ये तो कल्लर भूमि पर सिचांई करने के समान हुआ करते हैं और परमेश्वर का नाम जो है यह जीव को पार करवाता है। सो वास्तविक सालिग्राम को जानने का यत्न करो। गुरू महाराज का फ़रमान है, क्यों जन्म गवाँते हो? कर्म-धर्म कलयुग में फलीभूत नहीं हुआ करते, इसका कारण मैं पहले बता चुका हूँ। अब केवल नाम योग ही सफल साधना है, जिसके द्वारा हम निर्वाण प्राप्त कर सकते हैं। सो अब कर्म-धर्म बीजने का मौसम नहीं है, अब तो परमेश्वर का नाम जपने का समय है। इस तरह पढ़ो प्यार से -

धारना - कल्लर सिंज के किउं जनम गवाउंदैं, राम नाम जप लै बंदिआ - 2, 2
राम नाम ओ जप लै बंदिआ - 2, 2
कल्लर सिंज के किउं जनम............ - 2

कहने लगा, ''राजन! विचार की बात है, आप ध्यान से श्रवण करो। फिर आपको सारा जवाब मिल जायेगा।''

सालग्राम बिप पूजि मनावहु सुक्रितु तुलसी माला॥ पृष्ठ - 1171

ठीक है आप सालिग्राम की पूजा करते हो - एक पत्थर को प्रतीक समझ कर, लेकिन हम सालिग्राम को परिपूर्ण समझते हैं और जानते हैं। घट-घट में सभी के अन्दर बाहर सभी की जानने वाला, करोड़ों ब्रह्मण्डों का मालिक है। तुलसी की माला की जगह राम नाम के जाप की माला बनाई गई है -

रामु नामु जपि बेड़ा बांधहु दइआ करहु दइआला।
काहे कलरा सिंचहु जनमु गवावहु॥ पृष्ठ - 1171

कल्लर भूमि की क्यों सिचांई किये जाते हो? क्यों जन्म बर्बाद किये जाते हो? कल्लर धरती में पड़ा हुआ बीज हरा नहीं हुआ करता। अब तो समय राम नाम का जप करके भवसागर से पार होने के लिये, बेड़ा तैयार करने का है। बीता हुआ समय वापिस लौटकर नहीं आया करता। राम नाम जप के बिना जन्म व्यर्थ चला जाता है। कच्ची दीवार, बहुत अधिक बरसातों में, बाढ़ में, आग और पानी में घुल जाती है, मकान गिर जाते हैं -

काची ढहगि दिवाल काहे गचु लावहु॥ पृष्ठ - 1171

सो यह जो कच्ची दीवार है, वर्षा होनी शुरू हो जाए, यह गिर जायेगी भाई! इसमें क्यों गारा लगाये जाते हो?

कर हरिहट माल टिंड परोवहु तिसु भीतरि मनु जोवहु॥ पृष्ठ - 1171

जिस प्रकार हलट चलता है, इसी तरह सहज ही श्वांस के साथ-साथ अन्दर जाते समय 'वाहि' बाहर आते समय 'गुरू' कह। महाराज कहते हैं, इस तरह से बाल्टियाँ भरो नाम के साथ, मन को इसके साथ लगाओ -

कामु क्रोधु दुइ करहु बसोले गोडहु धरती भाई॥ पृष्ठ - 1171

काम और क्रोध जो खुरपे हैं, इनसे इनको बाहर निकाल दो। इन्हें काट दो। इनके स्थान पर क्षमा, सन्तोष, विवेक, नम्रता आदि स्थान लेगीं और पाँच विषय पाँच चोर, पाँच अहंकार निन्दा, चुगली, ईर्ष्या, आशा अन्देशा, तृष्णा, नास्तिकता ये नदीण (खरपतवार) हैं - शरीर के अन्दर। जैसे किसान खुरपा लेकर मक्की के खेत में से खरपतवार बाहर निकालता है, अकेली मक्की रखता है या कपास आदि में से बाहर निकाल देता है या अन्य सब्जियों में खरपतवार नहीं उगने देता, इसी तरह से बसौले (खुरपे) लेकर

इसकी गोड़ाई करो भाई।''

जिउ गोडहु तिउ तुम्ह सुख पावहु किरतु न मेटिआ जाई।। पृष्ठ - 1171

जितनी गोड़ाई करते जाओगे - एक बार, दो बार, चार बार, उतनी ही नमी इसमें रहेगी। जितनी गोड़ाई करके तुम विकार भाव, पाँच चोर, पाँच विषय, पाँच अहंकार, शबद, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध; राज, माल, रूप, जात, यौवन; काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, निन्दा, चुगली, ईर्ष्या, द्वैष, इनकी जड़ें काटोगे, उतना ही सुख तुम्हें प्राप्त होगा। फिर अन्तर क्या होगा? जीवन बदल जायेगा राजन! जो साधारण मनुष्य है, जिसे कोई नहीं जानता उसका मान सम्मान होने लग जायेगा; जिसे कोई अपने पास खड़ा भी नहीं होने देता, उसका सभी आदर करने लग जायेंगे, क्योंकि उसका जीवन पक्का हो गया -

बगुले ते फुनि हंसुला होवै जे तू करहि दइआला॥ पृष्ठ - 1171

बगुला फिर हंस बन जायेगा।

हे राजन! हम ऐसा व्रत रखते हैं, इस तरह से हम सालिग्राम को पूज कर मनाते हैं। यदि पूर्ण गुरू की प्राप्ति नहीं होती तो जन्म लेना ही धिक्कार है क्योंकि मन्त्र प्राप्त नहीं हुआ-

गुरमंत्र हीणस्य जो प्राणी ध्रिगंत जनम भ्रसटणह॥ पृष्ठ - 1357

जिसे पूर्ण गुरू ने मन्त्र नहीं दिया, उसका जन्म धिक्कारणीय है और भ्रष्ट माना गया है -

कूकरह सूकरह गरधभह काकह सरपनह तुलि खलह॥ पृष्ठ - 1357

बेशक वह राजगद्दी पर बैठा हो, चाहे वह सबसे अधिक पैसे वाला धनवान हो, करोड़ों अरबों का मालिक हो, महाराज कहते हैं कि फिर क्या हो गया, खरबों का मालिक है -

जे जुग चारे आरजा होर दसूणी होइ।
नवा खंडा विचि जाणीऐ नालि चलै सभु कोइ।
चंगा नाउ रखाइ कै जसु कीरति जगि लेइ।
जे तिसु नदरि न आवई त वात न पुछै के।
कीटा अंदरि कीटु करि दोसी दोसु धरे॥ पृष्ठ - 2

यह जो कीड़ों में कीड़े पड़ते हैं, परमात्मा के घर में उनको इतनी भी महानता नहीं मिलती।

साध संगत जी! यहाँ कल अखबार में गिनती लिखी हुई थी कि हिन्दुस्तान में बिड़ला का, घनाढय लोगों में सातवाँ नम्बर है। अमेरिका में 52 वां है। सौ सवा सौ की गिनती में है - करोड़ों पति, अरबों पति।

महाराज कहते हैं, ''कोई बात नहीं चाहे अरबपति हो, खरब पति हो, परमात्मा की दरगाह में तो कुछ भी नहीं। यदि उसके पास परमात्मा का नाम नहीं है, वह निर्धन है। सो भाई मनसुख ने कहा, ''राजन! जब तक सतगुरू प्राप्त नहीं होता, नाम प्राप्त नहीं होता, तब तक मनुष्य का कोई मूल्य नहीं, ***'कूकरह सूकरह गरधभह काकह सरपनह तुलि खलह।'*** कुत्ते, बिल्ले, साँपों सूअरों, गधों और कौवों जैसी दशा उसकी हुआ करती हैं। जो बड़बड़ाता है संसार में, बड़बड़-बड़बड़ करके सोया हुआ सपने देख रहा है -

तिही गुणी संसारु भ्रमि सुता सुतिआ रैणि विहाणी॥ पृष्ठ - 920

एक, दो, चार नहीं सोये हुए, सारा संसार ही सोया पड़ा है। सारा संसार रजोगुण, तमोगुण, सतोगुण के अन्दर खेल रहा है। गुरू जगाते हैं -

जाग लेहु रे मना जाग लेहु कहा गाफल सोइआ।

जो तन उपजिआ संग ही सो भी संग न होइआ।
मात पिता सुत बंध जन हितु जा सिउ कीना।
जीउ छूटिओ जब देह ते डारि अगनि मै दीना॥ *पृष्ठ - 726*

बार-बार जगाते हैं, इसे लेकिन क्या मज़ाल है यह इतनी गहरी नींद में सो गया कि यह जाग जाये? कोई तमोगुण में सोया पड़ा है, कोई रजोगुण में सोया पड़ा है, कोई सतोगुण में सोया पड़ा है। महाराज कहते हैं सारा संसार जो है यह तीन गुणों के अन्दर समाया है। तुरियातीत अवस्था, जहाँ पहुँच कर परमेश्वर हाज़िर-नाज़िर दिखाई देता है, जहाँ पहुँच कर दूसरा कोई दिखाई ही नहीं देता, वाहिगुरू ही दृष्टि में आता है सभी के अन्दर, वहाँ पर कोई विरला ही पहुँचता है। तुरिया अवस्था में अपने स्वरूप का पूर्ण ज्ञान होता है। अन्धेरे में पड़ी रस्सी प्रकाश हो जाने पर साँप नहीं दिखाई देती -

धारना - तीन विआपै जगत कउ,
तुरीआ पावै कोइ - 2, 2
तुरीआ पावै कोइ - 4, 2
तीन विआपै जगत कउ,............ - 2

तीनि बिआपहि जगत कउ तुरीआ पावै कोइ।
नानक संत निरमल भए जिन मनि बसिआ सोइ॥ *पृष्ठ - 297*

राजन! ये जितने कर्म, धर्म, व्रत, नियम आदि षट कर्म हैं, ये सभी इन तीन गुणों का ही खेल है। चाहे कोई राजा हो या प्रजा, पढ़ा लिखा हो या अनपढ़, कथा वाचक हो या श्रोता, सभी इन्हीं तीन गुणों के अधीन है। कोई विरला व्यक्ति है जिसके मन में यह पक्का भरोसा 24 घन्टे रहता है कि यह जो सृष्टि है, इसमें वाहिगुरू जी के अतिरिक्त और कोई नहीं है। जिसे यह बात हर समय याद रहती है, उसे नाम की प्राप्ति हुआ करती है। शेष सभी की तरदद (परिश्रम) है, मेहनत है कि हम आत्म स्थिति में पहुँच जाएं। कोई विरला ही है तुरिया अवस्था में, शेष सारा संसार तो तीन गुणों में ही रहता है -

त्रितीआ त्रै गुण बिखै फल...................॥ *पृष्ठ - 297*

इसका फल क्या होता है, विष इकट्ठी करता है तीन गुणों में-

.......................कब उतम कब नीचु। *पृष्ठ - 297*

कभी बहुत बढ़िया बन जाता है, कभी बहुत नीच होकर कहना शुरू कर देता है। कभी भजन करने को मन करता है, कभी कहता है, मेरा दिल नहीं करता है। विष के फल इकट्ठे करता चला जाता है -

नरक सुरग भ्रमतउ घणो सदा संघारै मीचु।। *पृष्ठ - 297*

इसका फल क्या होता है, जो ये फल इकट्ठे करता है। कभी पैदा हो गया, कभी मर गया, कभी नरक में चला गया, कभी पुण्य करके स्वर्ग में चला जाता है -

हरख सोग सहसा संसारु हउ हउ करत बिहाइ॥ *पृष्ठ - 297*

कभी हर्ष में, खुशी में आ जाता है, कभी शोक में डूब जाता है और हऊं-हऊं, मैं, मैं करता है - मैंने ये किया है, मैंने वो किया है। किसी के साथ छेड़खानी करके देख लो, मैं नहीं इसकी खत्म होती। मैंने इसे कहा तब ऐसे हुआ, मैंने उसे समझाया तब जाकर वह समझा -

जिनि कीए तिसहि न जाणनी...................॥ *पृष्ठ - 297*

जिस वाहिगुरू ने सभी कुछ किया हुआ है उसे जानने की बिल्कुल भी कोशिश नहीं करता

–

..................चितवहि अनिक उपाइ।
आधि बिआधि उपाधि रस कबहु न तूटा ताप॥ *पृष्ठ - 297*

कर्म करने से आधि, बिआधि, उपाधि ये तीन प्रकार के ताप कभी नहीं मिटा करते –

पारब्रहम पूरन धनी नह बूझै परताप।
मोह भरम बूडत घणो महा नरक महि वास॥ *पृष्ठ - 297*

मोह वश पाँच भ्रमों में डूबा पड़ा है, *'महा नरक महि वास'* महा नरकों में, दुखों में, इसका वासा हो गया है –

करि किरपा प्रभ राखि लेहु नानक तेरी आस॥ *पृष्ठ - 297*

भाई मनसुख ने कहा, ''राजन! संसार सपना ले रहा है, एक, दो, चार नहीं, सारा संसार सोया पड़ा है और सपने में चित्त लगाया हुआ है। तीन गुणों की नींद में सोते हुए, इसने परमेश्वर, जो हर समय हाज़िर-नाज़िर है, हर समय साथ रहता है, जिसने सभी कुछ बनाया है, एक सैकिन्ड के लिये भी इसके मन में, चित्त में नहीं आता। यदि कहीं एक सैकिन्ड के लिये भी आ जाये तो –

ऐक चित जिह इक छिनु धिआइओ काल फास के बीच न आइउ॥ *अकाल उसतति*

वह कभी भी काल के फांस में नहीं आयेगा, ऐसा परमेश्वर का नाम है। बाकी संसार जो है, यह सारा संसार सपने ले रहा है। इस तरह पढ़ लो –

धारना - ला लिआ मूरखा,
चित नाल सुपने दे - 2, 2
नाल सुपने दे चित नाल सुपने दे - 2, 2
ला लिआ मूरखा चित............... - 2

सुपने सेती चितु मूरखि लाइआ॥ *पृष्ठ - 707*

तीन गुणों में सपने ले रहा है। अधिआस परिपक्व हो गया है। अपने आत्म पदार्थ को नहीं जानता, अपने स्वरूप को भूला बैठा है कि मैं कौन हूँ। साढ़े तीन हाथ की देह अपने आपको बार-बार कहे जाता है। दैहिक सम्बन्धों को अपने सम्बन्धी कहता है, पुत्रों का सम्बन्ध देह के साथ है, स्त्री का सम्बन्ध देह के साथ है, जायदाद का सम्बन्ध देह के साथ है। आत्मा के साथ तो किसी का कोई सम्बन्ध नहीं है क्योंकि वह तो परिपूर्ण है, सभी कुछ उसके पास है, सभी चीज़ें उसी के अन्दर हैं, वह तो स्वंयमेव ही है –

आतम पसारा करणहारा प्रभ बिना नही जाणीऐ॥ *पृष्ठ - 846*

सो सपने के अन्दर 'मैं मैं' करके महाराज कहते हैं *'सुपने सेती चितु मूरखि लाइआ।'*

इतना मूर्ख! पढ़ा लिखा भी है। महाराज कहते हैं, इसमें पढ़े लिखे का सवाल नहीं हुआ करता। इसके अन्दर तो यह देखा जाता है कि आत्म बोध किसे हुआ है और किसे नहीं हुआ? और जिसे आत्म बोध हो गया और सर्वत्र फैले परमेश्वर को जान गया, वह तो पढ़ा हुआ है –

नानक सो पड़िआ सो पंडितु बीना जिसु राम नामु गलि हारु॥ *पृष्ठ - 938*

बाकी जिसे यह बोध नहीं हुआ, चाहे वह कितना भी पढ़ा लिखा क्यों न हो, कितना अमीर क्यों न हो, कितने ऊँचे पद पर क्यों न हो, महाराज कहते हैं वे सभी सोये पड़े हैं, बड़ बड़ा रहे हैं, एक दूसरे को दुखी कर रहे हैं, दुख उठा रहे हैं।

एक राजा था। उसने बहुत भयंकर युद्ध किया। चार पाँच दिन लगातार बिना सोये वह युद्ध करता रहा। विजय हुई उसकी, खुशियाँ मनाई गईं। राजा ने वज़ीर को बुलाया, अन्य सभी दरबारियों को बुलाया। कहने लगे, ''देखो, मुझे नींद आ रही है और मुझे किसी ने जगाना नहीं है। यदि किसी ने जगाया तो उसका सिर कटवा दूंगा।'' शयन कक्ष में चला गया। प्रबन्ध कर दिया गया कि कोई चिड़िया या जानवर भी उसके पास जाकर उसकी नींद को भंग न करे। पहले तो राजा लोगों को नींद ही बड़ी कठिनाई से आती है। अमीर आदमियों को नींद मज़बूरी में आती है। काम काजी लोगों को नींद कैपसूल खाकर, दवाईयाँ लेकर आ जाये तो ठीक है अन्यथा वैसे नहीं नींद आया करती। इस राजा को नींद आ गई। सारा दिन बीत गया, दूसरा दिन भी बीत गया। राजकुमार बीमार हो गया और अचानक दम तोड़ गया। उस समय बड़ी चिन्ता हुई सभी को, कि अब क्या किया जाये? राजा अन्दर अपने कमरे में सो गया और उसके पास कोई जा नहीं सकता था, अब उसे समाचार कैसे सुनाया जाये? एक दिन पूरा सलाह मशवरा करते-करते बीत गया। दूसरा दिन आया फिर सलाह की गई। अन्त चौथा दिन हो गया। कहने लगे, राजा साहिब तो जागे नहीं, बहुत गहरी नींद में सोये पड़े हैं। उस समय सभी ने मिलकर प्रधान मन्त्री से कहा, ''महाराज से हम प्रार्थना कर लेंगे, क्षमा माँग लेंगे। सारी प्रजा इकट्ठी होकर क्षमा मांग लेगी, देखो क्या हो गया?'' लाश पड़े हुए तीन चार दिन बीत गए, रानियों का रो-रोकर बुरा हाल हो गया है, महारानी का बुरा हाल हो गया है। कृपा करके राजा को जगाने का कोई प्रबन्ध कीजिये। चौथे दिन वज़ीर गया और उसने बड़ी मुश्किल से हिला-हिला कर राजा को जगाया। जब राजा जागे, उसी समय रोने लग पड़े, बहुत रोया। वज़ीर ने पूछा, ''महाराज! आप क्यों रो रहे हो?'' उसने कहा कि तुमने बहुत बुरा काम किया है और मेरा हुक्म भूल गया था तुम्हें? जो मुझे जगायेगा, उसका शीश धड़ से अलग करवा दूंगा।'' वज़ीर ने कहा, महाराज! पहले प्रार्थना तो सुन लीजिए। वह यह है कि आपका राजकुमार आज चौथा दिन है, वह दम तोड़ चुका है, उसकी लाश रखी हुई है, महल में कोलाहल मचा हुआ है, रोटी कोई नहीं बना रहा, चूल्हे ठण्डे पड़े हैं, कोई भी रोटी खाता नहीं है, कोई भी पानी नहीं पी रहा, प्रजा बहुत बेचैन है। राजा कहने लगा, ''तुमने यह कैसी बात कह दी।''

उसे सपना आना शुरू हुआ ही था कि पदमनी रानियाँ और स्वर्ग की अपसराएं राजा के पास आ गईं और इसके साथ शादी कर ली, अनेक प्रकार से किलोलें कर रहा है। चार पुत्र हुए, चारों पुत्रों को वह बहुत प्यार करता है। कभी एक पुत्र से प्यार करता है तो कभी दूसरे से। बेखटके से रहता है, बहुत बड़ा, सारी सृष्टि का राज्य मिला हुआ है, ताज सिर पर है, हजारों राजे इसकी कचहरी में बैठे, सामने झुक-झुक सलाम करते हैं, अभिवादन करते हैं। जब वह कचहरी में बैठा है, राज दरबार में बैठा है, राजा लोग आकर अपनी भेंट उपहार इसे दे रहे होते हैं, उस समय वज़ीर ने आकर जगा दिया। कहने लगा, ''वज़ीर साहिब! कितना बुरा काम किया है तुमने? रोऊं न तो और क्या करूं? मेरे चार राजकुमार, कितना बड़ा समाज, तूने मुझे जगाकर सारा खत्म कर दिया,'' इसे अधिआस कहते हैं, इसे सपने का अधिआस हो गया। सपने का अधिआस परिपक्व हो गया जैसे राजा जनक को परिपक्व हो गया था और भी बहुत से लोगों का ऐसा अधिआस परिपक्व हुआ था।

भाई मनसुख ने राजा से कहा, ''महाराज! इस प्रकार यह अरबों-खरबों वर्षों का इस सपने में पड़ा हुआ जीव, अपने आपको साढ़े तीन हाथ की देह समझे जाता है। चाहे यह जानवर बन जाये, उस समय तो ज्ञान ही नहीं होता। जब मनुष्य बनता है, यह पाँच तत्वों की देह को अपना आपा समझता है और इसके हृदय में जो परिवार का सपना आ रहा है, इसमें दुखी होता है, कभी सुख प्राप्त करता है, कभी हसता है, कभी रोता है, किसी से वैर करता है, किसी से मित्रता करता है। कर्म बोता है फिर फल भोगता है।'' महाराज कहते हैं, ''तू मूर्ख है।''

सुपने सेती चितु मूरखि लाइआ। बिसरे राज रस भोग जागत भखलाइआ।

आरजा गई विहाइ धंधै धाइआ। पूरन भए न काम मोहिआ माइआ।
किआ वेचारा जंतु जा आपि भुलाइआ॥ *पृष्ठ - 707*

सो इस प्रकार भाई मनसुख ने राजा शिवनाभ को कहा, ''राजन! तू प्रभु की भक्ति कर, तीन गुणों के अन्दर सारा संसार गुलतान हुआ पड़ा है क्योंकि इसके मन में विकार समा गये हैं, यह माया में भ्रमित हो गया। फोकट कर्मों में पड़ा संसार रस्म समझ कर व्रत रखता है, पूजा भी रस्मी तौर पर करता है, रस्म पूरी करने के लिये तिलक लगाता है, जनेऊ पहनता है, अन्य जितनी भी धार्मिक मर्यादाएं हैं, चिन्ह धारण करता है, ये सभी कुछ रस्मी तौर पर ही करता है। वह परमेश्वर इसके अंग संग रहता है, उसके साथ तो इसने प्रीत ही नहीं लगाई -

संगि सहाई सु आवै न चीति॥ *पृष्ठ - 267*

जो हर समय साथ रहता है, सोते समय, जागते समय जहाज पर चले जाओ, कहीं भी चले जाओ, पानी के नीचे चले जाओ, साथ रहता है। महाराज जी फ़रमान करते हैं कि उसके साथ तो प्रीत नहीं करता -

जो बैराई ता सिउ प्रीति॥ *पृष्ठ - 267*

जिनके साथ वैर करना चाहिये काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, शबद, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, राज, माल, रूप, जात, यौवन, पाँच ठग; ईर्ष्या, निन्दा, चुगली, धोखा, झूठ, छल, कपट, वैर आदि इन्हें बड़ा अच्छा समझता है। महाराज जी समझाते हैं कि -

पर का बुरा न राखहु चीत। तुम कउ दुखु नही भाई मीत॥ *पृष्ठ - 386*

किसी के लिये मन में वैर मत रख, तुझे फिर दुख नहीं होगा। इस शरीर के अन्दर 14 खरब 26 अरब सैल हैं, एक बुरे विचार के आते ही लाखों सैल मर जाते हैं और एक अच्छे विचार से लाखों मरे हुए सैल पुनः जीवित हो जाते हैं। महाराज फ़रमान करते हैं, रोगी हो जायेगा -

परमेसर ते भुलिआं विआपनि सभे रोग॥ *पृष्ठ - 135*

जब परमात्मा को भूल गया, रोग लगने शुरू हो जाते हैं -

खसमु विसारि कीए रस भोग। तां तनि उठि खलोए रोग॥ *पृष्ठ - 1256*

इस प्रकार परमेश्वर से सम्बन्ध तोड़कर दुख भोगता हुआ, जन्म मरण के चक्कर में पड़ा हुआ, कभी कुछ बनता, कभी कोई जन्म लेता है। रहट की टिन्डों की तरह घूमता रहता है और इसे कहीं भी ठिकाना नहीं मिलता। पूर्ण गुरू इसे मिलता नहीं और इसका घूमना बन्द होता नहीं। रचनाकार को सदा ही भूला रहता है। बाहरी चक्र चिन्ह धारण करके, उसी में सन्तुष्ट हो रहा है कि यह पूजा करके मेरा उद्धार हो जायेगा लेकिन जब तक मनुष्य के अन्दर भ्रम है, भ्रम का नाश नहीं होता और अपने स्वरूप का ज्ञान नहीं होता, तब तक यह बात बना नहीं करती। इस तरह से फ़रमान करते हैं। पढ़ो प्यार से -

धारना - राचे माइआ संग ओ,
मन विच वसदे पंज विकार - 2, 2
वसदे पंज विकार मन विच वसदे पंज विकार - 2, 2
राचे माइआ संग ओ,............ - 2

कहने लगे, ''राजन! जो आप फ़रमान करते हो, एक दिन व्रत रखकर, दूसरे दिन व्रत खोलो, सालिग्राम की और फिर तुलसी की पूजा करो, फिर चरणामृत लेकर व्रत का उपवास तोड़ो। महाराज! अन्दर तो बहुत शोर गुल मचा हुआ है। यदि ये चीज़ें अन्दर से साफ कर देती हैं तब तो ठीक हैं। मनुष्य कितना घिरा हुआ है? ये चीज़ें तो दूर नहीं कर सकती। मैंने आपके आदमी देखे हैं, व्रत रखते-रखते उनकी कई आयु बीत गई, पूजा करते-करते कई युग बीत गये, वैसे का वैसे ही झूठ बोलते हैं, उसी तरह

से ईर्ष्या करते हैं, उसी तरह से ही निन्दा करते हैं, वैसा ही क्रोध भरा हुआ है इनके अन्दर? मुझे किस तरह से ताने मारते थे? यदि उनका मन शुद्ध होता तो मुझे प्यार से बताते। कितनी बुरी-बुरी बातें करते थे। यदि कर्मों-धर्मों का प्रभाव हुआ होता तो उनकी जुबान मीठी सुरीली हो जाती, उन्हें प्रभु नज़र आ जाता, परन्तु हमारे अन्दर तो यह बात न हुई न -

पंच बिकार मन महि बसे राचे माइआ संगि॥ ***पृष्ठ - 297***

यह सारा ही संसार माया में Illusion (भ्रम) में Ignorance (अज्ञान), Ego (हउमैं) में रचा हुआ है और पाँच विकार हैं - काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार। पाँच विषय हैं इसके अन्दर - शबद, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध। पाँच अभिमान हैं इसके - राज, माल, रूप, जात, यौवन। पाँच ठग इसके अन्दर हैं - निन्दा, चुगली, ईर्ष्या, वैर, आशा, तृष्णा। राजा ने पूछा, ''ये पूजा करने से दूर हो जाते हैं?'' मनसुख ने कहा, ''राजन! इससे दूर नहीं हुआ करते; जब तक पूर्ण सतगुरू नहीं मिलता, तब तक ये विकार दूर नहीं हुआ करते, बेशक कितने ही जन्म क्यों न लेता रहे -

साध संगि होइ निरमला.................॥ ***पृष्ठ - 297***

साधु मिल जाये, गुरू नानक पातशाह जैसा। हर एक सन्त नहीं हुआ करता, साध संगत जी! बहुत भारी भूल है, हर व्यक्ति को सन्त सन्त बुलाना शुरू कर देते हैं। बिल्कुल भी, हर एक को सन्त मत कहा करो। सिख ही बन जाये तो भी बहुत बड़ी बात है। सिख बनना भी बहुत कठिन है। सन्त तो गुरू नानक पातशाह जी या गुरू ग्रन्थ साहिब हैं। बहुत कठिन बात है क्योंकि जो वस्तु है ही नहीं, उसे कैसे कह दें कि यह है।' वह तो गुरू नानक पातशाह थे, अपने आप ही सभी कुछ थे या उनके साथ इकमिक हो चुके गुरसिख जो पूर्ण रूप में गुरू में अभेद हो चुके हैं, जिन्हें श्वांस ग्रास किसी समय भी प्रभु नहीं भूलता। माया का आकर्षण हृदय में समाया हुआ है, देशो-विदेशों में माया इकट्ठी करने के लिये घूमता फिरता है, वह तो मायाधारी है, सन्त नहीं है।

सन्त मिल जायें, फिर निर्मल हो जाता है -

.............नानक प्रभ कै रंगि॥ ***पृष्ठ - 297***

फिर क्या होता है? वाहिगुरू का प्यार पैदा हो जाता है- हृदय में। पूर्ण गुरू मिले तो वाहिगुरू से प्यार होता है -

नह जापै नह बूझीऐ नह कछु करत बीचारु।
सुआद मोह रस बेधिओ अगिआनि रचिओ संसारु॥ ***पृष्ठ - 297***

न तो यह देखता है, न ही यह जानने की कोशिश करता है, न ही विचार करता है। गुरू ग्रन्थ साहिब की विचार तो करता ही नहीं है। कोई विरला पुरुष है लाखों में एक, जो गुरू ग्रन्थ साहिब की एक एक तुक को हृदय में धारण करने का यत्न करता है। बाकी तो routine (रिवाज) बना हुआ है, बस पढ़ते जाते हैं। यदि पूछो कि कितने पाठ करता है सुखमनी साहिब के? कहता है, जी मैं दो पाठ करता हूँ। क्या तूने निन्दा छोड़ दी? अष्टपदी पढ़ता है रोज, निन्दा की? ईर्ष्या छोड़ दी। लोभ छोड़ दिया, बेइमानी छोड़ दी, ठगी छोड़ दी? मिलावट करनी छोड़ दी? ये चीज़ें तो तेरे अन्दर वैसे की वैसे ही हैं -

पड़िऐ नाही भेदु बुझिऐ पावणा॥ ***पृष्ठ - 148***

इस बात का ज्ञान तो तुझे ढूंढना पड़ेगा, आन्तरिक विचार करनी पड़ेगी। जो एक तुक पर विचार करता है वह दो चार तुकों वाला भी पार उतर जाता है। जो विचार करके नहीं पढ़ता - 'पढ़ना गुणना संसार की कार है......' महाराज कहते हैं संसार पढ़ता ही है -

पाठु पड़िओ अरु बेदु बीचारिओ निवलि भुअंगम साधे।
पंच जना सिउ संगु न छुटकिओ अधिक अहंबुधि बाधे।
पिआरे इन बिधि मिलणु न जाई मै कीए करम अनेका।
हारि परिओ सुआमी कै दुआरै दीजै बुधि बिबेका॥ *पृष्ठ - 641*

विचार वाली बुद्धि दे पातशाह मुझे। महाराज जी फ़रमान करते हैं, विचार करता है कोई? स्वादों में ग्रसित हुआ पड़ा है। संसार में आकर अज्ञान में रचा हुआ है और कोई स्थान ऐसा नहीं जहाँ वाहिगुरू नहीं हैं, उसे तो यह कहता है कि है नहीं। जिन चीज़ों का कोई वजूद नहीं, क्षण-भंगुर हैं, सदा रहने वाली नहीं, उन्हें कहता है कि ये रहती हैं। विचार करके देख लो। गुरू महाराज जी फ़रमान करते हैं -

फरीदा किथै तैडे मापिआ जिन्ही तू जणिओहि।
तै पासहु ओइ लदि गए तूं अजै न पतीणोहि॥ *पृष्ठ - 1381*

यदि वे माँ-बाप सच्चे होते तो फिर भाई! वे संसार में से क्यों जाते? वे यदि क्षण भंगुर थे, थोड़ी देर हुई फिर उसके बाद खत्म हो गये, फिर लौटकर मिलना नहीं है, करोड़ों सालों के बाद और न ही अरबों सालों के बाद, न ही खरबों सालों के बाद। मिलाप ही जिस चीज़ का नहीं होना, उसमें क्यों रमना है? कहते हैं झूठी चीज़ों में रूमा हुआ है -

रचनहारु नह सिमरिओ मनि न बीचारि बिबेक॥ *पृष्ठ - 297*

जो रचनाकार कभी नहीं जाता, सदा कायम रहता है, कहते हैं, उसका ध्यान ही नहीं, कभी उसे याद नहीं करता और न ही विचार करता है, न विवेक बुद्धि में आता है -

भाउ भगति भगवान संगि माइआ लिपत न रंच॥ *पृष्ठ - 297*

न भाओ में आता है, न भक्ति में आता है, न वाहिगुरू को अपने साथ समझता है -

नानक बिरले पाईअहि जो न रचहि परपंच॥ *पृष्ठ - 297*

कहते हैं विरले पुरुष तुम्हें मिलेंगे - लाखों में एक, जिनकी अंगुलियों पर गिनती हो सकती है। लाखों में भी नहीं, दस लाख में से एक। महाराज कहते हैं दस लाख में से भी नहीं। उस समय तो आबादी बहुत अधिक नहीं हुई थी, जब महाराज जी ने यह बात कही थी। अब तो और भी अधिक बढ़ जायेगा। कहते हैं, ''फिर महाराज! 50 लाख में से एक व्यक्ति होगा?'' महाराज कहते हैं, ''नहीं महाराज! ऐसा व्यक्ति है भी?'' महाराज कहते है तो सही परन्तु विरले हैं -

हैनि विरले नाही घणे फैल फकड़ु संसारु॥ *पृष्ठ - 1411*

कोटन मै नानक कोऊ नाराइन जिह चीत॥ *पृष्ठ - 1427*

करोड़ों में से एक आध। बाकी नहीं है, बाकी तो यह माया की उथल-पुथल में चले ही जा रहे हैं। भेष ने तो नहीं बचाना साध संगत जी! कोई भेष धारण कर लो। इन बातों को समझने का यत्न करो कि गुरू ग्रन्थ साहिब क्या कहते हैं? हठ धर्मी मत करो - गुरू ग्रन्थ साहिब के सामने। मत देखो कि अमुक व्यक्ति ने ऐसे लिखा है और अमुक ने ऐसे लिखा है। कोई भी व्यक्ति पूर्ण नहीं हुआ करता। गुरू ही पूर्ण, है और कोई भी पूर्ण नहीं है। बाकी सभी तो -

भुलण अंदरि सभु को अभुलु गुरू करतारु॥ *पृष्ठ - 61*

गुरू और वाहिगुरू ये दोनों हैं जो भूला नहीं करते। इनकी जो तालीम (शिक्षा) है, दसवें पातशाह ने गुरू ग्रन्थ साहिब को हमारा गुरू बनाया है कि प्रेमियो! यदि तुमने पार होना है, इन 1430 पृष्ठों से बाहर मत जाना। मन की मति न करना, लिखा पढ़ा किसी का मत मानना। सो भाई मनसुख

कहने लगे, ''मेरे सतगुरू इस तरह कहते हैं यदि तुम गुरू के शबद का पालन करोगे तो बच जाओगे।''

विरले-विरले हैं, जो परपंच में रूचते नहीं हैं, इस माया के जाल में से निकल जाते हैं। राजन! ये वो हैं जिन्हें पूरा गुरू मिल जाता है। कहने लगा, ''अन्दर बाहर सभी जगह वाहिगुरू है। ठाकुर और सालिग्राम एक जगह नहीं है कि वहीं पर ही जाकर उनकी पूजा करो। हम तो रोज़ उसकी पूजा करते हैं। ऐसे समझ लो -

धारना - अन्दर बाहर हरी दा वासा,
कर लै पछाण ओ मना - 2, 2
कर लै पछाण ओ मना - 2, 2
अंदर बाहर हरी दा वासा............ - 2

कहने लगा, ''राजन! हमारे गुरू ने यह बताया है हमें कि अन्दर भी, बाहर भी जिधर देखते हैं, एक परमेश्वर ही है, सालिग्राम ही सालिग्राम है, दूसरा नहीं है कोई -

आठ पहर मनि हरि जपै सफलु जनमु परवाणु।
अंतरि बाहरि सदा संगि करनैहारु पछाणु॥ ***पृष्ठ - 298***

पहचान कर ले तू उसकी। हम पहचान नहीं करते, न ही हमें पता चलता है। हमें तो यही दिखाई देता है।

मरदाना कहने लगा, ''पातशाह! जब मैं ऐसे वचन सुनता हूँ तो एक बार तो मेरे मन पर असर हो जाता है कि जिधर मैं देखता हूँ, मुझे निरंकार की झलक ही दिखने लग जाती हैं। ये वृक्ष, वृक्ष दिखाई नहीं देते, इनके पीछे कोई इन वृक्षों को कायम रखने वाली ज्योति है, उसकी झलक पड़ती है। पातशाह! जब फिर कीर्तन बन्द कर देता हूँ, थोड़ा सा समय बीत जाता है फिर मुझे वृक्ष, वृक्ष ही दिखाई देते हैं, जानवर, जानवर ही दिखाई देते हैं। आपको कैसे दिखाई दे जाते हैं हर समय? महाराज जी ने फ़रमान किया, ''मरदाना! वे नेत्र और होते हैं अन्दर। ये नेत्र तो माया के बने हुए हैं लेकिन इनके द्वारा भी दिखाई दे जाता है यदि आन्तरिक नेत्र खुल जायें -

ए नेत्रहु मेरिहो हरि तुम महि जोति धरी हरि बिनु अवरु न देखहु कोई।
हरि बिनु अवरु न देखहु कोई नदरी हरि निहालिआ।
एहु विसु संसारु तुम देखदे एहु हरि का रूपु है हरि रूप नदरी आइआ।। ***पृष्ठ - 922***

महाराज फ़रमान करते हैं कि इन्हीं नेत्रों से देख ले, इनसे भी दिखाई देता है, आन्तरिक नेत्रों से भी दिखाई देता है। जब आन्तरिक नेत्रों से दिखाई दे गया -

सभ महि एकु वरतदा जिनि आपे रचन रचाई॥ ***पृष्ठ - 954***

वाहु वाहु सचे पातिसाह तू सची नाई॥ ***पृष्ठ - 947***

फिर भ्रम में नहीं पड़ता, पर यह पूर्ण गुरू मिले, तभी दिखाई देता है, अन्यथा नहीं दिखाई देता।

इस प्रकार कहने लगे, ''राजन! यह जो परमेश्वर घट-घट में व्याप्त है, मनुष्य उसे नहीं पहचानता। जो पहचानते हैं वही सफल हैं। बाकी ये जो नौ द्वार हमारे शरीर के हैं, इनके हम रोज़ व्रत रखते हैं। नौमी का व्रत रखते हैं, अष्टमी का, तीज का व्रत रखते हैं, पंचमी का रखते हैं। एक-एक बात समझा दी।

अब नौमी का जब हम व्रत रखते हैं तो हम नौ द्वारों के छिद्रों को बन्द कर देते हैं।

राजा ने कहा, ''आँखे बन्द कर लेते हो?''

भाई मनसुख ने कहा, ''नहीं, आँखे नहीं बन्द करते, नेत्रों का रूख बदल देते हैं।''

पर त्रिअ रूपु न पेखै नेत्र॥ *पृष्ठ - 274*

कानों से सुनते हैं, पर सुनते हैं हरि का यश -

करन न सुनै काहू की निंदा॥ *पृष्ठ - 274*

इन्हें हम रोक देते हैं। निन्दा नहीं सुननी, झूठ नहीं बोलना, हाथों से बुरा काम नहीं करना, बुरे कार्य के लिये पैरों से कहीं चलकर नहीं जाना। इस तरह ठाक (रोक) देते हैं हम -

नउमी नवे छिद्र अपवीत। हरिनामु न जपहि करत बिपरीति॥ *पृष्ठ - 298*

क्योंकि ये पवित्र जगह है। जब पर त्रिया को देखता है और साधु की निन्दा करता है -

करन न सुनही हरि जसु बिंद॥ *पृष्ठ - 298*

जो कान हरि का यश सुनने की बजाये खिचपिच निन्दा, चुगलियाँ सुनते हैं, कहते हैं वे कान अपवित्र हैं -

हिरहि परदरबु उदर कै ताई।। *पृष्ठ - 298*

पराई अमानत, बेगाना धन, रिश्वतें, ठगपना, मिलावटें, धोखे धड़ी, झूठ बोल-बोल कर दूसरों का पैसा लूटना, कहता है पेट भरने के लिये करता है -

अगनि न निवरै त्रिसना न बुझाई॥ *पृष्ठ - 298*

क्या इससे तृष्णा बुझ जायेगी?

त्रिसना बिरले ही की बुझी हे।
कोटि जोरे लाख क्रोरे मनु न होरे। परै परै ही कउ लुझी हे॥ *पृष्ठ - 213*

कहता है लाख चाहिए, हजारों से तो मैं पार हो गया, हजारों से मेरा घर नहीं भरता, लाख चाहिए। लाख आ जायेगा, फिर कहेगा लाख से क्या बनता है, दस लाख चाहिए, पाप की कमाई इकट्ठी करके दस लाख भी हो गया -

पापा बाझहु होवै नाही मुइआ साथि न जाई॥ *पृष्ठ - 417*

पाप के बिना माया इकट्ठी नहीं हुआ करती, मरने पर यह साथ नहीं जाती। साथ क्या जाता है? फिर पैसे इकट्ठे करने के लिये जो पाप किये हैं, उन्हें साथ लादे फिरता है -

नंगा दोजकि चालिआ ता दिसै खरा डरावणा॥ *पृष्ठ - 471*

पाप लाद कर ले जाता है। कहते हैं कि पाप करते हैं, जी, दान करते हैं। भाई, चोरी के पैसे से दान करके साधुओं को भी चोर बनाना है। यह पुण्य तो काम नहीं आयेगा। यदि गर्म करके, लोहे के चने बनाकर खिला दो तो उनका मुँह जल जायेगा यह तो -

घालि खाइ किछु हथहु देइ। नानक राहु पछाणहि सेइ।। *पृष्ठ - 1245*

मेहनत करके, दसों अगुलियों से कमाई करके जो देता है, वही काम आया करता है -

अगनि न निवरै त्रिसना न बुझाई॥ *पृष्ठ - 298*

तृष्णा नहीं बुझती, कोई विरला ही पुरुष होगा जिसके अन्दर तृष्णा नहीं है। महाराज कहते हैं, तृष्णा का इलाज परमेश्वर का नाम है। जिसके अन्दर नाम धुन जाग पड़ी, नाम की धुन में जो मस्ती में आ गई जिसके अन्दर अमृत नाम की वर्षा होनी शुरू हो गई, रोम-रोम जिसका खिल गया, वह ऐसी बातें नहीं किया करता क्योंकि उसकी भी लिव टूटती है, उसका रस खत्म हो जाता है जब रस हीन हो जाता है, गुरू महाराज का फ़रमान है -

हरि बिनु जीउ जलि बलि जाउ। मै आपणा गुरु पूछि देखिआ अवरु नाही थाउ॥

पृष्ठ - 14

नाम भूलते ही जो अन्दर कमल फूल है, वह जलना शुरू हो जाता है। धन इकट्ठा कर लो, देख लो पैसे वालों के साथ रहकर, उन्हें शान्ति है? सुख है? नहीं, बिल्कुल भी नहीं है। Frustration (घबराहट) है, कोई डाक्टर के पास जा रहा है तो कोई कहीं किसी के पास, वही क्रोध उसमें भरा है, वैसी ही भाग दौड़ करता है। यदि माया में शान्ति हो तो मनुष्य के अन्दर प्रसन्नता ही प्रसन्नता हो। नशे करके आनन्द लाने की कोशिश करता है, भोगों में प्रवृत रहकर प्रसन्नता हासिल करने का यत्न करता है, लेकिन इन चीज़ों के करने से इसे आनन्द प्राप्त नहीं होता। महाराज कहते हैं, ''फल नहीं लगता भाई। जब तक पूर्ण गुरू की सेवा में नहीं आता।''

हरि सेवा बिनु एह फल लागे। नानक प्रभ बिसरत मरि जमहि अभागे॥ *पृष्ठ - 298*

मरता है तो यम तुझे मारते हैं, अभागे! मन्दभागी मनुष्य! गुरू की शिक्षा सुन ले, लेकिन सुनता नहीं है -

धारना - भाग जिन्हां दे मंदे,
दितीआं बांगां तों ना जागदे - 2, 2
बांगां तों ना जागण,
दितीआं बांगां तों ना जागदे - 2, 2
भाग जिन्हां दे मंदे,......... - 2

फरीदा कूकेदिआ चांगेदिआ मती देदिआ नित। जो सैतानि वंञाइआ से कित फेरहि चित॥

पृष्ठ - 1378

चारों वेद, 27 स्मृतियाँ, 6 शास्त्र, उपनिषद, कुरान शरीफ, अन्जील, बाईबल सभी धर्म ग्रन्थ, गुरू ग्रन्थ साहिब महाराज सभी अमर अवस्था को प्राप्त हो चुके वीतराग पुरुष, महापुरुष इसे समझाने का यत्न करते हैं, लेकिन इस मनुष्य की नींद नहीं खुलती।

भाई मनसुख कहने लगा राजन! आप विचार करते जाना, जो-जो मैं आपके पास प्रार्थना कर रहा हूँ, अपने मन में निर्णय करते जाना। जहाँ मैं गलत बोलूं, वहाँ पर आप मेरे साथ विचार विमर्श कर लेना।'' राजा कहने लगा, ''भाई मनसुख! तेरे वचन सुनकर मुझे बहुत शान्ति प्राप्त हो रही है, ऐसी शान्ति जो मैंने आज तक अनुभव ही नहीं की। मेरा मन किसी आन्तरिक शक्ति से जुड़ता जा रहा है, कोई रस मेरे ऊपर हावी होता जा रहा है। तू बोलता जा, जी भर कर बोल, मैं तेरे सारे वचन हृदय में चुन-चुन कर, अन्दर ग्रहण करता जा रहा हूँ। अब तक जितने वचन तुमने किये हैं, वे सभी मैंने अपने हृदय में बिठा लिए हैं।''

भाई मनसुख ने कहा, ''राजन! अब हम आपको दशमीं का व्रत, गुरमत अनुसार कैसे रखते हैं, उसका वर्णन करते हैं। दशमीं का व्रत हम मन को वश में करने के लिये रखते हैं। ऐसे नहीं कि भूखे रह लो। हम भूखे नहीं रहते क्योंकि भूखे रहना हमारे गुरू ने नहीं बताया -

छोडहि अंनु करहि पाखंड। ना सोहागनि ना ओहि रंड॥ *पृष्ठ - 873*

अन्न तो शरीर की आवश्यकता है। इसकी खुराक बदल दो यह Medical Advice (डाक्टरी सलाह) है, लेकिन इसे धर्म कह कर फल देने वाली बात कह देना, यह तो एक वहमपरस्ती है। ठीक ढंग से चलो, डाक्टरी नियमानुसार चलो। व्रत रखो; डाक्टर कहते हैं, रोटी मत खाना, फल खाना; बहुत

अधिक मत खाना, तू चावल खाकर गुज़ारा कर लेना, तेरा मिहदा पहले ही बहुत खराब हो चुका है। पेट भर कर मत खाना, मिहदे को आराम करने देना –

अल्प अहार सुलप सी निद्रा.....................। ***पातशाही १०***

ज्यादा देर सोयेगा तो रोगी हो जायेगा, तेरी आयु कम हो जायेगी। बहुत अधिक पेट भर कर खायेगा, रोगी हो जायेगा। जिगर, इतना बड़ा कारखाना, प्रभु ने लगाया हुआ है, यहाँ पर इसकी कोई भी व्यक्ति नकल नहीं कर सकता। हर वस्तु में से तत्व निकालकर, नेत्र वाले नेत्रों की ओर भेजते हैं, दिमाग वाला दिमाग को भेजता है, खून वाला खून को भेजता है। कितना महान कारखाना परमेश्वर ने हमारे अन्दर लगाया है। डाक्टरों की सलाह ले लो, व्रत को धर्म के साथ मत मिला क्योंकि तू गुमराह हो जायेगा, तुझे पता ही नहीं चलेगा कि धर्म का रास्ता कौन सा है, यह क्या है। सो राजन! जब तक मन नहीं मानता, तब तक धर्म के रास्ते पर जो चला है वह तो ऐसे ही बेकार है, इससे कोई सफर तय नहीं होता, नेत्रों पर कोल्हू के बैल की तरह खोपे लगाकर पैड़ में ही चक्कर लगाते रहने की तरह है। यदि मन मान जाए, तब कुछ सफलता मिल सकती है, मन कहना तभी मानेगा, जब यह वश में आ जायेगा –

ममा मन सिउ काजु है मन साधे सिधि होइ।
मन ही मन सिउ कहै कबीरा मन सा मिलिआ न कोइ॥ ***पृष्ठ - 342***

मन के सहारे ही सारी बात चलती है। यह मन हठ करता है। जीव को नीचे से अर्थात जड़ से ही काबू करके बैठा हुआ है और पता है, दोस्ती किसके साथ की हुई है? क्रोध से, लोभ और मोह से, अहंकार, निन्दा, चुगली, ईर्ष्या, वैर, नास्तिकता, इन बुरी चीज़ों के साथ मित्रता कर रखी है, फिर आशा, तृष्णा, अन्देसा इन बुरी डायनों के साथ मित्रता किये बैठा है। सत्य, सन्तोष, धैर्य, क्षमा, दया, कोमल हृदय, पवित्र वचन, अल्प आहार, सुल्प सी निद्रा इन बातों के साथ मन की मित्रता नहीं है, इनसे तो बहुत दूर रहता है। इसलिये मन वश में होना चाहिए। राजा कहने लगा, ''भाई मनसुख! जहाँ आपने इतने यत्न बताए हैं, कृपा करके यह भी बता दो कि मन वश में कैसे किया जाता है क्योंकि तुम्हारी बातें ठीक हैं; हमारा मन एक सैकिन्ड के लिये भी नहीं टिकता।'' भाई मनसुख ने बताया, ''राजन! मेरे सतगुरू ने जब पहली उदासी (यात्रा) शुरू की, जैसे ही वेईं नदी से बाहर निकले थे, उसी समय आपने सार वचन कहे थे –

ना हम हिंदू न मुसलमान। अलह राम के पिंड परान॥ ***पृष्ठ - 1136***

उस समय हिन्दुओं ने इस सार वचन की ओर कोई ध्यान न दिया क्योंकि गुलाम थे। मुसलमानों ने इस्लाम का राज्य होने के कारण इसे बुरा माना और मेरे सतगुरू से पूछा, ''तू यह क्या बोलता है? शरां के खिलाफ बोलता है?'' गुरू नानक कहते हैं, ''है ही नहीं कोई। इस्लाम की बात तो समझो कि क्या कहता है? नमाज़ों के अर्थ तो समझो? तुम उनका पालन करते हो? तुम तो जोर जबरदस्ती, धक्केशाही में लगे हुए हो। जीवों को मारते जा रहे हो, तंग कर रहे हो। गुरू नानक देव जी ने राजा के कामों की कसाईयों के कार्यों से तुलना की। उन्होंने बताया कि धर्म अलोप हो गया है, कर्म काण्ड प्रधान बन गया है। ज्ञानहीन प्रजा हक-बेहक की पहचान से वंचित होकर अन्धी हो चुकी है। धार्मिक नेता कर्म काण्ड की आड़ में पाप को धर्म की परिभाषा दे रहे हैं। सभी कुछ समझाया मेरे सतगुरू ने।'' इस्लाम वालों ने कहा, ''हे नानक! फिर तेरे लिये दोनों एक ही हुए? पूजा और नमाज़ में तुझे अन्तर नहीं दिखाई देता? मस्जिद और मन्दिर में तुझे कोई अन्तर नहीं दिखाई देता? दोनों एक समान लगते हैं? फिर आ हम चलकर एक साथ नमाज़ पढ़ते हैं।'' आपने कहा, ''चलो नवाब साहिब! हम तो हर समय

नमाज़ पढ़ते हैं, तुम तो केवल पाँच बार पढ़ते हो, एक सैकिण्ड के लिये भी हमें फुर्सत नहीं मिलती। चलो, तुम्हारे साथ भी पढ़ लेते हैं।''

मेरे सतगुरू जी गये और एक तरफ होकर बैठ गये। नमाज़ शुरू हो गई। जब खत्म हुई तो नवाब ने पूछा, ''नानक! तू नमाज़ पढ़ने आया था पर तूने नमाज़ तो पढ़ी नहीं।'' तब मेरे सतगुरू ने क्या जवाब दिया, पता है? सुनो ध्यान से मन लगाकर। कहने लगे,, ''नवाब साहिब! मैंने तो नमाज़ पढ़ी है परन्तु तूने नहीं पढ़ी।'' नवाब बोला, ''देखो लोगो! कितनी हैरानी की बात है, मैंने तो नमाज़ पढ़ी है परन्तु नानक कहता है, नमाज़ नहीं पढ़ी। क्यो काज़ी साहिब, मैंने नमाज़ नहीं पढ़ी?'' काज़ी ने कहा कि नमाज़ तो उसने भी पढ़ी है। मेरे सतगुरू ने कहा, ''दौलत खान नवाब साहिब! ये कन्धार में घोड़े कौन खरीद रहा था? कौन छाँट रहा था कि इतने कुमैत घोड़े लेने हैं, इतने सुरंग लेने हैं, इतने सफेद और नीले लेने हैं, इतने बैलर घोड़े लेने हैं, इतने भार ढोने वाले लेने हैं और इतने सवारी वाले लेने हैं। तुम तो रंग छाँटते फिर रहे थे वहाँ पर।'' नवाब चरणों पर गिर पड़ा, ''हे नानक! वली अल्लाह! तू बात समझ गया। मेरे हृदय के अन्दर की बात जानता है, तुझ में और अल्लाह में कोई भेद नहीं है।''

काज़ी कहने लगा, ''मैंने तो नमाज़ पढ़ी है, मेरे साथ पढ़ लेते?''

आपने कहा, ''काज़ी साहिब! आप तो घर में नई प्रसूती घोड़ी की बछड़ी को बार-बार कुएं में गिरने से रोक रहे थे।''

सो राजन! मुझे भी मेरे सतगुरू कहते हैं कि भजन, बन्दगी, यदि मन साथ नहीं देता तो यह ऐसे ही फालतू का व्यायाम है, एक थकावट है, एक सोये हुए व्यक्ति की बात है। जितनी देर मन स्वच्छ नहीं तथा भजन करने के लिये साथ नहीं देता, नमाज़ का कोई लाभ नहीं।

राजा कहने लगा, ''ठीक है तुम जो बात कहते हो, मैं इससे पूरी तरह से 100 प्रतिशत सहमत हूँ। हम कर्म, धर्म, पूजा पाठ करते हैं, व्रत रखते हैं। यह एक रस्म पूरी करते हैं। मन तो उस समय कहीं और ख्यालों में उड़ानें भर रहा होता है। मन तो वही सोचता है जो पहले सोचा करता था। कृपा करके बताईये कि मन को वश में करने की भी कोई युक्ति है? उस समय आपने इस प्रकार फ़रमान किया –

धारना- मन वस आवे नानका,
जे पूरन किरपा होइ - 2, 2
जे पूरन किरपा होइ - 4, 2
मन वस आवे नानका........... - 2

कहने लगे, ''राजन! मनुष्य कर्म भी करता है, धर्म भी करता है, व्रत भी रखता है, सत्संग में भी जाता है, तीर्थ यात्रा भी करता है, दूर दराज़ गुरूद्वारों के, तीर्थों के, गुरूधामों के दर्शन भी करता है, दान भी करता है, सभी नेक कार्य करता है लेकिन अपने स्वभाव से बाहर नहीं निकल सकता क्योंकि वह प्रकृति के तीन गुणों के अधीन कार्य करता है। यदि सतोगुण अधिक हो तो मन में प्रकाश हो जाता है, नाम जपने, धर्म-कर्म करने पर उत्साह उत्पन्न होता है। रजोगुण अधिक हो तो धर्म-अधर्म, नेकी-बदी, पूजा-पाठ की अरूचि के झूले झूलता है। तृष्णा प्रधान होने के कारण दिन रात कार्यों में भागा रहता है। यदि तमोगुण अधिक हो तो काम क्रोध, लोभ, मोह, अभिमान के भँवरों में गोते लगाता हुआ आलसी, नास्तिक, बेचैन, झगड़े-झन्झटों का जीवन व्यतीत करता है। स्वंय भी दुखी रहता है तथा औरों को भी दुखी करता है। इस महानीच अवस्था को मूढ़ अवस्था कहते हैं। इस तरह मन तीन गुणों की अवस्था को प्राप्त करता

हुआ स्थिर अवस्था में नहीं रहता। परन्तु भजन पाठ करने के लिए सतोगुणी वृति की आवश्यकता है। स्वभाव वही रहता है, कुत्ते की पूँछ जैसा ही स्वभाव रहता है। 12 साल बाद नलकी में से जब कुत्ते की पूँछ बाहर निकाली तो फिर भी टेढ़ी की टेढ़ी ही रहती है। इसी प्रकार मनुष्य का इन गुणों के अधीन जो मूलभूत स्वभाव होता है, जिन अणुओं परमाणुओं से इसका स्वभाव बना होता है, वह स्वभाव बदला नहीं करता, वही स्वभाव फिर आ जाता है। चोर चोरी करता है, साधु बन जाये फिर भी उसके मन में कभी न कभी वही विचार पैदा हो जाता है। विकारी मनुष्य अच्छा बन जाये, अच्छा बना हुआ फिर भी विकार उसके अन्दर उठते रहते हैं, स्वभाव नहीं मिटा करता। सो सभी दशों दिशाओं में उपलब्ध साधन करता हुआ भी मन वैसे का वैसा ही रहता है। जब तक पूर्ण समरथ गुरू के चरणों में नहीं आता और मन में विश्वास नहीं लाता कि मेरा गुरू स्वयं ही वाहिगुरू है -

समुंदु विरोलि सरीरु हम देखिआ इक वसतु अनूप दिखाई।
गुर गोविंदु गुोविंदु गुरू है नानक भेदु न भाई॥ पृष्ठ - 442

उसके वचनों का पालन नहीं करता तो दुनियाँ के कर्म धर्म, लकीर के फकीर की तरह होते हैं, कर्म करता चला जा रहा है। गुरू भी बनाता है, चक्र चिन्ह भी धारण करता है, परन्तु मनुष्य बदलता नहीं, वैसा ही रहता है क्योंकि पूर्ण गुरू की इस पर कृपा नहीं हुई, मन वश में नहीं हुआ, मन अपनी बातें करना छोड़ता नहीं -

दस दिस खोजत मै फिरिओ जत देखउ तत सोइ।
मनु बसि आवै नानका जे पूरन किरपा होइ॥ पृष्ठ - 298

सो कहने लगे, ''राजन! हमें गुरू महाराज दशमी का व्रत रखवाते हैं कि दशमी का व्रत रखकर भूखे नहीं रहना। दशमी वाले दिन तुमने अपने मन से जूझना है -

दसमी दस दुआर बसि कीने॥ पृष्ठ - 298

दसों द्वार वश में करने हैं, नौ तो वश में होते नहीं, दसवां गुप्त है। जो दसवें द्वार को वश में कर लेता है, उसकी रहत वहीं पर ही पूरी हो जाती है -

सचु ता परु जाणीऐ जा आतम तीरथि करे निवासु॥ पृष्ठ - 468

वहाँ का वास, निज घर का वास उसे प्राप्त हो जाता है जो दसवें द्वार को प्राप्त कर लेता है। हम नौ द्वारे आंखें, कान, नाक, जुबान इत्यादि अन्दर से वश करने का प्रयास करते हैं। दसवें द्वार के बारे में अपरिचित है-

दसमी दस दुआर बसि कीने। मनि संतोखु नाम जपि लीने॥ पृष्ठ - 298

नाम जपने से हमारे मन की जो भाग दौड़ थी, वह सन्तोष में बदल गई, मन टिक गया -

करनी सुनीऐ जसु गोपाल॥ पृष्ठ - 298

कानों से हरि का यश श्रवण करके हम कानों को वश में करते हैं -

नैनी पेखत साध दइआल॥ पृष्ठ - 299

नेत्रों से हम गुरू के दर्शन करते हैं, दयालु गुरू के दर्शन करते हैं और इससे हमारे नेत्र उसके दर्शनों से आकर्षित होते चले जाते हैं, रस से भर जाते हैं, फीका, कामुक, वैर, भाव से देखना फिर हमें अच्छा नहीं लगता -

रसना गुन गावै बेअंत॥ पृष्ठ - 299

रसना द्वारा हम किसी की निन्दा चुगली नहीं करते, हरि यश गाते हैं, हमारी रसना रस से भर

जाती है, बोलने को मन नहीं करता, गदगद हो जाती है, फीकी बोली बोलने को मन नहीं करता। सो हम हरि यश गाकर, रसना को वश में करते हैं –

मन महि चितवै पूरन भगवंत॥ पृष्ठ - 299

मन में हम पूर्ण भगवान, जो अंग संग है, उसकी चितवना करते हैं –

हसत चरन संत टहल कमाईऐ॥ पृष्ठ - 299

हाथों पैरों से साधुओं की सेवा करते हैं, संगत की सेवा करते हैं, पंखा आदि झोलते हैं, जल पिलाते हैं, दरियां बिछाते हैं, बर्तन साफ करते हैं, भोजन पकाते हैं; इस प्रकार संगतों की, साधुओं की सेवा करते हैं –

नानक इहु संजमु प्रभ किरपा पाईऐ॥ पृष्ठ - 299

यह संयम जब हम प्रयोग करना शुरू कर देते हैं, फिर क्या होता है? फिर प्रभु कृपा कर देता है। जब कृपा कर देता है फिर मन वश में हो जाता है। इस प्रकार हम दशमी का व्रत रखते हैं।

फिर आ गई एकादशी जिसके फलस्वरूप तुमने मुझे पकड़वा कर बुलाया है। हम इसका भी व्रत रखते हैं। राजन! हमारा व्रत रखने का तरीका और है, आप अन्न नहीं खाते। हम हर रोज़ यह व्रत रखते हैं। जितनी भूख होती है – यदि चार चपातियों की भूख है तो हम तीन रोटियाँ खाते हैं। अल्प आहार का व्रत रखते हैं, बोलने का व्रत रखते हैं, बहुत कम बोलते हैं। सोने का व्रत रखते हैं –

अलप अहार सुलप सी निंद्रा दया छिमा तनि प्रीति॥ **पातशाही १०, शबद हज़ारे**

और आन्तरिक व्रत दसों द्वारों को वश करने का रखते हैं। मन को बार-बार रोकते हैं, मन भागता है फिर इसे रोक कर प्रभु की ओर लगाते हैं, फिर भजन करने लग जाते हैं; फिर मन इधर-उधर भागता है, फिर रोक लेते हैं, फिर गुरू के ध्यान में लगाते हैं, बार-बार गुरू शब्द की धुन में लगाते हैं। इस प्रकार मन को रोक-रोक कर, जिसे तुम प्रतिहार कहते हो, हम इसका अभ्यास करते हैं। विषय भावना हम अन्दर से समाप्त कर देते हैं, जला देते हैं। विषयी भावना की ओर हम अपना मन नहीं जाने देते। जब मन विषय वासना की ओर जाने लगता है तो हम गुरबाणी का सहारा लेकर उसे रोकते हैं, अरे मन! इसका यह परिणाम निकलेगा, देख ले, तैयार है तू इन कष्टों को झेलने के लिए? –

लै फाहे राती तुरहि प्रभु जाणै प्राणी।
तकहि नारि पराईआ लुकि अंदरि ठाणी।
संन्ही देन्हि विखंम थाइ मिठा मदु माणी।
करमी आपो आपणी आपे पछुताणी।
अजराईलु फरेसता तिल पीड़े घाणी॥ पृष्ठ - 315

इस प्रकार हम मन को फिर समझाते हैं। यह हमारा प्रतिहार होता है, बार-बार मन को रोक कर, गुरू शब्द के साथ मिलाते हैं। मन को विषय भावनाओं में नहीं फंसने देते। इन शरीरों में हम पाँच तत्व के पुतले को नहीं देखते, किसी को भी बुरा नहीं कहते। राजा शिवनाभ ने कहा, ''तुम अपने आपको बुरा क्यों कहते हो इतने अच्छे व्यक्ति होकर भी?'' कहने लगा हमारे सतगुरू ने हमें सिखाया है कि यदि बुरा कहना है तो अपने आपको कहो।''

कबीर सभ ते हम बुरे हम तजि भलो सभु कोइ॥ पृष्ठ - 1364

हे भाई! मैं सभी से बुरा हूँ, मुझे छोड़कर शेष सभी अच्छे ही अच्छे हैं –

जिनि ऐसा करि बूझिआ मीतु हमारा सोइ॥ पृष्ठ - 1364

हम नही चंगे बुरा नही कोइ॥ पृष्ठ - 728

सो निन्दा किस की करें, जब हमनें निन्दा करनी छोड़ दी। निन्दा तब करेंगे जब हमारे मन में गुमान होगा कि मैं अच्छा हूँ, फिर हम कहेंगे। जब तक मनुष्य निन्दा करता है, तब तक वह दो में है अर्थात द्वैत में है। सो हम हरि यश करते हैं। हरि यश जो है –

कलजुग महि कीरतनु परधाना। गुरमुखि जपीऐ लाइ धिआना।
आपि तरै सगले कुल तारे हरि दरगह पति सिउ जाइदा॥ *पृष्ठ - 1076*

यह हमारा एकादशी का व्रत होता है –

एकादसी निकटि पेखहु हरि रामु॥ *पृष्ठ - 299*

सभी घटाओं में हम परमेश्वर को देखते हैं –

धारना - सभनां अंदर ओ राम देखणा - 2, 2
इहो वरत गुरां ने दसिआ - 2, 2
सभनां अंदर ओ राम देखणा.......... - 2

सभी दिशाओं में राम को देखना, दूसरा कोई नहीं देखना। गुरू जी ने यही बात बताई है कि सभी घटाओं में परमात्मा ही देखना है। यह व्रत हमें गुरू नानक पातशाह ने बताया है। राजन! हम एकादशी का व्रत रखते हैं कि हर एक के अन्दर वाहिगुरू को देखो –

इंद्री बसि करि सुणहु हरि नामु॥ *पृष्ठ - 299*

सभी इन्द्रियों को वश में करके मन को एकाग्रता में ले जाकर परमेश्वर का नाम सुनो। नाम अन्दर भी है, नाम बाहर भी है, चाहे हरि यश है या हरि कीर्तन है, चाहे बाणी पढ़ते हैं या सुनते हैं; ये सभी कुछ नाम कहलाता है। जब हम अन्दर वृत्ति एकाग्र करते हैं तो नाम धुन में चले जाते हैं –

धुनि महि धिआनु धिआन महि जानिआ गुरमुखि अकथ कहानी॥ *पृष्ठ - 879*

उस समय हम अन्दर नाम श्रवण करते हैं और हमारा अनुभव यह होता है कि चारों ओर अन्दर-बाहर वाहिगुरू की ही लहरें उठ रही होती हैं –

मनि संतोखु सरब जीअ दइआ॥ *पृष्ठ - 299*

मन में सन्तोष रखते हैं और सभी जीवों पर दया करते हैं –

इन बिधि बरतु संपूरन भइआ॥ *पृष्ठ - 299*

हम यह निरर्थक व्रत नहीं रखा करते कि रोटी मत खाओ, भूखे मरते रहो। पहले ही दो दिन की रोटी पेट भर कर खा लो क्योंकि व्रत वाले दिन रोटियाँ नहीं खानी, अभी ही पेट भरकर खा लो, बेशक सारी रात करवटें बदलता रहे तथा चूर्ण आदि खाता रहे। राजन! हम ऐसे व्रत नहीं रखा करते। हम व्रत यह रखते हैं कि मन में सन्तोष, सभी जीवों पर दया, परमात्मा को हर स्थान पर देखना और नौ इन्द्रियों को, कर्मेन्द्रियों को, ज्ञानेन्द्रियों को, हम वश में करके रखते हैं –

धावत मनु राखै इक ठाइ॥ *पृष्ठ - 299*

इस इधर-उधर भागने वाले मन को प्रभु चरणों में रखते हैं, एक सैकिण्ड के लिये भी भूलने नहीं देते कि वाहिगुरू हाज़िर-नाज़िर नहीं है। ऐसे रहते हैं जैसे समुद्र में मछली को ज्ञान हो कि वह पानी में रहती है –

मनु तनु सुधु जपत हरिनाइ॥ *पृष्ठ - 299*

इसका फल क्या होगा? मन भी और तन भी शुद्ध हो जायेगा, जब नाम का जाप करेंगे –

सभ महि पूरि रहे पारब्रहम॥ *पृष्ठ - 299*

सभी के अन्दर परमात्मा परिपूर्ण होकर रमा हुआ है। राजन! गुरू महाराज जी शुभ शिक्षा देते हुए फ़रमान करते हैं कि नाम रसना से जपना, बाणी पढ़ने से लेकर श्वांस-श्वांस अनहद शब्द के साथ मिलाकर, विचार पूर्वक परमात्मा को अन्दर बाहर परिपूर्ण देखकर अपने अहम (हउमै) को मिटाकर यह समझना कि केवल परमात्मा ही इस परपंच में, एक से अनेक बना हुआ खेल रहा है –

नानक हरि कीरतनु करि अटल एहु धरम॥ पृष्ठ - 299

हम हरि का कीर्तन करते हैं और यही हमारा अटल धर्म है जो कभी नहीं टालते।

इस प्रकार, इतने वचन जब राजा शिवनाभ ने सुने तो उसने कहा, ''क्या आप द्वादशी में भी व्रत रखते हो?''

भाई मनसुख ने कहा, हाँ! द्वादशी का व्रत हम ऐसे नहीं रखते कि अब रोटी पेट भर कर खा लो, पूजा कर लो क्योंकि हम तो पूजा रोज़ ही करते हैं। द्वादशी का व्रत गुरू नानक पातशाह ने हमें इस प्रकार बताया है –

धारना - गुरमुख नाम दान इशनान - 2, 2
नाम दान इशनान गुरमुख - 2, 2
गुरमुख नाम दान इशनान - 2

राजन! आप द्वादशी का व्रत उद्यापन करके उस दिन मन्दिर जाते हो, वहाँ फिर शालिग्राम की पूजा करके चरणामृत लेते हो; तुलसी की पूजा करते हो, फिर घर आकर भोजन खाते हो। ऐसा करने से तुम्हारे व्रत का उपारण हो जाता है। हमारा जो व्रत है गुरू महाराज जी फ़रमान करते हैं –

दुआदसी दानु नामु इसनानु॥ पृष्ठ - 299

दान करना, नाम जपना, स्नान करना। कितना फल है इनका? यहाँ मैंने देखा है कि आपके इस देश में अमृत बेला में कोई नहीं उठता। दिन निकल आने के पश्चात समुद्र के किनारे, नदी के अन्दर स्नान करते हुए दिखाई देते हैं। हमारे सतगुरू तो कहते हैं –

गुर सतिगुर का जो सिखु अखाए सु भलके उठि हरिनामु धिआवै।
उदमु करे भलके परभाती इसनानु करे अंम्रितसरि नावै।
उपदेसि गुरू हरि हरि जपु जापै सभि किलविख पाप दोख लहि जावै।
फिर चड़ै दिवसु गुरबाणी गावै बहदिआ उठदिआ हरिनामु धिआवै॥ पृष्ठ - 305

कितना फल मिलता है? पातशाह बताते हैं कि यदि कोई प्रेमी पहर रात रहते उठे – दिन निकलने से तीन घंटे पहले, सूर्य निकलने से पहले तो उसका फल हज़ार गायें पुण्य करने के समान या सवा मन सोना पुण्य दान करने के समान होता है। उसकी विधि हुआ करती है कि स्नान कैसे करना है।

प्राचीन समय में महापुरुष बताया करते थे कि स्नान करने की यह विधि होती है और इस तरह करने से क्या फल मिलता है-

करि इसनानु सिमरि प्रभु अपना मन तन भए अरोगा॥ पृष्ठ - 611

मन भी निरोग हो जायेगा, तन भी निरोग हो जायेगा क्योंकि इतना पुण्य उसके भाग्य में आ जाता है। गुरमुख जो हैं वे निष्काम कर्म करते हैं। यदि वे सकाम कर्म करें तो ये लाखों गुणा नीचे गिर जाते हैं। कहाँ पहुँच जाते हैं? स्वर्गों में चले जाते हैं। ग्यारह-बारह स्वर्ग हैं। जैसा कोई पुण्य दान करता है वैसा ही फल उसे भोगना पड़ता है –

पुंन दानु जो बीजदे सभ धरमराइ कै जाई॥ पृष्ठ - 1414

जब फल भोगने के पश्चात समाप्त हो जायेगा, चाहे लाखों वर्ष के बाद हो, चाहे करोड़ वर्ष के बाद, पुनः यहीं लौटकर आना पड़ेगा, फिर माता के गर्भ में उलटे लटकना पड़ता है। जो मनुष्य निष्काम कर्म करके, ज्ञान प्राप्त करके अपनी आत्मिक स्थिति में अपने आत्मिक स्वरूप को जानकर, प्रभु के साथ इकमिक हो गया वह –

सच खंडि वसै निरंकारु॥ *पृष्ठ - 8*

सचखंड में उसका वास हो जाता है –

अंतरि गुरु आराधणा जिहवा जपि गुर नाउ।
नेत्री सतिगुरु पेखणा स्रवणी सुनणा गुर नाउ।
सतिगुर सेती रतिआ दरगह पाईऐ ठाउ॥ *पृष्ठ - 517*

जो निरंकार की दरगाह है, वहाँ वास हो जाता है। बेशक हम सभी कर्म निष्काम करते हैं परन्तु फिर भी यदि किसी ने पुण्य लेने हो, किसी के मन में चाव है कि मैंने सकाम कर्म करने हैं और सवा मन सोने का पुण्य लेना है, तो जो पहर रात रहते दत्तचित्त होकर मूलमन्त्र का पाठ करता हुआ स्नान करता है, मन को इधर-उधर नहीं भागने देता, उसे इतना फल प्राप्त हो जाता है। दो घड़ियाँ यानि 50 मिनट बाद जो इस विधि से स्नान करता है, उसे सवा मन चाँदी का पुण्य प्राप्त हो जाता है। इससे दो घड़ी बाद स्नान करता है, उसे सवा मन ताँबे का और जो दो घड़ी, सूर्य निकलने से 40 मिनट पहले स्नान करता है, उसे प्रातः काल कहते हैं। उस समय जो स्नान करता है उसे सवा मन अन्न पुण्य करने या दूध पुण्य करने के समान फल प्राप्त होता है –

रामदास सरोवरि नाते। सभि उतरे पाप कमाते॥ *पृष्ठ - 625*

कोई शबद पढ़ता है, कोई मूल मन्त्र के पाठ करता है। चित्त को एकाग्र करना, मन को इधर उधर न भागने देना यह शर्त हुआ करती है। यह बात बहुत कठिन है थोड़ी सी क्योंकि मन टिकता नहीं है, बार-बार बाहर की ओर भागता है। इस प्रकार जो सूर्य निकलने पर स्नान करता है उसे न तो पाप लगता है न ही पुण्य मिलता है, वह तो केवल शरीर की सफाई करता है। सो इस प्रकार स्नान के बारे में गुरू महाराज बताते हैं –

करि इसनानु सिमरि प्रभु अपना मन तन भए अरोगा॥ *पृष्ठ - 611*

हम फल नहीं चाहते, हम परमेश्वर की याद के लिए शरीर को सावधान करने के लिए स्नान करते हैं। उसके पश्चात प्रभु की याद में बैठ जाते हैं फिर हमारे अन्दर प्रभु का आकर्षण पैदा होता है। दिन की थकावट दूर हो जाती है। उस समय हमारी वृत्ति परमेश्वर की ओर बढ़ती है जैसे चकमक पत्थर को लोहा बड़ी तेजी से अपनी ओर खींचता है, हम भी उसके नाम की धुन के साथ जाकर मिल जाते हैं, फिर हमारा मन उसके नाम के साथ लग जाता है, फिर हम बाहर नहीं जाते, समाधि में स्थित हो जाते हैं। निर्विकल्प समाधि या सहज समाधि का परम आनन्द लूटते हैं।

दूसरा है दान। हम मेहनत करके, शुद्ध एवं पवित्र कमाई में से दसवन्ध गुरू के अर्पण करते हैं। दुकानदार, खेती करता किसान, सौ रूपयों में से एक रूपया दान दे; यही उसका दसवन्ध माना जाता है क्योंकि 10 प्रतिशत से अधिक खेती में बचत नहीं हुआ करती। वह भी अपनी मेहनत बचती है। उसका कारण यह है कि चीज़ों का प्रयोग करने वाले उसका मूल्य लगाते हैं, बेचने वालों के हाथ में मोल भाव तय करना नहीं हुआ करता। शेष जितनी चीज़ें हैं - जितनी दुकानें हैं, जितने कारखाने हैं, माल पैदा करने वाले भाव लगाया करते हैं। खाने वाले, अर्थात चीज़ों का प्रयोग करने वाला नहीं कहा करता कि मैंने तो अमुक गाड़ी इतने रूपयों में लेनी है। ऊपर से पहले ही उसका मूल्य लिखा हुआ आता है कि इस गाड़ी की कीमत

यह है। वे सियाने आदमी हैं, उनके पास नियन्त्रण शक्ति है। उसमें वे जितने प्रतिशत लाभ देते हैं, उसमें से ईमानदारी के साथ दसवन्ध निकालना, यह उनका दसवन्ध हुआ करता है।

हम सतोगुणी दान किया करते हैं, तमोगुणी या रजोगुणी दान नहीं किया करते। तमोगुणी दान वह होता है जो मज़बूरी में किया जाये। जैसे कोई मांगे या कहे कि 500 रूपये दे, अन्यथा तुझे शाप दे दूंगा, तेरा काम नहीं चलेगा। धमका कर निकलवा लेना, ऐसा दान तमोगुणी हुआ करता है। ऐसा दान देने वाला भी दोषी होता है और लेने वाला भी दोषी है। इससे कुछ भी पल्ले नहीं पड़ता, बेकार का कष्ट उठाना पड़ता है। रजोगुणी दान वह होता है जैसे अपनी प्रसिद्धि के लिये पत्थर लगवाना, अरदासें करवाना ताकि लोगों को पता चल जाये कि मैंने इतने पैसे दान दिये हैं। इसका जो फल होता है वह इतनी खुशी प्रदान करता है कि पता चल गया कि उसने दस हज़ार रूपये दिये हैं। लोगों ने वाह-वाह कर दी। सतोगुणी दान वह होता है कि बाएं हाथ को पता न चले कि दाएं हाथ ने क्या दिया है। इसे यह पता ही न चले कि मैंने कितने रूपये दिए हैं? यह सहज दान हुआ करता है जो हम अपनी कमाई में से दान करते हैं।

दूसरा दान हुआ करता है हमारे शुभ वचनों का। वाहिगुरू जी ने किसी को सुमति दी है कि वह वचनों से दूसरों का अन्धकार दूर करेगा। सही रास्ते पर उन्हें चलाए, बताये कि अमुक बात ठीक है।

तीसरा दान हुआ करता है - मानसिक दान। मन से हम चाहते हैं कि 'नानक नाम चढ़दी कला, तेरे भाणे सरबत दा भला।' भला मांगते हैं संसार का, बुरा नहीं मांगते। विचार करते हैं कि हे वाहिगुरू! इसका भला करना, यह दुखी है। बुद्धि द्वारा भी भला करते हैं। बुद्धि दी है परमेश्वर ने; बेअन्त कार्य हैं, कोई अभियन्ता है, कोई डाक्टर है, कोई अध्यापक है आदि-आदि। जैसी-जैसी बुद्धि परमात्मा ने दी है, उसी बुद्धि द्वारा सेवा करना, यह बुद्धि का दान हुआ करता है।

इससे उत्तम हुआ करता है जिसे आत्मिक दान कहते हैं, जीअ दान कहते हैं, वे साधु सन्त करते हैं -

जनम मरण दुहहू महि नाही जन परउपकारी आए।
जीअ दानु दे भगती लाइनि हरि सिउ लैनि मिलाए॥ ***पृष्ठ - 749***

मुर्दे में आत्मिक रौ चल रही हो तो उसे ज़िन्दा कहा जाता है। यदि आत्म ज्योति बुझी हो, अज्ञान का घटाटोप अन्धेरा हो तो वह मुर्दा है। मुर्दे दो प्रकार के हुआ करते हैं - एक मुर्दे वे होते हैं, जिन्हें सभी जानते हैं। जब जीवन कला शरीर में से निकल जाये, प्राण निकल जाएं तो उसे मुर्दा कहा जाता है। दूसरा मुर्दा वह होता है जिसके अन्दर नाम की धारा न चल रही हो। मेरे सतगुरू जी नाम से हीन जीवन को मुर्दा कहते हैं। आत्मिक जीवन एक उच्च कोटि की अवस्था है जो नाम जपने से प्राप्त होती है। जीवन आत्मिक संगीत से, अनहद नाद की गुंजार से सुहावना हो उठता है। महान झरनाहटें देते हुए रस का अनुभव सदीवी आनन्द देता है, अन्तसकरण में शान्ति प्रदान करता है, ज्योति प्रकाशित हो जाती है। राजन! मेरे गुरदेव ऐसे जीवन की प्राप्ति को धन्य-धन्य कहते हैं। जब आन्तरिक प्रकाश ने अन्दर से नूर-ए-नूर कर दिया तो वाहिगुरू जी, जो सभी के साथ रहते हैं, वह अंग संग, हर जगह जगमगाती ज्योति के रूप में, आत्मिक जीवन की मौज में रखते हैं। वह प्राणों के आधार है। अपने निज आपे का महान आपा (निजित्व) हैं ऐसी अवस्था में एक नूर से उत्पन्न सारी प्रकृति महान चेतन सत्ता के साथ सांगोपांग, दृष्टिगोचर हुआ करती है। निज अहमभाव (हउमै) का नाश होकर, एक छोटा सा निजित्व, महान निजित्व बनकर मालिक-ए-कुल प्रत्यक्ष भासित होने लग जाता है। इस अवस्था को हम जीवन

कहते हैं। फ़रमान है –

सो जीविआ जिसु मनि वसिआ सोइ। नानक अवरु न जीवै कोइ।
जे जीवै पति लथी जाइ। सभु हरामु जेता किछु खाइ॥ *पृष्ठ - 142*

सो समरथ महापुरुष जीऊ दान देकर आत्म सूझ, आत्म ज्ञान प्रदान करते हैं। इस गोता लगाते जीव को भवजल पार करवा कर सदीवी जीवन प्रदान कर देते हैं। जीअ दान अन्य सभी दानों से सर्वोत्तम है। यह दान केवल वही महापुरुष दे सकते हैं, जिन्हें दरगाही हुक्म के अनुसार संसार के भले के लिये, यह मिशन देकर भेजा जाता है, वे परमेश्वर से मिला देते हैं।

इस तरह से नाम की युक्ति है। नाम की युक्ति हमें सतगुरू जी बताते हैं कि पहले विश्वास करो कि वाहिगुरू हाज़िर नाज़िर है, वह देखता है। जब तुम इस विश्वास में पूरी तरह आ जाओगे तो तुम्हारा मन कहीं नहीं भागेगा। न ही डर लगेगा। एक महात्मा के सम्मुख बैठे तुम इधर उधर झांकते रहते हो, डर लगता है कि सन्त क्या कहेंगे? जब करोड़ों ब्रह्मण्डों के मालिक वाहिगुरू की हजूरी में बैठकर फिर मन भागता है, फिर तो बेअदबी कर रहे हैं। उसकी कचहरी में बैठकर हम परमात्मा की तौहीन (Contempt of court) कर रहे हैं क्योंकि यह इसलिये कर रहे हैं कि हमने माना ही नहीं कि हमें परमात्मा देख रहा है–

पेखत सुनत सदा है संगे मै मूरख जानिआ दूरी रे॥ *पृष्ठ - 612*

पहले हमें विश्वास करवाते हैं कि भाई! बन्दगी करनी है तो पहले विश्वास जमा, प्रतीति कर कि परमात्मा मेरे साथ है, यह उसका नाम है, इस नाम के द्वारा मैंने उसके पास पहुँचना है। यह सीढ़ी है। इसलिये फिर हम बड़े शौक एवं चाव के साथ नाम जपते हैं। स्वंय भी जपते हैं तथा दूसरों को भी जपवाते हैं –

जनु नानकु धूड़ि मंगै तिसु गुरसिख की जो आपि जपै अवरह नामु जपावै॥ पृष्ठ - 306

सो इस तरह से –

दुआदसी दानु नामु इसनानु। हरि की भगति करहु तजि मानु॥ *पृष्ठ - 299*

अभिमान तज कर भक्ति करनी है, विनम्र भाव में प्रवेश करना है –

हरि अंम्रित पान करहु साध संगि॥ *पृष्ठ - 299*

संगत में आकर, गुरू की संगत में आकर हम नाम अमृत पीते हैं –

मन त्रिपतासै कीरतन प्रभ रंगि॥ *पृष्ठ - 299*

जब प्यार से, प्रभु के प्यार में हम कीर्तन करते हैं फिर हमारे मन की प्यास बुझ जाती है –

कोमल बाणी सभ कउ संतोखै॥ *पृष्ठ - 299*

हम मृदु एवं कोमल बाणी बोलते हैं यदि हमारे सामने क्रोध से भरा हुआ भी कोई आ जाये, तो उसके मन में भी सन्तोष आ जायेगा –

पंच भूआतमा हरि नाम रसि पोखै। *पृष्ठ - 299*

गुर पूरे ते एह निहचउ पाईऐ। नानक राम रमत फिरि जोनि न आईऐ॥ *पृष्ठ - 299*

सो जो तुम व्रत उपारन करते हो, चरणामृत लेकर, हम यह व्रत इस तरह से उपारन करते हैं। *'गुरमुख नाम दान इसनान'* इसे हम दृढ़ करते हैं। मान से रहित होकर भक्ति करते हैं, संगत में बाणी का अमृत हृदय में पान करते हैं, हरि यश गाकर, मन को तृप्त करते हैं। जीव आत्मा हरिनाम रस में मस्त

हो जाता है। सन्तोष धारण करके कोमल बाणी बोलते हैं। यह फल कि सर्वत्र वाहिगुरू है, यह हमें गुरू से प्राप्त होता है और इसका परिणाम यह होता है राजन! फिर हम जन्म मरण से छूट जाते हैं।''

इस प्रकार का उपदेश जब दिया तो राजा कहने लगा, ''तुम्हारे जो वचन हैं, एक-एक वचन मेरे हृदय में बैठता चला जा रहा है। कृपा करके मनसुख जी! आप यह बता सकते हैं कि जिस ठाकुर जी का तुम उल्लेख करते हो, जिस शालिग्राम की तुम व्याख्या वर्णन करते हो, वह रहता कहाँ है? कहीं न कहीं तो उसका ठिकाना होगा ही?'' भाई मनसुख जी इसका उत्तर इस प्रकार देते हैं -

राजन! सतगुरू नानक देव जी फ़रमान करते हैं कि इस ठाकुर का कोई रूप, रंग, भेष नहीं है, वह परम चेतन ज्योति है, एक ही चेतन शक्ति है जिससे समस्त सृष्टियां, भान्ति-भान्ति की वजूद में आई हैं। मूल प्रकृति, तीन प्रकृतियों के रजो, तमो और सतोगुण प्रभु से उत्पन्न हुईं हैं। यह अनादि नहीं है। जीवन का अस्तित्व प्रभु के हुक्म अनुसार हुआ है। इसका कोई अस्तित्व नहीं है, यह एक क्रिया है, जो सहज ही प्रकृति या नाम कहो, चेतन प्रभु का प्रतिबिम्ब पड़ने से वही चेतन अंश जीव की उपाधि धारण करता है। बार-बार का अधिआस परिपक्व हो जाने के कारण, इसे राम अंश जीव कहा जाता है। ऐसे समझ लो अव्यक्त मूल प्रकृति में, प्रभु से प्रतिबिम्बत होने के कारण, सबसे पहले होश (ज्ञान) या प्रकाश पैदा होता है तथा प्रकृतिक चित्त, अहमभाव को प्राप्त होकर समिष्टता से व्यष्टिता अलग-अलग होकर, अनेकता धारण करता है। एक मूरत ही अनेक मूर्तियों में रूपमान हो जाती है। इसी चेतन सत्ता के प्रभाव के कारण प्रकृति तीन गुणों में क्रियाशील होकर कर्म करती है तथा अहमभाव (हउमैं) धारण करके कर्म फल में बन्ध जाती है और फिर जन्म मरण के चक्कर में गोते लगाती, दुख सुख के फल भोगती है। तीसरा प्रकृति में नियम बद्ध (Law of Nature) होकर, क्रिया करने के समर्थ है। आत्म ज्योति, कण-कण में परिपूर्ण है, कोई भी जगह दृष्टिमान, अदृश्य में ऐसा नहीं है जहाँ इस चेतन सत्ता का अस्तित्व न हो। हमारे अन्दर, बाहर, घट-घट में धरती आकाश पर, इसके मध्य में खाली स्थान में, वनों में, वृक्षों में, घास, पर्वतों में जो भी हरकत हो रही है, वह नियम प्रकृति पारब्रह्म की सत्ता पाकर क्रिया कर रही है। वायु, पानी, बैसन्तर, चारों कोनों में प्रभु सत्ता है, कोई ऐसा स्थान नहीं, जहाँ वह सर्व शक्तिमान न हो। वह प्यार करता है, दयालु है। बाणी में फ़रमान है -

सो अंतरि सो बाहरि अनंत। घटि घटि बिआपि रहिआ भगवंत।
धरनि माहि आकास पइआल। सरब लोक पूरन प्रतिपाल।
बनि तिनि परबति है पारब्रहमु। जैसी आगिआ तैसा करमु।
पउण पाणी बैसंतर माहि। चारि कुंट दहदिसे समाहि।
तिस ते भिंन नही को ठाउ। गुर प्रसादि नानक सुखु पाउ।। ***पृष्ठ - 294***

राजन! कहाँ बतायें कि अमुक स्थान पर वह परमात्मा, वाहिगुरू नहीं है। वह तो हर जगह है -

चारि कुंट चउदह भवन सगल बिआपत राम।
नानक ऊन न देखीऐ पूरन ता के काम॥ ***पृष्ठ - 299***

यदि हम कह दें कि सभी मनुष्यों के अन्दर भी वही है, फिर बाकी में तो न हुआ। कहते हैं सभी जगह है -

चउदहि चारि कुंट प्रभ आप। सगल भवन पूरन परताप॥ ***पृष्ठ - 299***

इससे आगे महाराज जी हमें क्या बताएं। इसे कहते हैं गुरू का शबद। जिसने गुरू शबद की साधना कर ली, उसके अज्ञान के बन्धन टूट गये। इस शबद की साधना के लिये, हम भजन, बन्दगी, दान, पुण्य, जागरण, सेवा सभी कुछ करते हैं। साधन सम्पन्न होकर ही आन्तरिक खोज की जाती है और

गुरू कृपा से दसवें द्वार में वास प्राप्त हो जाता है। जहाँ दुख सुख की परिभाषा समाप्त हो जाती है, न मायिक भूख है, न पदार्थो की भूख रह जाती है -

दसे दिसा रविआ प्रभु एकु। धरनि अकास सभ महि प्रभ पेखु।
जल थल बन परबत पाताल। परमेस्वर तह बसहि दइआल॥ पृष्ठ - 299

हर स्थान पर प्रभु का निवास है -

सूखम असथूल सगल भगवान। नानक गुरमुखि ब्रहमु पछान॥ पृष्ठ - 299

कोई भी ऐसी जगह नहीं है जहाँ पर वह न हो। वह तो सर्वत्र है। वह पूर्ण गुरू के मिलाप के बिना नहीं मिला करता। इस अनुभव को प्राप्त करने वाले को नाम प्राप्त हो जाया करता है। जिसे यह अनुभव प्राप्त होकर दृढ़ हो गया -

पूरन प्रेम प्रभाउ बिना पति सिउ किन स्री पदमापति पाए॥
त्व प्रसादि सवये पातशाही १०

उसे समझ लो कि नाम प्राप्त हो गया। जिसे नाम प्राप्त हो गया, उसके अज्ञान के अन्धकार का नाश हो गया अर्थात उसका अन्धेरा दूर हो गया। जब अज्ञान दूर हो गया, फिर सभी घटाओं में उसके दर्शन होने शुरू हो गये, फिर बज्र कपाट खुल गये। बहुत से इसी भ्रम में रहते हैं कि हमारे अन्दर पता नहीं पत्थर के दरवाजे लगे हुए हैं। भ्रम के दरवाजे हैं, साध संगत जी, भ्रम पड़ा हुआ है। इस भ्रम का नाश होना है। गुरू की कृपा हो तो भ्रम का नाश होता है। गुरू के बिना यह वस्तु प्राप्त नहीं हुआ करती। पूर्ण गुरू से मिलकर, जिसके भ्रम का नाश हो गया, फिर उसे दरगाह में विश्राम मिल जाता है। यहाँ भी मिल गया और दरगाह में भी मिल गया। निगुरे पुरुष को नहीं मिला करता, इसी लिये -

......................निगुरे का है नाउ बुरा॥ पृष्ठ - 435

मनुष्य का जामा भी धारण किया है। कहता है, "राजन! आपने कोई गुरू बनाया है?"

वह बोला, "मनसुख जी! यह तो मैंने पहली बार ही सुना है। हम तो व्रत रख लेते हैं। जो हमारी विधि है, उनका तुम्हारी बातों के सामने तो कोई अर्थ नही रहा। वास्तव में ये सभी फोकट कर्म हो गये। हम तो जैसे प्रथा चली आ रही है, देवताओं की पूजा करते हैं। यह कहते हैं कि देव पूजा करने से धन आ जायेगा, सुख प्राप्त हो जायेगा। इससे आगे तो हमने कभी परमार्थ के बारे में सोचा ही नहीं है, विश्राम की बात सोची ही नहीं है।"

भाई मनसुख ने कहा, "राजन! दरगाह में विश्राम तब मिलता है यदि पूरे गुरू की प्राप्ति हो जाये। पूर्ण गुरू के पास नाम होता है। जब नाम का अनुभव अन्दर प्राप्त हो जाये तो उस समय सचखण्ड में वास हो जाता है - यहाँ भी और दरगाह में जाकर भी -

प्रभ की आगिआ आतम हितावै। जीवन मुकति सोऊ कहावै।
तैसा हरखु तैसा उसु सोगु। सदा अनंदु तह नही बिओगु।
तैसा सुवरनु तैसी उसु माटी। तैसा अंम्रितु तैसी बिखु खाटी।
तैसा मानु तैसा अभिमानु। तैसा रंकु तैसा राजानु।
जो वरताए साई जुगति। नानक ओहु पुरखु कहीऐ जीवन मुकति॥ पृष्ठ - 275

सो ऐसे ही बातें बनाने से जीवन मुक्त नहीं हो जाते। अवस्था प्राप्त होकर ही स्थिर बुद्धि प्राप्त हुआ करती है। उस जीवन मुक्त पुरुष का जो रहन-सहन, आचार व्यवहार, कर्तव्य है कुछ इस प्रकार का होता है कि मानसिक विकारों से अस्पर्श हो जाता है, समान भाव तथा सहज उसके जीवन में प्रवेश कर जाता है। मान-अपमान, निन्दा-स्तुति, लाभ-हानि, सुख-दुख में समान व्यवहार करता है।

हर्ष-शोक, खुशी-गमी से अस्पर्श रहता है, वासनाओं का अन्त हो जाता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार अपने स्त्रोत मन सहित अ-मन हो जाते हैं।

जो नरु दुख मै दुखु नही मानै।
सुख सनेहु अरु भै नही जाकै कंचन माटी मानै।
नह निंदिआ नह उसतति जाकै लोभु मोहु अभिमाना।
हरख सोग ते रहै निआरउ नाहि मान अपमाना।
आसा मनसा सगल तिआगै जग ते रहै निरासा।
कामु क्रोधु जह परसै नाहनि तिह घटि ब्रहमु निवासा॥ *पृष्ठ - 633-34*

उस घट में उसका निवास होता है जिसकी बाहरी क्रिया ऐसी होती है। भेष द्वारा कभी कोई बात नहीं बनती। सन्त कहलवाने से कुछ नहीं बनता, ऐसे ही अपने आपके साथ भी धोखा, लोगों के साथ भी धोखा होता है। मत कहलवाओ सन्त, न ही किसी को सन्त कहो। सन्त तो कोई विरला ही हुआ करता है। बहुत कठिन है - सन्त बनना। जो कहलवाता है उसके ऊपर भी बोझ पड़ता है, जो कहते हैं वे भी गलत धारणा में कहते हैं क्योंकि सन्त कोई पास पड़ी वस्तु नहीं है -

जिना सासि गिरासि न विसरै हरि नामां मनि मंतु।
धंनु सि सेई नानका पूरनु सोई संतु॥ *पृष्ठ - 319*

पूर्ण रूप से जिसका अपना निजित्व, परम निजित्व में पूरी तरह से लीन हो जाये, जिसे कभी स्वपन में भी अज्ञान न हो, हर समय वाहिगुरू ही नज़र आता रहे, भ्रम का नाश हो जाये, उसे सन्त कहते हैं। बाकी तो कोई भेष या पहरावे का नाम सन्त नहीं है। सो इसलिये पूरा गुरू, समरथ गुरू जब प्राप्त हो गया, फिर दरगाह में विश्राम मिलता है -

धारना - दरगाह विच बिसराम
मिलदै पूरिआं गुरां तों -2, 2
पूरिआं गुरां तों मिलदै - 2, 2
दरगाह विच बिसराम, मिलदै, ...2

हरि की टहल कमावणी जपीऐ प्रभ का नामु॥ *पृष्ठ - 300*

हरि की टहल क्या होती है, कहता है, 'जपिऐ प्रभु का नाम' जितना अधिक परमेश्वर का नाम जपेंगे, वह वाहिगुरू की टहल हुआ करती है।

गुर पूरे ते पाइआ नानक सुख बिस्रामु॥ *पृष्ठ - 300*

यह मिलता कहाँ है - पूर्ण गुरू से। फिर पूर्ण सुख हो जायेगा, फिर विश्राम मिल जायेगा।

गुरू दसवें पातशाह महाराज, आनन्दपुर साहिब को छोड़कर मुक्तसर होते हुए, जब चारों साहिबजादे शहीद हो चुके थे, आप तलवन्डी पहुँचे। उस समय इस स्थान को 'साबो की तलवन्डी' कहा करते थे। वहाँ एक सरदार डल्ला नाम का, हज़ार एकड़ जमीन का मालिक, 300 नौजवान आदमियों की फौज रखता था। गुरू महाराज जी की उसने बहुत सेवा की, लेकिन कभी-कभी अभिमान में आकर कह दिया करता था, "महाराज! आपने मुझे युद्ध के समय याद करना था। देखो, मेरे ये जवान 6-6 फुट लम्बे, 45-45 इन्च की इनकी छाती है, बाजुओं की मासपेशियां कितनी मज़बूत हैं, आम आदमियों के पट के समान हैं। ये सभी जवान दस-दस का मुकाबला कर सकते हैं यदि तलवार का वार करें, न तो घोड़े सहित काठी को पार करके तलवार ज़रा बख्तर को चीरती हुई, धरती में जा फंसे।" ऐसी बातें महाराज सुना करते हैं। खैर महाराज जी ने उसका अभिमान तोड़ा। एक राईफल द्वारा उसके जवानों की परीक्षा ली। गोली का निशाना बनने के लिये कोई भी सूरमा तैयार न हुआ।

वह सेवा बहुत किया करता था। एक दिन महाराज जी ने दो तीन बार रात के समय आवाज़ लगाई, ''पहरे पर कौन है?'' तो जवाब आया, ''मैं हूँ जी डल्ला।'' फिर पूछा, फिर आवाज़ आई, ''जी, मैं हूँ डल्ला।'' इस प्रकार दो तीन बार ऐसा हुआ। गुरू महाराज जी ने कहा, ''डल्ला! तूने सेवा करके आज हमें प्रसन्न कर दिया और जो कुछ तू दुनियां का मांगना चाहता है, तुझे गुरू नानक पातशाह से दिलवा देगें, मांग ले।'' डल्ला कहने लगा, ''महाराज! दुनियां का तो मेरे पास बहुत है, आप मुझे दरगाह में एक पीढ़ी जितना स्थान दे दो।'' महाराज जी ने फ़रमान किया, ''डल्ला! यह तो हम तुझे नहीं दे सकते। तू सेवादार से पूछ कर देख ले।'' सेवादार से जाकर बोला, ''मैंने ऐसे बात कही थी, महाराज जी ने यह उत्तर दिया है मुझे।'' वह कहने लगा, ''डल्ला! तूने तो अभी गुरू ही धारण नहीं किया इन्हें।''

''फिर मैं ऐसे ही सेवा करता हूँ?''

''हाँ, भाई! सेवा तो तू करता है पर तूने नाम नहीं लिया इनसे।''

''नाम तो मुझे आता ही है – वाहिगुरू-वाहिगुरू।''

''डल्ला! अपने आप जपा हुआ नाम फलीभूत नहीं हुआ करता।''

राम राम सभु को कहै कहिऐ रामु न होइ।
गुर परसादी रामु मनि वसै ता फल पावै कोइ।। ***पृष्ठ - 491***

जैसे कठोर और सख्त बीज होते हैं, वे जानवरों के पेट में जाकर गल जाते हैं। बड़ का, पीपल का, गूलर का बीज इतनी डिग्री तापमान पर जाकर गलता है कि जब विष्ठा में से निकलकर गिरता है, तब धरती पर गिरकर बीज हरा हो जाता है। इसी प्रकार गुरमुख के मुख से साधना किये गये नाम की यदि प्राप्ति हो, तभी नाम चलता है। डल्ले! ऐसे तो सारी दुनियां राम-राम, वाहिगुरू-वाहगिुरू, अल्लाह-अल्लाह करती रहती है। ऐसे नाम फलीभूत नहीं होता, नाम तक कोई नहीं पहुँचता। जब उनसे तू नाम ले लेगा, तब उस समय तो पीढ़ी जितना तो क्या बेशक कई मुरब्बे मांग लेना। सारी दरगाह का ही भागीदार बन जाता है। सुन, बाणी क्या कहती है –

सतिगुर सेती रतिआ दरगह पाईऐ ठाउ॥ ***पृष्ठ - 517***

उसे क्या कमी है स्थान की?''

सो इस तरह से मनसुख जी बोले, ''राजन! ये बातें जितनी भी मैनें आपको सुनाई हैं, जब तक आप पूर्ण गुरू धारण नहीं करते, समरथ गुरू तुम्हारे सम्पर्क में नहीं आता, तब तक आपको आत्मिक बख्शीशें प्राप्त नहीं होंगी, बेशक फोकट कर्म, जितना मन चाहे करते रहो। दुनियां की वस्तुएं तो प्राप्त हो जाया करती हैं, माया भी मिल जाती है, लेकिन दरगाह में स्थान तथा मुक्ति नहीं मिला करती, जन्म मरण का बन्धन इन बातों से दूर नहीं होता। जन्म मरण को तो नाम ही समाप्त कर सकता है। प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर अहम भाव है जिसे गुरू महाराज जी हउमैं कहते हैं। यह हउमै नाम की विरोधी है और अन्धकार तथा अविद्या का प्रसार किये रखती है। जब नाम का प्रकाश, गुरू कृपा से अन्तसकरण में जगमगा उठता है, उस समय हउमै द्वारा डाला हुआ अन्धेरा खत्म हो जाता है। फिर प्रकाशित जीव आत्मा अपने आत्म स्वरूप को देख कर, वास्तविकता की पहचान कर लेती है। इस प्रकार आत्म साक्षात्कार हो जाने से जन्म मरण के चक्कर समाप्त हो जाते हैं।''

राजा शिवनाभ कहने लगा, ''ऐसा कोई गुरू है तो बताओ।''

मनसुख जी ने कहा, ''मैं क्या बताऊँ?'' ऐसा कहते-कहते भाई मनसुख जी के नेत्रों से प्रेमाश्रु

बह चले, प्यार में आ गया, वैराग से भर उठा। वैराग में आकर उसने इस प्रकार उच्चारण किया –

धारना – आप मुकत मोहे तारे जी, ऐसे गुरां तों बलि बलि जाईऐ – 2, 2
ऐसे गुरां तों बलि बलि जाईऐ – 2, 2
आप मुकत मोहे तारे जी....... – 2
ऐसे गुरां तों बलि बलि जाईऐ – 2, 2

नाराइन नरपति नमसकारै।
ऐसे गुर कउ बलि बलि जाईऐ आपि मुकतु मोहि तारै।
कवन कवन कवन गुन कहीऐ अंतु नही कछु पारै॥ *पृष्ठ – 1301*

''राजन! क्या गुण बताऊँ मैं उस सतगुरू के, मेरी जुबान कह नहीं सकती।''

लाख लाख लाख कई कोरै को है ऐसो बीचारै॥ *पृष्ठ – 1302*

करोड़ों को लाख से गुणा कर दो, फिर लाख से गुणा करो, फिर लाख से करो, कहते हैं इतने ही व्यक्ति हों हजार खरबों में से भी यदि कोई श्रेष्ठ है तो वह गुरू हो सकता है। इसके मुकाबले पर और कोई है ही नहीं।

बिसम बिसम बिसम ही भईहै लाल गुलाल रंगारै॥ *पृष्ठ – 1302*

प्यार के अन्दर लाल गुलाल रंग हो जाता है तथा विस्माद, विस्माद, विस्माद हो जाता है।

कहु नानक संतन रसु आईहै जिउ चाखि गूंगा मुसकारै॥ *पृष्ठ – 1302*

कहते हैं, राजन! सतगुरू गुरू नानक पातशाह, संसार का उद्धार करने के लिए –

आपि नराइणु कला धारि जग महि परवरियउ।। *पृष्ठ – 1395*

सारे संसार का उद्धार करने के लिए प्रकट हुए हैं, भारतवर्ष में दूर दराज़ तक, जहाँ तक दुनियां है, जहाँ भी कोई जिज्ञासु बैठा है, स्वयं जाकर उसे रास्ता बताते हैं और ऐसा सतगुरू जो है –

समुंदु विरोलि सरीरु हम देखिआ इक वसतु अनूप दिखाई।
गुर गोविंदु गोुविंदु गुरू है नानक भेदु न भाई॥ *पृष्ठ – 442*

यदि मिल जाये तो फिर अन्दर वाहि-वाहि की अमृत धारा बहनी शुरू हो जाती है, विस्माद आ जाता है और फिर वे अपना ही रूप बना लेते हैं। ऐसे गुरू, गुरू नानक पातशाह संसार में हैं, जिनकी कृपा दास पर हुई है। इस प्रकार के वचन जब राजा शिवनाभ ने सुने तो वह बोला, ''भाई मनसुख! देखो, हम तो तुझे अपराधी बनाकर लाए थे, परन्तु पता नहीं हमारे अन्दर कितने दोष हैं, क्या सतगुरू माफ कर देंगे?''

भाई मनसुख ने कहा, ''सतगुरू का स्वभाव ही ऐसा होता है।''

धारना – सारे गुणां दा खज़ाना सतिगुरू मेरा,
बखशे औगुणहारिआँ नूं – 2, 2
मेरे पिआरे, बखशे औगुणहारिआं नूँ – 2, 2
सारे गुणां दा ख़ज़ाना सतिगुरू मेरा,........2

सतिगुरु गुणी निधान है गुण कर बखसे औगुणिआरे॥ *भाई गुरदास जी*

गुण दे देता है, अवगुणों का नाश कर देता हैं। इस प्रकार के वचन चल रहे हैं। अब समय इज़ाजत नहीं देता, मैं यहीं पर ही समाप्त करता हूँ। महाराज जी ने चाहा तो अगली बार, साध संगत जी, इससे आगे विचार करेंगे। सभी प्रेमी आनन्द साहिब, गुर सतोतर और अरदास में शामिल हो।

वाहिगुरू जी का खालसा॥
वाहिगुरू जी की फतहि॥

④

सतनाम श्री वाहिगुरू
धंन श्री गुरू नानक देव जीउ महाराज।

डंडउति बंदन अनिक बार सरब कला समरथ।
डोलन ते राखहु प्रभू नानक दे करि हथ॥ *पृष्ठ - 256*

फिरत फिरत प्रभ आइआ परिआ तउ सरनाइ।
नानक की प्रभ बेनती अपनी भगती लाइ॥ *पृष्ठ - 289*

धारना - पंच बिखादी एक गरीबा,
राखहु राखनहारे जी - 2
राखहु राखनहारे जी, - 4, 2
पंच बिखादी एक गरीबा,........-2

राखु पिता प्रभ मेरे। मोहि निरगुनु सभ गुन तेरे॥ रहाउ॥
पंच बिखादी एकु गरीबा राखहु राखनहारे।
खेदु करहि अरु बहुतु संतावहि आइओ सरनि तुहारे॥ *पृष्ठ - 205*

इसु देही अंदरि पंच चोर वसहि कामु क्रोधु लोभु मोहु अहंकारा।
अंम्रितु लूटहि मनमुख नही बूझहि कोइ न सुणै पूकारा॥ *पृष्ठ - 600*

सगल सहेली अपनै रस माती। ग्रिह अपुने की खबरि न जाती।
मुसनहार पंच बटवारे। सूने नगरि परे ठगहारे॥ *पृष्ठ - 182*

करि करि हारिओ अनिक बहु भाती छोडहि कतहूं नाही।
एक बात सुनि ताकी ओटा साधसंगि मिटि जाही॥ *पृष्ठ - 206*

धारना - पंच बिखादी एक गरीबा,
राखहु राखनहारे जी - 2
राखहु राखनहारे जी - 4, 2
पंच बिखादी एक गरीबा,.......-2

करि किरपा संत मिले मोहि तिन ते धीरजु पाइआ।
संती संतु दीओ मोहि निरभउ गुर का सबदु कमाइआ।
जीति लए ओइ महाबिखादी सहज सुहेली बाणी।
कहु नानक मन भइआ परगासा पाइआ पदु निरबाणी॥ *पृष्ठ - 206*

धारना - पिआरे जित्त लए महा बिखादी,
सरण तुमारी सतिगुर आ के - 2
सरणि तुमारी आ के सतिगुर - 2, 2
पिआरे जित्त लए महा बिखादी.........-2

साध संगत जी! गर्ज कर बोलो 'सतनाम श्री वाहिगुरू' गुरू महाराज जी की अपार कृपा के कारण, आप सभी गुरू दरबार में सुशोभित हो। सारा संसार बेशक पढ़ा लिखा है, चाहे धनी है, चाहे कोई

सुखी है, चाहे कोई दुखी है, वह पाँच चोरों द्वारा पीड़ित है, सभी मूर्च्छित हुए पड़े हैं, इन्हें पता ही नहीं चलता। कुछ एक को होश है जो आत्मिक उन्नति करना चाहते हैं, ऊपर चढ़ना चाहते हैं, परन्तु किसी को रास्ता नहीं मिल रहा। महाराज कहते हैं कि सबसे खतरनाक यदि कोई वस्तु है - मनुष्य के शरीर में, ये पाँच चोर हैं क्योंकि जो इसके अन्दर नाम अमृत रखा हुआ है, उस प्याले के साथ इसके होठों को नहीं लगने देते, यदि एक बार लग जाये तो झूमना शुरू कर देता है, आनन्द आ जाता है, दुख दूर हो जाते हैं -

ऊठत सुखीआ बैठत सुखीआ। भउ नही लागै जां ऐसे बुझीआ॥ *पृष्ठ - 1136*

उठते बैठते, सोते जागते, काम करते समय आनन्द में रहता है। सुख का भी कोई हिसाब-किताब नहीं कितने सुख में रहता है पर इस शरीर के जो पहरेदार हैं, इन्होंने इसे नशा चढ़ा दिया - पाँच चोरों ने। कान रक्षक थे, आँखे रक्षक थी, नाक रखवाला था, जुबान रक्षक थी, स्पर्श इन्द्रियाँ रक्षक थीं परन्तु इन्होंने नशा चढ़ा दिया। इनका जो सबसे बड़ा मालिक मन था, उसे नशा चढ़ा दिया। नशा भी इतना पिलाया कि अरबों-खरबों वर्षों तक उतरने में नहीं आता, उतरता ही नहीं है।

अमृत पास पड़ा हुआ है, यदि इसे पी ले तो सदा के लिए अमर हो जाए। ***'अमृत पीवै अमर सो होइ'*** अमर हो जाता है, जो अमृत के साथ होंठ लगा ले। परन्तु ये चोर अमृत के पास ही नहीं आने देते क्योंकि चौगिर्दे घेरा डाला हुआ है। मनुष्य को इतना फुसलाते हैं, इतनी चीज़ें लाकर देते हैं, मन अमृत को छोड़ कर नीच नशों में चला जाता है -

नैनहु नीद परद्रिसटि विकार। स्रवण सोइ सुणि निंद वीचार।
रसना सोई लोभि मीठै सादि। मनु सोइआ माइआ बिसमादि॥ *पृष्ठ - 182*

रसना स्वादों में पड़ गई, बातों के स्वाद में लग गई, सारा दिन बोलती रहती है। ***'मन सोइआ माया बिस्मादि'*** मन को माया का नशा चढ़ गया। माया बहुत ही शक्तिशाली है। इसके अनेक तथा अनन्त रूप हैं। इसे नागिन कहा है। यह सभी देवता, दानव, द्वैत, मनुष्य, पशु, पक्षियों पर नियन्त्रण करके रखती है, इस नागिन को कोई पहचान ही नहीं सकता। इसका रूप अति मन मोहक है, आकर्षित करती है। अपने आकर्षण भरे घेरे में से बाहर नहीं निकलने देती। मनुष्य चाहे जितनी मर्ज़ी शिक्षा प्राप्त कर ले, साधन कर ले, घर बार छोड़कर निर्जन वनों में, गुफाओं बर्फीले पहाड़ों, तीर्थों पर, कहीं भी यह मनुष्य क्यों न चला जाये, वहाँ भी अपना रूप दिखाकर मोहित कर लेती है। इस नागिन की ज़हर युगों-युगान्तरों तक, करोड़ों अरबों वर्षों तक मूर्च्छित रखती है। वाहिगुरू जी चेतन परम आत्मा है। वह अपनी रचना के कण-कण में महान, सुन्दर दयालु रूप में, गगन मण्डल के महा पवित्र, निर्मल, अस्थिर आसन पर बिराजमान, सर्व कला समरथ हैं। चेतन प्रतिबिम्ब जब प्रकृति पर पड़ता है तो माया (अहम) हऊमैं के रूप में फैली जीवन किरण (जीवन चेतन) के चारों ओर चक्कर डालकर, उसे समुच्चता (व्यष्टि) कह लो या कुल कह लो, एकता से अनेकता में बदल देती है और Totality समिष्टता से अकेली इकाई (व्यष्टि) में बदल कर, जीव अंश को प्रभु से अलग कर देती है फिर चाहे लाख यत्न क्यों न कर ले, इसके सेनापति, मोह राजा, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, आशा-तृष्णा, मनसा, ईर्ष्या, वैर बदले की भावना अपने चक्र में से निकलने नहीं देते। इस दुनियाँ में किसी जीव जन्तु में यह ताकत नहीं जो इस जीव किरण को माया के घेरे में से निकाल सके। केवल एक ही साधन है कि इस जीव को अनेक प्रकार के गोते लगाते हुए कुत्ता, बिल्ला, सांप, पशु पक्षी बनते हुए को मनुष्य जन्म में पूर्ण सन्त, सतगुरू मिल जाये और अपनी दृष्टि द्वारा, इस जीव को नाम मण्डल में प्रवेश करा दे तो माया की ज़हर उतार कर फिर

अपने स्वरूप को पहचान लेता है और अधिक अच्छी तरह से समझने के लिये ऐसे कह सकते हैं कि वाहिगुरू चेतन स्वरूप, रूप, रंग, रेख, भेष से न्यारे, केवल प्यार, ज्ञान तथा दयालु हैं। वह हर जीव के साथ हर समय रहते हैं क्योंकि वह अखण्ड ज्योति हैं, हर जगह परिपूर्ण हैं। माया के कारण जीव पारब्रह्म परमेश्वर को ऐसे भूल जाता है कि जैसे वे होते ही नहीं। इस माया के नशे में मन, नशई बनकर, भूलकर इस शरीर के पहरेदारों को भुला देता है। ये सभी माया ने सुला दिये। अब भ्रमित हुआ मदहोश मन, स्वंय पहरेदार बन गया। महाराज फ़रमान करते हैं –

पंच पहरूआ दर महि रहते तिन का नही पतीआरा॥ *पृष्ठ - 339*

और अब इनका विश्वास नहीं रहा, ये बाहर ही बाहर देखते हैं, अन्दर को नहीं जाते, अमृत तक नहीं पहुँचते। अमृत, मनुष्य के अन्दर है –

नउ निधि अंम्रितु प्रभ का नामु। देही महि इस का बिस्रामु।
सुंन समाधि अनहत तह नाद। कहनु न जाई अचरज बिसमाद॥ *पृष्ठ - 293*

इतना आनन्द है, महाराज कहते हैं, बताया नहीं जा सकता –

कहु कबीर गूंगै गुड़ु खाइआ। पूछे ते किआ कहीऐ॥ *पृष्ठ - 334*

गूंगा क्या बतायेगा? क्योंकि उसके पास बोली बोलने के लिये, शब्द नहीं, न ही समर्थ है, इसलिये बता नहीं सकता, प्रकट नहीं कर सकता।

इस प्रकार वह अमृत जो अन्दर है, वहाँ तक ये पाँच चोर, पाँच विषय, पाँच अहंकार पहुँचने नहीं देते और बड़े कितने हैं, कठोर भी बहुत हैं। इनका मुकाबला करने वाला इस संसार में, करोड़ों में से कोई एक मिलेगा, जो इनके साथ मुकाबला करके, इन पर विजय प्राप्त कर सके। शेष को तो ये मारते चले जाते हैं। किसी को मान गिरा देता है, किसी को लोभ गिरा देता है, किसी को क्रोध गिरा देता है, किसी को काम तो किसी को मोह पटक देता है। किसी-किसी पर पाँचों इकट्ठे होकर हमला करते हैं। मन की इनके साथ सम्मति हो गई। कितनों की सम्मति हो गई – जो पहरेदार (ज्ञानेन्द्रियाँ) थे, वे इसके साथ मिल गये। अब बताओ, रक्षक कौन बने? महाराज प्रार्थना करते हैं – ***'राख पिता प्रभ मेरे। मोहि निरगुनु सभ गुन तेरे' (पृष्ठ - 205)*** मैं तो पूरी तरह से खाली हूँ, मेरे अन्दर कोई भी गुण नहीं, सभी गुण तेरे हैं – मुझे इनसे बचा ले – ***'पंच बिखादी एकु गरीबा, राखहु राखनहारे' (पृष्ठ - 205)*** मैं एक गरीब हूँ। पातशाह मेरा वश कहीं नहीं चलता, मेरी रक्षा करने वाला कोई नहीं है। आप ही बता दो, क्योंकि ये मुझे बहुत सताते हैं, बहुत दुखी (Torture) करते हैं मानसिक पीड़ा देते हैं। 'खेद करहि अरु बहुत सदावदि' मुझे अब कोई रास्ता नहीं मिल रहा। मैं अब तेरी शरण में आ गया। मैंने बहुत कुछ करके देख लिया।

कहते हैं, ''क्या किया है?''

महाराज! तीर्थ यात्रा भी की, वेद-पाठ भी सुने, नितनेम भी किये, स्नान भी किये, दान भी किये, तप भी किए और भी जितने नेक काम थे, सभी किए और अब मैं थक गया। इनके कर्मों के करने से ये दोषी हटते नहीं, बढ़ते हैं। इनके साथ 'मैं' भी चलती है – मैं प्रचारक हूँ, मैं दान करता हूँ, मैं सेवा करता हूँ, मैंने बड़े-बड़े काम किये – इनसे बचने के लिये। महाराज! इन्होंने तो मुझे और उलझा दिया – ***करि करि हारिओ अनिक बहुभाती छोडहि कतहूं नाहीं। (पृष्ठ - 206)*** किसी भी तरीके से नहीं छोड़ते।

महाराज कहते हैं, फिर?

सच्चे पातशाह! मैंने सत्संग में जाकर एक बात सुनी है कि पूरा सतगुरू, पूरा महात्मा मिल जाये, उनके पास मन्त्र होता है, यदि वे मन्त्र दे दें, फिर ये भाग जाते हैं, डर के मारे पास नहीं फटकते – ***एक बात सुनि जाकी ओटा साधसंगि मिटि जाही॥ (पृष्ठ - 206)***

मैंने सुना है कि यदि साधु की संगत प्राप्त हो जाये और उनकी ओट ले लें तो फिर ये कमज़ोर हो जाते हैं, फिर इनका दाव नहीं चलता और मैं प्रार्थनाएं कर रहा हूँ कि हे प्रभु! यदि तू मेरे किसी भी काम पर प्रसन्न होता है, कोई सेवा, गरीब की की गई सेवा, कोई किया गया दान, कोई अन्य नेक कार्य, कोई किसी पर की गई दया, कोई क्षमा, पातशाह! यदि तुझे कोई वस्तु रिझा सकती है, मैंने सुना है, तुझे दया रिझा सकती है। सच्चे पातशाह! मुझ पर कृपा करो। कृपा यह करो कि मुझे महापुरुषों की संगत प्रदान कर दो। मैं दीन दुनियाँ नहीं मांगता, मैं बीमारियों को दूर नहीं करवाता, मुकदमें जीतने की बातें नहीं करता, नौकरियाँ नहीं ढूँढता, पातशाह! एक कृपा करो, मुझे महापुरुषों की संगत बख़्श दो और जब आपने यह कृपा कर दी, तब मुझे धैर्य हुआ कि अब मैं बच जाऊँगा। अब मुझे ये पाँच चोर कुछ नहीं कह सकेंगे क्योंकि मैं महान की शरण में आ गया हूँ, जहाँ पर इन चोरों की पहुँच नहीं है। ये पास नहीं फटक सकते –

करि किरपा संत मिले मोहि तिन ते धीरजु पाइआ॥ ***पृष्ठ - 206***

महापुरुषों को प्रार्थना की तथा उन्होंने मुझे एक मन्त्र दे दिया, वह भी काफी देर के बाद दिया। पहले मुझ से क्रिया करवाई, नाम मन्त्र का जाप करवाया, मेरी हउमैं को मिटाने के लिये अन्य यत्न किये। लोभ को दूर करने के यत्न किए, क्रोध को दूर करने के यत्न किए। पातशाह! उन्होंने मुझे देखकर कि यह पूरा है और मन्त्र को सम्भाल लेगा, जिस प्रकार शेरनी का दूध सोने के बर्तन में ही ठीक रह सकता है, शेष सभी बर्तनों में छिद्र कर देता है, चाहे बर्तन फौलाद का क्यों न बना हो, स्टील का क्यों न हो, बर्तन में छेद कर देगा क्योंकि उसमें बहुत प्रभावशाली तेज़ाब होता है। इसी प्रकार परख कर लेने के वगैर जो गुरू का मन्त्र है, वहीं रह सकता है गुरू का शब्द टिक नहीं सकता। गुरू ग्रन्थ साहिब जी में बहुत उल्लेख आता है लेकिन बहुत कम, विरले ही लोग हैं, जिन्हें यह समझ आती है कि यह गुरू का शबद क्या है? बहुत ही Confusion (धुंधलापन) है। कोई शबद किसी चीज़ को कहता है तो कोई किसी चीज़ को कहता है। यह गुरू का शबद क्या हुआ? वह मन्त्र कौन सा हुआ जो गुप्त रखा हुआ है? दशम द्वार के बारे में बड़ी मुश्कल से महात्मा किसी-किसी पर कृपा करके बता दें तो ठीक है अन्यथा साथ ही ले जाते हैं। यदि पूछे, महाराज! मन्त्र बताया किसी को। कहते हैं, अधिकारी नहीं मिला। सो वह मन्त्र सन्तों ने मुझे दे दिया –

संती मंतु दीओ मोहि निरभउ गुर का सबदु कमाइआ॥ ***पृष्ठ - 206***

जो किसी से डरता नहीं, परमेश्वर का मन्त्र मुझे दे दिया। फिर मैंने जो गुरू का शबद मुझे दिया था, पहले तो मैंने सुना, फिर माना, फिर मैंने उसकी साधना की। जब मैंने उसे प्रत्यक्ष देख लिया, मेरे भ्रमों का नाश हो गया। प्रत्यक्ष देखे हुए की मैंने फिर साधना की। महाराज! साधना करने से क्या हुआ –

जीति लए ओइ महाबिखादी सहज सुहेली बाणी॥ ***पृष्ठ - 206***

अब सहज में आ गया तथा बाणी सरल हो गई, अब 'हाय पुकार' हम नहीं करते –

कहु नानक मन भइआ परगासा पाइआ पदु निरबाणी॥ ***पृष्ठ - 206***

हमारे होंठ, अमृत के प्याले के साथ लग गये, लगते ही हमारे सारे बज्र कपाट खुल गये, अज्ञान का नाश हो गया, अन्दर प्रकाश हो गया –

तितु घट अंतरि चानणा करि भगति मिलीजै॥ *पृष्ठ - 954*

नज़र आ गया –

सभ महि एकु वरतदा जिनि आपे रचन रचाई॥
वाहु वाहु सचे पातिसाह तू सची नाई॥ *पृष्ठ - 947*

यह केवल बुद्धि से ही नहीं माना, प्रत्यक्ष नेत्रों में दिखाई देने लग गया। अब बोलता नहीं है क्योंकि पर्दा हट गया। साँप का भ्रम तब तक था, जब तक अन्धेरा था, जब अन्धेरा दूर हो गया और भ्रम टूट गया, पता चल गया कि रस्सी पड़ी है या रबड़ का साँप बनाकर किसी ने रखा हुआ था। बहुत अन्तर पड़ता है, अच्छा तकड़ा आदमी भी डर जाता है। दिन में भी डर जाता है, मामूली-मामूली बात से डर जायेगा। अमेरिका जाओ, चाबीयाँ भर कर, साँप आदि जानवर छोड़ देते हैं, वास्तव में आदमी डर जाता है क्योंकि मामूली सा भी अन्तर नहीं होता। बाद में पता चलता है कि यह तो चाबी से चलता है, इसके अन्दर सैल रखे होते हैं, असली नहीं है, नकली है। यह जो दुनियाँ है इसके अन्दर वाहिगुरू देखना इतना आसान नहीं है, साध संगत जी! बहुत कठिन है, देखता तो सारा संसार ही है, परन्तु समय कितना लगता है। कहते हैं, इसका कोई नियम नहीं है, चाहे हज़ारों जन्म लग जाये चाहे लाख लग जाये, चाहे किसी भाग्यशाली को एक ही जन्म में दिखा दे। फिर सभी ओर प्रकाश हो जाया करता है, अन्धेरा मिट जाता है, फिर वह अवस्था क्या होती है? *'पाइआ पदु निरबाणी' (पृष्ठ - 206)* निर्वाण पद – निरंकार की हजूरी में हर समय रहना, वह अवस्था प्राप्त हो गई। सो वह अवस्था भाग्यशालियों को प्राप्त होती है, जिसे पूरा गुरू मिल जाये और उसके शबद पर निश्चय हो जाए; फिर वह शबद को सुन ले, फिर उसे साधना सम्पन्न कर ले। पहले मान ले, फिर साधना करे, फिर जाकर वह शबद प्रकट होता है, फिर इन पाँच चोरों का वश नहीं चलता, ये डर के मारे चुप बैठ जाते हैं। मरते तो नहीं हैं, रहते तो ज़िन्दा हैं पर आज्ञा के वश हो जाते हैं। कोई गलत काम करता हो, उसे ताड़ना करनी, वहाँ पर क्रोध पहुँच कर अपना रूप दिखाता है कि महाराज! मैं अब तमोगुणी नहीं हूँ, मेरा स्वभाव बदल गया है। यदि आपने न डांटा तो बात नहीं बनेगी, बन्दगी करनी है, नाम जपना है। लोभ आ जाता है कि नाम धन इकट्ठा कर लो ताकि कोई श्वांस खाली न जाये। फिर ये काम करने शुरू कर देता है। मोह के स्थान पर प्यार आ जाता है। सारे संसार को प्यार करो, परमात्मा को प्यार करो।

वाहिगुरू से प्यार करोगे, संसार के साथ अपने आप ही प्यार हो जाता है। अभिमान के स्थान पर निर्मल पवित्रता आ जाती है, फिर वह किसी का मोहताज़ नहीं रहता –

जो जनु निरदावै रहै सो गनै इंद्र सो रंक॥ *पृष्ठ - 1373*

हउमैं रहित स्व-मान आ जाता है। इसी तरह से काम की जगह प्यार आ जाता है। परमेश्वर के साथ प्यार हो जाता है, हिलोरे आने शुरू हो जाते हैं, चीज़ बदल जाती है दिव्य रूप दिखा देते हैं। सो इस प्रकार से यह सारी बात है यदि पूरे सतगुरू का मिलाप हो जाये।

पिछली बार हम विचार कर रहे थे कि भाई मनसुख जी लंका (संगलाद्वीप) में गये हुए हैं और उन्होंने एकादशी का व्रत न रखा। बहुत कठोर आज्ञा थी – राजा शिवनाभ की। हर एक को खास विधि द्वारा बताये गये नियमों के अनुसार व्रत रखना पड़ता था। परन्तु मनसुख जी द्वारा व्रत न रखने के कारण उन्हें पूछताछ के लिये बुलाया गया कि उन्होंने व्रत क्यों नहीं रखा? आग क्यों जलाई? राज दरबार

में बुलाया गया कि तुमने हुक्म की उल्लघना क्यों की? आपने कहा, ''राजन! मुझे पूरा गुरू मिल गया, उसने मेरे नेत्र खोल दिये, मैंने वह पद प्राप्त कर लिया जहाँ पर पहुँच कर ये चीज़ें worthless (मूल्यहीन) हो जाती हैं और इनका कोई महत्व नहीं रहता। मेरे नेत्र खोल दिये, अब मुझे हर घट में उसके सिवाय और कोई नज़र नहीं आता। पहले-पहले कोई व्यक्ति एक बैलगाड़ी में बैठ कर गया, फिर साईकल जो उससे तेज़ चलती है, उस पर बैठ गया। उसके पश्चात फिर बस, जो साईकल से तेज़ चलती है, उस पर बैठ गया। इस प्रकार फिर कार और हवाई जहाज में बैठ गया फिर मंज़िल-ए-मकसूद पर पहुँच गया। फिर बताओ उसे गड्डे पर बैठने की क्या जरूरत है जो तेज़ रफतार से चलने वाली गाड़ी में बैठकर जल्दी पहुँच जाये। बड़े विस्तार के साथ आपने समझाना शुरू किया और कहने लगे कि राजन! जब तक पूर्ण सतगुरू नहीं मिलता, तब तक यह रास्ता नहीं मिला करता और वह जो गुरू है उस पर पूरा निश्चय, विश्वास करना पड़ता है -

समुंदु विरोलि सरीरु हम देखिआ इक वसतु अनूप दिखाई।
गुर गोविंदु गुोविंदु गुरू है नानक भेदु न भाई॥ ***पृष्ठ - 442***

ऐसा पुरुष आम नहीं होता। एक स्थान पर गुरू महाराज जी ने बताया है कि करोड़ों में से एक दो ही होते हैं। सावधान होकर ध्यान से सुनना - इस बात को खरब, सभी जानते हैं कि खरब क्या होता है - इकाई, दहाई, सैक़ड़ा, हज़ार, दस हज़ार, लाख, दस लाख, करोड़, दस करोड़, अरब, दस अरब, खरब दस खरब। अब इसे फिर खरब से गुणा कर दो। उसको फिर दस हजार से गुणा कर दो। दस हजार खरब में से श्रेष्ठ गुरू एक होता है। महाराज जी ने लिखा है -

लाख लाख लाख कई कोरै को है ऐसो बीचारै॥ ***पृष्ठ - 1302***

विचार करो, कितनी देर बाद। जन-संख्या गिनकर देख लो, अरबों की संख्या में पड़े हैं, अब तक गिनती करके देख लो कि इतने आदमी आए हैं, इतने अभी नहीं बने। ये जो हिसाब करके बताते हैं ये दोनों पक्षों के आदमियों को गिनकर बताते हैं, फार्मूला है जनसंख्या का। पीछे कम करके देख लो। कोई भयंकर महान युद्ध न हुआ हो, कोई बीमारी न फैली हो, बता देंगे कि अमुक समय में इतनी आबादी थी। ब्याज दर ब्याज जो होता है, वही जनसंख्या निकालने के लिये फार्मूला लगाया जाता है। पांच हजार साल पीछे की आबादी ले लो, पता चल जायेगा कि अब तक कितने चले गये। उससे भी पहले की ले लो, जब से संसार बना है, गुरू परमेश्वर एक ही बार आया है, सारे संसार में बार-बार नहीं हुआ। गुरू बहुत आए हैं, गुरूओं का कोई अन्त नहीं। सतगुरू बहुत आए हैं, उनका भी कोई हिसाब-किताब नहीं। वाद-विवाद में नहीं पड़ना चाहिए क्योंकि संसार कभी भी खाली नहीं रहता, संसार के उद्धार के लिए आते ही रहते हैं। जब तक संसार रहेगा तब तक आते रहेंगे लेकिन गुरू परमेश्वर नहीं आया। सतयुग से लेकर न जाने कितने कल्पों के बाद गुरू परमेश्वर आया है। कहते हैं ***'लाख लाख लाख कई कोरै को है ऐसो बीचारै।'*** पूर्व जन्म का कोई नेक कर्म किया हुआ है, पुण्य कर्म किया हुआ है कि हमें गुरू के पीछे लगा दिया, गुरू की बाणी के साथ जोड़ दिया। गुरू भी वह जो गुरू परमेश्वर है। उसके अन्दर ये खूबियाँ हैं जो महाराज जी ने बताई हैं-

धारना - निरवैर निराला जी.........2, 2
सतिगुर पुरख अगंम है - 2
निरवैर निराला जी..........-2

सतिगुर पुरखु अगंमु है निरवैरु निराला। जाणहु धरती धरम की सची धरमसाला।
जेहा बीजै सो लुणै फलु करम सम्हाला। जिउ करि निरमलु आरसी जगु वेखणि वाला।

जेहा मुहु करि भालीऐ तेहो वेखाला। सेवकु दरगह सुरखरू बेमुखु मुहु काला।
भाई गुरदास जी, वार 34/1

ऐसा सतगुरू। अकाल पुरुष के द्वार पर गुरू नानक पातशाह पहुँचे। काफी समय से विचार चल रही है। कई प्रकार की विचार धाराएं चल रही हैं। कोई कहता है गुरू नानक पातशाह के, कबीर साहिब गुरू थे। कबीर साहिब तो मिले ही काफी देर के बाद हैं। आजकल के लेखक तो कहते हैं कि उनका तो मेल ही नहीं हुआ। बहुत से कहते हैं कि मेल हुआ है और कबीर साहिब ने तो स्वंय ही लिखा है, मेरा पीर गोमती के किनारे बैठा है, महाराज का वहाँ आसन था, ऐसा प्रमाण मिलता है - गोमती नदी पर कई कहते हैं कि वे सन्त रैण थे कि जब सच्चा सौदा करने गये तो उन्होंने नाम दिया। सन्त रैण जी को पूछा, आपने इतनी जल्दी इस बच्चे को वापिस क्यों भेज दिया? वह बोले, ''साधुओ! मैं उसका तेज़ सहन न कर सका क्योंकि मैं ऊँचे आसन पर बैठा था, वह सामने खड़े थे और यदि मैं उठ कर नीचे बैठ जाता, तुम्हारे मनों में सन्देह हो जाना था और मैंने उसके चरण छूने थे। मैं उस बालक का तेज़ सहन न कर सका। वह तो कोई अकाल शक्ति थी।''

सो महाराज फ़रमान करते हैं, मुझे अकाल पुरुष ने अपने दर पर बुलाया। वहाँ पर बुला कर पूछा, ''हे नानक! तुझे जिस कार्य के लिये भेजा था, वह शुरू नहीं किया।''

आपने कहा, ''हे अकालपुरुष जी! हे प्रभु! आपका यह फ़रमान है कि जब तक मनुष्य गुरू नहीं बनाता, तब तक वह निगुरा रहता है। जो निगुरा पुरुष है, वह उपदेश देने का अधिकारी नहीं है और मैंने संसार में नज़र दौड़ा कर देखा, कोई ऐसा नहीं है'' -

बीजउ सूझै को नही बहै दुलीचा पाइ॥ *पृष्ठ - 936*

प्रभु! आपकी सृष्टि में, आपकी दी हुई दृष्टि से मैंने सारे संसार में तलाश की कि कोई समरथ पूर्ण महापुरुष मिल जाये। सभी वर्णों में देखा। परन्तु ऐसा कोई भी नज़र न आया, जो गुरू परमेश्वर हो, इसलिये मैं आपकी दरगाह में हाज़िर होकर आपको ही गुरू धारण करता हूँ। सो आप ही कृपा करो।

उस समय अकाल पुरुष ने अपना स्वरूप बताया। हे नानक! मेरा स्वरूप संसार को निर्गुण स्वरूप बताना है। ऐसा नहीं बताना कि मैं सातवें आसमान में रहता हूँ, तेरहवें या पन्द्रहवें में बैठा हूँ या बैकुण्ठ धाम में बैठा हूँ या क्षीर सागर में बैठा हूँ। संसार को बताना कि मैं पहले अकेला ही था, और कोई नहीं था। मैं अपने आप अपनी मौज में था और फिर मैं शब्द रूप हुआ - 'औंकार'। वह अवस्था मेरी सत थी, अब भी सत है और मैं नाम स्वरूप हुआ, आत्म स्वरूप हुआ, फिर मैं स्वंय कर्ता बना, मुझे कहीं से मिट्टी लाने की जरूरत नहीं पड़ी, तत्व लाने की जरूरत नहीं पड़ी, न ही माया, प्रकृति और न ही कोई और तत्व लाने की जरूरत पड़ी। इन चीज़ों की मुझे जरूरत नहीं -

करण कारण प्रभु एकु है दूसर नाही कोइ।
नानक तिसु बलिहारणै जलि थलि महिअलि सोइ॥ *पृष्ठ - 276*

मैं स्वंय ही कर्ता हूँ, स्वंय ही कारण हूँ, मुझे किसी वस्तु की जरूरत नहीं। कुछ ने गलत बात बता दी प्रकृति भी अनादि है, जीव भी अनादि है, तीसरा तत्व चेतन भी अनादि है। तीन थे, तीनों अनादि हैं। भ्रम में पड़ गया संसार। पता नहीं चलता कि कैसे विचार करें? कर्ता भी मैं ही हूँ, मैं स्वंय ही संसार हूँ -

आपीन्है आपु साजिओ आपीन्है रचिओ नाउ।
दुयी कुदरति साजीऐ करि आसणु डिठो चाउ।

दाता करता आपि तूं तुसि देवहि करहि पसाउ।
तूं जाणोई सभसै दे लैसहि जिंदु कवाउ। करि आसणु डिठो चाउ॥ पृष्ठ - 463

मैंने ही माया (प्रकृति) बनाई है, मेरे हुक्म में जीव का अस्तित्व प्रतीत होता है। यह अज्ञान की एक अवस्था है -

हुकमी होवनि जीअ हुकमि मिलै वडिआई॥ पृष्ठ - 1

सो मेरे हुक्म के अन्दर ही ये जीव बने हैं लेकिन हुक्म के अन्दर ही इन जीवों पर माया पड़ी है, जीव हुक्म को मानकर ही छूट जायेंगे -

किव सचिआरा होईऐ किव कूड़ै तुटै पालि।
हुकमि रजाई चलणा नानक लिखिआ नालि॥ पृष्ठ - 1

जो चीज़ हुक्म से बनी है, हुक्म से ही उसका छुटकारा होगा। संसार को जाकर बता दे, मैंने ही संसार पैदा किया है। माया-छाया कुछ नहीं है। ये पाँच तत्व कहीं नहीं थे, न कोई सूरज, न कोई चन्द्रमां, न कोई तारे, न कोई खण्ड, न ब्रह्मण्ड, न हवा, न पानी, न आग, कुछ नहीं था। मैं अपनी मौज में स्वंय ही खेलता था जिसे लोग सुन्न अवस्था कहते हैं। सुन्न, जीरो नहीं था, मेरे अन्दर सभी ताकतें थीं। मुझे किसी ज्ञान की जरूरत नहीं पड़ी और मैं ही सभी कुछ घटित करके, सभी के अन्दर घट-घट में बसा हुआ हूँ। मैं तुम्हें मन्त्र देता हूँ। तुम यह मन्त्र संसार को बताओ। जो इस मन्त्र पर विश्वास करेगा, जिसे 'मूल मन्त्र' का नाम दिया जाता है, जो इसका पूर्ण निश्चय के साथ श्रद्धापूर्वक पाठ करेगा और ध्यान धरेगा, वह मेरी दरगाह में अवश्य आयेगा। उसके पापों का नाश हो जायेगा।

आपने पूछा, ''महाराज! संसार को क्या गुरू मन्त्र दें?''

अकाल पुरुष जी ने कहा, 'वाहिगुरू' - यह मन्त्र देना है क्योंकि यही मन्त्र है जो मेरी दरगाह तक पहुँच कर भी जारी रहता है। बाकी मन्त्र हट जाते हैं। एक 'वाहि वाहि' नहीं हटा करती, विस्माद अवस्था नहीं हटती, जीव, पूर्ण आनन्द में हिलोरे लेता है, झूमता है, मैं भी परम आनन्द हूँ, 'वाहि वाहि' करता हुआ जीव, अपना जीव भाव मिटाकर, मुझ में अभेदता प्राप्त कर लेता है। यह बात कहने की समर्थ से बाहर है क्योंकि यह सारा परपंच मेरी लीला है, मैं स्वयं ही हूँ। यहाँ मेरे सिवाय दूसरा कोई नहीं है, जो कुछ भी दिखाई देता है, जो भी शब्द सुनाई देता है, वह मेरे बिना कुछ भी नहीं है पर मेरी ही ज्योति की सत्ता, जब मेरे द्वारा साजी हुई सृष्टि प्रकृति पर प्रतिबिम्बित होती है या ऐसे कह लो कि जब मेरी शक्ति का प्रभाव प्रकृति ग्रहण करती है तो उस प्रकाश को ग्रहण करने का गुण होने के कारण उसमें क्रिया शुरू हो जाती है। प्रकृति के तीन गुण आपनी सम अवस्था छोड़कर क्रियाशील हो जाते हैं पर मेरे द्वारा बनाये गये नियम को, प्रकृति, मेरी मौज के बिना तोड़ नहीं सकती। वह नियम बद्ध होकर क्रियाशील रहती है। उसमें अनेक चित्त हैं। प्रकाश (होश) पैदा होते ही वह अहमभाव (हऊमै) के घेरे में आये 'मैं' भाव पैदा करके कुल (समष्टि) से अनेक रूपों में क्रियाशील हो जाते हैं। इस प्राकृतिक ज्ञान को जीव कहा जाता है यह होश एक भाव है जिसे अहम (हउमै) कहते हैं। हउमै के प्रभाव वश यह छोटा सा आपा जीव कहलाता है तथा यह अपने साथ पाँच तन मात्राएं शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध पैदा कर लेता है, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ पाँच कर्मेन्द्रियाँ तथा मन अस्तित्व में आता है। पाँच स्थूल भूत भी, पाँच तन मात्राएं शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध से आकाश, हवा, अग्नि, पानी तथा पृथ्वी का रूप धारण करके साकार होते हैं पर मेरी शुद्ध ज्योति प्रकृति के कण-कण में समाई होने के कारण यह समस्त क्रिया हो रही है। जब तक हउमैं का नाश नहीं होता तब तक जीव-भाव हउमैं के कारण अपने आत्म स्वरूप को पहचान

नहीं सकता। मेरी नाम शक्ति ने सारे खण्ड, ब्रह्मण्ड धारण किये हुए हैं। यह जो मैंने बताया है यह ज्ञान मार्ग है पर भक्ति मार्ग तथा कर्म मार्ग में से गुज़रते हुए यहाँ पहुँचना है। निष्काम कर्म, अन्तसकरण की मैल दूर करते हैं। उपासना (भक्ति) ध्यान, विक्षेपता दूर करती है और ज्ञान तथा हउमैं के डाले हुए भ्रम रूप मुर्दे का नाश करता है परन्तु यह सभी कुछ गुरू कृपा से ही होता है।

सो प्रभु ने गुरू परमेश्वर गुरू भेजा है। भाई मनसुख जी कहने लगे, ''राजन! कलयुग में गुरू परमेश्वर प्रकट हो गये हैं और वे पूर्ण हैं, समस्त गुणों का खजाना हैं तथा अवगुण माफ कर देते हैं।'' भाई गुरदास जी ने इस तरह फ़रमान किया है, साध संगत जी –

धारना – सारे गुणां दा खज़ाना सतिगुर मेरा,
बखशे औगुण सारिआं दे – 2, 2
पिआरे जी, बखशे औगुण सारिआं दे – 2, 2
सारे गुणां दा खज़ाना सतिगुर मेरा........2

सतिगुर गुणी निधानु है गुण करि बखसै अवगुणिआरे।
सतिगुरु पूरा वैदु है पंजे रोग असाध निवारे।
सुख सागरु गुरुदेउ है सुख दे मेलि लए दुखिआरे।
गुर पूरा निरवैरु है निंदक दोखी बेमुख तारे।
गुरु पूरा निरभउ सदा जनम मरण जम डरै उतारे।
सतिगुरु पुरखु सुजाणु है वडे अजाण मुगध निसतारे।
सतिगुरु आगू जाणीऐ बाह पकड़ि अंधले उधारे।
माणु निमाणे सद बलिहारे॥ *भाई गुरदास जी, वार 26/19*

गुरू ऐसे ही नहीं हुआ करता। यह गुण हों; ***'सतिगुरू गुणी निधान है'*** सभी गुणों का खज़ाना ***'गुण करि बखसै अवगुणिआरे'*** वह गुण दे देता है, नेकी दे देता है पर हमारे अन्दर नेकी नहीं है। यदि हम कहें कि हमारे अन्दर नेकी है, वह हउमैं बन जाती है। 'सतगुरू पूरा वैद्य है' अधूरा, अपूर्ण वैद्य नहीं है। सबसे बड़ा दुख हउमैं का है। उसकी दवाई संसार में किसी के पास नहीं है। उसकी दवाई है 'अमृत'। अमृत मिल जाये तो हउमैं का नाश हो जाता है। यदि अमृत नहीं मिला तो हउमैं का नाश नहीं होता। मैंने पहले प्रार्थना की थी कि वह अमृत गुरू के पास हुआ करता है –

अंम्रितु हरि हरि नामु है मेरी जिंदुड़ीए अंम्रितु गुरमति पाए राम॥ *पृष्ठ – 538*

गुरमत धारण करो, गुरू ग्रन्थ साहिब की मति धारण करो, फिर देखो, अमृत का चश्मा अन्दर से कैसे फूटता है प्रकट हो जायेगा।

कहते हैं रावण के अन्दर अमृत था, पता नहीं किस प्रकार का था क्योंकि काफी प्राचीन बातें हो गईं; हमने तो उसका एक ही पक्ष देखा है। रावण सीता जी को ले गया और स्वाभाविक ही हमारा उसके साथ विरोध पैदा हो गया और अब तक भी पीछा नहीं छोड़ता। पता नहीं, लाखों वर्ष बीत गये। उसके व्यक्तित्व को हम किसी भी पक्ष से अच्छा नहीं मानते, बुरा ही बुरा कहते हैं। ऐसा कहते हुए सुने गये हैं कि उसने श्री राम चन्द्र जी की सेना को पहले दिन का सारा राशन दुश्मन की फौज के लिये अपनी ओर से दिया था कि फौजें आई हैं और इसने लड़ाई करनी है, इसे राशन पानी हम दें। कुछ दिनों के लिये राशन पानी दे दिया। जब समाप्त हो गया फिर रामचन्द्र जी ने कहीं से मंगाया फिर जब लक्ष्मण जी को ब्रह्मअस्त्र लगा और वह मूर्च्छित हो गये, उस समय रावण के वैद्य ने संजीवनी बूटी पर्वतों में से मंगवाकर लक्ष्मण जी को सुंघा कर पुर्नजीवित किया, बेशक पर्वत को हनुमान जी उठाकर लाये थे।

वह टाल मटोल भी कर सकता था। सो उच्च चरित्र था। सीता जी नौ महीने उसके पास रहीं। वह केवल House Arrest (गृह में बन्दी) थीं। उस बाग में बन्द थीं। उसने कोई नाजायज़ हरकत नहीं की थी। सो हम उसके व्यक्तित्व का एक पक्ष लेकर विरोध भाव से उसे बहुत बुरा राक्षस कहते हैं। उसे ब्राह्मण कहते थे, वह जाति का ब्राह्मण था और दस विद्याओं का ज्ञाता था। उसके दस सिर बताये जाते थे। बहुत विद्वान पुरुष थे। जब रावण मारा गया तो श्री राम चन्द्र जी ने लक्ष्मण को भेजा कि जाओ उससे उपदेश लेकर आओ। सो उसके पास अमृत था। कोई गुरू होगा उसका, जिससे उसे अमृत की दात प्राप्त हुई होगी। वह मरता नहीं था। विभीषण, रावण के छोटे भाई द्वारा इस बात का रहस्य प्रकट करने पर कि उसके हृदय में अमृत कुण्ड है, श्री राम चन्द्र जी ने नाभि में बाण मार कर अमृत के चश्में को सुखाया, तब वह मरा। यह मिथिहास होता है। बात कुछ और होती है, समझने के लिये कुछ और तरह से कही जाती है।

यह अमृत गुरू के पास होता है, गुरू दिया करता है। जिसे दे दे, उसके अन्दर प्रकट हो जाता है। जिसके अन्दर अमृत प्रकट हो गया, उसके शरीर की समस्त बीमारियों का अन्त हो जाया करता है और वह नाम रूपी अमृत पी कर सदीवी अमर हो जाता है, काल उसकी सीमा पार करके, नाम अमृत की सहायता से अमृत (मृत्यु-रहित-पद) प्राप्त कर लेता है -

सरब रोग का अउखदु नामु॥ *पृष्ठ - 274*

सतगुरू पूरा वैद्य है, ***पंजे रोग असाध निवारे*** - ये पाँच रोग-काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार लगे हुए हैं, इन्हें असाध्य रोग कहते हैं, ये किसी प्रकार भी दूर नहीं हो सकते। सतगुरू सभी सुखों का खजाना है। ***'सुख सागरु गुरुदेउ है सुख दे मेलि लए दुखिआरे।'*** पहले वह सुख देता है, फिर परमेश्वर के साथ मिला देता है।

उसका किसी के साथ वैर नहीं - ***'गुर पूरा निरवैरु है निंदक दोखी बेमुख तारे'*** बेमुखों को भी पार कर देता है; जो वैर करते हैं, उन्हें भी पार कर देता है।

संसार में निन्दक को स्वस्थ करने की कोई औषधि नहीं है, वह पच-पच कर मरता है, मरने के उपरान्त निखिद्ध यौनियों में चक्कर काटता है। सावन के महीने में दूसरे कुत्ते के काटने से कुत्तों के सिर में कीड़े पड़ जाते हैं, वह यौनि भी उसे मिलती है। केवल सतगुरू वैद्य के पास अमूल्य दवाई नाम की हुआ करती है, वह यह औषधि देकर निन्दक के असाध्य रोग को दूर कर देता है। सतगुरू में तो कोई वैर होता ही नहीं। निर्मल आरसी में यदि कोई वैर भाव, तर्कशील होकर देखता है, उसे अपना ही बिगड़ा हुआ चेहरा दिखाई देने के कारण उसके अन्दर वैर भाव है। सतगुरू में ऐसी भावना नहीं हुआ करती। वह पूर्ण रूप से निरवैर है क्योंकि सतगुरू की दृष्टि में दूसरा होता ही नहीं। एक वाहिगुरू की ज्योति हर घट में होती है। ऐसी कथा है कि जब गुरू अर्जुन देव जी महाराज को गर्म-गर्म लोह पर बिठाया गया तथा पानी से भरी हुई देग में पानी उबाल कर उसमें बिठाया गया तो इस्लाम धर्म के प्रसिद्ध महान साधक, तपस्वी, समदृष्टि पीर मीयां मीर जी, लाहौर वालों को पता चला कि मुगल बादशाह जहाँगीर की सम्मति से उसका एक वज़ीर चन्दू, गुरू महाराज जी को तसीहे (कष्ट) देने का यत्न कर रहा है तो वे गुरू महाराज जी को मिलने आए। सिपाहियों को दूर करके वे चन्दू की हवेली में आ गये। हैरान भी हुए कि गुरू साहिब जी जो परमेश्वर रूप हैं तथा जिनकी नज़रों में कोई भी बुरा नहीं है, सभी अच्छे ही हैं, उन्हें इतने अधिक कष्ट दिये जा रहे हैं। उस पीर मीयां मीर जी ने कहा, "हे गुरू अर्जुन देव जी! आप करण कारण सर्व कला समरथ सतगुरू हो, आपके साथ इतना बुरा सलूक किया जा रहा

है कि आग के समान गर्म रेत आपके शीश पर डाला जा रहा है, आप श्राप क्यों नहीं देते? यदि आपने नहीं देना तो मैं लाहौर शहर को गर्क कर देता हूँ। बादशाह को राख में मिला देता हूँ। आप रूहानी शक्ति का प्रयोग करके आग बुझा क्यों नहीं देते? अग्नि रूप होकर जलती हुई लोह (तवी) को ठण्डी क्यों नहीं कर देते?'' गुरू महाराज जी ने कहा, ''क्यों मीयां मीर जी! यहाँ वाहिगुरू जी के सिवाय कुछ और भी दिखाई देता है क्या? वह स्वंय ही जल्लाद के रूप में खड़ा कष्ट दे रहा है, स्वंय ही आग है, स्वयं ही उबलता हुआ पानी है, कष्ट सहन करने वाला भी वह स्वंय ही है। यह शरीर तो इस अगंमी लीला में एक प्रतीक ही है। जब उसकी ही रज़ा में सभी कुछ हो रहा है तो उसे मीठा समझ कर मानना चाहिए क्योंकि दुख भी उसके द्वारा दी गई प्यारी दात ही तो है। आप शान्त रहो, देखो, हर जगह, हर दिशा में, हर रूप में, हर रंग में वह स्वंय ही तो है, उसके इसमें भी दर्शन करो। पवन, पानी, बैसन्तर में स्वंय ही तो है।''

गुरू दशमेश पिता जी का जिसको भी बाण लगता था, वह बाण लगते ही उसके सारे पाप खत्म कर देता था। सो गुरू दशमेश पिता जी के महापवित्र हाथों से पहले तो उस पर दृष्टि पड़ी, फिर बाण मारा, फिर क्या उसका उद्धार नहीं होगा साध संगत जी? यदि पाँवटा साहिब में गुरू महाराज जी ने शेर मारा – जो पांवटा साहिब के ऊपर के जंगलों में था, तो उस शेर का उद्धार कर दिया। तीतर मारा तो तीतर का उद्धार कर दिया। सो निन्दकों को विमुखों, दोखियों को गुरू जिस विधि से भी चाहे, पार कर देते हैं। जन्म मरण का भय, यमों का भय, सभी के सिरों में घुसा हुआ है। पैदा हो जाना है, मर जाना है, फिर पैदा होना है, फिर मरना है परन्तु वह इस डर को दूर कर देता है, फिर वह पूर्ण ज्ञानवान है, अनजान नहीं है। बड़े-बड़े कौडे राक्षस जैसों का निस्तारा कर दिया जो मनुष्यों को खा जाते थे। सज्जन ठग जैसे ऐसे अनजान मनुष्यों को भी पार कर दिया। ज्ञान के नेत्र हमारे पास नहीं, वैराग के हमारे पास हाथ नहीं, भय के हमारे पास चरण नहीं और यह पिंगलों को माया से पार न उतरने वाले पर्वतों को भी पार करा देता है –

पिंगुल परबत पारि परे खल चतुर बकीता।
अंधुले त्रिभवण सूझिआ गुर भेटि पुनीता।
महिमा साधू संग की सुनहु मेरे मीता॥ *पृष्ठ - 809*

जब मेल हो गया, अन्धे, लूले, गूंगे, बहरे, पिंगले तरने लग जाते हैं। जिसका दुनियाँ में कोई मान नहीं, उसका मान सतगुरू हुआ करता है। बलिहार जाता हूँ ऐसे सतगुरू पर। गुरू का काम होता है, विषयों से दूर रखना, विषयों से मुँह मोड़ना और परमेश्वर के साथ जोड़ना –

धारना - सांई नाल जोड़दै,
विषिआं तों तोड़ के सतिगुर - 2, 2
विषिआं तों तोड़ के सतिगुर - 2, 2
सांई नाल जोड़दै.........2, 2

पाँच विषय हैं – शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध। जब संसार की रचना की, जब सूक्ष्म माया पैदा की – त्रिगुणी माया, कहते हैं सबसे पहले ये पाँच सूक्ष्म तत्व बने – शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध। शब्द से आकाश बना, स्पर्श से हवा, रूप से प्रकाश, गन्ध से मिट्टी, रस से पानी बना। ये प्रत्येक मनुष्य की देह में हैं, अब टूट नहीं सकते। यदि कोई तोड़ने वाला है तो वह केवल सतगुरू है साध संगत जी –

सिध नाथ अवतार सभ गोसटि करि करि कंन फड़ाइआ॥ भाई गुरदास जी, वार 26/21

सिद्धों के साथ, नाथों के साथ, अवतारों के साथ गुरू जी ने गोष्ठी की और उन्होंने कान

पकड़े। कान पकड़ने का अर्थ है कि उन्होंने शीश नवाया। हे नानक! जो यह बात तुमने बताई है, हमने भी इसका बहुत अनुकरण किया था। धन्य है, बलिहार जाते हैं आप पर, हमें भी आपने और प्रकाश दे दिया। साध संगत जी! कौन सी बात बताई है? यही बात हम भी कर लें ताकि तुम भी कल को किसी से बात कर सको। जितने भी प्राचीन गुरू थे, वे सभी स्व-स्वरूप में जाकर रुक जाते थे। पाँच समाधियाँ हुआ करती हैं - चार भेद सम्प्रज्ञात समाधि के हैं जिनके क्रमशः नाम हैं 1. वितरत अनुगति 2, विचार अनुगति 3. आनन्द अनुगति 4. असम अनुगति। असम्प्रज्ञात में अपने स्वरूप का ज्ञान होता है फिर परमेश्वर का ज्ञान साक्षात्कार होता है। सम्प्रज्ञात असम्प्रज्ञात और पाँचवी जिसे राजमेध समाधि कहते हैं - दूसरी और साविकल्प तथा निर्विकल्प। निर्विकल्प समाधि में जाकर जीव अपने स्वरूप में लीन हो जाता है, उससे आगे नहीं पहुँच सकता यानि एक प्रकार से अपनी हरकत समाप्त कर दी। उसे मुक्ति कहते हैं, उसी को निर्वाण पद कहते हैं। स्वतन्त्र, मुक्त तो हो जाता है आदमी, परन्तु एक मन्जिल उससे आगे रह जाती है, वह वाहिगुरू की मंज़िल है। जीव तत्व में आकर जीव भाव से आत्म तत्व उसे प्राप्त हो गया, अपने मूल में चला गया -

मन तूं जोति सरूपु है आपणा मूलु पछाणु॥ ***पृष्ठ - 441***

बहुत बड़ी उपलब्धि है - आत्म तत्व में लीन होकर परमात्म हो जाने की, जिसे फिनाह-फिलाह कहते हैं। महाराज इससे भी आगे बताते हैं फिर -

आतमा परातमा एको करै। अंतर की दुबिधा अंतरि मरै॥ ***पृष्ठ - 661***

एक कदम और आगे बढ़ो, प्यारे! एक कदम पीछे रह गये तुम, इससे आगे सर्व कला समरथ, परमेश्वर है, उसके पास नदर का करिश्मा है, उसकी कृपा दृष्टि मांगो - समाधि में बैठकर, यहीं पर ही मत रूको। सहज समाधि में चलो, अनहत सुन्न में चलो -

अनहत सुंनि रते से कैसे। जिस ते उपजे तिस ही जैसे॥ ***पृष्ठ - 943***

सो सभी ने नमस्कार की और कहा कि हे नानक! यह बात हमारे अन्दर से खो गई थी। हम तो निर्विकल्प समाधि में आकर रूक गये थे, असम्प्रज्ञात समाधि में आकर रूक गये थे, तूने सहज समाधि की बात हमें बताई है और साथ ही यह भी बताया है कि इसके अन्दर खुश्की, रूखापन नहीं है, रस है, बेअन्त आनन्द है, जिसे बताया नहीं जा सकता। ऐसा महाराज फ़रमान करते हैं -

धारना - सहिज समाध लगी लिव अंतर,
सो रस सोई जाणै - 2, 2
सो रस सोई जाणै - 2, 2
सहिज समाध लगी लिव अंतर.........-2

गुरू महाराज से पहले सभी अपने आत्म स्वरूप में जाकर रुक जाते थे, स्व स्वरूप में जाकर रुक जाते थे। महाराज कहते हैं कि इससे आगे एक मंज़िल और है भाई, वहाँ पर कृपा, नदरि का करिश्मा बहता है फिर परमेश्वर में जाकर मिलना है -

जिउ जल महि जलु आइ खटाना। तिउ जोती संगि जोति समाना॥ ***पृष्ठ - 278***

जब जीवपना वहाँ जाकर मिट जाता है फिर Ego (मैं) तो रहती ही नहीं, हउमैं रहती ही नहीं पर वह स्वंय ही परमेश्वर बन जाता है, अन्तर नहीं रहता -

राम कबीरा एक भए है कोइ न सकै पछानी॥ ***पृष्ठ - 969***

एक ही बन गये, अब पता ही नहीं चलता कि कबीर राम है या राम कबीर है। यह बात

समझने वाली है। इस बात का बन्दगी करने वालों को, किसी-किसी को पता चलता है, सभी नहीं जानते।

कहने लगे, पातशाह! यह बात आप ने आज हमें नई बताई है, हम इससे अनभिज्ञ थे। हम तो केवल पाँच तत्व, मुक्त पद से आगे नहीं जाना चाहते। सारा संसार यहीं पर ही रुका हुआ था, महाराज-

सिध नाथ अवतार सभ गोसटि करि करि कंन फड़ाइआ।
बाबर के बाबे मिले निवि निवि सभ नबाबु निवाइआ।
पतिसाहा मिलि विछुड़े जोग भोग छडि चलितु रचाइआ।
दीन दुनीआ दा पातिसाहु बेमुहताजु राजु घरि आइआ।
कादर होइ कुदरति करे इह भि कुदरति साँगु बणाइआ।
इकना जोड़ विछोड़दा चिरी विछुंने आणि मिलाइआ।
साधसंगति विचि अलखु लखाइआ॥ *भाई गुरदास जी, वार 26/21*

जो लिखा नहीं जाता था, साध संग में आकर वह लिखवा दिया।

सो इस प्रकार के वचन भाई मनसुख जी राजा शिवनाभ के साथ कर रहे हैं। वह बहुत विद्वान थे, ऐसे ही कोई मामूली सा व्यक्ति नहीं था। उसे रूहानियत का काफी ज्ञान था क्योंकि उसके पास बहुत से योगी, नाथ, सिद्ध आया करते थे। इसी राजा के पिता के पास, जिसका नाम अमरू था, मच्छंदर नाथ योगी आया था लेकिन ठीक है, दशम द्वार में सांस तो खींच लिये परन्तु मन शुद्ध नहीं हुआ था। मन अभी भी मैला था और जब राजा अमरू प्राण त्याग गया, उस समय इस मच्छदर नाथ ने उसकी पदमनी रानियों को देखकर, भोगों की इच्छा की। मच्छन्दर का मन डांवाडोल हो गया। इसने अपना शरीर तो एक कन्दरा में रख दिया और राजा अमरू के शरीर में प्रवेश कर गया। अमरू राजा का शरीर जीवित कर दिया। कई वर्ष बीत गये, गोरख नाथ, बाल गुदाईं के साथ चर्चा कर रहा था। कुछ बहस में गर्मा-गर्मी अधिक हो गई और उसने महापुरुषों वाला उलाहना मार दिया। कहने लगे, ''गोरख! यह तो देख कि तुझे सुध है, तेरा गुरू कहाँ है?''-

मंनै तरै तारे गुरु सिख॥ *पृष्ठ - 3*

कई बार शिष्य गुरू को पार करा देता है। नज़र दौड़ा कर देखा, कहीं नज़र न आया। कहने लगा, ''कहाँ होगा?'' बाल गुदाईं ने कहा, ''तू बता कहाँ है?'' अन्त में बाल गुदाईं ने बताया वह तो अमरू राजा के शरीर में जाकर रानियों के साथ भोग विलास कर रहा है। उस समय गोरख नाथ लंका गया, वहाँ पहुँचकर उसने संगलाद्वीप में से अपने गुरू को जगाया जो सो गया था माया की नींद में।

सो ऐसे-ऐसे नाथ भी राजा शिवनाभ के राज्य में जाया करते थे और भी बहुत से साधु सन्त, महापुरुष जाया करते थे। चर्चा, वार्तालाप सुना करता था, विद्वान पुरुष था। विद्वान को समझाने के लिये विद्वता की जरूरत होती है। आम आदमी को समझाना मामूली बात है -

भई परापति मानुख देहुरीआ। गोबिंद मिलण की इह तेरी बरीआ।
अवरि काज तेरै कितै न काम। मिलु साध संगति भजु केवल नाम॥ *पृष्ठ - 12*

और तो सभी समझ जायेंगे, कोई मुश्किल बात नहीं। कम से कम अक्ल वाला भी समझ जायेगा और बड़ी-बड़ी ज्ञान की बातें समझाने के लिये बड़ी-बड़ी बातों की जरूरत है। सो उस समय मनसुख जी ने राजा शिवनाभ से कहा कि राजन! यह जो तुम व्रतों के अन्दर पड़े हुए हो ना, एकादशी का व्रत रख लिया, सालिग्राम की पूजा कर ली; ये बातें बहुत छोटी हुआ करती हैं क्योंकि इनसे मुक्ति

नहीं हुआ करती। जब तक पूरा नहीं मिलता, तब तक मुक्ति नहीं मिलती। दूसरा रास्ता जो है, वह सुगम है। दो रास्ते हैं - एक तो चींटी मार्ग है, दूसरा पन्छी मार्ग है, जिसे विहंगम मार्ग भी कहते हैं। दो चार मील की दूरी पर कोई वृक्ष खड़ा है। चींटी को वासना हुई कि फल पका हुआ है। इसने चलना शुरू करना है, इस मार्ग पर चलते समय कितने कष्ट उठाने पड़ेंगे। यदि सामने एक हाथ लम्बा नाला आ जाये, उसको चींटी पार नहीं कर सकती और जो पन्छी है, उसने उड़ान भरनी है, देखते देखते फल पर जा पहुँचता है। कहने लगा, यह असली रास्ता है। जिस रास्ते पर आप चल रहे हो यह चींटी मार्ग है। इस रास्ते पर चलना बहुत कठिन है, बहुत देर लगती है, जन्म के जन्म बीत जाते हैं, पर हमारे पूरे सतगुरू ने हमें विहंगम रास्ता बता दिया - पन्छी मार्ग, और हम इस पर चलते हैं। इस रास्ते का गुरू के बिना पता नहीं चला करता -

धारना - बिना गुरां तों मुकति न होवे,
पुच्छो ब्रहमे नारदे नूँ - 2, 2
मेरे पिआरे पुच्छो ब्रहमे नारदे नूँ - 2, 2
बिनां गुरां तों मुकत न होवे,........-2

भाई रे गुर बिनु गिआनु न होइ। पूछहु ब्रहमे नारदै बेदबिआसै कोइ॥ पृष्ठ - 59

देखो जो चींटी है -

जैसे चीटी क्रम क्रम कै बिरख चड़ै............॥ कबित सव्यै भाई गुरदास जी, 404

दो मील की दूरी पर यदि चींटी ने जाना हो, कैसे पहुँचती है? धीरे-धीरे कदम-दर-कदम चलती है। पहुँचेगी या नहीं -

पंछी उड जाइ बैसे निकट ही फल कै॥ कबित सव्यै भाई गुरदास जी, 404

पन्छी ने एक दम उड़कर, वहाँ पर जाकर बैठ जाना है -

जैसे गाडी चली जाति लीकन महि धीरज सै.................। कबित सव्यै भाई गुरदास जी, 404

जैसे बैलगाड़ी, रास्ते पर आराम से धीरे-धीरे चलती है, पर जो घुड़सवार है, कभी इधर कभी उधर होकर, कभी उछल कर आराम से अपनी मन्जिल-ए-मकसूद पर शीघ्र ही पहुँच जाता है -

.....................घोरो दौरि जाइ बांइ दाहने सबल कै। कबित सव्यै भाई गुरदास जी, 404

जैसे कोस भरि चलि सकीऐ न पाइन कै, आतमा चतुर कुंट धाइ आवै पल कै॥
तैसे लोग बेद भेद गिआन उनमान पच्छ, गंम गुर चरन सरनि असथल कै॥
कबित सव्यै भाई गुरदास जी, 404

पैदल चलकर यदि कहीं जाना हो, बोझ सिर पर हो, एक कोस (मील) तक हम नहीं चल सकते। जो चतुर है, कोई सवारी लेकर मिनटों में पहुँच जाता है। जो लोग, वेद स्मृतियों आदि के बारे में कर्म धर्म बताते हैं - यह व्रत रख लो, वह व्रत रख लो, वहाँ पर जाकर स्नान करके अमुक वस्तु दान कर दो, अपने आप ही फल मिल जायेगा। उस तीर्थ पर जाओ, ऐसा फल मिल जायेगा, भोजन खिला दो, चींटियों को तिल चावल डाल दो, पशुओं को नमक खिला दो, पशुओं को पानी पीने के लिये खरल बनवा दो, ये छोटे-छोटे कर्म हैं, इनसे बहुत देर लगती है - मंजिल पर पहुँचने के लिये -

करम धरम करि मुकति मंगाही। मुकति पदारथु सबदि सलाही॥ पृष्ठ - 1024

इनमें मुक्ति नहीं है। जब तक शबद की प्राप्ति नहीं होती, तब तक मुक्ति नहीं मिलती -

बिनु गुर सबदै मुकति न होई परपंचु करि भरमाई हे॥ ***पृष्ठ - 1024***

सारा संसार परपंच के भ्रम में पड़ा हुआ घूमता फिर रहा है, उन्हें गुरू लगा नहीं है -

कबीर गुरु लागा तब जानीऐ मिटै मोहु तन ताप॥ ***पृष्ठ - 1374***

गुरू तो बना लिया, हमनें अमृतपान तो कर लिया पर गुरू तो नहीं लगा। अभी वही मोह है, वही तीन ताप हैं, आधि, बिआधि, उपाधि - चिपटे हुए हैं, वही लोभ, मोह, अभिमान, वही शबद, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध पाँच विषय हैं, वहीं मान है - राज, माल, रूप, जात, यौवन पाँच ठग, और समझते हैं, गुरू लग गया? नहीं, प्यारे गुरू नहीं लगा। गुरू तो उस समय लगता है जब मोह, तन के ताप हट जायेंगे। ***बिन गुर सबदै मुक्त न होई परपंच करि भरमाई हे।*** सारा संसार भटकता फिर रहा है क्योंकि शबद की साधना नहीं की। सतगुरू के शबद की जब साधना कर ली, फिर क्या होगा? महाराज कहते हैं, 'उजारो दीपां' हजारों वाट की शक्ति का बल्ब जग जायेगा। फिर होगा क्या?

बिनसिओ अंधकार तिह मंदरि रतन कोठड़ी खुल्ही अनूपा॥ ***पृष्ठ - 821***

उसके अन्दर से अज्ञान रूपी महाअन्धकार का नाश हो जायेगा। जब अन्धकार का नाश हो गया, फिर वृत्ति क्या होती है -

बिसरि गई सभ ताति पराई। जब ते साधसंगति मोहि पाई॥
ना को बैरी नही बिगाना सगल संगि हम कउ बनि आई॥ ***पृष्ठ - 1299***

क्योंकि अन्दर प्रकाश हो गया। प्रकाश होने पर देखा कि ये तो सभी अपने ही हैं, सभी आत्मा ही हैं, दूसरा तो कोई है ही नहीं। पाँच तत्व के शरीर हैं, 25 प्रकृतियों की कर्मेन्द्रियाँ, ज्ञानेन्द्रियाँ फिर पाँच प्राण, पाँच इसके अन्दर हवायें हैं, मन है, चित्त है, बुद्धि है, अहमभाव है, इन सभी के ऊपर आत्मा, सभी में एक ही है क्योंकि प्रकाश हो गया। जब प्रकाश हुआ, फिर ***'विनसियो अन्धकार तिह मंदरि रतन कोठड़ी खुल्ली अनूपा।'***

अब कोठड़ी खुल गई। किस चीज़ की? रतनों की भरी हुई कोठड़ी, जहाँ परमेश्वर का नाम ही नाम है।

जब उपमा रहित आत्मा वाली कोठड़ी में प्रवेश मिल गया, जिसे उनमन की कोठड़ी भी कहते हैं, फिर पता चला कि हम तो अन्धेरे में ही घूम रहे थे।

भाई मनसुख कहने लगा, राजन! कर्म जो हैं -

कोटि करम बंधन का मूलु॥ ***पृष्ठ - 1149***

करोड़ों कर्म कर लो, बान्धे जाओगे क्योंकि कर्म योग की सूझ नहीं है -

पुंन दानु जो बीजदे सभ धरमराइ कै जाई॥ ***पृष्ठ - 1414***

राजा शिवनाभ ने कहा, "फिर पुण्य दान न करें?"

कहते हैं, करो, सतगुरू के सामने प्रार्थना करो कि पातशाह! मैं तो कुछ भी नहीं कर सकता, तू ही करवाता है; मैं तो सेवा नहीं कर सकता, तूने सेवा करने का अवसर मुझे दे दिया। जब इसमें 'मैं' आयेगी, फिर गड़बड़ हो जायेगी। जब यह Attitude of mind (मन का दृष्टिकोण) रहेगा कि 'मैं' कुछ नहीं करता, तू ही करवाता है तो फिर ये जो कर्म हैं, ये मन की मैल दूर करेंगे और ज्ञान के प्रकाश में सहायक होंगे। यदि कर्म-धर्म करके फल मांगता है, महाराज कहते हैं -

कोटि करम बंधन का मूलु। हरि के भजन बिनु बिरथा पूलु॥ ***पृष्ठ - 1149***

करोड़ों कर्म कर लो, ये तो बन्धन में डालेंगे ही, क्योंकि ये जंजीरें हैं। वाहिगुरू के भजन के बिना सभी व्यर्थ हैं -

बेद सासत्र जन धिआवहि तरण कउ संसारु।
करम धरम अनेक किरिआ सभ ऊपरि नामु अचारु॥ ***पृष्ठ - 405***

सबसे ऊपर हैं नाम जपना, यह अति श्रेष्ठ कर्म है। ऐसे नहीं कि 'वाहिगुरू वाहिगुरू' भी करता जाये और दूसरे की फसल भी काटता जाये। बाणी पढ़ता जाता है, साथ ही साथ निन्दा किये जाता है माला भी फेरता है और साथ-साथ कम भी तोले जाता है। प्यारे! ऐसे काम नहीं बनेगा। नाम के आचार भी धारण करने पड़ते हैं। इस प्रकार जब तक गुरू नहीं मिलता तब तक मनुष्य भवजल पार नहीं हो सकता। सो इस प्रकार समझते हैं कि जब तक ज्ञान नहीं होता, मनुष्य षट कर्म करता है, तीर्थ यात्रा करता है, दान करता है, व्रत रखता है, पूजा करता है और अनेक कार्य करता है पर आत्म तत्व के साक्षात से पूरी तरह वंचित रह जाता है -

गिआनै कारन करम अभिआसु। गिआनु भइआ तह करमह नासु॥ ***पृष्ठ - 1167***

ये जो धर्म कर्म हैं, ये केवल गुरू को प्रसन्न करके उससे नाम लेने के लिये सहायक होते हैं। जब ज्ञान हो गया फिर ये worthless (फजूल) हो जाया करते हैं। इसका मतलब यह नहीं है कि वे धर्म-कर्म करते ही नहीं, न नितनेम ही करते हैं। वे बाणी भी पढ़ते हैं, सभी कुछ करते हैं पर वे निष्काम कर्म करते हैं, हमारे निमित्त हमारी भलाई के लिये करते हैं कि इन्हें चाव लगा रहे, कहीं हमें देखकर ये भी नितनेम बन्द न कर दें। ये जो कर्म हैं -

जैसे बनराइ परफुलत फल नमित..................। ***कबित सव्यै, भाई गुरदास जी, 405***

ये जो वृक्ष हैं फलदार, ये फलते-फूलते हैं, किस लिये ताकि फल लग जाए। जब फल लग जाता है -

................लागत ही फल पत्र पुहप बिलात है॥ ***कबित सव्यै भाई गुरदास जी, 405***

फूल भी खत्म हो जाते हैं, पत्ते भी खत्म हो जाते हैं क्योंकि फल मिल गया -

जैसे त्रीआ रचित सिंगार भरतार हेति...................। ***कबित सव्यै भाई गुरदास जी 405***

स्त्री शृंगार करती है कि मुझे पति मिल जाये, पति प्यार करे और -

.................भेटत भरतार उर हार न समात है॥ ***कबित सव्यै भाई गुरदास जी, 405***

फिर गले का हार भी अच्छा नहीं लगता कि यह भी फालतू का बोझ है मेरे ऊपर, क्योंकि पति मिल गया -

बालक अचेत जैसे करत लीला अनेक..................। ***कबित सव्यै भाई गुरदास जी, 405***

जब बच्चा छोटा होता है, अनेक प्रकार की लीलाएं करता है, अनेक प्रकार के खेल खेलता है, बड़ा होकर घर बार बनाता है -

.................सुचित चितंन भए सबै बिसरात है॥ ***कबित सव्यै भाई गुरदास जी 405***

फिर वह पतंग बनाकर नहीं खेलता, मिट्टी के घर बनाकर नहीं खेलता, ईटों के घर नहीं बनाता, फिर वह छोटी-छोटी बातें नहीं करता, फिर सुचेत हो जाता है फिर बड़ी-बड़ी बातें, बड़े-बड़े काम करता है -

तैसे खट करम धरम स्रम गिआन काज,.................। कबित सव्यै भाई गुरदास जी 405

ये जो कर्म-धर्म व्रत आदि पूजा, तीर्थ यात्रा, गुरूद्वारों के दर्शन करना, ये ज्ञान की प्राप्ति के लिये हुआ करते हैं –

.................गिआन भान उदै उड करम उडात है॥ कबित सव्यै भाई गुरदास जी 405

जब सूर्य निकल आता है तो तारे डूब जाते हैं, इसी प्रकार जब ज्ञान का सूरज निकल आया, उस समय ये कर्म-धर्म सभी गायब हो जाते हैं। फल रहित हो जाते हैं, कोई फल नहीं देते।

सो भाई मनसुख इस प्रकार कहने लगा, राजन! एक साधन है जो परमेश्वर से मिलाता है। उसे ध्यान से सुन – वह है प्यार का साधन। जब तक हृदय में प्यार पैदा नहीं होता तब तक गाये जा, जो करना है किए जा। परमात्मा ने गला बहुत सुन्दर दे दिया, बहुत बढ़िया गाता है, व्याख्या करने के लिये दिमाग दे दिया, बहुत बढ़िया व्याख्या करता है, लोग वाह-वाह करते हैं पर यदि हृदय में प्यार न हो –

कोई गावै रागी नादी बेदी बहु भाति करि नही हरि हरि भीजै राम राजे॥ पृष्ठ – 450

परमात्मा ऐसे नहीं पसीजता। बाजा बजाने लग गया, अन्दर भाव भी पैदा हो गया, नेत्रों में से जल बहने लगा – थोड़ी देर के लिये Temperary (अस्थायी) इन्जैकशन है, सदीवी वृति नहीं। देखने और सुनने वाले बहुत प्रभावित होते हैं कि सन्त जी जब कीर्तन करते हैं, रोते ही रहते हैं। सन्त नहीं रोते, सन्तों के सामने तो परमेश्वर होता है जैसे यह सूरज हमें दिखाई देता है। जब भाव आ जाता है, कभी आ जाये, बहुत निम्रता में आकर कर लें, वैसे नहीं वैसे वे ज्ञान में पूर्ण होते हैं –

जिना अंतरि कपटु विकारु है तिना रोइ किआ कीजै।
हरि करता सभु किछु जाणदा सिरि रोग हथु दीजै।
जिना नानक गुरमुखि हिरदा सुधु है हरि भगति हरि लीजै॥ पृष्ठ – 450

जो कर्म-धर्म तुम करते हो, ये किसी हिसाब-किताब में नहीं आते। यदि कुछ लेखे में पड़ता है तो परमेश्वर का प्यार ही होता है ओर कोई वस्तु नहीं पड़ती।

धारना – मिरतक कहीऐ नानका,
मिरतक कहीऐ नानका – 2, 2
जिह प्रीति नही भगवंत – 4, 2
मिरतक कहीऐ नानका,....... – 2

अति सुंदर कुलीन चतुर मुखि ङिआनी धनवंत।
मिरतक कहीअहि नानका जिह प्रीति नही भगवंत॥ पृष्ठ – 253

एक मनुष्य के अन्दर पाँच खूबियां महाराज जी ने लिखी हैं। अति सुन्दर, सारे संसार में सबसे पहले नम्बर की सुन्दरता रखता हो, 'कुलीन'-कुल, वंश बहुत अच्छा हो, 'चतुर' इतना हो कि घंटों बोल सकता हो, किसी को मौका ही न दे बोलने का, 'मुख ज्ञानी', करनी कमाई का ज्ञानी न हो, मुँह का ज्ञानी हो, 'बात ज्ञानी' कथा करने वाला, भाषण देने वाला 'धनवन्त' सारी दुनियाँ में सबसे ज्यादा पैसा उसके पास हो – ***'मिरतक कहीअहि नानका जिह प्रीति नही भगवंत।' (पृष्ठ – 253)*** महाराज कहते हैं वह तो मृत व्यक्ति होता है। सांस लेने, अन्न खाने के लिये एक मशीन है, उसके अन्दर जिन्दगी की रौ नहीं रूमकती। जो प्यार से हीन है, उसके अन्दर झुन्झलाहट हुआ करती है, घृणा हुआ करती है, ईर्ष्या हुआ करती है, निन्दा भरी रहती है, हर समय क्रोध में रहता है, दूसरे को बुरा समझता है, उसके हृदय में प्यार ने आकर अभी निवास नहीं किया। प्यार तो वाहिगुरू की बख्शीश है। बाबा फरीद जी ने अपना

अनुभव श्री गुरू ग्रन्थ साहिब में प्रकट किया है। बहुत बड़ी शिक्षा दी है -

फरीदा काली जिनी न राविआ धउली रावै कोइ।
करि सांई सिउ पिरहड़ी रंगु नवेला होइ। *पृष्ठ - 1378*

परमेश्वर के साथ प्यार कर, अभी बाल काले हैं इसीलिये जब तक काले बाल हैं (अर्थात जवानी में प्यार कर ले) जब बाल सफेद हो जायेंगे (अर्थात बुढ़ापा आ जायेगा) फिर नहीं होगा। काफी हद तक बात ठीक है क्योंकि जब मनुष्य बूढ़ा हो जाता है, शरीर को अनेक रोग लग जाते हैं। निर्बल हो जाता है, शरीर के अंग साथ नहीं देते फिर भजन नहीं हो पाता। बाणी में फ़रमान है -

जब लगु जरा रोगु नही आइआ। जब लगु कालि ग्रसी नही काइआ।
जब लगु बिकल भई नही बानी। भजि लेहि रे मन सारिगपानी॥ *पृष्ठ - 1159*

जिस प्रकार पपीहे विक्षेपता बोलते हैं, स्वाति बूंद के लिये, इसी तरह तू भी स्वांति बूंद मांग, नाम की बूंद मांग ले। एक बूंद मिल जाये -

किनका एकु जिसु जीअ बसावै। ता की महिमा गनी न आवै॥ *पृष्ठ - 262*

नाम का एक किनका (कण) मिल जाये। उसके लिये-

कबीर केसो केसो कूकीऐ न सोईऐ असार।
राति दिवस के कूकने कबहू के सुनै पुकार॥ *पृष्ठ - 1376*

कभी तो सुन लेगा। इस तरह से महाराज कहते हैं। जब बूढ़ा हो जायेगा ना, फिर -

दूजै बहुते राह मन कीआ मती खिंडीआ।
बहुतु पए असगाह गोते खाहि न निकलहि॥ *पृष्ठ - 145*

तेरे अन्दर इतने फुरने (विचार) फैल जायेंगे - यह मेरा लड़का, यह मेरा दोहता, पोता, पड़पौता, पौते की बहु, वह मेरा समधि खत्म होते हैं कहीं? गिन कर देख ले, एक-एक व्यक्ति के साथ 500-500 चिपटे हुए हैं। पाँच सात बच्चे हों, उनके रिश्तेदार, फिर उनके मामे, फिर उनके ससुर, कितना बड़ा परिवार बन जाता है। हर एक का संस्कार मन में पड़ता है। हर एक की बात मान कर स्वीकार करनी पड़ती है। मन में कमी रह जायेगी। अब भजन करेगा या उनमें पड़े हुए संस्कारों के घेरे में से निकलेगा? उन्होंने तो सारी जगह रोक ली। पुराने जमाने में कुएं हुआ करते थे। रस्सी के साथ डोल बान्धकर पानी खींचा करते थे। उस जगत (मौण) पर चारों तरफ से घिसाई के निशान पड़ जाते थे। इससे रस्सी जल्दी टूट जाती थी। कुछ एक से भारी डोल ऊपर भी नहीं उठाया जाता था, वे उसे घसीट कर ही निकाला करते थे। अब यदि उसे ऊपर उठाते थे तो उन घिसे हुए स्थानों में एक अंगुल चौड़ी जगह होती है, अतः थोड़ा सा ऊपर खींच लेते, फिर वह डोल धड़म करके कुएं में फिर गिर पड़ता। फिर बाहर निकालना, ऊपर खींचना, डोल ने छलकते जाना। महाराज कहते हैं, ''यही तेरा हाल होगा, यदि बूढ़ा होकर नाम जपेगा; अभी जप ले क्योंकि ज्यों-ज्यों तेरी उम्र बढ़ेगी, दुनियांवी कामों का प्रसार बहुत फैल जायेगा, कहीं पुत्रों का पालन पोषण करना, उनके विवाह करने, लड़कियों की पढ़ाई लिखाई की योजना बनाना, कदम-कदम पर पैसे की जरूरत, इन बातों से दिमाग में भी घिस-घिस कर घसीटने जैसी रेखायें पड़ जायेंगी। वृत्ति एकाग्र होने की बजाये बिखरती चली जाती है। मन भागता है। मूढ़ वृत्ति से कैसे बचेगा? विक्षपता वृत्ति प्राप्त करके, बड़ी मुश्किल से, काफी यत्नों के बाद नाम की कुछ लगन जागेगी। एकाग्रता बिना नाम रस, नाम रंग में प्रवेश करना मुश्किल है। निरूद्ध अवस्था प्राप्त करने की बात तो बहुत दूर है। फिर काल का कोई भरोसा नहीं कब झपटा मार दे। समय व्यर्थ मत गवां। सम्भाल ले

इसे फिर पता नहीं होगा या नहीं –

नह बारिक नह जोबनै नह बिरधी कछु बंधु।
ओह बेरा नह बूझीऐ जउ आइ परै जम फंधु॥ पृष्ठ - 254

पता नहीं किस समय यमों का फन्दा गले में पड़ जाये फिर कैसे नाम जपेगा? महाराज जी ने विचार किया कि फरीद जी ने बात तो ठीक कही है पर आप जी ने फ़रमाया, ''कोई बात नहीं, यदि बुढ़ापे में गुरू की कृपा हो जाये तो नाम प्यार प्राप्त हो सकता है। परन्तु आम अवस्था में उपर्युक्त बात सही है और ऐसा भी वचन आता है –

रामु जपउ जीअ ऐसे ऐसे। ध्रू प्रहिलाद जपिओ हरि जैसे॥ पृष्ठ - 337

यह जो छोटे से बच्चे का, किशोर अवस्था का जो नाम है, यदि कहीं भी पड़ जाये, बच्चों को लगन लग जाये नाम जपने की, फिर इसकी कोई रीस (स्पर्धा) नहीं कर सकता। माया से यह बच जाता है। जवानी में एक बार धक्का जरूर लगता है। अच्छे-अच्छे को भी लगता है, बुरों को तो धक्के लगते ही हैं। यदि यह बच जाये, बन्दगी की लगन लग जाये, कोई पूर्ण महापुरुष मिल जाये, पूरा गुरू मिल जाये, जैसे जोगा सिंघ को बचा लिया था, ऐसे बचाने वाला मिल जाये फिर कुछ बनता है। ध्रुव प्रहलाद वाली अवस्था पूर्व कर्मों के कारण प्राप्त होती है। पहला जन्म अधूरा रह जाये तो अगले जन्म में बचपन से ही लगन लग जाती है।

कोई बात नहीं, तुम चिन्ता मत करो क्योंकि सभी ने तो नाम जपने की बात सुनी नहीं। किसी ने 60 साल की आयु में सुनी, किसी ने 50 साल में, किसी ने 65 साल में, किसी ने 70 साल में। अब 70 साल वाला पश्चाताप करता है कि मैंने तो जवानी ऐसे ही बिता दी, अब मैं क्या करूं? महाराज कहते हैं, ''नहीं फरीद! ऐसे मत कह।'' कहते हैं साहिब का स्वभाव दयालु है प्यार उसकी अपनी दात है, जिसे वे चाहे उसे देता है फरीद जी फ़रमान करते हैं –

फरीदा काली जिनी न राविआ धउली रावै कोइ।
करि सांई सिउ पिरहड़ी रंगु नवेला होइ॥ पृष्ठ - 1378

फरीदा काली धउली साहिबु सदा है जे को चिति करे।
आपणा लाइआ पिरमु न लगई जे लोचै सभु कोइ।
एहु पिरम पिआरा खसम का जै भावै तै देइ॥ पृष्ठ - 1378

चित्त की बात है। कई बार जवानी में मन नहीं मानता सुनता भी है, पढ़ता भी है पर मन नहीं मानता। इस ओर मन जाता ही नहीं, वह वासनाओं के वश बेहोश रहता है ***'मन सोइआ माइआ विसमाद'*** वाली अवस्था होती है। पाठ करता है, मन नहीं लगता, भागता है, क्यों? क्योंकि अभी बात समझ में नहीं आई, अन्दर से नहीं समझ में आई, ऊपर-ऊपर से समझता है। बाहर-बाहर से, ऊपर-ऊपर से समझी हुई बात का कोई महत्व नहीं होता। कहते हैं, ''ऐसे मत कह। यदि वृद्ध उम्र वाला समझ ले 79 वर्ष का, 80 वर्ष का फिर भी उसका कुछ नहीं बिगड़ा।''

आगे क्या कहते हैं। कहते हैं, ''जो प्यार का प्याला है यह इसके वश में नहीं है, यह वाहिगुरू के वश में है। *'एहु पिरम पिआला खसम का जो भावै तै देइ॥' (पृष्ठ - 1378)* यह प्याला तो जिसे भाता है, रूचता है, उसे देता है। अतः **प्यार के बिना मनुष्य तो मुर्दा जीवन जी रहा होता है, बेशक दुनियां में वह कितना महान क्यों न हो।** महाराज ने कहा है –

सो जीविआ जिसु मनि वसिआ सोइ। नानक अवरु न जीवै कोइ।

जे जीवै पति लथी जाइ। सभु हरामु जेता किछु खाइ॥ *पृष्ठ - 142*

नाम के बिना जो जीवन है, वह कोई जीवन नहीं हुआ करता पत्त (इज्जत) उतर जाती है, यहाँ पर भी अपमानित होता है और दरगाह में भी इज़्ज़त नहीं, हराम का खाता है, परमेश्वर का दिया हुआ खाता है, पहनता है और उसे याद नहीं करता।

अत: जब तक हृदय में प्यार प्रकट नहीं होता, तब तक मनुष्य के सभी कर्म धर्म मुर्दा हैं -

तिनु तिनु मेलि जैसे छानि छाईअत पुनि,................॥ कबित स्वैये, भाई गुरदास जी - 531

जैसे अलग-अलग एक-एक करके, सरकड़ो का पूला-पूला इकट्ठा कर लिया फिर उसे ठोक-ठोक कर छप्पर बनाया -

...................अगिन प्रगास तास भसम करत है॥ कबित स्वैये, भाई गुरदास जी - 531

यदि मामूली सी आग लग जाये, उसी समय भस्म हो जाता है -

सिंध के किनारे बालू ग्रिहि बालक रचत जैसे लहिर उमगि भए धीर न धरत है॥
कबित स्वैये, भाई गुरदास जी - 531

दरिया के किनारे, बरेती में बैठ कर बच्चे पैर डाल देते हैं, गीली रेत ऊपर कर देते हैं, घर बना देते हैं और जब पानी की लहर आती है, वह उस घर को साथ ही बहा कर ले जाती है। वह घर टिकता नहीं है -

जैसे बन बिखै मिलि बैठत अनेक म्रिग................॥कबित स्वैये, भाई गुरदास जी - 531

हिरनों का झुण्ड जंगल में बैठा है। बाकी अन्य जानवर भी इकट्ठे बैठे हैं वन के अन्दर, परन्तु यदि एक शेर आ जाये, गर्ज़ना कर दे, फिर क्या होता है? सभी जानवर छलांगे मारते हुए भाग जायेंगे?

.................एक म्रिगराज गाजे रहिओ न परत है। कबित स्वैये, भाई गुरदास जी - 531

इस तरह कहते हैं -

द्रिसटि सबदु अरु सुरति धिआन गिआन,................॥ कबित स्वैये, भाई गुरदास जी - 531

यह जो सुरत है, ज्ञान की, ध्यान की सारी दृष्टि शब्द की -

................प्रगटे पूरन प्रेम सगल रहत है॥ कबित स्वैये, भाई गुरदास जी - 531

जब हृदय में प्यार समा गया फिर यह वृत्तियां नहीं रहती फिर तो रस में मखमूर हो जाता है व्यक्ति। सभी कर्म धर्म समाप्त हो जाते हैं। अत: कर्मों-धर्मों से पार होने का तरीका यही है कि गुरू की शरण में आ जाओ, प्यार से आ जाओ -

धारना - शरण पूरिआं गुरां दी आ जा,
जिंदे जे तैं पार लंघणै - 2, 2
जिंदे जे तैं जी, पार लंघणै - 2, 2
शरण पूरिआं गुरां दी आ जा,........- 2

शरण में आजा, प्यार के साथ। प्यार कैसा होता है-

लोग कुटंब सभहु ते तोरै तउ आपन बेढी आवै हो॥ *पृष्ठ - 657*

केवल गुरू का प्यार हृदय में रह जाये, किसी चीज़ की परवाह न रहे। न किसी कुटुम्ब की,

परिवार की और न किसी अन्य वस्तु की परवाह करे। ऐसा प्यार ध्यान में रखकर जो गुरू की शरण में आ जाये, फिर पार हो जाता है –

जैसे मांझ बैठे बिनु बोहिथा न पारि परै,..............।कबित स्वैये, भाई गुरदास जी – 538

किश्ती में, जहाज में, बैठे बिना समुद्र पार नहीं हो सकता –

..............पारस परसै बिनु धातु न कनिक है। कबित स्वैये, भाई गुरदास जी – 538

जब तक पारस किसी अष्ट धातु को नहीं स्पर्श करता लोहे, तांबे या पीतल से, वह सोना नहीं बन सकता –

जैसे बिनु गंगा न पावन आन जलु है.............॥ कबित स्वैये, भाई गुरदास जी – 538

पहले गंगा का पानी पवित्र माना जाता था, उस समय गन्दे नालों का जल उसमें नहीं गिरा था। जो नदियां उस समय बहती थीं उनके आस पास भी लोग शौचादि नहीं किया करते थे क्योंकि वे समझते थे कि यह पवित्र पानी है, कहीं हमारा मलमूत्र इसके अन्दर बहकर न चला जाये। **अब कलयुग आ गया। सबसे पहला हमला हमारे श्रद्धाहीन, अनुभव हीनों ने इन तीर्थों पर किया है। गंगा किनारे, जितने भी शहर हैं, सारी गन्दगी गंगा के पानी में बहा दी। जहाँ पर जाकर नहाते हैं, वहाँ पर कृमि ही कृमि पैदा हो गये हैं।** डाक्टर शोर मचाते हैं, बीमारियां लग जाती हैं, वहाँ पर कुल्ला मत करना, यह कृमियों से पानी भरा पड़ा है, दूषित जल है, पीलिया हो जायेगा, हैज़ा हो जायेगा क्योंकि सारी गन्दगी उसमें डालकर पानी अपवित्र कर दिया। पहले इस पानी के तह में यह ग्रहण था कि अपने आप निर्मल कर देता था। इस पानी में जाला (काई) नहीं पैदा होता था। सो उस समय की बात लिखते हैं –

................नारि न भतार बिनु सुतन अनिक है। कबित स्वैये, भाई गुरदास जी – 538

जो स्त्री है, वह पुत्रों के बिना इस तरह की होती है–

जैसे बिनु बीज बोए निपजै न धन धारा,...............॥ कबित स्वैये, भाई गुरदास जी – 538

बिना बीज डाले, कोई पौधा नहीं उगता –

................सीप स्वांति बूंद बिनु मुकता न मानिक है॥ कबित स्वैये, भाई गुरदास जी – 538

सीप के अन्दर जब तक स्वाति बूंद नहीं गिरती तब तक वह मानिक नहीं बना करता, मोती नहीं बना करता –

तैसे ही चरन सरनि गुर भेटे बिनु, जनम मरन मेटि जन न जान कहै॥
कबित स्वैये, भाई गुरदास जी – 538

इसी तरह से, जब तक पूरे गुरू की, समरथ गुरू की चरण–शरण में आकर, शब्द की साधना नहीं करता, प्यार से उसके साथ रिश्ता नहीं जोड़ता, तब तक बार–बार आना जाना जन्म मरण समाप्त नहीं हुआ करता।

सो मनमुख जी कहने लगे, ''हे राजन! ये मैंने आपको इतना लम्बा चौड़ा व्याख्यान इसलिये सुनाया है कि आप गुरू की बात नहीं करते, देवताओं की पूजा करते हो, मन्दिर जाते हो, सालिग्राम की पूजा करते हो। इन्होंने न तो तुम्हारे अन्दर ज्ञान पैदा करना है और ज्ञान बिना गुरू के प्राप्त नहीं हो सकता

–

भाई रे गुर बिनु गिआनु न होइ। पूछहु ब्रहमे नारदै बेदबिआसै कोइ॥ *पृष्ठ - 59*

जे सउ चंदा उगवहि सूरज चड़हि हजार।
एते चानण होदिआं गुर बिनु घोर अंधार॥ *पृष्ठ - 463*

इस तरह से अन्धकार दूर नहीं हुआ करता। बाकी संसार सारा डूबता है Ego (मैं-मेरी) से। क्योंकि इलाज केवल गुरू के पास है। हउमै का इलाज और किसी के पास नहीं है। 'मैं, मैं' करता है, 'हउं-हउं' करता है। यह संसार डूबता ही जाता है –

धारना - डुब गिआ संसार जी,
मैं मैं ते हउं हउं करदा - 2, 2
मैं मैं ते हउं हउं करदा - 2, 2
डुब गिआ संसार जी,........- 2

सारा संसार – चाहे कोई अमीर है, गरीब है, पढ़ा लिखा है, कथाकार है, कीर्तन करने वाला है, पुस्तकें लिखने वाला है, चाहे कोई भी है, कहते हैं ये 'मैं-मैं' करते हुए, डूबे पड़े हैं –

हउ हउ करत बधे बिकार। मोह लोभ डुबौ संसार॥ *पृष्ठ - 1192*

मोह तथा लोभ में, मैं-मैं के अन्दर संसार डूब गया –

हउ हउ करदी सभ फिरै बिनु सबदै हउ न जाइ।
नानक नामि रते तिन हउमै गई सचै रहे समाइ॥ *पृष्ठ - 426*

जब तक नाम की प्राप्ति नहीं होती, तब तक यह हउमैं नहीं मरती। डूबता ही चला जाता है। यही परमेश्वर के मिलाप में रूकावट है –

हउ हउ भीति भइओ है बीचो सुनत देसि निकटाइओ।
भांभीरी के पात परदो बिनु पेखे दूराइओ।। *पृष्ठ - 624*

जैसे भन्भीरी का पंख होता है, प्लास्टिक का कागज़ होता है, इतना बारीक पर्दा इसके तथा अन्तसकरण और परमेश्वर के बीच में डाल दिया। जैसे कार है, गाड़ी चलती है, जहाँ पर Distributor (वितरक) है, current (बिजली) पास होती है, वहाँ पर पतला सा कागज़ का टुकड़ा रख कर देख लो, जितनी मर्ज़ी कोशिश कर लो, गाड़ी स्टार्ट नहीं होगी क्योंकि बीच में पर्दा पड़ गया। **इस तरह से मनुष्य धर्म कर्म करता है, दान करता है, तीर्थ यात्राएं करता है, गुरूद्वारों के दर्शन करता है, हेमकुंट साहिब जाता है, हजूर साहिब जाता है, काबा, केदार नाथ बद्रीनाथ, काशी, पराग तथा अन्य पवित्र स्थानों पर दर्शन करने जाता है परन्तु वह जो हउमैं का पर्दा बीच में पड़ा हुआ है, वह वाहिगुरू से कैसे मिलाप करा देगा, होता नहीं है।** *'हउ हउ भीति भइओ है बीचो सुनत देसि निकटाइओ॥' (पृष्ठ - 624)* गुरू के पास प्रार्थना करे, ''पातशाह! मेरी हउमैं का नाश कर।'' चिन्ता करो, एक बीमारी लगी हुई है बहुत भयानक, जब तक रोग है तब तक स्थिरता नहीं आया करती –

धारना - जंमदा ते मरदा है,
हउमै दा बंनिआ होइआ - 2, 2
हउमै दा बंनिआ होइआ - 2, 2
जंमदा ते मरदा है,........ - 2

हउमै एहा जाति है हउमै करम कमाहि।
हउमै एई बंधना फिरि फिरि जोनी पाहि।। *पृष्ठ - 466*

बार-बार पैदा होगा, बार-बार मरेगा जब तक मैं का पर्दा नहीं टूटता। साध संगत जी! **बहुत कठिन है, 'मैं' का पर्दा तोड़ना।** बड़े-बड़े पीर, फकीर, साधु, महाराज जी ने गिने हैं लगभग सभी ही गिन दिये - जो बड़े-बड़े हुए हैं, सभी हउमैं के अन्दर खेलते हैं और वाहिगुरू की कृपा हो जाये, गुरू मन्त्र की साधना कर ले फिर हउमै का नाश हो जाता है -

हउमै नावै नालि विरोधु है दुइ न वसहि इक ठाइ॥ *पृष्ठ - 560*

जब प्रकाश हो गया, सभी घट-घट में व्याप्त परमेश्वर का नूर दिखाई दे गया, फिर 'मैं' मर जाती है, 'मैं' नहीं रहती सभी कुछ वही हो जाता है, एक ही हो जाता है। individuality (अपनत्व) व्यक्तित्व ही समाप्त हो जाता है, जो यह बात-ए-खास है कि 'मैं' हूँ, अहमभाव समाप्त हो जाता है। अहमभाव समाप्त होते ही, मन जो है वह उनमन हो जाता है, उलट जाता है -

अब मनु उलटि सनातनु हूआ॥ *पृष्ठ - 327*

वहीं पर चला गया, जहाँ से बना था। बना कहाँ से था? यह परिपूर्ण आत्मा था। वाहिगुरू तथा आत्मा, ब्रह्म, परमात्मा एक ही होते हैं। अक्षर अलग-अलग हैं, **वाहिगुरू जी ने सृष्टि की रचना के समय मूल प्रकृति तीन गुणों सहित प्रकृति की रचना की। परम चेतन सत्ता का जब प्रतिबिम्ब प्रकृति पर पड़ा तो सबसे पहले अनेक चित्तों में अहमभाव पैदा हुआ, इसे हउमैं कहते हैं। उसी चेतन कला ने अनेक चित्तों में सूझ पैदा कर दी और समिष्टता ने व्यष्टिता (अलग-अलग) का रूप धारण कर लिया। इस प्रकार चेतन का प्रकाश पड़ा चित्त पर, फिर 'मैं भाव' अन्दर आ गया। 'मैं' के कारण ही हमारा अधिआस शुरू हो गया। हमने 'हउ' के वश होकर काम किये। इन्हीं कर्मों के कारण बन्ध गये। तभी से ही हम पैदा होते आ रहे हैं और तभी से हम मरते आ रहे हैं।** इतनी सी बात है। यदि 'मैं' भाव टूट जाये, तोड़ दे, फिर इसका छुटकारा होकर परम पद की प्राप्ति कर लेता है। छोटा सा निजित्व बड़े निजित्व में अभेद हो जाता है -

भइओ किरपालु सरब को ठाकुरु सगरो दूखु मिटाइओ।
कहु नानक हउमै भीति गुरि खोई तउ दइआरु बीठलो पाइओ॥ *पृष्ठ - 624*

जब हउमैं की दीवार गुरू ने नाम का प्रकाश करके तोड़ दी, उस समय वाहिगुरू के साथ मिलाप हो गया। जब तक 'मैं' रहती है, वाहिगुरू के साथ मिलाप नहीं हुआ करता। इस तरह से परमात्मा के साथ प्यार करना जरूरी होता है।

सो यह रास्ता भाई मनसुख जी ने राजा शिवनाभ को बताया और आपने बताया कि जब तक प्यार नहीं होता प्यार से हीन जो यह कर्म करता है, वह मूढ़ तथा कच्चा व्यक्ति है क्योंकि उसे यह पता ही नहीं कि ये किसी भी लेखे में नहीं पड़ रहे। ये कर्म-धर्म 'मैं' के प्रभाव के कारण बन्धन हैं। **निष्काम कर्म ही अन्तसकरण की मैल का इलाज है** क्योंकि निष्काम कर्म का फल उपासना (भक्ति) होता है। उपासना द्वारा ज्ञान में पहुँच हो जाती है। साधन बिना ज्ञान केवल एक भूल-भुलैया है। अत: नाम ही सार साधन है। नामी के साथ प्यार पैदा हुए बिना, अभेदता प्राप्त नहीं होती। ऐसा महाराज जी ने फ़रमान किया है -

जिन कउ प्रीति नाही हरि सेती ते साकत मूड़ नर काचे॥ *पृष्ठ - 169*

जिसका प्यार नहीं है परमात्मा के साथ, वे लोग सभी मूढ़ हैं, कच्चे हैं -

तिन कउ जनमु मरणु अति भारी विचि विसटा मरि मरि पाचे॥ *पृष्ठ - 169*

सजा क्या मिलती है? पैदा होते रहेंगे, मरते रहेंगे। बार-बार जन्म लेंगे, विष्टा में पचते रहेंगे-

संत हेति प्रभि त्रिभवण धारे॥ *पृष्ठ - 224*

सभी ने अपनी-अपनी मत के अनुसार उत्तर दिया। महाराज कहते हैं, ''परमात्मा ने अपने प्यारों के लिये यह दुनियां बनाई है। उनके लिये सभी सुख सुविधाएं प्रदान की हैं, साकतों के लिये नहीं -

कबीर धरती साध की तसकर बैसहि गाहि।
धरती भारि न बिआपई उन कउ लाहू लाहि॥ *पृष्ठ - 1375*

चोरों ने आकर धरती को दबा लिया, महात्मा के लिये बनाई थी। *'संत हेति प्रभि त्रिभवण धारे।' (पृष्ठ - 224)* और यहाँ बैठकर आत्मा को पहचानना था, वाहिगुरू के साथ प्यार करना था सन्तों ने, और वाहिगुरू उन्हें प्यार करता है -

गोबिंद भाउ भगति दा भुखा॥ *भाई गुरदास जी, वार 10/8*

उसने भी अपने दीवानों के साथ प्यार करना था। सो प्यार करने के लिये, प्यारों के लिये ही संसार बनाया है। यहाँ पर कोई-कोई विरला ही है जो प्यार करके पार हो जाता है -

साचु रिदै सचु प्रेम निवास। प्रणवति नानक हम ता के दास॥ *पृष्ठ - 224*

और रहत में सच आ जाता है, सच का निवास हो जाता है।

अत: उन्होंने यह बात समझाई, ''राजन! जो **मेरा गुरू नानक है, वह घर बार छोड़ने के लिये नहीं कहता, परिवार में से बाहर नहीं निकालता लेकिन मन को बदलता है। जीव को ज़िन्दे को ही मारता है। संसार की ओर से मार देता है। परमेश्वर की ओर से जीवित कर देता है, जो वास्तविक ज़िन्दगी है।** मेरा गुरू नानक यह कहता है कि घर छोड़ने की ज़रूरत नहीं। गृहस्थ की कुरीतियों को छोड़ो। भरथरी ने राज्य छोड़ दिया, गोपी चन्द ने राज पाट छोड़ दिया पर मेरा गुरू नानक यह कहता है कि भरथरी तख्त पर बैठा होता और उसे यही ज्ञान, वहाँ प्राप्त हो जाता तो कितना जगत सुखी हो जाता? कितने बड़े धर्म का राज्य कायम हो जाता? गोपी चन्द यदि अपने राज्य में रहता तो कितने लोगों को नेकी में ले आता? सो **मेरे सतगुरू जोगी बनाते हैं - जोगी कहते हैं परमेश्वर के साथ जुड़ने वाले को लेकिन ऐसे नहीं मिलाते कि भस्म लगा लो, घर को छोड़ दो, कपड़े पहनने बन्द कर दो।** वे कहते हैं, संसार में वस्त्र पहनो, खाओ, पहनो, बाल बच्चों में रहो -

नानक सतिगुरि भेटिऐ पूरी होवै जुगति।
हसंदिआ खेलंदिआ पैनंदिआ खावंदिआ विचे होवै मुकति॥ *पृष्ठ - 522*

मेरा सतगुरू यह कहता है कि जिस परिवार में रहना है, उसे परमेश्वर की ओर लगा दे, परिवार का भला हो जायेगा यदि समाज में रहता है, वहाँ पर खाली मत बैठ अपनी गोशा-नशीनी (बातचीत) का आनन्द मत लेना, कुछ करते रहना -

जब लगु दुनीआ रहीऐ नानक किछु सुणीऐ किछु कहीऐ॥ *पृष्ठ - 661*

कुछ कहते रहना, गोशा-नशीन मत हो जाना, चुप-चाप मत बैठ जाना, कहीं मौन व्रत धारण कर ले, एक-दो साल के लिये। बोलता नहीं, बताता नहीं। यदि प्रभु ने ज्ञान की दात दी है तो अधिकारियों के भ्रम नाश करने के लिए अपना ज्ञान बांटता नहीं। मेरा सतगुरू संसार को खुश करना चाहता है क्योंकि संसार हउमै के रोग से पीड़ित है स्वंय भी दुखी है और संसार को भी दुख पहुँचाता है।

राजा कहने लगा, ''फिर गृहस्थ तो पकड़ की चीज़ होती है।'' ''नहीं, नहीं, मेरे गुरू नानक ने गृहस्थ में उदास रहने का तरीका बताया है।''

"वह कैसा?"

मेरा गुरू नानक कहता है –

धीआ पूतु सभ हरि के कीए।

ये तो परमात्मा के दिये हुए हैं। जैसे यह साध संगत दी है, इसी तरह से पुत्र-पुत्रियां दी हैं। उन्हें लायक बना, ठीक बना (मेरे) मत कहना। ऐसे कहना, "परमेश्वर के दिये हैं, मैं तो मैनेज़र हूँ, मैंने अपने कर्तव्य पूरे करने हैं, पिता के तौर पर obligations है; मोह में मत पड़ जाना।" सो इस तरह गृहस्थ में रहता हुआ दान करेगा तो पैसे से मोह टूटेगा। दुनियाँ की बातें सहन करेगा, दुख सुख सहन करेगा, तुझे सहन करने की आदत पड़ जायेगी।

राजा ने कहा, उस समय गुरू नानक जी क्या बताते हैं क्योंकि मन का वासता अपमान से, कठिनाईयों से या प्रतिकूल परिस्थितियों से पड़ता है।

कहते हैं, "मेरा गुरू नानक यह बताता है कि यह सभी कुछ करतार के हुक्म के अधीन हो रहा है। ***'जो तुधु भावै साई भली कार॥' (पृष्ठ - 4)*** हे परमात्मा! जो तुझे अच्छा लगता है, भाता है, वही कार-व्यवहार अच्छा है। इस तरह मेरा गुरू नानक गृहस्थ नहीं छुड़वाता। परन्तु यह कहता है कि गृहस्थ में डूब मत जाना। देखना प्यारे! पैसा कमाता-कमाता पैसे में ही गायब मत हो जाना, जायदाद बनाता-बनाता जायदादों में ही मत खो जाना। ऐसे रहना जैसे मैनेज़र हुआ करता है, जैसे दाई (नर्स) बेगाने पुत्र का पालन करती है, परिवार में ऐसे ही रहना, कर्तव्य पूरे करना। राजा से न्याय का राज्य करवाते हैं। अत: **गुरू नानक का आशय तीन हिस्सों में जो मुझे बताया है मुख्य भक्ति - जो मुख्य कर्म करना है, वह भक्ति है। नौ प्रकार की भक्ति होती है** - सिमरण भक्ति, कीर्तन भक्ति, श्रवण भक्ति आदि नौ प्रकार की भक्ति है। कहते हैं, **वह तो मुखिया बना दी। निश्चय में ज्ञान है कि यहाँ वाहिगुरू ही है और कोई है ही नहीं। अपने आप ही अनेक रूप धारण किये हुए हैं -**

सूछम ते सूछम कर चीने ब्रिधन ब्रिध बताए।
भूम अकास पताल सभै सजि एक अनेक सदाए॥ ***शबद हज़ारे पातशाही १०***

निश्चय में ज्ञान रखना। तीसरा संसार में व्यवहार वैराग का रखते हैं। किसी के पीछे नहीं पड़ते; यदि कोई कह जाये; दर गुज़र (बेपरवाही) कर जाते हैं।

सो इस तरह गृहस्थ में ही परम पदवी तक पहुँचाते हैं और अपने कर्तव्यों की पहचान करवाते हैं और साथ ही यह कहते हैं, "प्यार सबसे पहले है - प्रभु प्यार, गुरू प्यार, गुरमुख प्यार। फिर उसके पश्चात समाज का प्यार। चार प्यार, प्रभु के प्यार में से निकलते हैं या ऐसे कह लो, पहला गुरमुख से प्यार, सन्त से प्यार। गुरू घर के सन्त, गुरू के साथ ही प्यार डालते हैं, मीठी-मीठी बातें सुना कर, उसकी बातें सुना-सुना कर, गुरू नानक के साथ प्यार पैदा करो, मेरे साथ मत करो। मुझे मत समझो। मैं तो उनका अदना सा सेवक हूँ। मुझे मत शीश झुकाओ, गुरू को जाकर शीश झुकाओ। वे गुरू के साथ जोड़ते हैं। गुरू के जब हम चरण छूते हैं, कहते हैं, "चल, तू परमेश्वर के पीछे लग जा।" कहते हैं, फिर परमेश्वर के साथ प्यार सिखाते हैं। इसलिये प्यार से हीन को मुर्दा बताते हैं।

इस प्रकार के उपदेश बड़े विस्तार के साथ भाई मनसुख उस राजा को दे रहा है और राजा बड़े ध्यान के साथ श्रवण करता है। Resporsibility (उत्तरदायित्व) समझता है। इस प्रकार सत्संग भी रोज़ करते हैं। तब एक दिन बताया, "राजन! अब मेरा विचार बन गया कि मैं अपने देश वापिस लौट

जाऊं।'' उस समय राजा की क्या हालत हुई होगी, साध संगत जी! आप खुद ही अन्दाज़ा लगा लो। नेत्रों से जल बह चला, ठण्डीं आहें निकलने लग गईं। कहने लगा, ''मनसुख जी! बड़ी मुश्किल से तुमने मुझे बहुत गहरे अन्धकार में से बाहर निकाला है, जहाँ मैं गिरा पड़ा था और अब मैं क्या करूंगा?'' गुरू नानक का प्यार, उसके प्यार की चिन्गारी तुमने मेरे हृदय में लगा दी लेकिन तुम्हारे दर्शन करके मुझे तसल्ली हो जाती थी कि तुम्हारे अन्दर ही मैं अपने सांई को जिसे देखा नहीं था, मैंने दर्शन ही नहीं किये थे पर मेरा अनदेखा प्यार, गुरू नानक जी के साथ हो गया और तुम्हारे प्यार के कारण, मुझे उसका कोई बिछोड़ा महसूस नहीं होता था। अब मेरे से आपका जो बिछोड़ा है, वह सहन नहीं होता। इस तरह से फ़रमान करते हैं -

धारना - धीरज धरे ना किवें मन मेरा,
विछोड़े वाला दुख है बुरा - 2
मेरे प्यारे विछोड़े वाला दुख है बुरा - 2, 2
धीरज धरे ना किवें मन मेरा,........ - 2

एक तो होता है, वास्तव में बिछोड़ा हो जाना। एक प्यार वाला कहता है, ''मैंने चले जाना है।'' बहुत कठिन होती है ऐसी बात सुनना, बहुत कठिन है। फिर जिसके साथ बीतती है, वही उसका अनुमान लगा सकता है, साध संगत जी! इस बात का हर एक व्यक्ति को नहीं पता होता। बाकी के लिये तो यह कहानी बन जाती है। दुनियाँ के लिये बैसन्तर है। जिसको यह 'आग' लग गई, कहता है, वे कभी नहीं कहते कि वैसन्तर देवता ने कृपा कर दी। कहते हैं, ''आग लग गई। यह तो सुनते ही दुख होता है, सुनना भी कठिन हुआ करता है -

विछोड़ा सुणे डुखु विणु डिठे मरिओदि। बाझु पिआरे आपणे बिरही ना धीरोदि॥
पृष्ठ - 1100

भाई मनसुख जहाज पर चढ़ने के लिये तैयार खड़ा है। जहाज़ चलने के लिये तैयार हो रहा है। राजा विदा करने के लिये आया हुआ है। उसके नेत्रों में से छम-छम नीर बह रहा है, ''मनसुख! तूने मुझे प्यार लगा दिया, अभी तू बिछुड़ा नहीं है, मैं तो अभी तुझे देख रहा हूँ कि तू बिछुड़ने की तैयारियां कर रहा है, जाने लगा है, मैं कैसे जीवित रहूंगा। दो दिन और ठहर जा। राज पाट देकर मैं तेरे साथ ही चलूंगा। अपने शरीर पर राख लगा लूंगा, सारे वस्त्र उतार कर फैंक दूंगा, जटाएं रख लूंगा, तू मुझे मुरशद के पास ले चल। मेरे प्यारे के पास, मुझे ले चल।'' प्रार्थनाएं करता है।

मनसुख कहने लगा, ''राजन! जाने की ज़रूरत नहीं, मेरा सतगुरू अर्न्तयामी है।''

घट घट के अंतर की जानत। भले बुरे की पीर पछानत॥
कबियो बाच बेनती चौपई पा: १०

वह पीड़ा को जानता है, वह पीड़ा को पहचानता है। तू यहीं पर ही बैठे याद कर। ऐसे नहीं मिलेगा, पता नहीं कहाँ गये होंगे। सारे भारत वर्ष में संसार का उद्धार करने के लिये घूमते रहते हैं और जहाँ भी कोई प्यार करता है और रूहानी सफर में कहीं, अटका हुआ है, उसे पूर्ण ज्ञान देकर, निरंकार के साथ मिलाने के लिये स्वंय ही वहाँ पहुँच जाते हैं।''

कहने लगा, ''जिस बात का दुख है, वह यह है कि देखते-देखते तू मेरी आखों से ओझल हो जायेगा, जहाज के वैदवान दिखाई देने से बन्द हो जायेंगे, मुझे नहीं लगता कि मैं पुनः अपने राज्य में लौट सकूंगा। मुझे लगता है कि मैं समुद्र में ही गिर जाऊँगा।''

बहुत धैर्य बन्धाता है क्योंकि *'विछोड़ा सुणे डुखु विणु डिठे मरिओदि॥' (पृष्ठ - 1100)* बिना देखे तो मौत हो जाती है, जीवित नहीं रहता। कहता है, पूछो किसी पति को प्यार करने वाली स्त्री से, जिसे विरह बाण लगा हुआ हो। पति कहीं दूर देश गया हुआ है, दर्शन नहीं हो पा रहे, मिलाप नहीं हो रहा, कोई सन्देशा भी नहीं आ रहा और भाई गुरदास जी लिखते हैं -

बिरह बिओग रोग दुखित हुइ बिरहनी.......। ***कबित स्वैये भाई गुरदास जी 207***

विरह के वियोग में आकर जो दुख होता है व्याकुल पत्नी को -

........कहत संदेस पथिकन पै उसास ते॥ ***कबित स्वैये भाई गुरदास जी 207***

ठण्डीं आहें भर-भर कर राहियों को सन्देश भेजती है, भाई! तूने कहाँ जाना है। अमुक स्थान पर जाना है, वहाँ पर सन्देशा ले जाना यदि वे तुझे मिले तो कहना कि वह बहुत ही दुखी है, मेरी हालत बता देना। इस तरह से ठण्डीं आहें भरती है -

देखहु त्रिगद जोनि प्रेम कै परेवा, पर कर..................।कबित स्वैये भाई गुरदास जी 207

ये जो यौनियां हैं न त्रिगद - चन्द चकोर है, चकवी है, भंवरा है, पन्छी है कहते हैं, इनका हाल देखा, कैसा होता है? पंखों से ऊँची-ऊँची उड़ानें भर रहे हैं -

......................नारि देखि टूटत अकास ते॥ ***कबित स्वैये भाई गुरदास जी 207***

आसमानों में उड़ते हैं। जब पता चलता है कि मेरी कबूतरी यहाँ दाना चुग रही है, उस समय उड़ता हुआ कबूतर, कबूतरी को देखकर आ मिलता है। परों से एक दम नीचे आ जाता है। इनके अन्दर भी देखो कैसा प्यार है -

तुम तो चतुर दस बिदिआ के निधान प्रिअ...............। कबित स्वैये भाई गुरदास जी 207

फिर तुम सारी विद्याओं के निधान हो, खजाने हो। हे प्रीतम, सतगुरू, चौदह विद्याओं के भण्डार हो, शुद्ध सान्तविक स्वरूप हो, फिर क्यों नहीं, आपके सहारे पर रहने वाली एक मात्र, आप की ही कामना परायण रहने वाली, जिज्ञासु रूप स्त्री को, बिछोड़े रूपी शत्रु के भय से छुड़ाते -

....................त्रिय न छुडावहु बिरह रिपु त्रास ते॥ ***कबित स्वैये भाई गुरदास जी 207***

तू तो सभी कुछ जानता है। तुम मुझे क्यों विरहु भुजंगम के ज़हरीले डंकों से नहीं छुड़ा रहे। मुझे यह विरह, दुख जो नागों के समान है, से क्यों नहीं छुड़ाते -

कबीर बिरहु भुयंगमु मनि बसै मंतु न मानै कोइ।
राम बिओगी ना जीऐ जीऐ त बउरा होइ॥ ***पृष्ठ - 1368***

धारना - ना जीवे कोई राम दा बिओगी - 2, 2
राम दा बिओगी कोई, - 4, 2
ना जीवे कोई राम दा बिओगी....... - 2

सीता जी, राम के वियोग में अपने पति श्री राम चन्द्र जी को सन्देशे भेजती है, ठण्डीं आहें भर कर कहती है, ''हे पति जी! स्वामी जी! आप देखो। ये जो जानवर उड़ रहे हैं, इनकी नज़रों में जब कोई स्त्री आती है, उसी समय उड़ान भर कर, उस स्त्री के पास आकर बैठ जाते हैं। पन्छी के दिल में भी यह बात है फिर आप तो सर्वज्ञ हैं, क्यों नहीं मुझे इस विरह की पीड़ा से, इस शत्रु से छुड़ाते और विरह को तो नाग कहते हैं।

विरह का दुश्मन जो वियोग है, विछोड़ा है, इसके भय से मुझे छुड़ाते क्यों नहीं?

कहने लगी, ''अन्धेरी रात में जैसे टिमटिमाते तारे, भय भीत कर रहे होते हैं, इसी तरह से आपके चरणें से विमुख हुई को, ये बिछोड़े के दुख, दुखी कर रहे हैं। क्यों नहीं दर्शन देकर, मेरे अन्दर सूरज का प्रकाश कर देते?''

चरण बिमुख दुख तारिका चमतकार, हेरत हिराहि रवि दरस प्रगास ते॥

कबित स्वैये भाई गुरदास जी 207

इस तरह से देखते ही देखते जहाज़ दूर और दूर होता चला जा रहा है। राजा शिवनाभ वहीं पर खड़े हैं और भी काफी लोग खड़े हैं, उसकी हालत को देख रहे हैं। नेत्रों से जल अनवरत बह रहा है, सुध-बुध भूलती जा रही है। गुरू नानक के दर्शन अब नहीं हो रहे। गुरू नानक का आकर्षण पैदा हो गया कि अब क्या होगा? एक सत्संगी मिला था, जिसने मुझे कर्म-धर्म में से अन्धेरे में से, गड्ढे में से निकाल कर परमेश्वर से प्यार लगा दिया -

धारना - बिरहों वाला ओ बाण लग्गिआ - 2, 2
मेरे हिरदे दी पीड़ ना जाणै - 2, 2
बिरहों वाला ओ बाण लग्गिआ - 2

जिसे प्यार का बाण लग जाता है, वह वहीं जानता है, दूसरे को नहीं पता चलता -

लागी होइ सु जानै पीर। राम भगति अनीआले तीर॥ ***पृष्ठ - 327***

अणीआले (तीखे) वाले तीर हुआ करते हैं -

हरि दरसन कउ मेरा मनु बहु तपतै जिउ त्रिखावंतु बिनु नीर॥ ***पृष्ठ - 861***

जैसे प्यासा पानी के बिना मरने के निकट आ जाता है। इसी तरह गुरू नानक के दर्शन की प्यास लग गई -

मेरै मनि प्रेमु लगो हरि तीर॥ ***पृष्ठ - 861***

तीर लग गया - प्यार का तीर, प्यार भरे विरह का तीर। सीता जी को रावण हर कर ले गया। श्री राम चन्द्र जी ने हनुमान को लंका में भेजा और कहा, ''रावण के महलों में जाओ और बन्दी खाने में सीता जी को मिलकर, उनकी सुध खबर ले कर आओ।'' जब हनुमान जी सीता जी की खोज करके वापिस लौटे तो राम जी ने पूछा -

''हे हनुमान! कहयो रघुबीर!''

''कुछ सुध है सीय की छित माहीं?''

''हे प्रभु! लंक कलंक बिना बसहि, तर रावण बाग के माहि।''

''जीवित है।''

''कहिबे ही को नाथ।''

''सो मर क्यों न गई हमरे बिछराहीं।''

''प्राण बसै पग पंकज़ महि, जम आमत है, पर पावत नाहीं।''

विरह पीड़ा को वही जानता है, जिसे विरह पीड़ा ने सताया हो। दूसरे को क्या पता कि विरह क्या होती है? विरह विहीन हृदय, मसानों की जली हुई धरती के समान होता है, जहाँ पर

हरी घास का एक तिनका भी हरा नहीं हो सकता। राजा शिवनाभ के हृदय में गुरमुख प्यारा चिन्गारी लगा गया, आकर्षण पैदा कर गया। कौन लगाये इस विरह की पीड़ा को मरहम सतगुरू के बिना –

हमरी बेदन हरि प्रभ जानै मेरे मन अंतर की पीर॥ *पृष्ठ - 861*

मेरे हृदय की जो पीड़ा है, इसे मेरा प्रभु ही जानता है और कोई नहीं जानता –

मेरे हरि प्रीतम की कोई बात सुनावै। सो भाई सो मेरा बीर॥ *पृष्ठ - 862*

जो मेरे प्यारे की बात बता दे, वह कितना निकट आ जाता है, 'सो भाई सो मेरा बीर॥' वह मेरा भाई है –

तै साहिब की बात जि आखै कहु नानक किआ दीजै।
सीसु वढे करि बैसणु दीजै विणु सिर सेव करीजै॥ *पृष्ठ - 558*

ये जीवितों की बातें हैं, मरे हुओं की नहीं। जिसके हृदय में प्यार नहीं, उसका इस बात के साथ कोई सम्बन्ध नहीं होता क्योंकि उसके हृदय में कभी-कभी प्यार की रौ नहीं रूमकती। जिसके हृदय में रूमकी है –

सीने खिच्च जिन्हां ने खाधी ओ कर अराम नहीं बहिंदे।
निहुं वाले नैणां की नींदर ओ दिने रात पए वहिंदे।
इको लगन लगी लई जांदी है टोर अनंत उन्हां दी
वसलों उरे मुकाम न कोई सो चाल पए नित रहिंदे। *डा. भाई वीर सिंघ जी*

इस प्रकार –

मिलु मिलु सखी गुण कहु मेरे प्रभ के ले सतिगुर की मति धीर।
जन नानक की हरि आस पुजावहु हरि दरसनि सांति सरीर॥ *पृष्ठ - 862*

सो ऐसा विरह जाग्रत हो गया। एक दिन, दो दिन, दस दिन, नहीं समय ही बीतता जा रहा है। एक ही विचार में फस गया; खाना-पीना भूल गया। समुद्र के किनारे आ जाता है, जिधर से भारत वर्ष के लिये रास्ता जाता है। उस रास्ते पर आकर बैठ जाते है और मन के भाव प्रकट करने के लिये, इस प्रकार प्रकटावा करते हैं –

धारना - मेरी सार तूं लै लै आ के प्रीतमा,
अखीआं 'च नीर वगदै - 2, 2
अखीआं 'च जी नीर वगदै - 2, 2
मेरी सार तूं लै लै आ के प्रीतमा,.......... - 2

साजन देसि विदेसीअड़े सानेहड़े देदी। सारि समाले तिन सजणा मुंध नैण भरेदी।
मुंध नैण भरेदी गुण सारेदी किउ प्रभ मिला पिआरे।
मारगु पंथु न जाणउ विखड़ा किउ पाईऐ पिरु पारे॥ *पृष्ठ - 1111*

हे सतगुरू! मुझे पता नहीं है कि तेरी तरफ कौन सा रास्ता जाता है। पूछ-पूछ कर यदि आ भी जाऊँ फिर भी नहीं पता चलेगा, पता नहीं कौन से स्थान पर किसका उद्धार करने के लिये तुम गये हुए होंगे –

सतिगुर सबदी मिलै विछुंनी तनु मनु आगै राखै।
नानक अंम्रित बिरखु महा रस फलिआ मिलि प्रीतम रसु चाखै॥ *पृष्ठ - 1111*

इस तरह का वैराग है।

जब वैराग आ जाता है, साध संगत जी! फिर किसी की बात नहीं माना करता, किसी की सलाह नहीं मानता। अपने प्यार के बिनी जीना मुश्किल हो जाता है। हंस तथा सारस ऐसे पन्छी हैं जो बिछोड़ा सहन नहीं कर सकते, युगल में से यदि एक भी मर जाये तो दूसरा भी मर जाता है। जब मैं खेती बाड़ी किया करता था। तो फार्म में धानों में एक सारसों का युगल रहता था वहीं पर ही मिट्टी लगा-लगा कर अण्डे देने के लिये घास-फूंस से ढक कर घौंसला बना लिया था। एक दिन एक गीदड़ ने आकर युगल में से एक को मार दिया। नौकरों ने मुझे बताया सारस हमारे खेत, कोठी के चौगिर्दे चक्कर लगा-लगा कर ऐसा विलाप कर रहा था जो मुझ से सहन नहीं हो रहा था। मेरा हृदय भी द्रवीभूत हो गया। मेरे नेत्रों में से भी आँसू बह चले। शाम तक वह खेतों में बेहोश होकर गिर कर प्राण त्याग गया। यह विरह का रूप है -

कबीर बिरहु भुयंगमु मनि बसै मंतु न मानै कोइ।
राम बिओगी ना जीऐ जीऐ न बउरा होइ॥ ***पृष्ठ - 1368***

जो इनका राज गुरू पण्डित था, वह देखता है कि राजा कौन से वहिण (प्रवाह) में बह गया। पहले शिव मन्दिर जाया करता था, बहुत दान पुण्य किया करता था, हमें भी बहुत कुछ दिया करता था। मेरे पास आया करता था, आकर नमस्कार किया करता था, मुझ से आर्शीवाद लिया करता था। अब तो इसने आना जाना ही बन्द कर दिया और जब भी देखो, राजय कार्यों से निपट कर, "नेत्रों से जल बहाता रहता है, ठण्डीं आहें भरता रहता है। इसकी कैसी हालत हो गई है?" राजा को समझाता है, "हे राजन! यह तुम कौन से प्रवाह में बह गये। वह व्यक्ति यदि मुझे मिल जाये जो आपको चेटक करके गया है, मैं उसे कठोर से कठोर सजा दूँ कि एक राजा को, सुख पूर्वक रहते हुए को उसने कैसे रोने-धोने में लगा दिया।"

राजा ने कहा, "तुझे नहीं मालूम, पण्डित जी! मुर्दे को क्या पता जीवन क्या होता है?" पण्डित रानी साहिबा से भी इस विषय पर बात करता है। रानी कहती है, "एक बात है पण्डित जी! जिस दिन से वह मनसुख जी आये और चले गये हैं, कितने कोमल भाव और विचार राजा जी के हो गये हैं। मुझे तो इनका जो यह प्यार का भाव है, उसे देख कर स्वंय ही प्यार आने लग गया है। राजा का भी सत्कार तथा मुझे इनके गुरू का भी बहुत सत्कार प्यार आने लग गया है हांलाकि मैंने देखा नहीं है, बात चीत ही सुनी है। कितनी कोमल मीठी बाणी है कितने मधुर वचन बोलते हैं। बोलते हैं तो ऐसे लगता है जैसे अपना दिल निकाल कर रख देते हैं। यह अवस्था कोई गलत चीज़ नहीं है। ठीक है कोई अवस्था ऐसी है जिसे याद करते हैं, कभी न कभी तो आएंगे ही। इनके अन्दर पूरा भरोसा है।"

अत: इस प्रकार राज-पाट के कार्यों को निपटा कर वह उसी समय समुद्र के किनारे चला जाता है या कभी-कभी ऊँचे पहाड़ों पर, जहाँ कोई न आता हो, एकान्त में चला जाता है, अंगरक्षकों को दूर छोड़ जाता है। वहाँ पर पहुँच कर फिर सतगुरू जी से प्रार्थनाएं करता है -

धारना - नित रसते उडीकां तेरे,
नैणां विचों नीर चलदै - 2, 2
मेरे पिआरे, नैणां विचों नीर चलदै - 2, 2
नित रसते उडीकां तेरे,....... - 2

दहदिस छत्र मेघ घटाघट दामनि चमकि डराइओ।
सेज इकेली नीद नहु नैनहु पिरु परदेसि सिधाइओ॥ ***पृष्ठ - 624***

सावन का महीना आ गया। बादल वर्षा करते हुए बरसते हुए जा रहे हैं। देखता है कि चारों ओर हरियाली छा रही है, नन्हीं-नन्हीं बूंदे बरस रही हैं, कोपलें हरी होकर और बढ़ रही हैं, ठण्डी-ठण्डी हवा चल रही है, चारों ओर प्रसन्नता ही प्रसन्नता है। एक विरहणी हुआ करती है जिसे सावन का महीना दुखी करता है। उसकी आसा कहीं भी पूरी नहीं हो रही -

हुणि नही संदेसरो माइओ। एक कोसरो सिधि करत लालु तब चतुर पातरो आइओ॥
पृष्ठ - 624

एक कोस यदि चले जाते थे, चार चिट्ठियां आया करती थीं। अब तो कोई सन्देशा ही नहीं आया -

किउ बिसरै इहु लालु पिआरो सरब गुणा सुख दाइओ।
मंदरि चरिकै पंथु निहारउ नैन नीरि भरि आइओ॥ *पृष्ठ - 624*

छत पर खड़े होकर, महलों पर चढ़ कर देखते हैं हिन्दुस्तान की ओर, भारत की ओर, शायद कोई नाव, कोई जहाज किनारे आ लगे - कोई नया राही आ जाये, कोई साधु आ जाये। जरूर आयेगा, शायद मनसुख जी, गुरू नानक जी को साथ ले आएं। घंटों बैठे, टकटकी लगाये दूर तक देखते रहते हैं। मनसुख कहा करता था, वह ज़रूर आयेंगे। सो बार-बार ऐसे विचार आते हैं। देखता है कि कौवा आकर मुन्डेर पर बैठ गया। शिवनाभ ने ध्यान दिया। बचपन की बातें याद आ गईं। उस समय आप कौवें को दोनों हाथ जोड़कर, तरले करते हुए प्रार्थना करते हैं -

धारना - उड जा उड जा कागा कारे,
लिआईं प्रीतम दा सुनेहा - 2, 2
प्रतीम दा सुनेहा लिआई, प्रीतम दा सुनेहा - 2, 2
उड जा उड जा कागा कारे,....... - 2

पंथु निहारै कामनी लोचन भरी ले उसासा।
उर ना भीजै पगु ना खिसै हरि दरसन की आसा।
उडहु न कागा कारे। बेग मिलीजै अपुने राम पिआरे॥ *पृष्ठ - 338*

प्यारे की बाट देखती है। नेत्रों में आँसू भरे हुए हैं। रूमाल से पौछती है, फिर आ जाते हैं, फिर पौछती है। आँसू रास्ता देखने नहीं देते। प्रार्थना करती है, ''ऐ कागा! मैंने सुना है कि तेरी उड़ान बहुत दूर तक की है। तू बहुत दूर तक जा सकता है, तू उड़ता क्यों नहीं? प्यार करने वालों से मैंने सुना था कि, कौवे प्रेमियों का पता लाकर दिया करते हैं।'' मुन्डेर पर बैठकर काँव-काँव करने लग जाता है। पता चल जाता है कि आज कोई आयेगा। तू बोलता नहीं है, चुप करके बैठा है। कहावत है -

उड उड कावां तैनूं चूरी पावां,
कंत घर आउंदै, उह दी सार लिआ कावां।

बार-बार प्रार्थनाएं करते हैं, *'उडहु न कागा कारे॥' (पृष्ठ - 338)* मैं जल्दी मिलना चाहता हूँ, कोई अता-पता तो ला दे। कभी आकर बोल तो सही -

कहि कबीर जीवन पद कारनि हरि की भगति करीजै।
एकु आधारु नामु नाराइन रसना रामु रवीजै॥ *पृष्ठ - 338*

भाई गुरदास जी भी इस तरह फरमाते हैं -

बाइस उडहु बल जाउ बेग मिलौ पीय,
मिटै दुखु रोगु सोगु बिरह बियोग को॥ *कबित स्वैये, भाई गुरदास जी 571*

ऐ कागा! तू यहाँ मत बैठ। उड़ कर जा, मेरे प्रीतम के पास, जल्दी जा। उसे जाकर मेरी

हालत बता दे। मेरा रोग, दुख, शोक उसे जाकर बता। मेरी देह देख, कितनी पीड़ित हो रही है, कपड़े भी नहीं पहन रही -

हरि बिनु नीद भूख कहु कैसी कापड़ु तनि न सुखावए॥ पृष्ठ - 1108

अवध बिकट कटै, कपट अंतरि पटु, देखउ दिन प्रेम रस सहज संजोग को।
लाल न आवत सुभ लगन सगन भले, होइ न बिलंब कछु भेदु बेद लोक को।
अतिबि आतुर भई अधिक औसेर लागी, धीरज न धरौ खोजै धारि भेख जोग को॥
कबित स्वैये, भाई गुरदास जी 571

उसे यह बता देना कि यदि तू न आया तो वह जोगिन बन जायेगी। मैं अकेले-अकेले घर में जाकर भूख मांगूगी अलख जगाकर, साथ ही तेरी तलाश करूंगी, तू कहाँ बैठा है? आता क्यों नहीं? मेरा जीवन तेरे बिना किस काम का? इस उम्र का एक-एक दिन कैसे बीत रहा है? अन्दर अज्ञान का पर्दा है, पति मिलाप तथा मिलन रस कैसे प्राप्त हो? सभी लगन तथा शकुन शुभ हो रहे हैं, फिर भी प्रीतम का मिलाप नहीं हो रहा, क्या विघ्न पड़ गया? कहाँ लौकिक धारना के अनुसार भला मुहुर्त न निकल रहा हो। अत्याधिक देरी हो रही है। अति की व्याकुलता में धैर्य कैसे रखूं? हे प्रीतम! हे प्राणों के रक्षक! अब और अधिक देर मत कर। आ जा -

खोजत खोजत भई बैरागनि प्रभ दरसन कउ हउ फिरत तिसाई॥ पृष्ठ - 204

साध संगत जी! सो इस प्रकार के सन्देशे हैं। **जिसके हृदय में विरह उपजा ही नहीं, सुन्न है, जला हुआ है, वह सार क्या जाने प्यार के आकर्षण का।** राजा शिवनाभ के हृदय की वेदना, हम अनुभव नहीं कर सकते, केवल वहीं जानता है जिनके तन में अणिआले (तीखे) प्रीत बाणों ने घग खोल दिये हों। आसुओं का पवित्र सागर भी बहते-बहते सूख जाता है। तरले ही तरले हैं, दिल की हूक है।

उस समय स्वाभाविक ही मन में आता है कि यदि मैं आसमान में उड़ सकता होता तो उड़ कर उसे ढूँढ लेता परन्तु पंख तो मिलते नहीं। हद से ज्यादा बेबसी है -

धारना - फंग बिकदे होण बजारीं, फंघ बिकदे - 2
फंघ बिकदे होण बजारीं,
गुरां नूं मैं उड के मिलां,
पिआरिओ-पिआरिओ, गुरां नूं मैं उड्ड के मिला............ - 2, 2

खंभ विकांदड़े जे लहां घिंना सावी तोलि।
तंनि जड़ाईं आपणै लहां सु सजणु टोलि॥ पृष्ठ - 1426

सुना है कि एक अनल पन्छी आकाश में रहता है, उसका यदि पंख मिल जाये, उसे मैं अपने तन के साथ जोड़ दूँ। उसे जिस वस्तु के साथ जोड़ दो, उस वस्तु को वहीं पर ही पहुँचा देता है, जहाँ वह स्वंय रहता है। मेरे प्यारे का अमर मण्डल है। मैं मृत्यु मण्डल का वासी हूँ, हे पातशाह! ऐसे पंख यदि मुझे भी मिल जायें तो मैं तन के साथ जड़वा कर, वहीं पर पहुँच जाऊँ क्योंकि उन पंखों में यह गुण होता है।

गुरू दसवें पातशाह का दीवान सजा हुआ है, अचानक एक अज़ीबो-गरीब वस्त्र पहने हुए, कोई प्रेमी आ गया। साधु लिबास में था और गुरू महाराज जी के सामने आया। महाराज जी ने बड़े गौर के साथ देखा। उसके पश्चात उसने पाँच पंख महाराज जी को भेंट किये आपने हाल चाल पूछा और कहा यह कष्ट क्यों उठाना था। उसने प्रार्थना की, ''महाराज! सन्तों के पास, गुरूओं के पास, पीरों के पास,

जो व्यक्ति खाली हाथ जाता है, वह खाली ही वापिस आ जाया करता है। कुछ न कुछ भेंट अपनी श्रद्धा प्रकट करने के लिये जरूर लेकर जाना चाहिये। उन्हें जरूरत नहीं हुआ करती। केवल श्रद्धा देखते हैं कि इसके मन में श्रद्धा है या ऐसे ही है? सो महाराज! यह जो ऊपर के ब्रह्मण्डों का जानवर है, जिसे अनल कहते हैं, धरती की आकर्षण शक्ति से बाहर, परे रहता है, ऊपर ही बच्चे पैदा करता है, पालता है। उसके पंख लेकर आया हूँ। उनके अन्दर ऐसी तासीर है कि यदि आप इन पर बाण रख कर चलायेंगे तो ये वहीं पर उसी मण्डल में पहुँच जायेंगे।''

वह चला गया। सभी सिंघों ने प्रार्थना की, ''महाराज! यह कौन आया था?'' महाराज जी ने बताया, ''गुरसिखो! यह नारद जी थे। गुरू नानक की गद्दी का हाल चाल, पूछना था, कुछ वचन इसने परमार्थ के करने थे, वह ये पंख भेंट करने के लिये आया था।''

''महाराज! इसने पंख, भेंट क्यों किये?'' कहने लगे, ''सिंघों! ये पंख ऐसे नहीं हैं; ये पंख हुमायूं पन्छी के हैं। वह पन्छी ऊपर के मण्डलों में रहता है और इसके पंखों में तासीर है कि कोई भी चीज़ इनके साथ बान्ध दो, यह वहीं चली जाती है। जाओ, पंख बाणों के साथ जड़वा कर लाओ।''

उसी समय हुक्म का पालन हुआ। महाराज जी कहने लगे, ''देखो! हम तीर चलाएंगे। दूर दराज़ तक फैल जाओ, इस तीर को उठाकर हमारे पास लाना।'' गुरू महाराज जी ने आकाश की ओर तीर चलाए और सभी देखते हैं किसी की नज़र कमज़ोर है तो किसी की तेज़ है, पंख बहुत ऊँचे जाते हुए तो देखे पर नीचे गिरते नहीं देखे। सभी कहने लगे, ''सच्चे पातशाह! कोई भी तीर नहीं मिला।'' आपने कहा था कि इसके पंखों में यह तासीर है, प्यारे! जैसे इन पंखों में तासीर है, इसी तरह गुरू नानक की बाणी में तासीर है जिसके हृदय के साथ बन्ध जाये, जिस हृदय के अन्दर -

१ओंकार सतिनामु करता पुरखु
निरभउ निरवैरु अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि॥ जपु॥
आदि सचु जुगादि सचु। है भी सचु नानक होसी भी सचु॥ *पृष्ठ - 1*

समा जायेगा या 'वाहिगुरू' मन्त्र समा जायेगा, वह जब शरीर छोड़ेगा, उसी समय गुरू नानक के लोक में चला जायेगा। जैसे ये पंख उसी जगह जाते हैं, जिस देश के वासी हैं। इसी तरह गुरू की बाणी है -

धुर की बाणी आई। तिन सगली चिंत मिटाई॥ *पृष्ठ - 628*

यह धुर दरगाह की बाणी है, वहीं पर ही ले जायेगी। अतः राजा शिवनाभ प्रार्थनाएं करता है, ''हे पातशाह! यदि मुझे उस हमायुं पन्छी के पंख मिल जायें, यदि सारा राज पाट देने के बाद भी मुझे ये पंख मिल जायें तो मैं इन्हें शरीर के साथ जड़वा लूँ क्योंकि वह शरीर के साथ जड़वाने के बाद, मुझे विश्वास है कि मैं तुम्हारे पास पहुँच जाऊँगा। इस तरह के हाव-भाव नम नहीं होते। वज़ीर समझाते हैं। प्रजा के प्रतिनिधि आकर समझाते हैं, ''महाराज! आप उदास हैं, आपकी उदासी देखी नहीं जाती। कुछ खाते पीते नहीं, एक ही अक्षर बोलते हैं, 'धन्य गुरू नानक, धन्य गुरू नानक, धन्य गुरू नानक।' बस यही बोले जाते हैं?'' सभी हैरान हैं कि ये अक्षर क्या है, 'धन्य गुरू नानक।' किसी ने भी गुरू का नाम भी नहीं सुना था। पता ही नहीं था, गुरू नानक कौन हैं? जब भी पूछते हैं, ''गुरू नानक कौन हैं?'' तो उत्तर देते हैं कि मैं बता नहीं सकता। वह मेरा अपना आपा ही है, मेरी जान की जान है, मेरे प्राणों के प्राण हैं। मुझे यह पता है कि मेरे प्राणों के आधार हैं।'' ''कैसे हैं वह?'' इस बात की सुरत मैं नहीं जानता। मैं तो यह जानता हूँ, वे निरा प्यार हैं, केवल अपने ही हैं, केवल कृपा ही है, निरी नदरि है,

केवल कृपा ही है लेकिन मैं पाँच तत्व का पुतला नहीं जानता वह कैसे हैं।

हटते नहीं हैं, दिल में लगन है। फ़रमान आता है कि यदि लगन है प्यारे! फिर बोलता चल, फिर हट न, कभी न कभी तो तेरी सुनी जायेगी –

धारना – कदे सुणेगा पुकार प्रीतम मेरा,
पपीहे वांगूं कूकदा रहीं – 2, 2
मेरे पिआरे पपीहे वांगूं कूकदा रहीं – 2, 2
कदे सुणेगा पुकार प्रीतम मेरा,........ – 2

कबीर केसो केसो कूकीऐ न सोईऐ असार।
राति दिवस के कूकने कबहू के सुनै पुकार॥ *पृष्ठ – 1376*

विरह की निशानी, प्यार की निशानियां होती हैं साध संगत जी! ऐसी अवस्था में एक राजा को प्यार लग गया, अनदेखे गुरू नानक पातशाह का। कैसी हालत हो गई है? इसे कोई नहीं जान सकता। जिसने प्यार देखा ही नहीं, वह बात क्या कह सकता है।

सो अब समय इजाज़त नहीं देता, इसके पश्चात महाराज जी ने कृपा की तो आगे विचार की जायेगी। सभी प्रेमी अब गुर सतोतर में बोलो। पहले आनन्द साहिब पढ़ो।

– *आनन्द साहिब* –

– *गुर सतोतर* –

– *अरदास* –

5

सतिनाम श्री वाहिगुरू
धंन श्री गुरू नानक देव जीओ महाराज!

डंडउति बंदन अनिक बार सरब कला समरथ।
डोलन ते राखहु प्रभू नानक दे करि हथ॥ पृष्ठ - 256

फिरत फिरत प्रभ आइआ परिआ तउ सरनाइ।
नानक की प्रभ बेनती अपनी भगती लाइ॥ पृष्ठ -289

तू चउ सजण मैडिआ डेई सिसु उतारि।
नैण महिंजे तरसदे कदि पसी दीदारु॥ पृष्ठ -1094

जे तू वतहि अंङणे हभ धरति सुहावी होइ।
हिकसु कंतै बाहरी मैडी वात न पुछै कोइ॥ पृष्ठ -1095

धारना - हउ तुमरी करउ नित आसा, हउ तुमरी - 2, 2
कदों गल लावोगे, प्रभ जी - 2
कदों गल लावोगे हउ तुमरी .... - 2

प्रभ कीजै क्रिपा निधान हम हरिगुन गावहगे।
हउ तुमरी करउ नित आस प्रभ मोहि कब गलि लावहिगे।
हम बारिक मुगध इआन पिता समझावहिगे।
सुतु खिनु खिनु भूलि बिगारि जगत पित भावहिगे।
जो हरि सुआमी तुम देहु सोई हम पावहगे।
मोहि दूजी नाही ठउर जिस पहि हम जावहगे।
जो हरि भावहि भगत तिना हरि भावहिगे।
जोती जोति मिलाइ जोति रलि जावहगे।
हरि आपे होइ क्रिपालु आपि लिव लावहिगे।
जनु नानकु सरनि दुआरि हरि लाज रखावहिगे॥ पृष्ठ -1321

धारना - मैं आसां करदा जी, कदों गल लावोंगे - 2, 4

साध संगत जी! गर्ज़ कर बोलो, सतनाम श्री वाहिगुरू। कारोबार संकोचते हुए, आप गुरू दरबार में पहुँचे हो, महाराज जी की बड़ी अपार कृपा आप सभी पर है कि इस कलयुग के जलते-भुनते संसार में, जब कलह तथा क्लेश की लपटें उड़ रही हैं, एक ही शीतल स्त्रोत सत्संग है, जहाँ पर पहुँच कर, आपका मन कुछ समय के लिये टिकता है तथा किसी आनन्द को महसूस करता है, जो आनन्द न तो पैसों से खरीदा जा सकता है, न ही सैर सपाटा करने से मिल सकता है, न ही कोई प्रभुता प्राप्त करने से मिल सकता है, इन उपलब्धियों से तो तन, मन, शीतल करने वाला अमृत रस आदमी को प्राप्त नहीं होता, वह आनन्द जो सत्संग करने में है -

सतसंगति कैसी जाणीऐ। जिथै एको नामु वखाणीऐ॥ पृष्ठ - 72

जहाँ पर प्रभु प्यारों की बातें होती हों, जहाँ सत्य के साथ मिलने की बातें होती हों, विचार,

चर्चा होती हो, उसे सत्संग कहा जाता है।

पिछले कई दीवानों में, कई कार्यक्रमों से गुरू नानक पातशाह के साथ सम्बन्ध रखने वाली साखी चल रही है कि गुरू नानक पातशाह के पास मनसुख नाम का एक व्यापारी, Trader आया। तीन साल तक महाराज जी के पास रहने के पश्चात, उच्च से उच्च अवस्था प्राप्त की। ऐसा नहीं कि वह घर बार छोड़ कर चला गया, घर गृहस्थी में रहते हुए, औरों को भी इस रास्ते पर लाने के लिए काम भी करता है और साथ ही साथ जो अभ्यास है, उसे भी जारी रखता है। आपकी संगलाद्वीप के ज़खीरे में जहाँ के राजा से भेंट होती है उस राजा का नाम शिवनाभ है। वह व्रत आदि रखता है क्योंकि वह शैव मत का धारनी था। उस समय वहाँ पर दो ही मत थे, अन्य कोई नहीं था। एक शैव मत था और दूसरा बौद्ध धर्म था। बौद्ध धर्म भी शैव मत की एक शाखा है जो समय के परिवर्तन के साथ-साथ योग मत में प्रवृत्त हुई तथा इसी योग मत में मच्छन्दर नाथ, गोरख नाथ, भरथरी जी तथा गोपी चन्द जैसे महान विद्वान, साधना सम्पन्न महापुरुष हुए। लोग तो ये अच्छे थे लेकिन जिसे ज्ञान कहते हैं, इस पक्ष से उनके अन्दर पूरा अन्धेरा था। कर्म काण्डों में फंसे हुए थे। व्रत रख लेना, तुलसी की पूजा कर लेना, कुछ पुण्य दान कर लिया, कुछ व्रत रख लिये। कुछ ऐसे नियम थे, जिन्हें महाराज जी फोकट कर्म कहते हैं क्योंकि ये परमेश्वर की Realization (अनुभव) के लिये सहायक नहीं हुआ करते। इसलिये ये कर्म सहायक न होने के कारण मनुष्य उन्नति नहीं कर पाता। साधक की रूह आत्म मण्डल में प्रवेश नहीं कर सकती। कर्म काण्डों में उलझी रूह, प्रकृति मण्डल में ही रह जाती है। दूसरी बात यह है कि वे परम शक्तियाँ जिनकी प्रतिमा आदि बनाई जाती हैं, उन्हें एक पत्थर में देखना शुरू कर देते हैं, जबकि वह सभी जगह परिपूर्ण, अथाह शक्तियों का मालिक होता है। उस राजा शिवनाभ के साथ भाई मनसुख जी का जो वार्तालाप होता है, अति विस्तार के साथ पीछे बताया जा चुका है। इसके पश्चात उस राजा को कुछ समझ आ जाती है, गुरू नानक पातशाह के प्रति उसका प्यार जागता है। मनसुख वहाँ से चला आता है, परन्तु प्यार की चिन्गारी उसके हृदय में जलती हुई छोड़ आता है। प्यार एक ऐसी चीज़ है कि मनुष्य के वश से बाहर की बात हुआ करती है। यह प्यार जब लग जाता है, तो इस अकह रस का आनन्द लूटता हुआ व्यक्ति, किसी भी प्रकार की कठिनाई, कष्ट, हित की परवाह से आगे निकल आता है –

आपणा लाइआ पिरमु न लगई जे लोचै सभु कोइ।
एहु पिरम पिआला खसम का जै भावै तै देइ॥ ***पृष्ठ - 1378***

जिसके हृदय में प्यार उत्पन्न हो गया, वही उसकी वेदना जानता है जैसे कि –

लागी होइ सु जानै पीर। राम भगति अणीआले तीर॥ ***पृष्ठ - 327***

दो बातें हैं – एक तो विरह होता है जिसे वैराग कहते हैं, वैराग के बाद दूसरी अवस्था प्यार की हुआ करती है। वैराग भी प्यार में से आता है, लेकिन जो प्यार है, उसमें थोड़ा सा और तरह का रस है सो उसके हृदय में वैराग पैदा हो गया। मनसुख जब सारा सामान वहाँ से बेच कर अन्य वस्तुएं खरीद कर, अपना जहाज भर कर वापिस लौटता है तो उस समय राजा शिवनाभ अकेला सत्संगी था। उसकी आखों के सामने अन्धेरा छा गया कि अब क्या करूं? तरले करता है, ''भाई मनसुख जी! मुझे गुरू नानक के दर्शन करवा दे, मैं राज पाट छोड़ कर जोगी बन जाता हूँ, शरीर को राख लगा लेता हूँ भगवे वस्त्र पहन लेता हूँ, हाथ में कांसा ले लेता हूँ। बता मैं कौन सा वेश धारण करूं जिससे गुरू नानक पातशाह के दर्शन हो जायें? अब मैंने तख्त पर नहीं बैठना।'' भाई मनसुख जी समझाते हैं, ''राजन! नानक का मत गृहस्थ उदासी का है। वरतण वैराग की, मुख भक्ति, निश्चय ज्ञान। मनुष्य गृहस्थ में रहता

है लेकिन Detached (निर्लेप) रहता है, Attachment (मोह) किसी चीज़ से नहीं रखता, उसमें आसक्त नहीं होता, लिप्त नहीं होता। सभी के अन्दर रहता हुआ, बाल बच्चों की देखभाल और परिवार में रहता हुआ, कारखाने चलाता हुआ, बड़े-बड़े व्यापार करता है, पर उनमें Drown (डूबता) नहीं, एक Trustee ट्रस्टी के समान अपना कर्तव्य पूरा करता है। कहने लगे कि गुरू नानक ऐसे नहीं दिखाई देते, जैसे गोरख नाथ ने किया है। भरथरी कितना अच्छा राजा था, गोपी चन्द कितना बढ़िया राजा था। यदि वे अपने राज्य में इस प्रकार रहते तो कितनी प्रजा का भला हो जाता। गुरू नानक साहिब कहते हैं कि समाज को मत छोड़ो, समाज में रहो -

जब लगु दुनीआ रहीऐ नानक किछु सुणीऐ किछु कहीऐ॥ ***पृष्ठ - 661***

जब तक संसार में रहता है, कुछ कहो और कुछ सुनो। गुरू नानक पातशाह घर नहीं छुड़वाते, घर का मोह छुड़वाते हैं, बाल बच्चों का त्याग नहीं करवाते, बाल बच्चों का मोह हटाकर, पिता के कर्तव्यों को पूरा करवाने का कार्य करवाते हैं, कहते हैं इन बाल बच्चों को भी परमेश्वर का ज्ञान दे, इन्हें नेक इन्सान बना, जो अपने निज धर्म, देश धर्म, भाईचारे के नियमों की पालना कर सकें। इस प्रकार गृहस्थ नहीं छुड़ाया करते। दूसरा मेरा गुरू -

घट घट के अंतर की जानत। भले बुरे की पीर पछानत॥

कबयो बाच बेनती चौपई पा. १०

सभी के दिल की बात जानने वाला समरथ गुरू है। वह साधारण गुरू नहीं है क्योंकि दो प्रकार के गुरू हुआ करते हैं। एक तो वे होते हैं जो यहाँ पर परिश्रम करके किसी पदवी को प्राप्त करते हैं। ठीक है - उनको अवस्था प्राप्त हो जाती है -

घर महि घरु देखाइ देइ सो सतिगुरु पुरखु सुजाणु॥ ***पृष्ठ - 1291***

वह सतगुरू हो सकता है। ***'सतिगुर पुरख सुजाणु'*** के लक्षण हुआ करते हैं लेकिन एक गुरू परमेश्वर हुआ करता है, जो उस समय प्रकट होता है, जब रूहानी धुन्ध का पूर्ण रूप से गूढ़ प्रसार होकर, सभी रूहानी मूल्यों, आदर्शों को समाप्त करके केवल रहत (मर्यादाएं) जो मनुष्य ने अपनी सूझबूझ के अनुसार बनाई होती हैं, शरां शरीअत, कर्म काण्ड तक ही जिज्ञासु की उड़ान सीमित हो जाती है और परमेश्वर जो हर जगह घट-घट में व्याप्त है, भूलकर अपनी मनोकल्पित हस्तियों के इर्द गिर्द उलझ कर अधोगति को प्राप्त होता है। भाई मनसुख ने कहा, "राजन! गुरू नानक जी तो गुरू परमेश्वर हैं, अकाल पुरुष का गुरू स्वरूप, संसार के उद्धार के लिए गुरू नानक के स्वरूप में प्रकट हुआ है। जहाँ-जहाँ भी कोई अटका हुआ जिज्ञासु है, वहाँ-वहाँ पर मेरे सतगुरू पहुँच कर उनका उद्धार करते हैं। तू प्रेम सहित उन्हें याद कर। याद के अन्दर शक्ति है, वह निरर्थक नहीं होती। जब तुम किसी को याद करोगे, विचार जितना नरोया होगा, उतना ही उसका प्रभाव अधिक होगा। जितना विखण्डित विचार होगा उतना ही उसका प्रभाव कम होता है। जब कोई प्यार के साथ किसी को याद करता है, बेशक हज़ारों मील की दूरी पर क्यों न बैठा हो, उसे उसी समय खबर पहुँच जाती है। बहुत सी ज्ञानवान माताओं को पता होता है, अनुभव होता है। पुत्र पुत्रियाँ चाहे हज़ारों मील दूर क्यों न बैठे हों, वहीं पर बैठी-बैठी कह देती हैं, मेरा पुत्र बीमार है, मेरा आज मन नहीं लग रहा, मेरी लड़की को कोई तकलीफ हो गई है या उसे कोई कष्ट (trouble) है क्योंकि अन्दर ही अन्दर अदृश्य तार चलती है। सो कहने लगे, "राजन! मेरा गुरू दिल की बात जानता है, तू प्यार कर।"

भाई मनसुख वापिस पंजाब आ जाता है तथा उसके पश्चात राजा शिवनाभ बहुत वैराग करता

है। वैरागी पुरुष की हालत वही जानता है, जिस तन को वैराग के मुख वाले बाणों ने, छेद किये हों। खाना-पीना, बोलना, सोना, पहनना सभी भूल जाता है। एक ही कसक हृदय में लगी रहती है। लगातार बहने वाले आंसू ही इस प्रेम की एक ही एक निशानी हुआ करती हैं। ठण्डी आहें निकलना, दिल के वलवले, कुछ पद जोड़कर गुन-गुनाना आदि निशानियाँ होती हैं। राजा शिवनाभ जब अत्यन्त व्याकुल हो उठता है तो कौवों से आशा लगाये उनसे प्रार्थना करता है, ''हे कौवे! तेरी पहुँच काफी दूर तक अन्य प्रदेशों तक है। मुझ पर कृपा करके प्रार्थना मानकर, लम्बी उड़ान भर कर तथा मेरे प्यारे को मेरी विरह युक्त, बेबसी की हालत जाकर बता। मैं तेरा सदा ऋणी हो जाऊँगा।''

उडहु न कागा कारे। बेगि मिलीजै अपुने राम पिआरे॥ ***पृष्ठ - 338***

कभी आशा करता है जिस प्रकार हुमाऊँ पन्छी के पंखों की प्राप्ति हो जाये क्योंकि इन पंखों का यह गुण होता है कि जिस देश में इस अनल पन्छी का निवास है, यह पंख के साथ लगी वस्तु को, उसी देश में ले जाता है। उसका भोजन कुदरत ने वहीं पर ही पैदा किया होता है। जिस प्रकार पवनहारी महात्मा होते हैं, पवन से ही पेट भरते हैं, इसी प्रकार वह पन्छी भी किसी ऐसे ढंग से रहते हैं, वहीं पर उनके परिवार हैं, वहीं पर ही अण्डे देते हैं, वहीं पर ही बच्चों को पालते हैं। उसका पंख यदि इस मातलोक में आ जाए, उसके साथ ही कोई वस्तु बान्ध दो तो वह उसे उसी स्थान पर ले जाता है, जहाँ से वह पंख आया होता है। इस प्रकार राजा इच्छा करता है, ''हे गुरू नानक! यदि तेरे देश का मुझे कोई पंख मिल जाये और उसमें वह गुण हो, हुमाऊँ पंछी का -

खंभ विकांदड़े जे लहां घिंना सावी तोलि॥ ***पृष्ठ - 1426***

यदि सिर देकर भी मिलता है तो भी मैं ले लूँ क्योंकि प्यार का जो सौदा है, वह सस्ता नहीं हुआ करता। सबसे महंगा और सबसे श्रेष्ठ है, शेर साधन कहा है - इसे सभी महापुरुषों ने और बाकी जो हैं, वे छोटे-छोटे साधन हैं। यह साधन शेर साधन हुआ करता है - सबसे बड़ा -

साचु कहौं सुन लेहु सभै जिन प्रेमु कीओ तिन ही प्रभु पाइओ॥
त्वप्रसादि स्वये पातशाही १०

एक प्रेम ही है जो जीव तत्व को परम तत्व के साथ मिला देता है, अन्य ऐसा कोई भी शक्तिशाली साधन नहीं है जो इस जीव तत्व को उस परम तत्व के साथ मिला दे। इसलिये लालसा करता है, ''हे पातशाह! यदि मुझे ऐसे पंख मिल जाएं तो मैं अधिक से अधिक मूल्य देने को तैयार हूँ। कितनी कीमत होती है? प्यार का कोई मूल्य भी रखा है?'' महाराज कहते हैं, हाँ -

जउ तउ प्रेम खेलण का चाउ। सिरु धरि तली गली मेरी आउ॥ ***पृष्ठ - 1412***

करना चाहता है प्यार का सौदा? हथेली पर शीश रखना पड़ेगा -

इतु मारगि पैरु धरीजै। सिरु दीजै काणि न कीजै॥ ***पृष्ठ - 1412***

शिकवा, उलाहना, प्यार में नहीं हुआ करता -

भावै धीरक भावै धके एक वडाई देइ॥ ***पृष्ठ - 349***

यदि धक्के मार कर भी निकाल दिया, तब भी शीश झुका देता है, ''हे सच्चे पातशाह! तेरी नज़रों में तो हूँ न मैं, तूने धक्के तभी मरवाये हैं। यदि मैं तेरी निगाहों में न होता, तू मुझे धक्के क्यों मरवाता? यदि बड़प्पन देता है और कोई मर्तबा (पद) देता है तो भी उसका शुक्र है। दोनों में ही शुक्र है। सम वृत्ति केवल प्रेमी की ही हो सकती है, अन्य किसी की नहीं हो सकती। जिसके प्रेम में कोई क्लेश है, कोई कामना है, वह प्रेम नहीं हो सकता, वह तो निजी स्वार्थ जैसी ही कोई और वस्तु हुआ करती है।

सो महाराज कहते हैं, *'सिर दीजै काणि न कीजै॥' (पृष्ठ - 1412)* शिकवा न करे, कोई शिकायत न करे। जिस हालत में भी रखता है -

जौ राजु देहि त कवन बडाई। जौ भीख मंगावहि त किआ घटि जाई॥ पृष्ठ - 525

जैसे वह रखना चाहता है, वही प्रवान है, बख्शीश है, रहमत है -

जिउ रामु राखै तिउ रहीऐ रे भाई॥ पृष्ठ - 1164

जहाँ वह रखना चाहता है, वहीं पर ही प्रसन्न रह। वह नहीं कहता, ''मुझे यहाँ रख, मैं तुम्हें प्यार करता हूँ, मुझे यह क्या हो गया। यह तो सौदेबाजी हो गई। प्यार में सौदेबाजी एक बार में ही हो जाती है। शीश अर्पण करके अपना सभी कुछ समर्पण करके, आपा समाप्त कर लिया। गुरू के हवाले करके स्वंय कुछ भी न रहा फिर इसके पश्चात उसकी रज़ा चलती है।

इस प्रकार राजा शिवनाभ कहता है कि मैं सभी कुछ अपने गुरू को दे दूँ, सिर भी दे दूँ और शीश अर्पण करके वे पंख ले लूँ, *'तंनि जड़ांई आपणै लहाँ सु सजणु टोलि॥ पृष्ठ - 1426'* जब तन में इन पंखों को जुड़वा दिया फिर इन पंखों में यह गुण है जहाँ भी तू रहेगा, वहीं पर ही मुझे लेकर तेरे सन्मुख पहुँच जायेंगे, मैं फिर तुझे ढूँढ लूंगा।

इस प्रकार की प्रार्थनाओं की बार-बार हृदय में से वेदना उठती है। समुद्र के किनारे बैठा है। काफी देर हो गई। पत्थर पर बैठा हुआ नीचे की ओर नज़र लगाई हुई है। कभी नेत्र ऊपर उठाकर देखता है कि इधर से जहाज़ आता है, हो सकता है, मेरा प्यारा इधर से आ जाये। पास से ही किश्तियाँ निकल जाती हैं, परन्तु प्यारा, किसी भी नाव में नज़र नहीं आ रहा। ऐसी अवस्था हो गई कि वैराग में आ गया लेकिन कोई सुध नहीं आती, कहीं से भी गुरू नानक पातशाह के बारे में कोई खबर नहीं मिलती। कहते हैं कि यदि कोई उसकी खबर दे दे, कितनी महान पदवी है उसकी यदि कोई बता दे कि उसका मूल्य कितना है? कहते हैं -

तै साहिब की बात जि आखै कहु नानक किआ दीजै॥ पृष्ठ - 558

यदि बात भी सुना दे, खोज पता भी बता दे, तो उसे क्या दे? कहते हैं -

सीसु वढे करि बैसणु दीजै विणु सिर सेव करीजै॥ पृष्ठ - 558

फिर तो शीश का ही मूढ़ा (इन्दुआ) बना दे। जो अपनी 'मैं' है, अभिमान है, उसे उसके चरणों में रख दो, बिछा दो, उसके ऊपर बैठ जाये वह, फिर सेवा करे -

मेरे हरि प्रीतम की कोई बात सुनावै सो भाई सो मेरा बीर॥ पृष्ठ - 862

मेरा प्यारा तो वही है, सगा भाई है क्योंकि मेरे प्रभु की उसने बात सुना दी। इस प्रकार विकल होकर, इस प्रकार के भाव उसके हृदय में से बाहर निकलते हैं। पढ़ो प्यार के साथ -

धारना - किते वी ना ओ, दसां पैंदीआं - 2, 2
तैनूं खोजदी बैरागण हो गई - 2, 2
तैनूं खोजती वैरागन हो गई पिआरिआ दसां पैंदीआं,
किते वी ना ओ दसां पैंदीआं - 2, 2
किते वी ना ओ, दसां पैंदीआं - 2

खोजत खोजत भई बैरागनि प्रभ दरसन कउ हउ फिरत तिसाई॥ पृष्ठ - 204

दर्शन की प्यास लगी हुई है, दर्शनों के बिना चैन नहीं आया करती जैसे कि -

जिउ मछुली बिनु पाणीऐ किउ जीवणु पावै।
बूंद विहूणा चात्रिको किउकरि त्रिपतावै।
नाद कुरंकहि बेधिआ सनमुख उठि धावै।
भवरु लोभी कुसम बासु का मिलि आपु बंधावै।
तिउ संत जना हरि प्रीति है देखि दरसु अघावै॥ पृष्ठ - 708

प्यार वाला ऐसा अनुभव हो सकता है क्योंकि जीना बहुत कठिन हुआ करता है -

सीने खिच जिन्हां ने खाधी ओ कर अराम नहीं बहिंदे।
निहुं वाले नैणां की नींदर ओ दिने रात पए वहिंदे।
इको लगन लगी लई जांदी है टोर अनंत उन्हां दी
वसलों उरे मुकाम न कोई सो चाल पए नित रहिंदे॥ डा. भाई वीर सिंघ जी

सो ऐसी अवस्था प्यार में हो जाया करती है जो संसार की समझ से बाहर हुआ करती है क्योंकि जिसका मन माया ने मनूर कर दिया, उसकी तो हृदय की चेतनता (Sense) ही जाती रही, उसे प्यार का क्या पता? उसे तो माया का ज्ञान है? माया मिल गई, हंसता फिरता है, उछलता फिरता है, जब माया चली जाती है फिर रोता है। ज़रा सा भी विषम परिस्थिति का मुकाबला नहीं कर सकता -

माटी को पुतरा कैसे नचतु है। देखै देखै सुनै बोलै दउरिओ फिरतु है।
जब कछु पावै तब गरबु करतु है। माइआ गई तब रोवनु लगतु है॥ पृष्ठ - 487

पैसा चला गया, रोने लग जाता है, उसके हृदय में प्यार नहीं हुआ करता। जड़ चीज़ों के साथ प्यार होने से हृदय जड़ हो जाया करता है। चेतन वजूद के साथ प्यार करके हृदय चेतन हो जाया करता है, सचेत हो जाता है। सो सतगुरू नानक का प्यार जिसके हृदय में कभी हुआ हो उसे तो अनुभव हो सकता है। जिसके हृदय में कभी प्यार हुआ ही नहीं, जिन्हें माया ने मनूर कर दिया, उसे इस बात का अनुभव नहीं हुआ करता। भाई गुरदास जी कहते हैं कि संसार कहता है कि बहुत ठण्ड पड़ती है, सर्दी का मौसम आ गया, रजाईयों में भी सर्दी नहीं रूकती पर जो विरहणी है, वह कहती है, मेरे प्यार का तो ऐसा हाल है जैसे चिन्गारी निकलती रहती है। विरही को आग जैसा लगता है। सारे तन में पीड़ा की चिन्गारियाँ, विरह के डंक फनियर नाग की तरह लगते हैं। कहते हैं आग में पड़कर पत्थर भी टूट जाते हैं। प्यार से जो बिछुड़ा हुआ होता है, उसका कोई जीवन नहीं हुआ करता, मौत के समान होता है। सो आप इस प्रकार फ़रमान करते हैं -

धारना - जिस तन लग्गीआं सोई जन जाणे,
किसे दी लग्गी कौण जाणदा - 2, 2
मेरे पिआरे, किसे दी लग्गी कौण जाणदा - 2, 2
जिस तन लग्गीआं सोई तन जाणै,.............. - 2

पूरन सरद ससि सकल संसार कहै, मेरे जाने बर बैसंतर की ऊक है।
अगन अगन तन मध्य चिनगारी छाडै, बिरह उसास मानो फंनग की फूक है।
परसत पावक पखान फूट टूट जात, छाती अति बरजन होइ दोइ टूक है।
पीय के सिधारे भारी जीवन मरन भए, जनम लजायो प्रेम नेम चित चूक है॥
कबित सवये भाई गुरदास जी, 573
लागी होइ सु जानै पीर। राम भगति अनीआले तीर॥ पृष्ठ - 327

भाई गुरदास जी, जब गुरू छठे पातशाह गुरू हरगोबिन्द साहिब के समय ऐसा कौतुक हुआ कि आप बनारस काशी में जाकर काफी समय रहे। उस समय आपके हृदय में ऐसा विरह जाग्रत हुआ कि

उसका छोटा सा चित्र अंकित करते हुए आप फ़रमान करते हैं, ***'पूरन सरद ससि'*** चाँद जो है, वह बिल्कुल ठण्डा पड़ा हुआ है। सारी दुनियाँ कहती है, ***'सकल संसार कहै, मेरे जाने बर बैसंतर की ऊक है'*** मुझे तो आग की लम्बू लगता है। प्यारे के बिना मेरे हृदय के अन्दर चैन नहीं है। ***'अगन अगन तन मध्य चिनगारी छाडे, बिरह उसास मानो फंनग की फूक है।'*** कहते हैं जैसे आग चिन्गारियाँ छोड़ती है, इस प्रकार जो विरह के स्वांस लेते हैं, वियोग के सांस लेने हैं, मुझे तो फनियर नाग की फूंक लगती है, ***'परसत पावक पखान फूट टूट जात, छाती अति बरजन होइ दोइ टूक है।'*** यदि पत्थर को भी आग लग जाये, उसे भी तोड़ देती है, चूना बना देती है, उससे उसकी छाती टूट जाती है, टुकड़े-टुकड़े हो जाती है। ***'पीय कै सिधारे भारी जीवन मरन भये'*** और मुझे सतगुरू के दर्शनों के बिना, ऐसा महसूस हो रहा है जैसे कि प्रिय को प्यार करने वाली सत्यवती का पति, परदेश जाकर काफी लम्बे समय के लिए बिछुड़ चुका हो, उसकी अवस्था तो जीते जी भी मुर्दे के समान बे-हिस, बे-हरकत, उदास हो जाया करती है ***'जनम लजायो प्रेम नेम चित चूक है।'***

प्यारे के बिना जीना मुश्किल हो जाता है, ऐसी हालत राजा शिवनाभ की हो चुकी है। साध संगत जी! उधर उस देश का जो राज पण्डित है, उसके मन में चिन्ता उठी कि राजा किसी वहिण (प्रवाह) में पड़ गया, कहीं ऐसा न हो कि किसी अनहुए, अदृश्य धर्म को अंगीकार कर ले; फिर क्या होगा? सारा देश भ्रष्ट हो जायेगा तथा मेरी रोज़ी रोटी को भी खतरा है क्योंकि जो विद्वान होते हैं, उनके मनों में सोच का वेग अधिक होने के कारण अनहोनी बातों को साकार कर लिया करते हैं। परम प्रेम वेदना से छेदित हुए जीव, अपने प्यार मण्डल से बाहर नहीं निकला करते। वैरागियों और विद्वानों में अन्तर हुआ करता है। विद्वान में एक बड़ा भारी रोग होता है जिसे संशय कहते हैं। जिसके मन में संशय है, वह पूरा दुखी हुआ करता है। शंकित मन कभी भी शान्ति में नहीं आ सकता, न ही परम आनन्द लूट सकता है क्योंकि उसके मन में भ्रम साथ-साथ चलता है। भजन करते समय उसने जो अनहद नाद सुना है, उसने कहना है कि यह क्या आ गया, कहाँ से आ गया, किस तरफ से आ रहा है? संशय में पड़ जायेगा। फिर संशय दूर हो जाता है, प्रकाश दिखाई देने लग पड़ा तो कहता है, मुझे भ्रम हो गया, कुछ नहीं है। कोई आनन्द आने लग गया, उसके अन्दर भी गिनना शुरू कर देगा। संशय में पड़े व्यक्ति को दुख हुआ करता है। जो संशय रहित है, वह आत्मिक सुखी हुआ करता है। तीन प्रकार के दुखियों में से संशयवान को पहले नम्बर का दुखी कहा जाता है। तर्क-वितर्क में जो पड़ा रहता है, उसके मन में कभी भी प्यार का ज़ज़बा नहीं उठा करता, वह तो खुश्क हुआ करता है, जो उसकी संगत करेंगे, वे भी खुश्क हो जाते हैं। रसिया की संगत करने वाले रस से भर जाते हैं। तर्कशील की संगत करने वाले तर्कशील हो जाते हैं। कहते हैं, अक्ल की जरूरत नहीं है? महाराज जी कहते हैं अक्ल की जरूरत तुझे दुनियाँ में है, परन्तु वह अक्ल और है जो परमेश्वर से मिलाती है। यह दुनियांदारी की अक्ल वहाँ नहीं पहुँच सकती -

कहि कबीर बुधि हरि लई मेरी बुधि बदली सिधि पाई॥ ***पृष्ठ - 339***

वह बुद्धि और है जहाँ पर पहुँच कर परमेश्वर के दर्शन होते हैं। यह जो बुद्धि है जो गिनती-मिनती करने वाली बुद्धि है, कारण (Cause) और प्रभाव (Effect) का अनुमान लगाती है कि यह इस तरह हो गया, अब यह ऐसा हो जायेगा। आत्म विषैणी बुद्धि को तो स्वंय ही पता है कि ऐसा होना ही होना है। सो दोनों में अन्तर होता है। राजा शिवनाभ का जो राज पण्डित विद्वान था, छह शास्त्रों का ज्ञाता, चारों वेदों का पढ़ा हुआ, स्मृतियाँ उसने पढ़ी हुई थीं, अन्य कई ग्रन्थों का स्वाध्याय किया हुआ था,

हठयोग के सभी साधन मूलाधार चक्र से लेकर सभी चक्रों तथा त्रिकुटी से लेकर दशम द्वार तक की वृत्ति की पहुँच थी उसकी, लेकिन दशम द्वार का एक भेद होता है साध संगत जी! एक तो भक्ति योग से पहुँचता है, एक राज योग से पहुँचता है, एक हठयोग से श्वासों को नियन्त्रण में करके पहुँचता है। श्वांस द्वारा नियन्त्रण करने वाले की प्रकृति में कोई अन्तर नहीं पड़ता, जैसा उसका स्वभाव होता है, वह वैसा ही रहता है क्योंकि किसी जीवित ध्येय के निश्चय के साथ नहीं जी रहा होता केवल Meditaion ध्यान, चिन्तन है। चिन्तन केवल मानसिक अभ्यास, परिश्रम ही है। इसके सामने कोई सर्व समरथ ध्येय नहीं होता। इसलिये आत्मिक मण्डल के अकह रस से हीन है, थोथा है। केवल ध्यान लगाने से सिर दुखने लगता है, रसहीन रहता है। इसलिये रूहानी मार्ग के अनुसार इसे थोथा ही कहा जाता है। प्राकृतिक उपलब्धियाँ रिद्धियाँ-सिद्धियाँ तो प्राप्त हो जाती हैं पर आत्मिक रस से हीन ही रहता है। जीवन के बिना, उसके अन्दर जिणस का लहिरा (नाम की कणी) नहीं है। यह एक थोथा अभ्यास है, इससे शान्ति प्राप्त नहीं हुआ करती। सो यह पण्डित ऐसा ही विद्वान था, बार-बार संशय में पड़ा रहता है और राजा से कहता है कि राजन! आप क्यों पश्चाताप करते हो? वज़ीर से बात की वज़ीर साहिब! यह कैसे भ्रम में पड़ गये हमारे राजा साहिब? वैराग की जरूरत ही नहीं। मैंने और इसने 6 शास्त्र इकट्ठे पढ़े हैं, वेदान्त शास्त्र हमने इकट्ठे पढ़ा है। अब अपने राजा को वह परदेसी अज्ञान का पाठ पढ़ा गया है। जब है ही सभी ब्रह्म, उसके सिवाय और कुछ है ही नहीं, तो फिर कौन बिछुड़ गया है, किसने मिलना है? हम दोनों में 'अहम-ब्रह्मस्मि' के सिद्धान्त को भली भान्ति समझा है - मैं ही ब्रह्म हूँ - एक ही बात समझने से छुटकारा हो जाता है। फिर रोना धोना तो एक अज्ञान की क्रिया है। साध संगत जी! यहाँ पर मैं बेनती करता हूँ कि ज्ञान दो प्रकार का होता है - एक को मिथ्या ज्ञान कहा जाता है। जिस पुरुष को मिथ्या ज्ञान का दर्जा प्राप्त होता है, जीव आत्मा के गले से जन्म मरण का बन्धन नहीं हट सकता। बुद्धि मण्डल का ज्ञान केवल एक जानकारी है जो बुद्धि के स्टोर में अन्य जानकारियों के समान इकट्ठी हो जाती है। उदाहरण के तौर पर मरूस्थल में जाते हुए मुसाफिर को यह पता चल गया कि रेत के नीचे थोड़ी सी जमीन खोदने पर पानी है। उसे प्यास लगी हुई है। अब केवल जान लेना कि पानी है, उसकी प्यास नहीं बुझा सकता तथा वह प्यासा ही मर जाता है।

दूसरा वह प्रेमी होता है जिसे यह पता है कि धरती के नीचे पानी है। वह इस पानी का प्रवाह धरती पर चलाना चाहता है। वह धरती में कुआं खोदता है या मशीनी Bore (बोर) लगाता है। पाईप लगाकर Reffex Value तक ऊपर तक पानी भरकर, मोटर चलाकर पानी बाहर निकाल लेता है फिर यदि उसे पानी की जरूरत पड़े तो उसके मन में कोई तौखला (डर) नहीं होता। मोटर का बटन दबाते ही पानी चल पड़ेगा, वह अब प्यासा नहीं मरता।

इसी प्रकार जिज्ञासु का यह अभ्यास करने से कि मैं आत्मा हूँ, रूप, रंग, रेख, भेष से न्यारा हूँ, अथाह हूँ, अनन्त हूँ, स्वयंमेव हूँ, उसे आत्म प्राप्ति नहीं हो सकती। आत्म साक्षात्कार करने के लिये सीढ़ी के डण्डों पर चढ़ने की जरूरत है। पहले कर्म के मण्डल में से निकलना पड़ता है। सभी अच्छे कर्म गुरू के अर्पण करके ***'करम करत होवे निहकरम'*** की परिपक्व अवस्था प्राप्त करनी पड़ती है। सभी कर्म अपना निज धर्म समझ कर निभाता है, किसी कर्म के फल की कोई कामना नहीं करता। मैं कर्म करता हूँ, सेवा करता हूँ, दान करता हूँ, दुखियों को दवा दारू, जरूरत मन्दों को अन्न दान, वस्त्र तथा मरीजों के लिये हस्पताल स्कूल आदि बनवाता हूँ, ये मानसिक लगाव, कर्म का फल प्रदान करता है और कर्म बन्धन हो जाता है। मैं कीर्तन प्रचार करता हूँ, गुरूद्वारा बनवाता हूँ, इस भावना द्वारा किये गये कर्म

बन्धन रूप हैं, पर निष्काम होकर हुक्म में सुर से सुर मिलाकर जो कर्म इस शरीर से हो रहे हैं, उनके साथ कोई भी लगाव न रखना और ऐसे कर्मों को पूर्ण रूप से समर्पण करना, फलों के बन्धनों से छुटकारा दिला देता है। पर यह निष्काम भावना मानसिक सूझ-बूझ से प्राप्त नहीं होती। गुरू के प्यार में रहकर कर्म करने, गुरू के अर्पण करने से यह प्यार भेंट हुआ करती है। कर्म के फल से मुक्त होकर फिर उपासना, भक्ति में मंज़िल-दर-मंज़िल ऊपर चढ़ते हुए, ज्ञान की मंज़िल प्राप्त होती है, जहाँ पूर्ण रूप से आपा (निजित्व) मिट जाता है। फिर अन्तिम मंज़िल, जब निर्विकल्प समाधि की प्राप्त होकर सत का पूर्ण रूप से प्रकाश हो जाये, तब आत्म साक्षात्कार हो जाया करता है।

उपासना मण्डल में से निकलने के लिये चित्त की पाँच वृत्तियों से पाला पड़ता है। पहली तीन वृत्तियाँ तो दुनियाँ के आम मनुष्यों में है, जो आत्म मार्ग के पांधी तो बनते हैं पर इन तीन गुणों के प्रभावाधीन, उच्च मार्ग की साधना नहीं कर सकते क्योंकि तमोगुण की बहुलता मूढ़ अवस्था में ही खंचित रखती है। उसमें आत्म मार्ग का राही बनने का उत्साह ही पैदा नहीं होता। रजोगुण की मिश्रित हालत रजो तमो दुनियाँ में ही उलझा कर रखती है। रजो-सतो गुणो की मिश्रित अवस्था में कभी दो कदम रूहानी मार्ग पर चलता है पर रजोगुण का धक्का पांच कदम पीछे धकेल देता है। इस प्रकार ऊंची-नीची अवस्था (ज़िक-ज़िक) में आयु बीत जाती है। केवल सतोगुण शत-प्रतिशत अवस्था, भजन बन्दगी का अधिकारी बनाती है। पहले कर्म मण्डलों में से तरक्की करके जिज्ञासु उपासना मण्डल की लम्बी साधना करके, उच्च अवस्था में प्रवेश करता है। कर्म मण्डल, स्थूल शरीर द्वारा ही पार किया जाता है। अब उपासना सूक्ष्म शरीर का कर्म है, जिसे हम मानसिक मण्डल भी कह सकते हैं। श्रद्धापूर्वक सत्संग, नाम जप, महापुरुषों के प्यार में पिरोये हुए इस मण्डल में प्रवेश करते हैं। जिज्ञासु की शारीरिक स्थूल रहतें, मानसिक रहतें जैसे दया, क्षमा, धैर्य, शील, शौच, मीठा बोलना, सत्य विचार, सत्य आचार, सत्य कृत, सत्य सूझ, सत्य लगन, सन्तोष, चोरी न करना, अहिंसा आदि सहायक होते हैं। चित्त की एकाग्रता प्राप्त करना अति आवश्यक है, जिस प्रकार सुई में धागा चित्त को एकाग्र किये बिना नहीं डाला जा सकता। जिस प्रकार गुलजरी में गोली मारने के लिये चित्त की एकाग्रता अति आवश्यक है, इसी प्रकार चित्त की एकाग्रता, भजन, कीर्तन, पाठ विचार के लिये भी आवश्यक है।

इसका पहला डण्डा धारना कहलाता है। जिसकी पूरी अवधि अढाई मिनट की हुआ करती है। इस समय चित्त एकाग्र करने के लिये 12 भाग किये जाते हैं। एक भाग 12 सैकिण्ड का होता है। पहले 12 सैकिन्ड पूरी चेतनता से चित्त एकाग्र किया जाता है, फिर 24 सैकिन्ड, फिर 36 सैकिन्ड इस प्रकार करते-करते, दो मिनट 24 सैकिन्ड की एकाग्रता जब प्राप्त हो जाये, तब एक ध्यान कहलाता है। इस प्रकार ध्यान के आगे 12 दर्ज़े हैं। पहले 2 मिनट 24 सैकिन्ड से बढ़ाकर 4 मिनट 48 सैकिन्ड किया जाता है। इस प्रकार समय बढाते-बढ़ाते आधे घन्टे का समय चित्त एकाग्र करने का अभ्यास किया जाता है। इसके साधन के लिये शबद धुन से चित्त जोड़ना या साकार प्रिय वजूद पर ध्यान लगाना जिसकी युक्तियां अनुभवी महापुरुषों से प्राप्त हो जाती हैं या कीर्तन में पूर्ण रूप से मस्त हो जाना, जब पूरे आधे घंटे की एकाग्रता प्राप्त हो जाये तब ध्यान की सीढ़ी से ऊपर चढ़ने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। अब समाधि मण्डल में प्रवेश मिल गया।

पहले साविकल्प या सम्प्रज्ञात समाधि का पहला मण्डल प्राप्त होता है। इसमें सभी प्रकार के तर्क उत्पन्न होकर, उनका उत्तर अन्दर से ही प्राप्त होकर, सन्तुष्टि प्राप्त होती है। जब यह पूर्णता अफ़ूर, अडोल अवस्था में रहती है, तो इसे कई अभ्यासी वितर्क सहित समाधि भी कहते हैं। दूसरा मण्डल

समाधि का विचार मण्डल है जहाँ पर सत्य विचार पैदा होती है और संशय का समाधान अपने आप ही होता रहता है। इस समाधि का दूसरा भाग अन्तिम पर्दे के मण्डल में प्रवेश कराता है। अब हम अन्नमय, प्राणमय, मनोमय तथा बुद्धि के पर्दे से ऊपर उठकर आनन्द के पर्दे में प्रवेश कर गये। यहाँ पर झूमती हुई रस फुहारें, प्यार की तरंगों का जिज्ञासु आनन्द लूटता है, वाह-वाह के रंग में रंगा जाता है तथा शरीर के रोम-रोम में से वाह-वाह की विद्युत लहर शरीर को, मन, बुद्धि को, नया अनुभव प्राप्त करवाती है परन्तु अभी भी अपने आपका अन्तिम पर्दा भ्रम पैदा करता है कि मैं अभाव के शिखर पर पहुँच चुका हूँ। मैं आत्मा हूँ जो सत्त-चित्त-आनन्द है, पर यह भ्रम है, यह माया का आखरी मण्डल है, जहाँ से उड़ान भर कर आत्म मडल की दहलीज़ पर पहुँचता है। इस समाधि के हिस्से को आनन्द सहित समाधि कहा जाता है। अब दृढ़ विश्वास पूर्ण सतपुरुष की कृपा, अभ्यासी को और ऊँचा ले जाती है। यह अब जीव आत्मा के नखेड़े (अलगपन) वाली समाधि में पहुँचता है। विकल्प की आखिरी सीमा यहाँ पर टूटती है। लगातार अभ्यास से पूर्ण रूप से दृढ़ होता है कि मैं जीव नहीं हूँ, केवल माया की भूल-भुलैया के कारण, आत्मा ही माया में चेतना प्रवेश करवा कर जीव का रूप धारण करती है, जो एक भ्रम ही है, भुलैया है, अज्ञान का करिश्मा है। इस समाधि में पूर्ण रूप से अपनी कल्पित भ्रम वश बनी हुई जीव अवस्था का सर्वनाश होता है तथा आत्मा का साक्षात्कार होकर पाँच भ्रमों (संग भ्रम, भेद भ्रम, कर्तृत्व भ्रम, संसार ब्रह्म भ्रम, संसार सत-भ्रम) का नाश होकर एक ही आत्मा सभी रंगों में प्रसार रूप में प्रसारित हुई प्रतीत होती है। इसे 'मैं हूँ' असम समाधि का नाम दिया जाता है। इससे और आगे उड़ान भर कर चित्त की चेतना, अपना भेद मिला देती है तथा सर्व ब्रह्म, 'सब गोबिन्द है, सब गोबिन्द है' के सत मण्डल में अपना अस्तित्व गवाँ कर, असली चेतनता प्रकट होकर, भ्रम भेद मिट जाते हैं। इसे निर्विकल्प समाधि कहा जाता है। भूल कर भी माया का प्रभाव या अपनी खोई हुई प्रभुता, अस्तित्व की परछाई नहीं पड़ती। इस समाधि की दृढ़ता, सहज समाधि की महान अवस्था का भागीदार बनाती है। इस का रूप अकह है, यह स्वंय ही परमेश्वर अपने जलाल में प्रकट होता है। यहाँ पर यह बताने की जरूरत नहीं कि 'मैं ही ब्रह्म हूँ' मैं तो पूरी तरह से मिट गई, अब तो असली सत्य प्रकट है, जहाँ दूसरा कभी हुआ ही नहीं। इस अवस्था के आनन्द का वर्णन नहीं हो सकता।

राजा शिवनाभ का विद्वान राज पण्डित, माया मण्डल का विद्वान था जो आत्म अनुभव से बिल्कुल कोरा था। उसके संशय, उसके अपने हित तथा संकीर्ण सोच पर आधारित थे।

सो वह पण्डित कहता है वैराग तो अज्ञान की निशानी है। वह ज्ञानवान होकर फिर क्यों रोता है? राजा को इस वैराग से निकालने के लिए कई यत्न किए वज़ीरों से सलाह भी की आखिर रानी के पास चला गया, रानी के साथ भी इस सम्बन्ध में बातचीत हुई। अन्त में कई प्रकार के विचार, मत बनाये। कोई कहता है दवाईयाँ दो। पण्डित ने कहा, इसने किसी की बात सुनी है, वह इसके हृदय में गहरी उतर गई है। अब इसे दवाई खिलाकर, इसकी मानसिक अवस्था को ठीक करो। राजा के दिल पर कोई गहरी चोट लगी इसका nervous system (मानसिक सन्तुलन) डांवाडोल हो गया। संसार को क्या पता जो प्यार के बाणों से घायल हो चुका हो। गुरू नानक पातशाह का मानसिक सन्तुलन सही करने के लिए वैद्य बुलाया गया था। जब वैद्य हरदयाल जी गुरू नानक जी की नब्ज देखते हैं तो आपने वैद्य जी को सुमति देते हुए फ़रमान किया -

वैदु बुलाइआ वैदगी पकड़ि ढंढोले बांह। भोला वैदु न जाणई करक कलेजे माहि॥

पृष्ठ - 1279

गुरू नानक जी ने वैद्य से पूछा, ''हे वैद्य जी! तुझे मालूम नहीं है कि मुझे कौन सा रोग है? तू कितनी बीमारियों के बारे में जानता है?''

वैद्य ने उत्तर दिया, ''महाराज! मैं जितनी बीमारियाँ शास्त्रों में लिखी हैं, उन सभी के बारे में जानता हूँ।

''कितनी हैं?''

''जी इतनी है।''

''उनकी offshoots (शाखाएं) कितनी हैं?''

''जी, महाराज वे तो हजारों में हैं।''

''फिर उनके बारे में भी जानते हो?''

''हाँ, महाराज! वे भी जानता हूँ।''

''फिर इन रोगों में मेरा रोग नहीं है। शास्त्रों वाली बीमारी हमें नहीं है। हमारे हृदय में एक कसक उठ रही है, एक प्यारे आकर्षण की टीस हो रही है – प्यारे के बिछौड़े की। उसका तेरे पास कोई इलाज है? तू तो स्वंय ही बीमार है। तुझे मानसिक रोगों ने घेरा हुआ है और मानसिक बीमारियों से शरीर नीरोग नहीं रह सकता। जब व्यक्ति बीमार होता है, तो दुखी हो जाता है।''

इस प्रकार कई लोगों का ख्याल होता है कि जिसका Mental Break down मानसिक सन्तुलन बिगड़ गया, Nervous System नाड़ी संस्थान पर प्रभाव पड़ गया, उसकी कोई दवाई नहीं है? महाराज कहते हैं, उसकी कोई दवाई नहीं है –

धारना – नहिओं जाणदा वैद दारू प्रेम पीड़ दी – 2, 2
दारू प्रेम पीड़ दी, दारू प्रेम पीड़ दी – 2, 2
नहीओं जाणदा वैदु..................... – 2

अहिनिसि जागै नीद न सोवै। सो जाणै जिसु वेदन होवै॥ पृष्ठ – 993

जिस हृदय में कभी प्यार के अनिआले तीर लगे हों, वह तो जान सकता है, दूसरे को तो इसका अनुभव भी नहीं होता –

प्रेम के कान लगे तन भीतरि वैदु कि जाणै कारी जीउ॥ पृष्ठ – 993

वैद्य को क्या पता, इसकी दवाई क्या होती है? पहचान क्या होती है? कहते हैं निशानियाँ तभी जान सकता है –

आशकारा नव नीशानी ऐ पिसर, आह सरदो, रंग ज़रदो चशमतर।
कमगुफतनो, कम खुरदनों, खुआबश हराम, इंतज़ारी, बेकरारी, दसतसर।

ये चिन्ह हुआ करते हैं कि रंग पीला हो जाता है, नेत्रों से जल बहता रहता है फिर ठण्डी आहें निकलती रहती हैं, कम बोलना, कम खाना, कम सोना। इन्तज़ार में रहते हैं, बेकरारी लगी रहती है, खड़े होकर देखते हैं छत पर चढ़ कर देखते हैं –

मंदरि चरिकै पंथु निहारउ नैन नीरि भरि आइओ॥ पृष्ठ – 624

गुरू पाँचवें पातशाह जी कहते हैं कि हम छत पर चढ़-चढ़ कर देखते हैं कि कोई आ रहा

है अमृतसर से? मेरे सतगुरू ने हमारे पास कोई सन्देशा भेजा है? इन प्रेम भावों के बारे में वैद्य क्या जानें? वह इसकी दवाई नहीं जानता।

अब राजा शिवनाभ के मन में बहुत बेकरारी है कि कब गुरू नानक पातशाह आएं और कब मैं उनके पवित्र दर्शन करूं? इसका तो इलाज यह है कि जब तक गुरू महाराज जी नहीं आते, तब तक इसका कोई इलाज नहीं है। इसलिये राजा के मन में वैराग छाया हुआ है, अति का वैराग है। पण्डित समझाता है, रानी भी कहती है कि महाराज! आपका स्वभाव बहुत मधुर हो गया है। पहले आप गालियाँ भी सुना दिया करते थे, नाराज़ हो जाते, मुझे भी डांट दिया करते थे अब मन्त्रियों को भी नहीं डाँटते; आपका स्वभाव अति कोमल हो गया है, कड़वे वचन तो आपके मुख से निकलने ही बन्द हो गये। बहुत परिवर्तन आ गया है आपके अन्दर, मुझे भी आप बहुत प्यार करने लग गये हो, बच्चों को भी प्यार करने लग गये हो, प्रजा के दुखों को भी आप बड़े ध्यान से सुनते हो। अब आपके मन में बेरूखी नहीं रही। मैं प्यार के रस में से तो आपको नहीं निकालती मेरे भी भाग्य खुल जायें कि मैं भी उस प्यारे को याद करूं, जिस अदृश्य प्यारे के साथ तुम्हारा प्यार हो गया है।

राजा दिन प्रतिदिन कमज़ोर होता चला जा रहा है। उस समय प्यार वाला दिल पुकार कर क्या कहता है? बाबा फरीद जी से पूछो। फरीद का शरीर सूख गया –

फरीदा तनु सुका पिंजरु थीआ तलीआं खूंडहि काग।
अजै सु रबु न बाहुड़िओ देखु बंदे के भाग॥ *पृष्ठ - 1382*

अभी भी नहीं पहुँचा, कौवों को भ्रम पड़ गया मुर्दे का –

कागा करंग ढढोलिआ सगला खाइआ मासु।
ए दुइ नैना मति छुहउ पिर देखन की आस॥ *पृष्ठ - 1382*

फरीदा! छोड़ दे उस प्यार को, कमज़ोर हो गया तू हड्डियों का ढाँचा बन गया। कहते हैं, न प्यारे! यह मेरे वश से बाहर है, मैं नहीं छोड़ सकता –

धारना - मेरी टुट्टे ना प्रेम वाली डोरी,
जोबन भावें जावे चलिआ - 2, 2
पिआरे जी, जोबन भावें जावे चलिआ - 2, 2
मेरी टुट्टे ना प्रेम वाली डोरी,................ - 2

जोबन जांदे ना डरां जे सह प्रीति न जाइ।
फरीदा कितीं जोबन प्रीति बिनु सुकि गए कुमलाइ॥ *पृष्ठ - 1379*

कितने जीवन सूख जाते हैं, प्रीत के बिना मुर्झा जाते हैं।

सो कोई बात नहीं मेरा शरीर नहीं बचता तो न बचे पर मेरे प्यार की डोर न टूटे। इस प्रकार राजा की भी ऐसी ही अवस्था हो चुकी है। दिन रात एक ही आवाज़ उसके मुख से निकलती है – धन्न गुरू नानक, धन्न गुरू नानक, धन्न गुरू नानक, धन्न गुरू नानक। हैरान हो जाता है। गुरू नानक का नाम तो सुना, आज तक दर्शन नहीं किये, कहीं से भी कोई अता-पता नहीं चल रहा; एक वनजारा आया, व्यापारी आया, इसके अन्दर कोई चिन्गारी सुलगा गया। ज्ञान-ध्यान सभी कुछ भूल गया। छह शास्त्रों को जानने वाला, 27 स्मृतियों, चार वेदों का ज्ञाता, हठयोग के सारे साधन कर लेने वाला खेचरी, भूचरी, चाचरी, कपाली आदि साधन सम्पन्न, सभी मन्दिरों में जाने वाला राजा; इसे हो क्या गया? बहुत यत्न किए जाते हैं लेकिन कोई भी सफल सिद्ध नहीं होता। इस तरह जनता में इस अदृश्य प्यार की चर्चा

शुरू हो गई। राजा मौन होकर समुद्र के किनारे बैठा हुआ है। एक ही आवाज़ आती है जो अंगरक्षक थे, उन्होंने बताया कि 'नानक नानक' कहे जा रहे हैं। हे गुरू नानक, हे गुरू नानक आवाज़ें लगा-लगा कर बोलते रहते हैं, कभी-कभी रोने भी लग जाते हैं। कभी आशा होने लग जाती है तो मुस्करा पड़ते हैं। सो ऐसे प्रेमियों की हालत इस प्रकार की हो जाया करती है -

धारना - रंग हसदे ते रंग रोंदे, रंग हसदे - 2, 2
चुप भी कर जांदे, साधू, साधू, - 2
चुप भी कर जांदे, रंग हसदे - 2

रंगि हसहि रंगि रोवहि चुप भी करि जाहि।
परवाह नाही किसै केरी बाझु सचे नाह॥ *पृष्ठ - 473*

ऐसी हालत है कि कभी समुद्र के किनारे घंटों बैठे नेत्रों से प्रेमाश्रु गिराते रहते हैं, कभी उम्मीद हो जाती है कि जब मेरे सतगुरू मुझे मिलेगें कितनी खुशी होगी? उस खुशी को अनुभव करके चेहरे पर प्रसन्नता छा जाती है। कभी चुप करके बैठ जाते हैं। बुलाने पर भी नहीं बोलते। ऐसी अवस्था जिसे मस्ताना अवस्था कहते हैं 'रंग हसदि' प्यार के अन्दर 'रंग' प्यार को कहते हैं। ***'रंगि हसहि रंगि रोवहि चुप भी करि जाहि। परवाह नाही किसै केरी बाझु सचे नाह॥' (पृष्ठ - 473)*** अपने गुरू के सिवाय किसी की परवाह नहीं। सो सारी दुनियाँ में भी यह बात फैल गई, सारे टापू में इस बात की चर्चा होने लग गई। बात उड़ती-उड़ती बाहर भी पहुँच गई। बहुत से पाखण्डियों को भी पता चल गया कि उसने 'नानक' को देखा तो है नहीं, हम ही पहले, उसके पास 'नानक' बनकर चले जाते हैं। इस प्रकार बहुत से पाखण्डी साधु का रूप बनाकर वहाँ जाकर बैठ गये। सन्देशा भेज दिया कि राजा से कह दो कि जिस साधु का तू नाम लेता रहता है, वह आ गया है, शहर के बाहर बैठा है, आकर ले जा। राजा के पास खबर पहुँची। उसके हृदय में कितना चाव पैदा हुआ होगा। कितनी खुशी उसे हुई होगी? कोई मरते हुए व्यक्ति को जहाँ एक बूँद भी पानी की न मिलती हो, उसे एक गिलास पानी से भरा हुआ मिल जाये, तब उसे कितनी खुशी होती है। यदि करोड़ों मोहरें ऐसी प्राप्त हो जाएं उसकी खुशी नहीं हुआ करती। एक गिलास पानी का मिल जाये तो उसकी खुशी बहुत अधिक हुआ करती है। सो यह खबर सुनते ही राजा नंगे पाँव दौड़ पड़ा, जब सुना कि मेरे सतगुरू नानक जी आ गये। जाकर देखा कि वह बैठे हैं। जाते ही चरणों में गिर पड़ा रोना शुरू कर दिया, ''पातशाह! इतनी देर कर दी।'' लेकिन अन्दर से आवाज़ आती है, ''रे मना! वह नानक जिसके बारे में मनसुख जी ने बताया था कि गुरू नानक को तो देखते ही एक दम तेरे रोम-रोम से नाम की धुन निकलनी शुरू हो जायेगी, यह निशानी है उनकी। जब गुरू नानक की दृष्टि तुझ पर पड़ गई, तन मन शीतल हो जायेगा, कोई संशय, कोई सन्देश, तेरे अन्दर नहीं रहेगा। उनके दर्शन करके महान रस आएगा, चित्त प्रसन्न हो जायेगा परन्तु इसके दर्शन करके इस तरह का कोई चाव हृदय में नहीं उठ रहा। रस ही नहीं आ रहा। यह तो मुझे कोई निर्जीव चेहरा प्रतीत होता है खड़ा हुआ, हाथ जोड़े कहने लगा, ''महाराज! आप आ गये? बहुत देर कर दी।'' कहता है कि हाँ राजन! तेरा प्यार देखकर हम आ गये।

राजा ने कहा, चलो फिर आप महलों में ठहरो चल कर। वह बोला, हम अतीत पुरुष हैं, यहीं पर ही रहेंगे।

राजा का माथा ठनका और सोचने लगा कि मैंने तो सुना था कि गुरू नानक गृहस्थी हैं, गृहस्थ में रहता है। संसार का उद्धार करने के लिये थोड़ी देर के लिये गृहस्थ से पीठ मोड़ ली है पर यह तो

अपने आपको अतीत कहता है। कहीं यह कच्चा न हो? राजा वहाँ से चला आया, रानी के पास आया जिसका नाम चन्द्रकला था। रानी ने देखा कि राजा उदास है, गुरू नानक से मिलकर आए हो, जिसे 'नानक नानक' कहते कहते सांस आता हो, यह क्या बात हो गई? वह पूछने लगी कि महाराज! क्या बात है, आप उदास क्यों दिखाई दे रहे हो? राजा ने जवाब दिया कि चन्द्रकला! मुझे कुछ ऐसा लगता है कि जैसे मेरे साथ धोखा हुआ हो। मेरे प्यार के साथ मज़ाक किया जा रहा है। मुझे Exploit किया जा रहा है और मेरा दिल अन्दर से गवाही दे रहा है कि वह गुरू नानक नहीं है। मैंने पहले कभी उनके दर्शन किए नहीं, यदि कोई उनका चित्र होता तो मैं चित्र से मिलाकर देख लेता और पता चल जाता कि यह मेरा सतगुरू नहीं है कोई और है। पर मेरा मन अन्दर से न माना। वह बोली कि यह तो मामूली सी बात है, आप मुझ पर छोड़ दो मैं अभी पता कर देती हूँ कि वह असली है या नकली।

उस समय जो दासियाँ थी, उन्हें रानी ने कहा जाओ, उस साधु का पता लगाओ कि वह कितने पानी में है? मन्द चीज़े ले जाओ, शराब मांस आदि। तुम वहीं पर ही रहना। वहाँ पर तुमने देखना है कि वह अडिग रहता है या गिर पड़ता है। वे दासियाँ रानी के कहने के अनुसार वहाँ पर गईं। वह साधु पहली चोट ही सहन न कर सका, उसी समय गिर गया। मोहरें ले लीं और मदिरा पी ली, मांस भक्षण कर लिया और श्लोक सुना दिया कि जो आत्मा है, वह निसंग है 'अहम ब्रह्मस्मि, निसंग भोग लक्ष्मी' और हमें कोई दोष नहीं लगता, हम निसंग हैं, यह तो शरीर की क्रिया है। शरीर तत्वों के अधीन है। यह भी पाप पुण्य से रहित है।

दासियों ने सारी बात आकर बता दी। राजा को बहुत पश्चाताप हुआ। कहने लगे कि अरे मन! यह मस्तक तो गुरू नानक के चरणों में पवित्र रखते हुए झुकाना था, मैंने तो इसे जूठा (अपवित्र) कर दिया, एक पामर के चरणों में इसे झुका कर। हृदय की वेदना उसे भेंट करके मैंने कितनी बड़ी गलती की। उस समय अपने मन की वेदना को इस प्रकार प्रकट करता है –

धारना – मैनूं पै गिआ भुलेखा हंस दा,
बगल समाधी वेख के – 2
पिआरिओ, बगल समाधी वेख के – 2, 2
मैनूं पै गिआ भुलेखा हंस दा........-2

मै जानिआ वडहंसु है ता मै कीआ संगु।
जे जाणा बगु बपुड़ा त जनमि न देदी अंगु॥ ***पृष्ठ – 585***

कहने लगा, रानी साहिबा! चन्द्रकला। बहुत बड़ा भ्रम हो गया मुझे, मैं तो यह समझता था कि वह बहुत बड़ा हंस है, परम हंस है, ब्रह्मज्ञानी है, गुरू है। यदि मुझे पता होता कि वह भेषी बना हुआ फिरता है तो मैं जाकर शीश न झुकाता ***'जे जाणा बगु बपुड़ा त जनमि न देदी अंगु' (पृष्ठ – 585)*** फिर तो मैं उसके पास भी न फटकता, दर्शन न करता क्योंकि दोनों में अन्तर हुआ करता है। शक्ल दोनों की एक जैसी हुआ करती हैं, आँखे दोनों ही बन्द कर सकते हैं, ज्ञान दोनों दे सकते हैं। कपड़े तो जो असली हैं, वह शायद न पहने पर न कोई भेष बनाए पर नकली जो है उसके पास भेष का बहुत बड़ा जूड़ (बनावटीपन) हुआ करता है। बहुत जोर हुआ करता है चेले चन्डारी उनकी बातें बनाते हैं, साखियाँ सुनाते हैं। बहुत Exploitation (शोषण) होता है। असली को इन बातों की जरूरत नहीं हुआ करती। असली हीरे ने तो कभी नहीं बताया, नकली हीरे की उपमा की जायेगी। असली तो असली है ही। सो

इन दोनों में अन्तर हुआ करता है। महाराज फ़रमान करते हैं कि जो पाखण्डी होता है वह अनुभवहीन अन्धा होता है। केवल दिखावे के तौर पर वैराग भरी आवाज़े सुनाता है –

अंदरहु अंना बाहरहु अंना कूड़ी कूड़ी गावै।
देही धोवै चक्र बणाए माइआ नो बहु धावै।
अंदरि मैलु न उतरै हउमै फिरि फिरि आवै जावै।
नींद विआपिआ कामि संतापिआ मुखहु हरि हरि कहावै।
बैसनो नामु करम हउ जुगता तुह कुटे किआ फलु पावै।
हंसा विचि बैठा बगु न बणई नित बैठा मछी नो तार लावै।
जा हंस सभा वीचारु करि देखनि ता बगा नालि जोड़ु कदे न आवै।
हंसा हीरा मोती चुगणा बगु डडा भालण जावै।
उडरिआ वेचारा बगुला मतु होवा मंञु लखावै।
जितु को लाइआ तित ही लागा किसु दोसु दिचै जा हरि एवै भावै। *पृष्ठ - 960*

महाराज कहते हैं कि बगुला हंसों में आकर बैठ जाये वह हंस तो नहीं बन सकता भाई! क्यों नहीं बनता? कोई सत्संग में आकर बैठ गया, आखें बन्द कर लीं तो वह सज्जन तो नहीं बन जाता। पता नहीं उसके मन में क्या विचार पैदा हो रही है। कौन सी दुर्भावना उसके हृदय में उठ रही है। बड़ी उलट-पुलट भावनाएं उठ रही हैं। सत्संगी तो न बना?

एक बार गुरू तीसरे पातशाह महाराज संगत में बैठे इसी प्रकार व्याख्या कर रहे हैं। आस-पास संगत बहुत बैठी है। वचन कर रहे थे, आपके हाथ में एक पवित्र मोतियों का सिमरना था, एक साधु आया, दोनों ने आपस में एक दूसरे को मस्तक नवांया। गुरू महाराज जी ने बड़ा आदर मान किया तथा अपने पास ही बराबर में बिठा लिया। पिछली ओर बैठ गया और महाराज जी वचन कर रहे हैं। ऐसा करते-करते महाराज जी ने घुटने के नीचे, सुच्चे (पवित्र) मोतियों का सिमरना रख दिया। वह साधु आखें बन्द किये बैठा है, नेत्रों की पुतली में से देखा कि सिमरना रखा हुआ है, है बहुत कीमती, ऐसा तो पुनः कभी नहीं मिलेगा, मुझ पर सन्देह भी किसी ने नहीं करना। आँख बचाकर हाथ बढ़ाया और सिमरना उठाकर कुर्ते में डाल लिया। सिमरना रखा हुआ था, किसी गुरसिख के हाथ तो नहीं लगा। कहीं हम से गिर गया हो? गुरसिखों ने कहा कि पातशाह! ढूँढ लेते हैं। जहाँ से आप आये थे, वहीं से ही ढूंढना शुरू कर दिया, सभी जगह देख लिया। महाराज कहने लगे कि एक दूसरे के पास देख लो सभी। सभी के पास देखा गुरसिख कहने लगे कि महाराज जी! ये सन्त जी बैठे हैं, यदि आज्ञा हो तो इनके आस-पास भी देख लें, यदि आप अपमान न समझें? सन्त जी का चेहरा एक दम फीका पड़ गया। गुरू महाराज ने कहा कोई बात नहीं भाई! हमारे आस-पास भी देख लो और इन्हें भी देख लो जब उस सन्त की तलाशी ली तो सिमरना छिपा कर बैठा हुआ था जेब में। इसलिये कहते हैं, सन्त सभा में आकर बैठ गया –

हंसा विचि बैठा बगु न बणई.........॥ *पृष्ठ - 960*

बगुला जो है, वह हंस नहीं बन जाया करता। क्यों –

.................नित बैठा मछी नो तार लावै॥ *पृष्ठ - 960*

शिकार ढूँढता रहता है कि कोई यहाँ मिल जायेगा। वृत्ति एकाग्र नहीं हुआ करती। कभी इधर देखेगा, कभी उधर देखेगा –

जा हंस सभा वीचारु करि देखनि ता बगा नालि जोड़ु कदे न आवै॥ ***पृष्ठ - 960***

सो उनका जोड़ (मेल) नहीं आता क्योंकि दोनों में अन्तर होता है -

धारना - हंस चोग मोतीआं दा चुगदे,
डड्डां सारे खाण बगुले - 2, 2
मेरे प्यारे, डड्डां सारे खाण बगुले - 2, 2
हंस चोग मोतीआं दा चुगदे,..............-2

हंसा हीरा मोती चुगणा बगु डडा भालणु जावै॥ ***पृष्ठ - 960***

सत्संग में आकर बैठ भी गया, वस्त्र भी पहन लिये, चोला भी पहन लिया, कपड़े भी रंगवा लिये, किसी ने काला, किसी ने हरा, किसी ने भगवा लेकिन आन्तरिक पक्ष की ओर से महाराज जी कहते हैं -

पूंअर ताप गेरी के बसत्रा। अपदा का मारिआ ग्रिह ते नसता।
देसु छोडि परदेसहि धाइआ। पंच चंडाल नाले लै लाइआ॥ ***पृष्ठ - 1348***

जिन्हें छोड़ना था उन्हें तो साथ लिये फिरता है प्यारे! हंस तो न बना, तू भगवे रंगे हुए कपड़े पहनने से? ऐसे नहीं बना करता जो हंस वृत्ति वाले हैं वे तत्व विवेचन करते हैं, संसार को मिथ्या समझते हैं, देह को मिथ्या समझते हैं, आत्मा को सत्य जानते हैं। जो बगुला वृत्ति वाले हैं, उनके अन्दर वासनाएं काम करती हैं। मन्द वासनाएं काम करती हैं। उनका देह अधिआस परिपक्व हो गया होता है। कपड़े पहनने से कोई अन्तर नहीं पड़ता। यदि अन्दर से बदल जाये, तब अन्तर पड़ता है -

हंसा हीरा मोती चुगणा बगु डडा भालण जावै।
उडरिआ वेचारा बगुला मतु होवै मंञु लखावै॥ ***पृष्ठ - 960***

अपने आपको दिखा देता है, जब मछली पास आती है, आँखें बन्द करके पलकों में से देखता रहता है, हिलता जुलता नहीं है, चोंच अपने वश में की होती है, ऐसे बैठा होता है जैसे अफ़ुर समाधि लगी हो। जब मछली उसकी छलांग की दूरी की सीमा में आ जाती है, चोंच तीखी होती है, एकदम पकड़ लेता है।

सो रानी कहने लगी कि महाराज! इसका इन्तज़ाम अब आप हम पर छोड़ दो क्योंकि जब कसौटी लगाई जाती है तो असली ही खरा उतरता है। आप कोई चिन्ता मत करो। सच झूठ का निर्णय करने के लिये हम कसौटियाँ लगायेगीं। दासियाँ रख लीं, सुन्दर-सुन्दर वेश्याएं रख लीं। नानक का नाम लेकर साधु आएंगे, उनकी परीक्षा लेनी है, कसौटी लगानी है। जोगी आये बोले, हम नानक हैं लेकिन सभी फिसल गये, टिके ही नहीं। अन्य मतों के भी आए, पता नहीं कितने आए? राजा को कहा जाता है कि उन्हें सज़ा दें क्योंकि वे भेषी हैं। राजा ने कहा, नहीं, सजा मत दो। जब कसौटी पर ये खरे नहीं उतरेंगे तो अपने आप ही इन्हें सजा मिल गई। इस प्रकार बहुत से भेषी साधु आने शुरू हो गये। यह भी पता चल गया कि धोखा देने वाले का भी पता चल जाता है। उन्हें सभी कुछ पता है। असली गुरू नानक नहीं आया क्योंकि कसौटी लगाई जाती है -

कबीर कसउटी राम की झूठा टिकै न कोइ।
राम कसउटी सो सहै जो मरजीवा होइ॥ ***पृष्ठ - 948***

झूठे ने तो टिकना नहीं। ***'राम कसउटी सो सहै जो मरजीवा होइ' (पृष्ठ - 948)*** आखिर इधर,

गुरू नानक भाई बाला जी से कहने लगे, ''बाला जी! अब हमें तलवन्डी में आये हुए काफी समय हो गया है। हृदय में कोई आकर्षण पैदा कर रहा है। चलो, अब दुनियाँ का हाल चाल देखें। किसी से वार्तालाप करेंगे, वचन सुनेंगे, दर्शन देगें, दर्शन करेंगे, चलो चलें।''

गुरू नानक महाराज चलते-चलते कई स्थानों पर गये। रास्ते की अनेक साखियाँ आती हैं जैसे समुद्र के ऊपर से आप चले जा रहे हैं, कहीं मगरमच्छ के ऊपर बैठ कर जा रहे हैं। अन्त में महाराज जी, इस राजा के बाग में आ पहुँचे तथा उस समय वह बाग सूखा पड़ा था, उसके द्वार बन्द थे। कोई भी वहाँ नहीं आया करता था क्योंकि सभी वृक्ष, पेड़, पौधे सूख गये थे, चारों ओर चार दीवारी थी। भाई बाला जी और मरदाना ने कहा, पातशाह! कहाँ पर आसन लगायें? पातशाह बोले, इसी बाग में ही आसन लगा लेते हैं। हाँ भाई! देखो, कहीं खुली जगह है। एक छोटा सा गेट था, उसके अन्दर से महाराज जी निकले, जाकर बाग में बैठ गये। बाग में बैठने की ही देर थी, उस सूखे हुए बाग में रस बहार आ गई, सभी वृक्षों में रस भर आया, नईं-नईं कोपलें फूट पड़ीं, टहनियाँ उग आईं। उस बाग का माली जो बेरोज़गार हुआ बैठा था, वह देखने के लिये आया, यह क्या हो गया? मेरा बाग तो हरा-भरा होता जा रहा है, टहनियाँ उग आई हैं।

साध संगत जी! यह कोई मनोकल्पित घटना नहीं है। बेअन्त महात्मा हुए हैं। बाबा फरीद जी जब उन्हें आकाशबाणी हुई कि -

फरीदा जंगलु जंगलु किआ भवहि वणि कंडा मोड़ेहि।
वसी रबु हिआलीऐ जंगलु किआ ढूढेहि॥ ***पृष्ठ - 1378***

मुरशद के पास जा, मुरशद-ए-कामल की शरण में जा। मुरशद के बिना तुझे परमेश्वर के दीदार नहीं होंगे क्योंकि तू अन्य नेत्रों से दर्शन करना चाहता है। वे नेत्र और हुआ करते हैं, जिनसे परमात्मा के दर्शन हुआ करते हैं। उस घर की चाबी गुरू के पास है -

जिस का ग्रिहु तिनि दीआ ताला कुंजी गुर सउपाई।
अनिक उपाव करे नही पावै बिनु सतिगुर सरणाई॥ ***पृष्ठ - 205***

ऐसे पूर्ण गुरू की शरण के लिए तरले किये कि मुझे कोई समरथ गुरू मिल जाये। कहते हैं, जा! अजमेर शरीफ के अन्दर बख्त्यार काकी इस समय पूर्ण महात्मा हैं। उन्हें नाम देने का अधिकार है, उनसे जाकर नाम ले ले। तपस्या की, 24 साल तक तप किया। तप का फल यह हुआ करता है कि करामातें (करिश्में) दिखाने की शक्ति तो आ जाती है, लेकिन चित्त नहीं बदला करता। शक्तियाँ प्राप्त कर लीं, वचन सिद्ध होने लग गये, अर्न्तात्मा आ गई। अपने मुरशद के पास चले गये। आपकी उम्र काफी थी लेकिन एक बच्चे के समान दिखाई देते हैं। नेत्रों वालों को वे दिखाई देते थे, पर बाबा फरीद को वे बालक दिखाई देते हैं। बच्चों के साथ खेल रहे हैं। वहाँ पर किसी ने पूछा कि भाई, तूने किससे मिलना है? तब फरीद जी बोले, मैंने बख्त्यार काकी साहिब मुरश़द को मिलना है। वह सामने देखो, वह जो गेंद ऊपर को फैंक रहे हैं, वे हैं।

''वह तो बालक हैं।''

''नहीं, बालक नहीं, देख तो सही, सफेद दाढ़ी है।''

कहने लगे, अच्छा, अच्छा। अपने आप पता चल गया। उन्होंने गेंद ऊपर को फैंकी। बाबा फरीद ने देखा और वह वहीं पर ही रूक गई। उन्होंने देखा, कौन आ गया, जो गेंद को नीचे नहीं आने

दे रहा। मुरशद ने देख लिया कि सामने दरवेश खड़ा है कोई अभिमानी पुरुष आ गया। अन्तर्ात्मा से बात को जानने का यत्न किया। निगाह दौड़ाई, उसी समय गेंद नीचे आ गई। वह भी पास आ गया।

कहने लगे, ''कैसे पधारे हैं आप?''

''मैंने आपको मुरशद धारण करना है।''

''मेरा मुरशद बनने आये हो या मुझे मुरशद बनाने आए हो? इस प्रकार करामातें दिखाकर मुरशद के पास नहीं जाया करते। यदि मुरशद के पास जाना है तो कुछ रहतों (नियमों) को अपनाना पड़ता है। रहत धारण करके आओगे, तब कुछ बात बन सकेगी।''

''जी, क्या रहत है?'' इस प्रकार फ़रमान है –

पहिला मरणु कबूलि जीवण की छडि आस।
होहु सभना की रेणुका तउ आउ हमारै पासि॥ पृष्ठ - 1102

कहने लगे, यह जो तेरी हंगता और ममता है, अन्दर मैं है (I, am), मैं बहुत महान दरवेश, मैंने 24 साल तपस्या की, मैंने चिड़ियाँ मार दीं, जिन्दा कर दीं। 'मैं' को खत्म कर ले प्यारे! यदि गुरू धारण करना है। तथा दूसरी रहत यह है कि सबसे पिछली पंक्ति में खड़ा हो जा –

कबीर सभ ते हम बुरे हम तजि भलो सभु कोइ।
जिनि ऐसा करि बूझिआ मीतु हमारा सोइ॥ पृष्ठ - 1364

इस पंक्ति पर डट जा। इस पंक्ति पर खड़ा होकर *'होहु सभना की रेणुका तउ आउ हमारै पासि॥' (पृष्ठ - 1102)* तू तो हमें शक्तियाँ दिखाने आया है। वापिस भेज दिया, कहने लगे, ऐसे नहीं आया करते, मुरीद बनकर आना चाहिए।

बाबा फरीद जब दूसरी बार आये। बख्त्यार काकी जी एक सूखे हुए वृक्ष के नीचे बैठे थे। सुबह से बैठे थे, प्रभु प्रेम में पता ही नहीं रहा, धूप निकल आई, धीरे-धीरे वहाँ भी धूप आ गई। वृक्ष ठूँठ खड़ा था। बाबा फरीद जब आए, देख लिया कि आप बैठे हैं, उस समय मन में सेवा भावना जाग्रत हुई। लेकिन अन्दर 'मैं' थी। भावना क्या जाग्रत हुई कि मुरशद धूप में बैठे हैं। निगाह कर दी, उसी समय सारा वृक्ष टहनियों, पत्तियों से लद गया, नई-नई टहनियाँ निकल आई, वृक्ष लहलहाने लग पड़ा। बख्त्यार काकी ने देखा कि ठण्ड लगने लगी, उस समय नेत्र खोले। ऊपर को निगाह की, सभी टहनियाँ सूख गई, वृक्ष पुनः ठूँठ रह गया।

इसी प्रकार गुरू नानक पातशाह बाग में आकर बैठ गये। गुरू नानक देव जी के बैठते ही, बाग में प्रवेश करते ही, सभी वृक्षों में नई बहार आ गई, नये पत्ते निकल आए, टहनियाँ निकल आई तथा हिलोरे लेने शुरू कर दिये। इस तरह से बोलें सभी –

धारना - सुक्के बाग ने हुलारे मारे,
जदों सतिगुर आण बैठ गए - 2, 2
मेरे पिआरे, जदों सतिगुर आण बैठ गए - 2, 2
सुक्के बाग ने हुलारे मारे........................ - 2

सूके हरे कीए खिन माहे॥ पृष्ठ - 191

सा धरती भई हरीआवली जिथै मेरा सतिगुरु बैठा आइ।
से जंत भए हरीआवले जिनी मेरा सतिगुरु देखिआ जाइ॥ पृष्ठ - 310

माली आया, दर्शन किए, दंग रह गया देख कर कि पहले भी साधु तो बहुत देखे हैं पर यह जो दर्शन करने पर जो रस आज मुझे प्राप्त हुआ है, यह जो शान्ति मुझे मिली है, यह मैंने पहले कभी नहीं देखी। विचार करने लग गया कि कहीं यह इस बात की हरियाली के कारण शान्ति तो नहीं है, मेरा बाग हरा-भरा हो गया, मुझे फिर अच्छी नौकरी मिल जायेगी। कहने लगा, मेरे अन्दर कुछ हो रहा है, मेरे अन्दर कोई धुन उठ रही है, मेरे अन्दर कोई अपने आप ही अक्षर उठ रहे हैं। समझने की कोशिश की। हैरान हो गया कि 'वाहिगुरू वाहिगुरू' ही सुनाई दे रहा है। समझ गया कि यह तो कोई पूर्ण महापुरुष हैं। जाकर राजा को खबर कर दी, ''राजन! सूखे बाग में कोई महात्मा आकर बैठ गये, तीन बैठे हैं। उनके चरण डालने की देर थी कि सारा बाग लहलहा उठा। नई-नई कोपलें निकल आई, टहनियाँ निकल आईं, घनी छाया हो गई है, पन्छियों ने आकर चहचहाट शुरू कर दी। हर प्रकार के पन्छी वहाँ आने लगे हैं, खुशियाँ ही खुशियाँ फैल गई हैं और मुझे ऐसा लगता है कि जिसकी आप प्रतीक्षा करते हो, वही आ गये। राजा ने सुना। माली कहने लगा, महाराज! एक बात मैं और बताऊं - जो दो साथी हैं, वे तो बाहर जाकर भोजन आदि कर आते हैं पर एक ऐसे हैं, जब से वह बैठे हैं, न तो नेत्र खोलते हैं, न ही वहाँ से उठे हैं, न ही उनके शरीर पर कोई असर हुआ है। तीन दिनों से निराहार बैठे हैं। चेहरा दगदग करके चमक रहा है। ऐसे लगता है जैसे चेहरे पर कोई प्रकाश का गोल चक्र जिसका इतना तेज़ प्रकाश है, जो देखा नहीं जाता, आखें चुंधियाने लगती हैं जब उनके मस्तक की ओर देखते हैं। अन्दर से प्यार की फुहारें चल रही हैं।

राजा के मन में बहुत खुशी हुई, हृदय उमंग से भर उठा, हलचल मच गई, रोमांच होने लग गया, रूहानी झुनझुनाहट होने लग गई, लहरें उठनें लगीं लेकिन सहन करके नियन्त्रण में कर लीं। कहने लगा कि शायद कोई करामाती हो, परख कर लेना ठीक है। फिर अन्दर से आवाज़ आई कि यदि सतगुरू नानक हुए तो फिर तो मेरे से अवज्ञा हो जाएगी। मज़बूर हो गया कि यह मस्तक मैं गुरू नानक के चरणों के सिवाय और किसी को नहीं झुकाऊँगा नेत्रों में जल भर आया कि पातशाह! बहुत भूल हुई मुझ से, एक पाखण्डी के चरणों पर शीश झुका दिया। मेरा मस्तक पवित्र (शुद्ध) नहीं रहा। क्षमा करना, तेरे लिये पवित्र मस्तक रखने के लिए, मैं किसी भी साधु के सामने शीश न झुकाऊँ, मैंने परीक्षाएं लेनी शुरू कर दीं। मेरी गलती माफ कर देना। राजा शिवनाभ जी का वज़ीर परसराम था जो बहुत सियाना था उससे पूछा वज़ीर कहने लगा कि महाराज! शहर के बहुत से लोग वहाँ गये हैं, देख कर आए हैं और ऐसी चर्चा चल रही है कि बाग में कोई पूर्ण महापुरुष इस टापू पर आ गये हैं। जो भी जाता है, पूछने के लिये जाता है पर बिना पूछे ही सारी बातें पूरी हो जाती हैं, बोला ही नहीं जाता, अन्दर रस से भर जाता है, चिन्ता खत्म हो जाती है। दुखी दिल से, रोते हुए जाते हैं, खाली दिल से जाते हैं पर भरे हुए, हंसते हुए लौट आते हैं। जैसे बाग हरा-भरा हो गया है, इसी प्रकार लोग कहते हैं कि उनके दिलों में भी हरियावल आ गई है। ***'से जंत भए हरिआवले जिनी मेरा सतिगुरु देखिआ जाइ।' (पृष्ठ - 310)*** यदि आज्ञा हो तो आप पधारें, बग्घी आदि का प्रबन्ध कर दें। राजा कहने लगा, नहीं परसराम! हो सकता है मेरे सतगुरू हों पर जब तक कसौटी नहीं लगाई जाती, तब तक मेरा जाना ठीक नहीं। जब कसौटी पर कस कर देख लिया, फिर शिवनाभ का अंग-अंग, रोम-रोम बिक जायेगा। जाओ कसौटी लगाओ। सो परसराम मोतियों के थाल भर कर सेवा के लिए जा उपस्थित हुआ, पकवान साथ ले गया। जाकर प्रार्थना की, महाराज! कुछ खाईये; पता चला है कि आप कई दिनों से निर-आहार हो।

गुरू महाराज ने फ़रमान किया, ''हम तो भोजन करते नहीं भाई! सदा ही भरे रहते हैं, हमें

कभी भूख नहीं लगती> भूख तो दुनियाँ को लगती है – पदार्थों की, किसी को पुत्र की भूख है, किसी को नौकरी की भूख है, किसी को स्त्री की भूख है, किसी को मान की भूख है, सारा संसार भूखा फिरता है। हमें भूख नहीं लगती। ऐसे मत कहो कि हम भूखे हैं, हम तो सदा ही खाये पीये रहते हैं।

वज़ीर बोला, महाराज! हमारे राजा की आज्ञा है कि जब भी कोई साधु महापुरुष आए तो उसकी पूरी आवाभगत की जाए। इस देश के रिवाज़ के अनुसार उसे खाने के लिये मांस तथा पीने के लिए मदिरा आदि से सेवा की जाये और मनोरंजन के लिये नाच गाने का प्रबन्ध किया जाये। जिस प्रकार भी हो सके साधु को प्रसन्न किया जाये। यहाँ पर कई नाथ पन्थी आते हैं, वे मदिरा को बहुत पसन्द करते हैं और रात को विश्राम समय कई सुन्दरियों की सेवा लेते हैं।'' इतनी देर में बहुत सुन्दर वस्त्र पहने, खुबसूरत अर्धनग्न नाचने वाली नारियाँ पतले-पतले वस्त्र पहने, हाव-भाव दिखाती हुई, मटकती हुई, महाराज जी के पास पहुँच गई। ''पातशाह! ये आपकी सेवा में रात को यहीं पर ही रहेगीं और जो भी आज्ञा हो, जिस भी पदार्थ की इच्छा हो – मदिरा, मांस आदि की, वह तुरन्त पूरी हो जायेगी सो आप, कृपा करके आज्ञा दें।''

आप मुस्करा पड़े। कहने लगे, ''परसराम! यह क्या ले आया; नाचियें?

सेज सोहनी चंदनु चोआ नरक घोर का दुआरा॥ ***पृष्ठ – 642***

इनका संग करके कुम्भी नरक का टिकट मिलता है ऊपर से, बाहर से सुन्दर हैं पर अन्दर से विषय विकारों की विष से भरी हुई है।'' इस प्रकार फ़रमान करते हैं –

धारना – इह तां विहु दीआं भरीआं होईआं गंदलां,
खंड 'च लबेड़ रखीआं – 2, 2
मेरे पिआरे खंड 'च लबेड़ रखीआं – 2,2
इह तां विहु दीआं भरीआं होईआं,........2

फरीदा ए विसु गंदला धरीआं खंडु लिवाड़ि।
इकि राहेदे रहि गए इकि राधी गए उजाड़ि॥ ***पृष्ठ – 1379***

महाराज कहने लगे, ''परसराम! देखने में सुन्दर लगती हैं, वस्त्र सुन्दर पहने हुए हैं, सभी पदमनियाँ हैं लेकिन इनके अन्दर क्या हैं – विषय विकार भरे हुए हैं। अन्दर से वैसी नहीं हैं जैसी बाहर से सुन्दर हैं। जिनके हृदय में प्रभु का प्यार हो, नाम का रस हो, आत्म विचार हो, वे पूजनीय हैं, उन्हें शीश झुकाते हैं। जिनके हृदयों में विषय विकारों की जहर है, उनके साथ तो सीधा ही नरकों का टिकट मिलता है। इस प्रकार देह अधिआस का भ्रम पड़ा हुआ है।''

एक बार बाबा फरीद जी कहीं चले जा रहे हैं और चलते-चलते रास्ते में एक जगह पर चीख सुनाई दी। वह चीख हृदय को बीन्धती चली गई। बन्दगी करने वालों के हृदय बहुत कोमल हुआ करते हैं। दूसरों का दुख सहन नहीं कर सकते। इसीलिये गुरू महाराज जी ने चारों साहिबजादे शहीद करवा दिये, पिता शहीद करवा दिया, स्वंय शहीद हो गये, माता जी शहीद हो गईं। किसके लिये? वे स्वंय दुखी नहीं थे, हमारा दुख सहन नहीं कर सकते थे। जबरदस्ती धर्म परिवर्तन करवाया जा रहा था, जनेऊ लूटा जा रहा था, तिलक मिटाया जा रहा था, गाय मारी जा रही थी। इन चीजों के साथ हमारा सम्बन्ध नहीं, पर हाय-हाय, चीख पुकार मची हुई थी, जबरदस्ती धर्म परिवर्तन करवाया जा रहा था। गुरू महाराज सहन न कर सके।

जब दुखी ब्राह्मणों के प्रतिनिधि नौवें पातशाह के हजूर, भारत के कश्मीरी चलकर अपने दुखों को दूर करवाने के लिए आनन्दपुर साहिब पहुँचे, तो गुरू महाराज जी उनके दुखों को सुनकर गम्भीर हो गये और खामोश हो गये। बाहर से बाल गोबिन्द जी खेलकर अभी आए ही थे तो सभी के सहमें हुए चेहरों को देखकर, गुरू नौवें पातशाह से पूछा, ''पातशाह! चुप करके क्यों बैठे हो?''

कहने लगे, ''लाल जी, ये दुखी ब्राह्मण कश्मीर से आए हैं और भी इनके साथ आए हैं। इनकी दर्दनाक कहानियाँ सुनी नहीं जातीं। ज़ोर-जबरदस्ती धर्म बदला जा रहा है। बेशक हमें और हमारे प्रेमियों को कोई खतरा नहीं है, आज इन पर जुल्म किये जा रहे हैं, जनेऊ पहनते हैं, ठीक है, इन्हें प्यार से समझा दो -

दइआ कपाह संतोखु सूतु जतु गंढी सतु वटु।
एहु जनेऊ जीअ का हई ता पाडे घतु।
ना एहु तुटै न मलु लगै न एहु जलै न जाइ।
धंनु सु माणस नानका जो गलि चले पाइ॥ ***पृष्ठ - 471***

पर जबरदस्ती करके इसे उतारो मत। बता दो इन्हें कि इससे भी श्रेष्ठ जनेऊ एक और है पहनना चाहते हो तो पहन लो पर ऐसा नहीं होना चाहिए कि जबरदस्ती आदमी कत्ल कर दिए जाएं। जब धर्म परिवर्तन जबरदस्ती, बल पूर्वक किया जायेगा, कोई नियम नहीं बनाये जायेंगे, उसकी नींव कच्ची हुआ करती है। जब जबरदस्ती हट जायेगी, उस समय धड़ाम से जैसे महल गिरता है, गिर जाता है। उसी प्रकार ऐसा धर्म अपने नियमों से गिर जाया करता है। धर्म जोर (बल) के साथ नहीं चला करता। फिर सिख धर्म subjective (अर्न्तमुखी) धर्म है। यह Negative Approach (नाकारात्मक दृष्टिकोण) वाला धर्म नहीं है। इसमें जीवन निर्माण करना बताया जाता है। बहुत कठिन है, चढ़ाई है इसके अन्दर, उतराई नहीं है।

इस प्रकार बाबा फरीद के हृदय में, चीख सुनकर दर्द हुआ। खड़े होकर दरवाज़ा खटखटाया। अन्दर से एक बीबी क्रोध से भरी हुई, आँखें लाल सुरख, हाथ में हन्टर लिये बाहर आई। उसने दरवाज़ा खोला, कहने लगी कि दरवेश क्या बात है, यह तो वेश्या का घर है। आपने कहा, ''बीबी! हमारे लिये संसार में कोई भी वेश्या नहीं है, हमें तो सभी के अन्दर परमेश्वर की ज्योति ही नज़र आती है। हम ही सब से बुरे हैं, हमें छोड़कर सभी अच्छे ही अच्छे हैं। क्या बात है, यह चीख किसकी है - इतनी दर्दनाक।'' कहने लगी कि तूने क्या लेना दरवेश? ये हमारा काम हम जानें। सुरमा दिया था इसे रगड़ने के लिये, वह थोड़ा सा मोटा रह गया। जब मैंने आँख में डाला, जो काजल की धार थी वह आँख में पड़ने से आंख में से पानी निकल आया और यह देख इससे धार कितनी चौड़ी होकर फैल गई। सो मैं इसे मति दे रही हूँ। बाबा फरीद ने कहा कि बीबी यह देह अधिआस है, इस देही ने तो खाक बन जाना है, इसके अन्दर तो कुछ नहीं है और यौवन का इतना मान नहीं किया करते। शरीर तो कमज़ोर हो जायेगा, बूढ़ा हो जायेगा, उस समय ये नेत्र चले जायेंगे-

चबण चलण रतंन से सुणी अर बहि गए।
हेड़े मुती धाह से जानी चलि गए॥ ***पृष्ठ - 1381***

कान सुनने से बन्द हो गये, आखों ने देखना बन्द कर दिया, जुबान बोलने से तुतलाने लग गई, पैरों ने चलना बन्द कर दिया, सहारा माँगते हैं, हाथ कांपने लग गये, मुँह में पानी भी नहीं डाल सकते, प्याला आधा बिखर जाता है। ऐसा हाल हो जायेगा। किस चीज़ का अभिमान करती है बीबी! फिर यह

शरीर क्षण भंगुर है -

नह बारिक नह जोबनै नह बिरधी कछु बंधु।
ओह बेरा नह बूझीऐ जउ आइ परै जम फंधु॥ पृष्ठ - 254

क्या पता है कब चला जाये?

कहने लगी कि दरवेश सांई! ये उपदेश यहाँ मत दो, यह उपदेश जाकर तू अपने मुरीदों को सुना, वे सुनेंगे। जो सुनता न हो, उसे ये बातें नहीं सुनाया करते। जा, तू अपना काम कर, हम अपना काम करते हैं।

फरीद जी चले गये। काफी समय बीत गया। अन्त एक दिन क्या देखते हैं कि एक शरीर के कुछ छाती के ऊपर की हड्डियाँ टूटी पड़ी हैं, झाड़ियों में पड़े हैं और नेत्रों वाली जगहं से पन्छियों के बच्चे चोंचे बाहर निकाल-निकाल कर देख रहे हैं। उस खोपड़ी में घौंसला बनाया हुआ है। बाबा फरीद जी वहाँ बैठकर अर्न्तध्यान हो गये। सामने उसी वैश्या का शरीर आ गया, वही दिन आ गया जब उसको कहा था कि बीबी! देह का मान मत कर, यह कुछ भी नहीं है और उसने बड़े रौब के साथ कहा था, जा, फकीर सांई! तू अपना काम कर, हम अपना काम करते हैं। सिजदा किया आपने मुरीदों ने पूछा, ''कृपा करके इस रहस्य की बात का हमें भी कुछ अता-पता बताओ, हमें भी पता चले कि आपने सिजदा किया है।'' फरीद जी बोले कि यह वही स्त्री है, उसी का ही शरीर है। किसी ने भी सम्मानपूर्वक इस महिला के शरीर को नहीं दफनाया, बेदिली से दफनाया है, जानवरों ने इसकी हड्डियाँ निकाल लीं। यह उसके धड़ का गर्दन का ऊपर का हिस्सा झाड़ियों में फंसा पड़ा है। इसके अन्दर किसी पन्छी ने घौंसला बना लिया है। वे आखें, जो ज़रा सा मोटा सुरमा सहन नहीं कर सकी थीं और कहती थी कि मेरे नेत्रों से जल बहकर मेरे काजल की पतली धार खराब कर दी, यह देखो, अब किसे कहेगी? उस समय आपने इस प्रकार शबद का उच्चारण किया -

धारना - जिहड़ीयां कज्जल रेख ना सी सहिंदीआं,
पंछीआं ने पा लए आल्हणे - 2, 2
पिआरिओ, पंछीआं ने
पा लए आल्हणे -2, 2
जिहड़ीआं कज्जल रेख ना सी सहिंदीआं,.... -2

फरीदा जिन्ह लोइण जगु मोहिआ से लोइण मै डिठु।
कजल रेख न सहदिआ से पंखी सूइ बहिठु॥ पृष्ठ - 1378

अब मैंने अपने नेत्रों से देख लिया। कोई समय था जब ये नैन काजल भी सहन नहीं कर सकते थे और अब ये किसे कहेगी? किसे मारेगी? हंटर कहाँ से लाएगी?

इस प्रकार देह अधिआस बहुत बुरी चीज़ है। मनुष्य गलती से इस देह को ही सभी कुछ समझे बैठा है। यह है क्या? पाँच तत्वों की एक मशीन बनाई हुई है। इसके अन्दर एक पन्छी रहता है उसके लिए -

हाड मास नाडीं को पिंजरु पंखी बसै बिचारा॥ पृष्ठ - 659

जल की भीति पवन का थंभा रकत बुंद का गारा॥ पृष्ठ - 659

गारा गूंथ लिया - रक्त का और मांस का। पानी की दीवार है और पवन का थम्बा लगाया हुआ है। सांस चलती रहे तो कायम है, यदि सांस खत्म हो जाये, धड़ाम से गिर जायेगा। *'हाड मास नाडीं*

को पिंजरु पंखी बसै बिचारा।' इस पिंजरे को कहता है कि 'मैं' हूँ। बड़ा भारी भ्रम पड़ा हुआ है मनुष्य को। सभी को ही पड़ा हुआ है। कहते हैं, मैं काला हूँ, मैं गोरा हूँ, मैं अमीर हूँ, मैं गरीब हूँ, मैं ऐसा हूँ, मैं वैसा हूँ, बहुत भ्रम पड़ा हुआ है। महाराज कहते हैं सोचा तो कर। यह पाँच तत्वों का मसाला गुंथा हुआ है, मिट्टी फूली हुई है और तो कुछ नहीं है। मिट्टी से इतनी बड़ी हुई है। गेहूँ खाते हैं, कहाँ से आती है? मिट्टी में से उगती है। फल खाते हैं, कहाँ से आते हैं, मिट्टी में से उपजते हैं। Refined होकर आते हैं। दूध पीते हैं, कहाँ से आता है? पशु चारा खाते हैं, उससे दूध बनता है, Refined होकर आता है। वही घास फूंस यदि तुझे खाने को मिल जाए, तुझे हज़म नहीं होगा लेकिन परमात्मा ने कितनी बड़ी प्रकृति बनाई है कि पशु ही खाते हैं, फिर ये पशु तुझ से कितने अच्छे हैं। वे घास फूस खाकर दूध बनाते हैं। वह दूध तू पीता है, वह भी मिट्टी में से ही आता है, मिट्टी से, मिट्टी ही बढ़ती चली आ रही है। कहते हैं पाँच तत्व हैं, 25 प्रकृतियाँ हैं, पाँच प्राण हैं, इसके अन्दर मन, चित्त, बुद्धि और 'मैं' भाव है। इस शरीर के अलग-अलग पुर्जे हैं। यदि तो इन्हीं में फंसा हुआ है तो तू कुछ भी नहीं है, सो इसके अन्दर एक जो आत्म वस्तु है, उसका तुझे पता चल गया तो तू पूजनीय है। जहाँ भी तू चरण रखेगा, वह चरण धूलि, रोग दूर करेगी, बुद्धि की मैल दूर करेगी, परमेश्वर के साथ प्यार पैदा कर देगी। इस शरीर के अन्दर जो निगाह है, जब देखेगा, नेत्र ठण्डक दिया करेंगे। इनके अन्दर शक्ति होगी, दृष्टि करके, रोग मिटा देगा।

गुरू नानक पातशाह ठगों के गाँव में ठहर जाते हैं। वे सेवा नहीं करते, मारने की योजनाएं बना रहे हैं। गुरू महाराज तो सारी रात कीर्तन करते रहे। अमृत बेला में उठे, स्नान किया, आपने फिर आसा जी की वार का कीर्तन करना शुरू कर दिया। वे पापी पहली रात में योजनाएं बनाते रहे क्योंकि पाप करने वाले को नींद, रात के पिछले पहर में आया करती है अतः वे सो गये –

बुरे काम कउ ऊठि खलोइआ। नाम की बेला पै पै सोइआ॥ ***पृष्ठ - 738***

फिर यह नहीं देखता –

चंगिआई आलकु करे बुरिआई होइ सेरु॥ ***पृष्ठ - 518***

बुरे कामों के लिए तो शेर जैसा इरादा कर लेता है। गुरू महाराज जी कीर्तन समाप्त करके चले गये। मरदाना कहने लगा, ''महाराज जी! ये तो जागे नहीं।''

''मरदाना, मन्दभागी हैं।''

''महाराज, फिर कीर्तन किसने सुना है?''

''इन वृक्षों ने, पन्छियों ने। जहाँ-जहाँ भी कीर्तन की आवाज़ गई है, उन सभी का उद्धार हो जायेगा, यह तासीर है गुरू की बाणी में –

पसू परेत मुगध कउ तारे पाहन पारि उतारै॥ ***पृष्ठ - 802***

मूर्खों का उद्धार करती है, प्रेतों का उद्धार करती है –

गुरु नानकु जिन सुणिआ पेखिआ से फिरि गरभासि न परिआ रे॥ ***पृष्ठ - 612***

वह गर्भ धारण नहीं करता, जिसने गुरू के मुख से बाणी श्रवण कर ली।''

सो इस प्रकार महाराज कहने लगे, ''भाई मरदाना इस वातावरण में चली गई बाणी। यह शबद कभी मरता नहीं है, शबद सदा-सदा जीवित रहता है। सभी चीज़ें मर जाती हैं पर शबद नहीं मरता। यह

शबद ब्रह्मण्डों में फैल जाता है। यहाँ पर ही नहीं फैलेगा, यह संसार में करोड़ों ब्रह्मण्डों में जायेगा, इसकी लहर फैल जायेगी, जहाँ-जहाँ यह लहर जायेगी, वहाँ-वहाँ पर शान्ति होती चली जायेगी।''

मरदाना कहने लगा, ''महाराज यह ठगों ने भी सुनी है, इनका भी उद्धार हो जायेगा?''

महाराज कहते हैं, हाँ, बोई हुई बाणी कभी व्यर्थ नहीं जाया करती, हृदय में जाती है, वहाँ पर जा कर अपना काम शुरू कर देगी, पापों को दूर करेगी -

भरीऐ मति पापा कै संगि। ओहु धोपै नावै कै रंगि॥ ***पृष्ठ - 4***

नाम ने धोना है, बाणी ने पापों को धोना है, हृदय निर्मल कर देना है। हम बीज डाल चले हैं, मरदाना! बेशक सो रहे हैं या जाग रहे हैं, इनके अन्दर शबद चला गया है, चलो चलें हम। महाराज आगे बढ़ जाते हैं, बाद में उनकी नींद खुलती है, ऊंघ रहे होते हैं, याद आया कि रात वाले साधु कहाँ चले गये, चकमा दे गये। दूसरा कहता वे जादूगर हैं, तीसरा बोला जब मैंने उनके नेत्रों की ओर देखा, मुझे कुछ हुआ था। मैं तो कभी भी किसी से आज तक डरा नहीं था, अब अन्दर कुछ डर सा पैदा हो गया है। एक कहता, बातें बनाना छोड़ो, पहले चलकर उन्हें घेर कर लाओ। सो आठ दस लड़के चल पड़े, बर्छे, गण्डासे कन्धों पर रखकर निशानों को देखते हुए भागे जा रहे हैं। इधर गये, खुरा दबाकर फिर खुर को देखते हैं, फिर दिखाई दे जाता है। कहने लगे वे आदमी नज़र आ गये, वो जा रहे हैं। दूर से ही आवाज़ लगाई कहने लगे, ठहर जाओ, अब मत जाओ, वहाँ तो हमें धोखा दे आए, अब हम तुम्हें कहीं नहीं जाने देंगे।

गुरू महाराज जी चुपचाप खड़े हो गये। मरदाना कहने लगा, महाराज! हम तीन आदमी हैं, इनसे ज्यादा ताकतवर हैं, पंजाबी का शरीर वैसे भी रिष्ट-पुष्ट होता है, फिर कुछ हाथापाई करें? महाराज कहने लगे, नहीं मरदाना, करतार के रंग देख, हमें कुछ भी करने की जरूरत नहीं -

जह जह पेखउ तह हजूरि दूरि कतहु न जाई।
रवि रहिआ सरबत्र मै मन सदा धिआई।
ईत ऊत नही बीछुड़ै सो संगी गनीऐ।
बिनसि जाइ जो निमख महि सो अलप सुखु भनीऐ।
प्रतिपालै अपिआउ देइ कुछ ऊन न होई।
सासि सासि संमालता मेरा प्रभु सोई॥ ***पृष्ठ - 677***

कहते हैं वह श्वांस-श्वांस सम्भालने वाला हमारे साथ है मरदाना! निरभै को जपने वाला निर्भय होता है। डर कहाँ से आता है -

निरभउ संगि तुमारै बसते इहु डरनु कहा ते आइआ॥ ***पृष्ठ - 206***

करतार की याद में रह। ठग पास आ गये, कहने लगे, तुम हमें धोखा देकर आए हो।

गुरू महाराज ने कहा, हम धोखा देकर नहीं आए, तुम सोये पड़े थे। तुम ही सो गये, हम तो जागते रहे, तुमने हरि का यश भी नहीं सुना। बताओ क्या बात है?

वे बोले, ''हमने तुम्हें मारना है।''

आपने कहा, ''बड़ी खुशी की बात है, मार दो, पर एक बात हमारी भी सुन लो। यदि हमें मार कर यहीं फैंक दिया, यह आम रास्ता है, किसी सरकारी व्यक्ति ने देख लिया, तुम्हारे गाँव को घेर लेंगे, मार पिटाई होगी, तुमने मान जाना है। तुम मार तो दोगे हमें, इससे जुर्म से बचने का भी साधन

सोचो।''

''यह तुम बता दो।''

''देखो, कितना बड़ा लकड़ियों का ढेर पड़ा है, हमें मार कर, इनके ऊपर रख देना।''

वे बोले, ''आग कहाँ से लाएं?''

''वह देखो, सामने शिवा जल रहा है।''

उधर दृष्टि कर दी। ''अच्छा भाई! तुम इन्हें रोक कर रखना, हम दो आदमी आग लेने चले जाते हैं।'' इतना कहकर दो आदमी चले गये। वहाँ जाकर क्या देखते हैं कि बहुत ही भयानक किस्म के आदमी जो कभी पहले नहीं देखे थे, मनुष्य जैसे कुछ खड़े हैं और दूसरों के साथ झगड़ा कर रहे हैं, एक को पकड़ा हुआ है। वह काफी सहमा हुआ है। ये भी खड़े होकर उसे देखने लग गये, वे आपस में झगड़ा कर रहे थे। ये थोड़ा और पास गये और पूछने लगे कि तुम क्यों झगड़ रहे हो? तुम्हें देखकर तो डर लगता है, इन्हें देखकर नहीं लगता, पता नहीं तुम कौन सी दुनियाँ के रहने वाले हो, हमने तो पहले कभी नहीं देखे तुम्हारी तरह के। वे बोले, प्रेमियो! झगड़ा हमारा यह था कि यह महा पापी था और हमें हुक्म दिया था धर्मराज ने दरगाह में से –

धरमराइ नो हुकमु है बहि सचा धरमु बीचारि।
दूजै भाइ दुसटु आतमा ओहु तेरी सरकार॥ *पृष्ठ - 38*

यह दुष्ट पुरुष था, हम इसे लेने के लिये आये हैं। हमें यमदूत कहते हैं। तुमने हमारा नाम कभी नहीं सुना? तुम्हें भी हमने लेकर जाना है। कर लो जितने भी पाप कर सकते हो।

''अब झगड़ा किस बात का है?''

कहने लगे, ''इसके अब सारे पाप नष्ट हो गये।''

''कैसे?''

''गुरू नानक ने इस पर दृष्टि कर दी।''

''वह कौन है जिसकी दृष्टि कर देने से ही सारे पाप नष्ट हो गये?''

''यह वही है जिसे तुम मारने की योजना बना रहे हो और आग से संस्कार करने के लिये इस चिता में से आग लेने आए हो।''

''हैं! वह है?'' क्या सचमुच ही वह गुरू नानक हैं।

कहने लगे, ''अरे भले लोगो, यदि वह एक निगाह कर दे तो तुम्हारे तथा तुम्हारे सारे गाँव को राख कर दे। वह समस्त शक्तियों का मालिक होता हुआ मनुष्यों की तरह व्यवहार कर रहा है। जाओ, जाकर उसके चरण पकड़ लो, क्यों और पाप करते हो, पहले ही बहुत किए हैं। क्षमा करवा लो अपने पाप।''

वे दूर से ही आवाज़ें लगाते हुए वापिस लौट आये। कह रहे हैं, देखना, देखना, इन्हें मारना मत, हमारी बात सुन लो। बिल्कुल पास आ गये, चरणों में गिर पड़े, ज़ोर-ज़ोर से रोने लगे। कहते हैं, तुम तो कोई पूर्ण पुरुष आ गये। बाकी सभी कहने लगे, तुम्हें क्या हो गया है? हमें भी बताओ।

कहते हैं, क्या बताएं? यदि तो हमारी बात सच मान लो, फिर हम बताएंगे। वे बोले, बताओ तो सही। सारी बात बताते हैं, चरण पकड़ लेते हैं। महारजा जी की दृष्टि पड़ गई, सभी पर कृपा दृष्टि हो गई, पाप खत्म हो गये, चरण पकड़ लिये। पातशाह! अब आप नगर में भी चलो, उनका भी उद्धार कर दो, उन्हें भी शान्ति दे दो। महाराज गये तथा उन्हें भी जाकर सुमति दी।

जिसने पहचान लिया अपने स्वरूप को, अपने परमात्म स्वरूप को जो हृदय में बसता है, वह देह तो पवित्र है, अन्यथा वह देह क्या है? यह तो garbage bag (कूड़े का थैला) है। गारबेज बैग किसे कहते हैं? ऐसी बोरी जिसमें कूड़ कबाड़ा भरा जाता है। कोई भी गारबेज बैग रखा हो, चाहे लकड़ी का हो या प्लास्टिक का हो, चाहे कागज़ों का बना हो, उसमें बच्चे का मलसूत्र आदि डालते रहो। बहुत बढ़िया सुन्दर हो, ऊपर उसके रेशम का कपड़ा लपेटा हुआ हो, उस पर बहुत बढ़िया पेंट किया हुआ हो, उसे किसी को हाथ लगाने को कहो, वह कभी भी हाथ नहीं लगायेगा। कहेगा, मैं इसे हाथ नहीं लगाता क्योंकि यह गन्दगी का भरा हुआ है। महाराज कहते हैं तूने नहीं सोचा तेरे अन्दर क्या है। ऐसा बताते हैं, पढ़ो सभी –

धारना - गंद मंद है वलेटिआ विच चंम दे,
देही दा तूं माण करदैं - 2, 2
मेरे प्यारे, देही दा तूं माण करदैं - 2, 2
गंद मंद है वलेटिआ विच चंम दे,..... -2

पुतरी तेरी बिधि करि थाटी। जानु सति करि होइगी माटी॥ ***पृष्ठ - 374***

यह जो शरीर है, तेरी पुतली है, यह बड़े ढंग से परमेश्वर ने इसकी स्थापना की है। पाँच तत्व हैं, 25 प्रकृतियों के साथ अकेली-अकेली ज्ञानेन्द्रियाँ, आंख, नाक, कान, रसना आदि को पाँच-पाँच प्राकृतिक तत्व प्रदान किये गये हैं। नेत्र बनाए हैं, तेज 1/2, शेष चार तत्व 1/8, 1/8, 1/8, 1/8, जुबान बनाई है, इसके अन्दर पानी 1/2 (आधा) शेष 1/8; कान बनाए हैं, आकाश तत्व आधा और शेष तत्वों का आठवां-आठवां हिस्सा। इसी प्रकार नासिका सुगन्धि के लिये बनाई है, इसके अन्दर मिट्टी आधा हिस्सा, शेष चार तत्व 1/8-1/8 भाग है। इस मिट्टी को गूँध-गूँध कर पांच ज्ञानेन्द्रियाँ बनाई हैं तथा तमोगुण आदि मिलाकर पाँच कर्मेन्द्रियाँ बनाई हैं, फिर इसके अन्दर पाँच Vital forces रखी हैं जिन्हें पाँच प्राण कहते हैं – प्राण, उदान, बिआन, समान, अपान। ये अलग-अलग कार्य करते हैं। यह जो धौंकनी लगी हुई है, जिसे फेफड़े कहते हैं, इसमें बाहर जाने वाला सांस, यह हवा को बाहर निकालता है और अन्दर को खींचता है, जिस दिन बन्द हो जाता है, कहते हैं प्राण निकल गये। एक प्राण है जो दिल को हर समय चलाता रहता है, एक प्राण है जो हर समय मैदे में काम करता रहता है, एक वह है जो देही के साढ़े तीन करोड़ रोमों में से हर समय मैल को बाहर निकालता रहता है। नहा कर आओ, थोड़ी देर बाद हाथ फेर कर जीभ से लगाकर चख कर देख लो, नमकीन स्वाद होता है क्योंकि अन्दर से मैल बाहर निकाल दी। इस प्रकार साढ़े तीन करोड़ रोमों में से हर समय मैल निकलता रहता है। एक समान प्राण है जो इसके तापक्रम को समान रखता है – 98.4^0 पर। बड़ी योजना बद्ध तरीके से बनाया है। कहते हैं बलिहार जाते हैं उसकी शान से, जिसने यह बनाया है तथा अलग अलग हड्डियों के जोड़ जोड़े हैं। युक्ति पूर्वक जोड़ बान्ध दिये और सारे शरीर की सफाई कर दी गई है। यह ऊपर से इतना बढ़िया दिखाई देता है कि मनुष्य भ्रम में पड़ जाता है। भ्रम में पड़कर हमेशा गलत काम करता है –

पापी हीऐ मै कामु बसाइ। मनु चंचलु या ते गहिओ न जाइ।
जोगी जंगम अरु संनिआस। सभ ही परि डारी इह फास॥ ***पृष्ठ - 1186***

कुवृत्ति धारण करता है, काम वासना में आकर देखता ही नहीं कि नीति, अनीति क्या है? इसलिये महाराज कहते हैं कि देख तो सही *'पुतरी तेरी बिधि करि थाटी।'* किस बिधि से बनाया है। इसका तू अभिमान करता है –

चलत कत टेढे टेढे टेढे। असति चरम बिसटा के मूंदे दुरगंध ही के बेढे॥ पृष्ठ – 1124

क्या है तेरे पास; बदबू है। यदि थोड़ी देर स्नान न करे, देख ले, बिना स्नान किये शरीर में से निकलने वाली बदबू के कारण नाक भी बन्द करना पड़ता है, इतनी बदबू है अन्दर। दो दिन मत नहा, कपड़े भी मैले हो जाएंगे। कपड़ों में भी बदबू और मैल भर जाती है। यदि सुखाया और धोया न जाए तो घर बदबू से भर जाता है। इतनी गन्दगी है, दुर्गन्ध है तेरे अन्दर। पाऊडर लगाता है, स्प्रे करता है, फिर नहाता है; इसका अभिमान करता है? इसका अभिमान मत कर प्यारे! *'जान सति करि होइगी माटी'* इसने तो मिट्टी बन जाना है। इसके अन्दर एक चीज़ है जिसकी वज़ह से यह उत्तम है। वह आत्म वस्तु है। यदि तो तूने उसे जान लिया, ढूँढ लिया, फिर तो तू जिस कैद खाने में रहता है, इसमें से मुक्ति प्राप्त करके परम सुखी हो जायेगा। यदि न ढूँढ सका तो प्यारे! जहाँ पहले लाखों बार, लाखों यौनियों में घूमता रहा है, करोड़ों बार पहले भी ऐसे ही होता रहा है। अब इस बन्धन से मुक्त होने की बारी है। मानस जन्म में यदि अपने आत्म स्वरूप को न पहचान सका तो जन्म व्यर्थ गवाँ कर यौनियों में दुख पायेगा।

मूलु समालहु अचेत गवारा। इतने कउ तुम्ह किआ गरबे॥ पृष्ठ – 374

इसके अन्दर मूल है – 'आत्मा', तू 'जीव आत्मा' बना हुआ है। जीव भाव खत्म कर दे, तेरा आपना सरूप आत्मा है पर केवल कहने मात्र से आत्मा साक्षात नहीं होती। हउमै के रहते हुए यह जीव ही रहता है जो कल्पित ही है सत्य नहीं है –

एको एकु कहै सभु कोई हउमै गरब विआपै॥ पृष्ठ – 930

जब तक पूरा गुरू नहीं मिलता, हउमैं का नाश नहीं होता। उस मूल को सम्भालने की कोशिश कर कि तुझे पता चल जाये तेरे मूल का कि मैं कौन हूँ –

तीनि सेर का दिहाड़ी मिहमानु। अवर वसतु तुझ पाहि अमान॥ पृष्ठ – 374

कच्चे तीन सेर; पानी ले लो, दूध ले लो, लस्सी ले लो, दही ले लो, सब्जी ले लो। कहते हैं तीन सेर की खुराक है तेरी सारी। बाकी जो तू इतना इकट्ठा किये फिरता है, बैंक में कितने रूपये हैं, यह तो अमानत रखे हुए है, फालतू का रखवाला बना बैठा है –

दमड़ा तिसी का जो खरचै अर खाइ। देवै दिलावै रजावै खुदाइ।
होता न राखै अकेला न खाइ। तहकीक दिलदानी वही भिशत जाइ॥ नसीहतनामा

यदि परमेश्वर ने बहुत दिया है तो बांट दे, सेवा कर। गरीबों की ओर देख जिनके पास एक दमड़ी भी नहीं है। बीमार हुआ फिरता है, दवाई मिलती नहीं है। दे दे उन्हें दवाई के लिए, तेरी नेकी फल लायेगी। क्यों फलेगी? तुझे पता नहीं कि वह दवाई किसे दी गई है? यदि पता चल जाये –

तीरथ बरत अरु दान करि मन मै धरै गुमानु।
नानक निहफल जात तिहि जिउ कुंचर इसनानु॥ पृष्ठ – 1428

पता चल गया कि मैंने अमुक विद्यार्थी को पैसे दिये हैं। सोचने लग जाता है कि यह मेरी कोठी पर तो कभी आया ही नहीं। पड़ गया न उलटा रोना धोना दान देकर, राग द्वैष मन में जाग गया। किया तो नेकी का काम था, पर इसलिये द्वैष पैदा हो गई कि अब मेरा धन्यवाद करने नहीं आया। सियाने लोग कहते हैं, *'नेकी कर दरिया में डाल'* भूल जा नेकी करके। किसके पास जाती है, किसके लिये करता

है, इस बात का ख्याल मत कर, फिर सफल होती है, अन्यथा नहीं होती। यदि तुझे वाहिगुरू ने फालतू दी है, दे दे गरीबों के लिये। बाकी तो अमानत ही है तेरे पास। तू अपने आपको कहता है–

बिसटा असट रकतु परेटे चाम। इसु ऊपरि ले राखिओ गुमान॥ ***पृष्ठ - 374***

विष्ठा है, हड्डियाँ हैं, मांस है, मिंझ है पेशाब वगैरा; सारी इन्द्रियों में से, नाक, कान में से क्या निकलता है, इसका गुमान करता है? ***'इस ऊपरि ले राखिओ गुमान। एक वसतु बूझहि ता होवहि पाक। बिनु बुझै तूं सदा नापाक।'***

यदि तू इस बात को जानता नहीं, पता नहीं लगता तो तू पाक नहीं, नापाक है –

कहु नानक गुर कउ कुरबानु। जिस ते पाईऐ हरि पुरखु सुजानु॥ ***पृष्ठ - 374***

मिल जाकर पूरे मुरशद को, गुरू के वचनों का पालन कर ले, गुरू ग्रन्थ साहिब के शबद को हृदय में बसा ले। जब तक मन नहीं मानता, तब तक गुरू के साथ मेल नहीं हो सकता। यदि गुरू पर निश्चय आ जाये – पूरा विश्वास, निश्चय कि यह तो वाहिगुरू ही गुरू ग्रन्थ साहिब में बोलता है फिर वाहिगुरू से मिलने की इच्छा हो फिर तो एक-एक अक्षर अन्दर बैठता चला जायेगा। मेरा राम इस तरह मिलता है, कुर्बानी करनी पड़ती है। 'मैं' मर जाती है फिर मिलता है इसे।

सो इस तरह से महाराज कहते हैं, तू किस चीज़ का अभिमान करता है प्यारे, इसे शोध, देह अधिआस में मत पड़। देह अधिआस ने ही तुझे दुखी किया हुआ है –

धारना - तेरी देही ने खाक बण जाणी,
जिस दा तूं माण करदैं - 2, 2
मेरे प्यारे, जिसदा तूं माण करदैं - 2, 2
तेरी देही ने खाक बण जाणी,................ - 2

काहे रे नर गरबु करत हहु बिनसि जाइ झूठी देही॥ ***पृष्ठ - 692***

कबीरा धूरि सकेलि कै पुरीआ बांधी देह।
दिवस चारि को पेखना अंति खेह की खेह॥ ***पृष्ठ - 1374***

इसने तो मिट्टी, राख हो जाना है प्यारे! इसका मान मत कर। इसे सफेद पोचे से पोता हुआ थम्ब समझ। बहुत सुन्दर पोचा है, किसी न किसी तरह का पोचा। यह साढ़े तीन हाथ का थम्ब पोचा हुआ है –

अन्दर लहू पाक मलमूतर भर गंदा।
बंदा उस दा हो के करे बंदगी तां बंदा चंगा।
बंदगी तों बिनां बंदा गंदे तों वी गंदा।

इसका अभिमान करता है? इसका अभिमान नहीं किया करते। इस प्रकार गुरू नानक पातशाह कहने लगे, यदि तो तूने पहचान कर ली, फिर तो तू जीत गया, यदि देह अधिआस में फंसा रह गया तो यह बाजी हार कर तू जायेगा, क्योंकि यदि यह देह यहाँ पर ऐसे है, तो उधर इसे उत्तम से सर्वोत्तम भी बताया गया है। वह इसलिये लिखी है कि इस मानस देही में वह चीज़ प्रकट हो जाती है, जो किसी अन्य देही में प्रकट नहीं होती, नर नारायणी देही कहा है इसे, इस प्रकार फ़रमान किया है –

धारना - जोत हरी दी,
इस देही विच वसदी पिआरे - 2, 2
इस देही विच वसदी पिआरे - 2, 2

जोत हरी दी, इस देही विच वसदी पिआरे - 2

नउ दरवाजे काइआ कोटु है दसवै गुपतु रखीजै।
बजर कपाट न खुलनी गुर सबदि खुलीजै।
अनहद वाजे धुनि वजदे गुर सबदि सुणीजै।
तितु घट अंतरि चानणा करि भगति मिलीजै।
सभ महि एकु वरतदा जिनि आपे रचन रचाई। *पृष्ठ - 954*

वाहु वाहु सचे पातिसाह तू सची नाई॥ *पृष्ठ - 947*

महाराज कहते हैं, इसके अन्दर नौ दरवाज़े हैं और दसवां जहाँ असली वस्तु पड़ी है, वह गुप्त है। उसे बज्र कपाट आशा, अन्देशा, अज्ञान के जड़ दिये गये हैं। ***'बजर कपाट न खुलनी'*** फिर कैसे खुलते हैं? कहते हैं, चाबी ले ले गुरू से, नाम ले ले, शबद ले ले, मन्त्र ले ले। उसका जाप कर, उन्नति कर, धीरे-धीरे पता चल जायेगा। जब खुल गया, इसकी पहचान है, ऐसे ही मनोकल्पित बातें नहीं हैं। कहते हैं जब दरवाज़ा खुल गया, जिस जगह भी जाएं, उस स्थान की आवाज़ वहाँ सुनाई देती है, उसी स्थान का मन्त्र वहाँ सुनाई देता है। कहने लगे, ***'अनहद वाजे धुनि वजदे गुर सबदि सुणीजै।'*** वहाँ पर गुरू का शबद सुनाई देता है। कौन सा शबद? इसके बारे में वहाँ पहुँच कर ही पता चलता है कि कौन सा शबद है। गुरू ग्रन्थ साहिब में से शबद मिल जाता है जो हमने सुनना है। वहाँ आत्म चिन्तन होता है, ब्रह्म चिन्तन। ***'तितु घट अंतरि चानणा'*** अब अन्धेरा नहीं रह गया, प्रकाश ही प्रकाश हो गया। मन के नेत्रों से देखने वाला प्रकाश हो गया। बुद्धि के नेत्रों से, सूर्य चाँद के प्रकाश को देखता है, अन्दर जो शारीरिक नेत्र हैं वे इसे देखते हैं और जो अनुभव के नेत्र हैं, वह प्रकाश और होता है। इसी प्रकाश से वह मिलता है। वह ज्ञान का प्रकाश है, प्रत्यक्ष चीज़ दिखाई देने वाली दृष्टि आ जाती है। ***'करि भगति मिलीजै'*** दिखाई क्या देता है? कहते हैं ***'सभ महि एकु वरतदा जिनि आपे रचन रचाई। वाहु-वाहु सचे पातिसाह तू सची नाई'*** कहते हैं यह वस्तु शरीर में दिखाई देती है -

इहु सरीरु सभु धरमु है जिसु अंदरि सचे की विचि जोति॥ *पृष्ठ - 309*

वाहिगुरू रहता है इसके अन्दर -

गुहज रतन विचि लुकि रहे कोई गुरमुखि सेवकु कढै खोति॥ *पृष्ठ - 309*

महाराज कहते हैं कि तेरे अन्दर ऐसा रतन छिपा हुआ है, जिसे आत्म पदार्थ कहते हैं, 'नाम' कहते हैं, जिसका मूल्य कोई नहीं जानता -

साई नामु अमोलु कीम न कोई जाणदो।
जिना भाग मथाहि से नानक हरिरंगु माणदो॥ *पृष्ठ - 81*

नउ निधि अंम्रितु प्रभु का नामु। देही महि इस का बिस्रामु।
सुंन समाधि अनहत तह नाद। कहनु न जाई अचरज बिसमाद।
तिनि देखिआ जिसु आपि दिखाए। नानक तिसु जन सोझी पाए॥ *पृष्ठ - 293*

जिसे दिखा देता है, उसे फिर रतन अन्दर नज़र आता है, जिसका कोई मूल्य नहीं। महाराज कहते हैं - ***'गुहज रतन विचि लुकि रहे कोई गुरमुख सेवकु कढै खोति।'*** Research (खोज) कर करके, विचार कर करके, उस रतन तक कोई गुरमुख, गुरू की मदद से, कोई प्यारा पहुँच जाता है। फिर नज़र क्या आता है जब रतन मिल जाये? कहते हैं यह निगाह बदल जाती है। इसके अन्दर पहले तो आता है, अमुक सिंघ, अमुक व्यक्ति, वह हमारा दुश्मन, यह अमुक धर्म, यह अमुक चीज़; यह वहाँ पर नज़र नहीं आता।

“महाराज! वहाँ पर कुछ और ही तरह से नज़र आता है?”

“हाँ।”

“क्या नज़र आता है?”

महाराज फ़रमान करते हैं –

सभु आतम रामु पछाणिआ तां इकु रविआ इको ओति पोति॥ पृष्ठ - 309

सभी के अन्दर एक ही परमात्मा की ज्योति है *‘सभ महि एकु वरतदा जिनि आपे रचन रचाई।’* *‘जन नानक नामु सलाहि तू सचु सचे सेवा तेरी होति।’* यह चीज़ नज़र आती है, महाराज कहते हैं, *‘काइआ अंदरि आपे वसै’* इस शरीर के अन्दर वाहिगुरू निवास करता है –

काइआ अंदरि आपे वसै अलखु न लखिआ जाई।
मनमुखु मुगधु बूझै नाही बाहरि भालणि जाई॥ पृष्ठ - 754

वह तो सभी सुखों का दाता तेरे अन्दर बैठा है। मन के पीछे चलने वाला मूर्ख इस बात को जान नहीं पा रहा –

काइआ कोटु है आकारा। माइआ मोहु पसरिआ पासारा।
बिनु सबदै भसमै की ढेरी खेहू खेह रलाइदा।
काइआ कंचन कोटु अपारा। जिसु विचि रविआ सबदु अपारा॥ पृष्ठ - 1059

अपार, पारावार नहीं पाया जाता – शब्द का, ब्रह्म का, वाहिगुरू का, आत्मा का, वह तेरे अन्दर रमा हुआ है –

गुरमुखि गावै सदा गुण साचे मिलि प्रीतम सुखु पाइदा।
काइआ हरि मंदरु हरि आपि सवारे। तिसु विचि हरि जीउ वसै मुरारे॥ पृष्ठ - 1059

दुनियाँ झगड़े करती है – यह मन्दिर हमारा है, यह मस्जिद हमारी है, यह हमारा पूजा का स्थान है, झगड़ते हैं आपस में। महाराज कहते हैं जो हरि का मन्दिर है, वहाँ तू शराब डालता है, मांस फैंकता है, निन्दा करता है, चुगलियाँ करता है, ईर्ष्या करता है, कपट रखता है, छल रखता है। वह स्थान तो तूने भ्रष्ट कर दिया, भ्रष्ट हो गया है, उसे संवार ले प्यारे! *‘काइआ हरिमंदरु हरि आपि सवारे।’* यह काया हरि का मन्दिर है *‘तिसु विचि हरि जीउ वसै मुरारे।’* अब इससे आगे क्या कहेंगे गुरू साहिब? मान लेते हैं हम, कि हमारे अन्दर परमात्मा रहता है? मान कर देख लो, यदि कभी किसी को कोई कमी आ जाये। बिल्कुल नहीं आयेगी। मानकर देख लो। महाराज कहते हैं, मान लो, मान लो, तुझे बहुत ऊँची पदवी प्राप्त हो जायेगी –

धारना – पावहि मोख दुआर
जे मन मंन जाए, जे मन मंन जाए – 2

मंनै पावहि मोखु दुआरु। मंनै परवारै साधारु।
मंनै तरै तारे गुरु सिख। मंनै नानक भवहि न भिख।
ऐसा नामु निरंजनु होइ। जे को मंनि जाणै मनि कोइ॥ पृष्ठ - 3

फिर महाराज कहते हैं कि मानने वाले की हालत कही नहीं जा सकती –

मंने की गति कही न जाइ। जे को कहै पिछै पछुताइ॥ पृष्ठ - 3

मान लो इस बात को कि *‘काइआ हरिमन्दिरु हरि आप सवारे। तिस विचि हरि जीउ वसै मुरारै’*

कभी कहते हैं कि मेरे अन्दर परमात्मा निवास करता है? मेरे अन्दर भी रहता है, सभी की काया में रहता है, कोई भी उससे बाहर नहीं है -

गुर कै सबदि वणजनि वापारी नदरी आपि मिलाइदा॥ ***पृष्ठ - 1059***

गुरू का शबद लेकर, फिर जो नाम के व्यापारी हैं, वे व्यापार करते हैं ***'नदरी आपि मिलाइदा'*** जब व्यापार करेंगे सच का, फिर वहाँ कृपा (नदरि) का करिश्मा होता है - बख्शीश का, कर्म का। फिर अपने साथ मिला लिया करता है, ओत-प्रोत एक ही हो जाता है, फिर 'मैं' 'तू' नहीं कहता-

कबीर तूं तूं करता तू हूआ मुझ महि रहा न हूं।
जब आपा पर का मिटि गइआ जत देखउ तत तू॥ ***पृष्ठ - 1375***

'तू' बन गया -

जब हम होते तब तू नाही अब तूही मै नाही।
अनल अगम जैसे लहरि मइओदधि जल केवल जल मांही॥ ***पृष्ठ - 657***

जैसे समुद्र में लहरें उठती हैं, समुद्र में ही समा जाती हैं। जब मन मान गया फिर ऐसे हो जाना है; फिर वासा कहाँ मिलता है? कहते हैं निज घर में वासा मिल जाता है। फिर वह बाहर नहीं रहता, बहुत आराम वाला घर अन्दर ही मिल जाता है -

घर महि घरु देखाइ देइ सो सतिगुरु पुरखु सुजाणु।
पंच सबद धुनिकार धुनि तह बाजै सबदु नीसाणु॥ ***पृष्ठ - 1290-91***

वहाँ पर निशानियाँ होती हैं, महाराज कहते हैं -

नउ दर ठाके धावतु रहाए। दसवै निजघरि वासा पाए॥ ***पृष्ठ - 124***

नौ दरवाजों को बन्द कर दिया। नेत्रों को रोक दिया कि नहीं देखना पराया रूप -

देखि पराईआँ चंगीआँ मावाँ भैणाँ धीआँ जाणै॥ ***भाई गुरदास जी, वार 29/11***

देखना ही नहीं बुरा, वरना कहना छोड़ दिया, आशाओं पर बन्ध लगा दिया। ***'करन न सुनै काहू की निंदा (पृष्ठ - 274)'*** कानों को भी रोक दिया। रसना झूठ बोलने से रोक दी, हाथ बुरा काम करने से रोक दिये, पैर बुरे स्थान पर जाने से रोक दिये। जब सभी पर बन्ध लगा दिये फिर ***'नउ दर ठाके धावतु रहाए।'*** दौड़ता नहीं है। अब एक दरवाज़ा रह गया। अब उसने उधर की ओर रूख अपना लिया, जब सभी दरवाजे बन्द कर दिये, उसे ढूँढना है। और भी दरवाज़ा है? अब तक तो ढूंढा नहीं फिर वह उस दरवाजे की ओर चलता है ***'दसवै निजघरि वासा पाए'*** निज घर है दसवां द्वार। वहाँ जी नहीं लगेगा महाराज। महाराज कहते हैं, वहाँ मन नहीं लगेगा? -

ओथै अनहद सबद वजहि दिनु राती गुरमती सबदु सुणावणिआ।। ***पृष्ठ - 124***

सो इस प्रकार गुरू की मत से उस शबद की प्राप्ति हो जायेगी। महाराज कहते हैं देखो, दो चीज़े हैं। यदि तो भाई -

एक वसतु बूझहि ता होवहि पाक। बिनु बूझे तूं सदा नापाक॥ ***पृष्ठ - 374***

चाहे नापाक कह लो; गन्दगी का थैला बन्द पड़ा है, चाहे इस देही को परम पवित्र कर लो जिसकी धूलि को सारे तीर्थ भी लालायित रहते हैं कि हमारे अन्दर किसी भी तरीके से उड़कर धूलि पड़ जाये। महात्मा नहीं आते तो हवा के सामने प्रार्थना करते हैं कि हे हवा! अपनी चाल से भी तेज़ चल। सन्त जहाँ से भी निकल जाते हैं, वह धूलि उड़ा कर अपने अन्दर ले आ और हमारे ऊपर से निकल जा ताकि हमारे भी पाप मिट जायें। हम वहाँ नहीं जा सकते, हम जड़ तीर्थ हैं, वे जंगम तीर्थ है, क्योंकि

वे महा पवित्र हो गये, उनके अन्दर परमेश्वर निवास करता है। रहता तो हमारे अन्दर भी है पर हम उसे भूले बैठे हैं।

सो इस प्रकार परसराम वज़ीर वापिस चला गया, जा कर कहने लगा, राजन! मैं क्या बताऊँ? मैं बोल नहीं सकता, कुछ कह नहीं सकता। वहाँ तो बात ही कुछ और हो गई। कहने लगे, पहले मैंने बाग देखा, लहलहा रहा है। इतनी जल्दी उसमें टहनियाँ भी लग गई, पत्ते भी उग आए। इतना महान करिश्मा! आपका मन नहीं मानता कि कोई करामाती ही बाग को हरा भरा कर सकता है। फिर दूसरी बात मैं करता हूँ कि जो प्रश्न मैं मन में रखकर पूछने के लिये गया था कि यह पूछूँगा ऐसे पूछूगां, मेरी जुबान ही बन्द हो गई। कहता है, मैंने सुना है जिसे आजकल टैलीपैथी कहते हैं कि अन्दर ही अन्दर बात चीत हो जाती है, यह आज तक नहीं थी, मैंने अनुभव किया। मैंने बात की चितवना करनी, मुझे तुरन्त अन्दर से ही जवाब मिल जाना। कहता है वह टैलीपैथी चल पड़ी, बिना बोले ही जवाब मिलता जाता है। अन्दर चितवना कर लो, उसी समय ही जवाब अन्दर से कुछ बोलना शुरू हो जाता है। कहता है, यह भी मैंने देखा, जुबान बन्द हो गई। यह तो परमात्मा ही आकर बैठ गया। तुम्हें मैं सच-सच बताऊँ, चाहे मैं वैष्णव हूँ, मैं गुरू नानक का प्यारा नहीं, पर जिसे मैंने आज देखा है, मैं सौ प्रतिशत कहता हूँ कि वे गुरू नानक हैं, दूसरा कोई नहीं है। कहता है, अन्दर से स्वत: फूटता है कि परमात्मा आ गया धरती पर, मेरा मस्तक उनके चरणों से लग गया। रसना से मैं क्या बताऊँ, मैं तो बोल कर बता ही नहीं सकता -

कहु कबीर गूंगै गुड़ु खाइआ पूछे ते किआ कहीऐ॥ ***पृष्ठ - 334***

क्या बताए गूंगा गुड़ खाकर कि यह क्या है, इसका स्वाद कैसा है? कहता है मैं नहीं बता सकता। मुझे इतना पता है कि मेरा तन मन शीतल हो गया। जब चला था, भ्रम में भूल भुलैया में था, अब तक भी मुझे ऐसे स्वाद से भरे हुए सांस आ रहे हैं कि मैं किसी को बता नहीं सकता। ऐसी बात मैंने आज तक देखी नहीं थी। कहने लगा, वचन एक ही करते हैं कि प्यारे! जिसने संसार को सजाया है ***'सभना जीआ का इकु दाता सो मै विसरि न जाई।' (पृष्ठ - 2)*** मत भूलो उसे, याद रखो, भूलो मत। उसके अन्दर सुरत रखो, उसकी याद हृदय में बसाओ। उसकी हजूरी महसूस करो, अकेला 'राम राम' 'वाहिगुरू वाहिगुरू' ही मत करो। गुरू से पूछो नाम जपने की क्या युक्ति होती है -

राम राम सभु को कहै कहिऐ रामु न होइ।
गुर परसादी रामु मनि वसै ता फलु पावै कोइ॥ ***पृष्ठ - 491***

कहते हैं राम कहने में एक भेद है और एक विचार है -

कबीर राम कहन महि भेदु है तामहि एकु विचारु।
सोई रामु सभै कहहि सोई कउतकहार॥ ***पृष्ठ - 1374***

वही कौतुकहार हो जाता है और वही पार कर देता है। कहता है वहीं जाकर मुझे कुछ ज्ञान हुआ कि हजूरी में नाम जपा जाता है। हम तो सूने मन से ही जपते थे, मन कहीं, शरीर कहीं, जुबान कहीं चलती है। उसने महसूस करवा दिया कि तेरे चौगिर्दे, चारों ओर अन्दर बाहर, एक ही ज्योति है, उसके अन्दर बस, उसके अन्दर गोता लगाकर कह 'वाहिगुरू'। रूखा-रूखा मत कह और हाज़िरी महसूस कर, जन्म मरण का बन्धन छूट जायेगा। वाहिगुरू से प्यार कर। प्यारे! वह प्यार से वश में आता है। कहता है फिर मैंने देखा कि वह तीन चार दिन से निराहार है। शरीर पर कोई असर नहीं, कोई जल्दी नहीं है। बहुत मीठा बोलते हैं, कलेजा निकाल कर ले जाते हैं। साथ ही सहज नाम का मसखरा, जो

राजाओं ने रखा होता है, कहने लगा महाराज! मुझे क्या पूछते हो? मैं बौद्धी हूँ, मैं सुना करता था समाधि-समाधि-समाधि, लेकिन कभी अनुभव नहीं किया था। मैं क्या कहूँ, मेरा मन करता है कि जो महात्मा बुद्ध ने नहीं बताया था, उससे चार कदम आगे बढ़कर वे बता रहे हैं। यह बौद्ध अवतार आ गया, वही आ गये जो कहा करते थे, हम आयेंगे कलयुग में उद्धार करने के लिये और मैं तो तन मन से उसी का हो गया, मेरी समाधि लग गई। और तो और, ये जो चंचल नारियाँ हम लेकर गये थे, इनकी भी वहाँ पर जाते ही समाधि लग गई। इन्हें हाव-भाव भूल गये। देखो, नेत्रों में कितना रस है। जो आपने भेजी थीं, वही हैं कि कोई और हैं?

उस समय राजा कहने लगा, यह तो ठीक है पर महापुरुषों के कुछ चिन्ह हुआ करते हैं। जिसे पहले कभी न देखा हो, उन चिन्हों से पहचाना जाता है।

एक बार एक राजा था, उसके सन्तान कोई नहीं थी। सन्तान न होने के कारण उसने ज्योतिषियों से पूछा कि बताओ उसके सन्तान कब होगी?

वे बोले, तेरे सन्तान नहीं होगी। संसार में चार चीज़ें हुआ करती हैं - धर्म होता है, अर्थ होता है, कामना होती है और मोक्ष पदवी होती है। हाथी के पैर में सभी कुछ आ जाता है यदि इन चीज़ों को प्राप्त करने की इच्छा हो, तो यह साधन अपनाना पड़ता है -

धारना - जे तैं चार पदार्थ लैणे,
सेवा कर लै साधूआं दी - 2, 2
मेरे पिआरे, सेवा कर लै साधूआं दी - 2, 2
जे तैं चार पदार्थ लैणे,.........2

चारि पदारथ जे को मागै। साध जना की सेवा लागै।
जे को आपुना दूखु मिटावै। हरि हरि नामु रिदै सद गावै॥ ***पृष्ठ - 266***

कहने लगे, राजन! एक ही तरीका है। जो भाग्य में किस्मत में नहीं होता, वह साधु महात्माओं से हमें प्राप्त हो जाया करता है क्योंकि जो बात वेदों में लिखी गई है, ज्योतिष शास्त्रों में लिखा गया है, उसे यदि मिटाने की समर्था है तो वह साधुओं में हुआ करती है और उनकी महिमा को वेद भी नहीं जानते। तू साधुओं की सेवा किया कर, कोई महापुरुष आ जायेगा। परमेश्वर ने दिया तो सभी को होता है, जैसी जिसकी डयूटी लगी होती है, वैसा ही कार्य उसे दिया जाता है। जैसे कोई डाक्टर है, कोई इन्जिनियर है, कोई कुछ है आदि आदि। सभी को अपनी-अपनी डयूटी मिली हुई है। ऐसे ही किसी को कीर्तन का रस दिया है, किसी को बिमारियाँ दूर करने का बल दिया है, किसी को दुनियाँ के दुख दलिद्र दूर करने का बल दिया है, किसी को अपना शरीर पावन करने का बल दिया है। कोई न कोई साधु आ जायेगा जिसका कहना परमेश्वर भी मानेगा। सो तू साधुओं की सेवा कर, सत्संग समागम कर, अपने आप ही आ जायेंगे। अत: इस राजा ने सत्संग करने के लिये तथा सन्तों के रहने के लिए बहुत सुन्दर स्थान बनवा दिया। आने-जाने वाले साधुओं की सेवा करता है, उन्हें वस्त्र देता है, अनेक प्रकार से उन्हें प्रसन्न करता है और जब जाते हैं, उनसे यह प्रार्थना करता है कि महाराज! मेरे घर सन्तान नहीं है, कृपा करो मुझे औलाद बख्श दो। सन्त कहते हैं कि परमेश्वर की लिखी हुई को वही जानता है, जन्म-मरण उसके हाथ में है। ठीक है, तू सेवा किये जा, कोई आ जायेगा - बखशिश करने वाला।

एक दिन पूर्ण वीतराग अवस्था के एक महात्मा आ गये, उनके पास प्रार्थना की। बहुत सेवा की, कई दिन सेवा करते-करते व्यतीत हो गये। बर्तन स्वंय मांजता था, स्वंय ही पंखा झुलाया करता,

चरण धोता। जो असली साधु होते हैं, उन्हें किसी भी वस्तु की जरूरत नहीं हुआ करती, दुनियाँ का कितना बड़ा आदमी क्यों न हो? गरीब के तो वे दास बन जाते हैं, उसे बहुत ऊँचा समझते हैं। गरीब को, बुरे को बुरा नहीं समझते, अपने से अच्छा समझते हैं। यदि कोई घमण्ड दिखाये कि मेरे पास बहुत धन है, मेरा बहुत बड़ा व्यापार है, मेरे पास बहुत ऊँची पदवी है, फिर वे मस्त रहते हैं; कहते हैं, हमने क्या लेना है? –

जो जनु निरदावै रहै सो गनै इंद्र सो रंक॥ *पृष्ठ – 1373*

किसी की खुशामद नहीं किया करते साधु, किसी के आगे हाथ नहीं फैलाते। जो साधु बनकर किसी से कहे कि मेरी प्रशंसा करो, मुझे पैसे दो, मैंने अमुक वस्तु लेनी है, मैंने गुरूद्वारा बनवाना है, मैंने कपड़े सिलवाने हैं; महाराज कहते हैं, वह आदमी मूर्ख है, उसे साधु मत कहो। गुरू नानक की तू सेवा करता है, दुनियाँ के लोगों से मांगता है, शर्म नहीं आती तुझे? तू अपने गुरू से कह –

तीरथ कीए एक फल संत मिले फल चार।
गुरू मिले फल अनेक हैं कहत कबीर बिचारि॥

गुरू नानक को कह कर देख लो सच्चे दिल से कि महाराज, हम तो तेरे सेवक हैं, जैसा भेजता रहेगा वैसा ही प्रयोग करते जायेंगे, हमने मांगना नहीं है, किसी के आगे हाथ नहीं फैलाने बिल्कुल भी, कोई प्रार्थना नहीं करनी। जो मांगने वाला है, महाराज कहते हैं 'कहे नानक सुण बाबर मीर, तुझ से मांगे सो अहिमक फकीर' बाबर से कहते हैं कि वह अहिमक है जो तुझे कहे कि मुझे दे –

नवनिधी अठारह सिधी पिछै लगीआ फिरहि जो हरि हिरदै सदा वसाइ॥ *पृष्ठ – 649*

जिसके हृदय में वाहिगुरू समा गया, उसके 9 निधियाँ, 18 सिद्धियाँ पीछे-पीछे फिरा करती हैं। बादशाह लोग उनके दर पर खड़े होकर मांगते हैं कि मुझे समय दिलवा दो।

महाराज जी सन्त ईश्वर सिंघ जी महाराज! एक बार यहाँ चण्डीगढ़ आये हुए थे। उन दिनों यहाँ के मुख्य मन्त्री सरदार प्रताप सिंघ कैरों थे। मेरे पास आये, कहने लगे मैं विधान सभा में से उठकर आया हूँ, मुझे दर्शन करा दो। मैंने कहा, ऐसे तो महाराज नहीं मिलते। प्रार्थना कर लेते हैं, आगे उनकी मौज। मैं अन्दर चला गया, थोड़ा सा समय से पहले चला गया – आधा एक घंटा। थोड़ा सा खटका किया, महाराज जी तब समाधि में बैठे थे। मैं चुप चाप खड़ा रहा जब दरवाजे का खटका हुआ, महाराज जी ने नेत्र खोले और कहने लगे, क्या बात? मैंने कहा, स. प्रताप सिंघ कैरों आए हैं। चुप चाप नेत्र बन्द कर लिये। मैं बाहर आ गया, अब क्या कहना था? पाँच मिनट के बाद मैं फिर गया। महाराज कहते हैं तुझे क्या बैचेनी हो गई? मैंने कहा, महाराज! प्रताप सिंघ कैरों आए हैं, फिर चुप कर गये। आठ-दस मिनट रुककर फिर गया। उधर वे खड़े हैं, इधर महापुरुष परवाह नहीं कर रहे। बीच-बीच में मैं आता जाता रहा। मैं फिर गया। महाराज कहते, क्या बात? मैंने कहा, प्रताप सिंघ कैरों आए हैं। तीन बार आपने पूछा और कहा कि किसने बुलाया है? तूने कहा होगा। मैंने कहा, नहीं महाराज! मैंने बिल्कुल भी नहीं कहा, मुझे किसी को कहने की क्या जरूरत है, कोई आये या न आए? जिसके कर्म होंगे वह आ जायेगा, जिसका भाग्य नहीं खुला, वह नहीं आयेगा। महाराज जी! मैं किसी से नहीं कहता। हाँ, जिज्ञासु को ज़रूर कहता हूँ कि एक बार सत्संग में आ, वचन सुन, यह गुरू का हुक्म है –

................आपि जपै अवरह नामु जपावै॥ *पृष्ठ – 306*

स्वंय भी जपे तथा दूसरों को भी प्रेरणा करके लाए, उसके अन्दर भला होता है।

कहने लगे, ''कितने आदमी हैं?''

''महाराज! 14 हैं, तेरह पहले खड़े हैं और वे चौदहवें हैं। फिर जो पहले नम्बर पर खड़ा है उसे पहले भेजो, पहले वाला पहले, पीछे वाला बाद में।''

मैंने स. प्रताप सिंघ कैरों को कहा कि इस तरह का हुक्म हुआ है। अब आप सलाह कर लो।

कहते हैं, नहीं, नहीं, हुक्म अनुसार ही चलना है। मेरा कौन सा नम्बर है?

एक, दो, तीन.......गिनती की। मैंने कहा तेहरवां नम्बर है आपका। लाईन में खड़े हो गये। अब यदि तीन मिनट भी एक व्यक्ति लगाता है तो 42 मिनट लग जायेंगे। वह व्यक्ति जिसे एक सैकिण्ड की भी फुर्सत नहीं थी, आखिर अपनी बारी पर ही अन्दर गया।

अतः सन्तों को किसी की परवाह नहीं हुआ करती; बड़ा आ जाये या छोटा आ जाये, एक ही नज़र हुआ करती है उनकी, क्योंकि सभी कुछ उनके हाथ में रहता है –

जा का कहिआ दरगह चलै। सो किस कउ नदरि लै आवै तलै॥ *पृष्ठ - 186*

सो यह राजा बर्तन मांजा करता था, सेवा करता था, पंखा झुलाता था, वस्त्र धोया करता था। एक दिन महापुरुष बोले, ''तेरी सेवा से हम प्रसन्न हैं, तेरे चित्त में कोई भावना है?''

''हाँ जी।''

''बताओ।''

''महाराज! मेरे सन्तान कोई नहीं है, एक पुत्र की दात बख्श दो।''

''एक नहीं, दो होंगे, दो पुत्र देते हैं तुझे। एक को राज भाग में लगा लेना, वह तेरी निशानी होगी। एक पुत्र से बन्दगी करवाना ताकि तेरे वंश का उद्धार हो जाये, अन्यथा बुराई लगती है –

जिह कुलि पूतु न गिआन बीचारी। बिधवा कस न भई महतारी॥ *पृष्ठ - 328*

जिस कुल में ज्ञान की विचार वाला कोई पुत्र नहीं है, वह माँ तो विधवा हो जानी चाहिए। जाओ तुझे हम उधर से भी छुड़वाते हैं। फिर तू पुत्र को राज पाट देकर बन्दगी करना।'' हुक्म हो गया।

''महाराज! मुझे परम पद का ज्ञान कौन करवायेगा?''

''इस पद का ज्ञान – एक महात्मा है, जिनका नाम जड़ भरत है, घूमते फिरते आ जायेंगे।'' जैसे गुरू नानक पातशाह की राजा शिवनाभ प्रतीक्षा कर रहा है, उसी तरह से वह भी प्रतीक्षा करने लगा।

''महाराज, मैं तो उसे जानता ही नहीं हूँ।''

महाराज कहते हैं, जीवन मुक्त अवस्था है उनकी। न हर्ष है, न शोक, न कमी का कोई भय है, न लाभ की कोई खुशी है –

तैसा हरखु तैसा उसु सोगु। सदा अनंदु तह नही बिओगु।
तैसा सुवरनु तैसी उसु माटी। तैसा अंम्रितु तैसी बिखु खाटी।
तैसा मानु तैसा अभिमानु। तैसा रंगु तैसा राजानु।
जो वरताए साई जुगति। नानक ओहु पुरखु कहीऐ जीवन मुकति॥ *पृष्ठ - 275*

कहते हैं, वह जीवन मुक्त अवस्था का प्रेमी है और मोटी-मोटी बातें मैं बता देता हूँ कि उसके अन्दर

हठ नहीं है, वे सदा ही आत्म चिन्तन करते रहते हैं। ज्ञान के पाँच फल होते हैं, वे पाँचों ही उनके पास हैं। पहला फल है कि एक तत्व को, आत्म तत्व को कभी नहीं भूलता साधु। बेशक बातें करते रहें कि मैंने ऐसे कहा था मैंने वैसे कहा था; 'मैं' केवल कहने के लिये ही है, लेकिन वे सदा पूर्ण आत्म ज्ञान में रहते हैं, काम चलाने के लिये 'मैं' 'तूं' की बोली बोलते हैं। दूसरी बात यह है कि उनकी कोई तृष्णा, वासना नहीं हुआ करती। तीसरा यह कि वे किसी वाद-विवाद में, खण्डन मण्डन के झमेलों में नहीं पड़ते, किसी को बुरा नहीं कहते, सभी को परमेश्वर रूप ही जानते हैं। श्रद्धापूर्वक पूछ लो तो वचन कह देते हैं, ऐसे ही नहीं किसी को घटिया किसी को बढ़िया वचन करते। चौथा बताते हैं कि वहाँ दुख का अभाव होता है। किसी प्रकार का भी दुख वहाँ नहीं होता। जो क्लेश हैं - अविद्या, अस्मिता, अभिनिवेश, राग और द्वैष, ये पाँचों वहाँ नहीं हुआ करते, इनका अभाव रहता है। पूरी तरह से सदा प्रसन्न चित्त रहते हैं। ये पाँच फल हुआ करते हैं - जीवन मुक्त पुरुष के। अत: जब इस प्रकार के स्वभाव वाला कोई आ जाये तो समझ लेना कि वह जड़ भरत है।

इस प्रकार राजा ने साधुओं की सेवा जारी रखी। उनकी परीक्षा करने के लिये कुछ टैस्ट बनाये, उसने पिंजरे में एक तोता रख लिया, उसे बहुत पढ़ाया, हर प्रकार की पढ़ाई सिखाई और जब किसी महापुरुष ने आना, तोते ने पहले स्तुति करनी, उसके बाद उसने कहना कि नाम की महिमा बताओ महाराज, पहले जो महात्मा आए थे उन्होंने बताया था कि नाम की महिमा क्या होती है। जो नाम जपता है, वह जन्म मरण से मुक्त हो जाता है जैसे सुखमनी साहिब की पहली अष्टपदी फिर दूसरी तथा तीसरी में नाम की महिमा बताई गई है -

प्रभ कै सिमरनि गरभि न बसै। प्रभ कै सिमरनि दूखु जमु नसै।
प्रभ कै सिमरनि कालु परहरै। प्रभ कै सिमरनि दुसमनु टरै।
प्रभ सिमरत कछु बिघनु न लागै। प्रभ कै सिमरनि अनदिनु जागै॥ *पृष्ठ - 262*

सभी महात्माओं ने उसे सुनाना सभी ने उस तोते को कहना कहना कि मैं भी तो महापुरुषों के दर्शन करता हूँ। सारा दिन 'राम राम' कहे जाता हूँ पर मेरा निश्चय कुछ बदला हुआ है। वह यह है कि मेरा तो पिंजरा ही नहीं टूटा, मैं तो इसी के अन्दर कैद हूँ। मेरा जन्म मरण से छुटकारा कैसे हो? पूरे महात्मा आ गये - जड़ भरत। उन्हें भी प्रार्थना की। उन्होंने इशारे से ही समझा दिया, तू सांस खींच कर पड़ जा। तोते का हृदय पहले ही शुद्ध हो चुका था, तभी समझ गया, बता दिया कि तू सांस खींच कर पड़ जा, बस आँख भी मत खोलना। इशारे से ही बता दिया - आखों पर हाथ रख कर, कि ऐसे आखें बन्द कर लेना और सांस जोर से अन्दर को खींच लेना। नकल कर ली उसने और राजा ने देखा कि महात्मा आ गये और यह तोता उनका स्वागत क्यों नहीं कर रहा? नौकर से कहा, जाकर देख, तोता बोलता क्यों नहीं? जब तोता नहीं बोला तो स्वंय उठकर गया। वह कहते हैं महाराज! तोता तो कुछ बीमार है, पता नहीं क्या बात है, यह तो नेत्र ही नहीं खोलता। कहते हैं, खुली हवा में रख देते हैं इसे। खुली हवा में लाकर रख दिया और जब तोते ने देखा कि मेरे आस पास कोई नहीं है, उड़ान भर कर नीम के पेड़ पर जा बैठा। कहता है, धन्य हो महाराज! धन्य हो, आप आए हैं जिन्होंने मुझे पिंजरे से मुक्त कर दिया। ठीक है, परमेश्वर का नाम जो है वह जीवन मुक्त कर देता है, यमों के पंजों में से छुड़ा देता है। यह राजा ने भी समझ लिया कि वही महात्मा आ गये जिनकी मुझे प्रतीक्षा थी। बहुत सेवा की और बोले, महाराज! बहुत अच्छा हुआ कि आप ठीक समय पर आ गये। यह देखो, नीम का वृक्ष खड़ा है, इसे सेर-सेर पक्के आम लगते थे। बड़े साधु महात्मा आते हैं, अब आप 6 महीने यहीं पर ही रहो। जड़ भरत ने कोई हठ नहीं किया, कोई बात नहीं की और यह भी नहीं कहा कि राजन! ये तो

सभी नीम ही हैं, इन्हें आम नहीं लगते। पहले सभी साधु महात्मा कहते थे, राजन! इन नीम के वृक्षों को आम नहीं लगते, निबौलियाँ लगती हैं। उन्होंने कुछ भी नहीं कहा, न ही कोई बात की, न ही वाद-विवाद में पड़े। जब राजा ने देख लिया कि वह तो वास्तव में ही जड़ भरत हैं, उस समय उसने प्रार्थना की कि महाराज! मुझे जीवन मुक्ति का उपाय बताओ।

वह कहने लगे, राजन! जीवन मुक्ति नाम के अधीन है, प्रभु के नाम में से पैदा होती है। तुझे बहुत समय हो गया नाम जपते-जपते। जब से सन्तों की संगत की है, तू नाम जपता चला आ रहा है, तुझे उच्च अवस्थाएं प्राप्त हो चुकी हैं। अब जो तत्व है, इसके अन्दर परम तत्व है, उसकी तू खोज कर।

कहने लगे, देख, जो बादाम होता है और यदि हमने बादाम में से बादाम रोगन निकालना हो तो पहले ऊपर का हिस्सा तोड़ना पड़ता है, फिर उसके बाद लाल रंग का बादाम निकल आता है, फिर उसे पानी में भिगोकर ऊपर का छिलका उतार लेते हैं, फिर सफेद रंग निकल आता है, फिर जब इसे विधि पूर्वक रगड़ते हैं, उसमें से बादाम रोगन निकलता है। फिर जो फालतू की चीज़ें हैं, बादामों का बुरादा है, उसे हम फैंक देते हैं। कहने लगे, इसी तरह से अपना जो शरीर है, यह तीन गुणों में से पैदा हुआ है। जिस वस्तु को हम निर्गुण कहते हैं, वह त्रिगुणातीत है। तू अपने स्वरूप को समझ। शरीर की तीन पर्तें हैं - एक पाँच तत्वों का स्थूल शरीर, एक इसमें पाँच कर्मेंद्रियां पाँच ज्ञानेद्रियाँ, पाँच प्राण, मन, बुद्धि, चित्त तथा अहमभाव का सूक्ष्म शरीर, एक है कारण शरीर। जीवात्मा पर पांच पर्दें, पाँच गिलाफ (cover) चढ़े हुए हैं - पांच कोश, इनके क्रमश: नाम आनन्दमयी कोश, विज्ञानमयी कोश, मनोमय कोश, प्राणमय कोश तथा अन्नमयी कोश; इन्होंने उस आत्म तत्व को ढका हुआ है। इन्हें धीरे-धीरे दूर कर दे। पहले तो तू अपनी देह में देख, तू क्या है? इस देह का आधार प्राण हैं। पाँच तत्व, 25 प्रकृतियां, पांच कर्मेन्द्रियाँ, इनका आधार प्राण है। जब प्राण निकल जाते हैं, देह ऐसी नहीं रहती, गिर जाती है, क्योंकि उसका आधार निकल गया। प्राणों का आधार मन है। मन प्राणों को हरकत देता है। मन का आधार बुद्धि है, बुद्धि का आधार चित्त है, चित्त का आधार अहमभाव है। सभी का आधार परिपूर्ण आत्मा है। अब जो आधार ऊपर बताये गये हैं, उन्हें तू फोकट समझ कर फैंक दे और अपने निज स्वरूप में चला जा। तुझे तुरीया अवस्था प्राप्त हो जायेगी। अधिकारी था, उसी समय उसे तुरीया अवस्था प्राप्त हो गई, जीवन मुक्ति की प्राप्ति हो गई।

अत: परसराम वज़ीर कहने लगा, महाराज! हमने भी सुना है कि जब कोई पूर्ण सन्त आ जायें तो कुछ निशानियाँ होती हैं। इस तरह पड़ो -

धारना - साहिब चित्त आउंदा है,
सन्तां दे दर्शन करके - 2, 2
सन्तां दे दर्शन करके, - 2, 2
साहिब चित्त आउंदा है,..........2

आवै साहिबु चिति तेरिआ भगता डिठिआ।
मन की कटीऐ मैलु साध संगि वुठिआ।
जनम मरण भउ कटीऐ जन का सबदु जपि।
बंधन खोलन्हि संत दूत सभि जाहि छपि।
तिसु सिउ लाइन्हि रंगु जिस दी सभ धारीआ।
ऊची हूं ऊचा थानु अगम अपारीआ।
रैणि दिनसु कर जोड़ि सासि सासि धिआईऐ।
जा आपे होइ दइआलु तां भगत संगु पाईऐ॥ ***पृष्ठ - 520***

कहते हैं कि यदि सन्तों के दर्शन हो जायें तो कुछ निशानियाँ हुआ करती हैं। पहली निशानी हुआ करती है कि अन्दर से अपने आप ही वाहिगुरू-वाहिगुरू, राम-राम, अल्लाह-अल्लाह होने लग

सभी, किसी ने भी किसी से कोई बात न करना, अपने आप ही वाहिगुरू-वाहिगुरू होने लग जाता, अन्दर ही अन्दर और इसी आनन्द में सन्त महापुरुषों के दर्शन करते। जितने भी रूहानी प्रश्न पूछने के लिये सोचते थे, महापुरुषों ने जब प्रवचन करना, सभी कुछ भूल जाया करते थे, सभी प्रश्नों, शंकाओं का दर्शन करते ही समाधान हो जाता। अन्दर नाम धुन सुनने लग जाती और प्यार में आकर्षण पैदा हो जाती।

राजा शिवनाभ के मंत्री परसराम ने कहा, महाराज! जो महापुरुष बाग में आकर विराजे हैं, वह कोई पाखण्डी, भेषी साधु नहीं बल्कि पूर्ण महापुरुष हैं। स्वंयमेव ही हृदय के अन्दर आकर्षण पैदा होता है, अपने-अपने से लगते हैं। एक ही वचन करके शान्त कर देते हैं। दृष्टि करते हैं तो तन और मन दोनों को आकृष्ट करते हैं, बुद्धि की चंचलता शान्त हो जाती है। मैंने जो कुछ निर्णय किया है, वह यह है कि ये गुरू नानक जी ही हैं। जो दो साथी हैं उनके साथ, वे भी पूरे हैं। आम साधुओं से बहुत उच्च तथा महान हैं। जब भी बात करते हैं, पहले कहते हैं कि तुझे करतार चित्त आये, फिर बात करते हैं।

अब समय इजाजत नहीं देता सारे प्रेमी गुर सतोतर, आनन्द साहिब मे बोल कर रसना पवित्र करो फिर अरदास में शामिल हो।

- ***आनन्द साहिब*** -

- ***गुर सतोतर*** -

- ***अरदास*** -

6

शान..।
धंन श्री गुरू नानक देव जीओ महाराज।

डंडउति बंदन अनिक बार सरब कला समरथ।
डोलन ते राखहु प्रभू नानक दे करि हथ॥ *पृष्ठ-256*

फिरत फिरत प्रभ आइआ परिआ तउ सरनाइ।
नानक की प्रभ बेनती अपनी भगती लाइ।। *पृष्ठ - 289*

धारना - राखहु राखणहारु दइआला,
नानक घर के गोले जी - 2, 2
नानक घर के गोले जी,
नानक घर के गोले जी - 2, 2
राखहु राखणहारु दइआला,........-2

तुम दाते ठाकुर प्रतिपालक नाइक खसम हमारे।
निमख निमख तुमही प्रतिपालहु हम बारिक तुमरे धारे।
जिहवा एक कवन गुन कहीऐ।
बे सुमार बेअंत सुआमी तेरो अंतु न किनही लहीऐ।
कोटि पराध हमारे खंडहु अनिक बिधी समझावहु।
हम अगिआन अलप मति थोरी तुम आपन बिरदु रखावहु।
तुमरी सरणि तुमारी आसा तुमही सजन सुहेले।
राखहु राखनहार दइआला नानक घर के गोले॥ *पृष्ठ - 674*

साध संगत जी! गर्ज़ कर बोलो 'सतनाम श्री वाहिगुरू' कारोबार संकोचते हुए आप गुरू दरबार में पहुँचे हो। भादों की संक्रान्ति के दिन हम यहाँ एकत्रित हुए हैं। चित्त वृत्तियों को एकाग्र करो। शब्द में बोला करो, जब हम शबद में बोलेंगे तो इसका बेअन्त फल प्राप्त होगा -

कई कोटिक जग फला सुणि गावनहारे राम॥ *पृष्ठ - 546*

कई करोड़ यज्ञों के फल की प्राप्ति होती है। इससे सुखों के वरदान प्राप्त होते हैं, विघ्नों का नाश हो जाता है, रूका हुआ कार्य, कारोबार फिर चल पड़ता है, निराशा समाप्त हो जाती है, रोज़गार मिल जाता है, ऐसा महाराज फ़रमान करते हैं। अत: कानों को बाणी सुनने में लगाओ, मन को शबद में टिकाओ, बुद्धि को विचार करने में लगाओ और हृदय में धारण करो फिर इसके बाद जब बारी आए तो खूब गर्ज़-गर्ज़ कर बोला करो क्योंकि महाराज जी का ऐसा फ़रमान है -

धारना - कन्नी सुणीए गुरां दी बाणी,
जीभा नाल नाम जपीए - 2, 2
मेरे प्यारे, जीभा नाल नाम जपीए - 2, 2
कन्नी सुणीए गुरां दी बाणी,........-2

रे मन राम सिउ करि प्रीति। स्रवन गोबिंद गुनु सुनउ अरु गाउ रसना गीति।।पृष्ठ - 631

कानों से श्रवण करो, जिभ्या के साथ गाओ -

करि साध संगति सिमरु माधो होहि पतित पुनीत॥ पृष्ठ - 631

साधु की संगत तथा सत्संग करके, वाहिगुरू का नाम जप कर करोड़ों जन्मों के तेरे पाप नष्ट हो जायेंगे? ऐसा करने में देर मत कर क्योंकि समय का कोई विश्वास नहीं होता। आज समय अच्छा है, कल को बुरा आ जाये, किसी को नहीं पता थोड़ी देर में क्या हो जाये? आप हर रोज़ देखते हो, मनुष्य को एक सैकिण्ड पहले का पता नहीं होता और पलक झपकते ही पता नहीं लगता कि क्या घटित हो जाता है। महाराज कहते हैं जो काल है, यह मनुष्य के चौगिर्दे घूम रहा है, जैसे बिल्ली शिकार के लिए घूमती रहती है।

चित्त में यह बात बिठा ले और समझ ले कि काल का बिल्ला घूम रहा है, शिकारी घूम रहा है, पता नहीं किस समय गोली चला दे और मनुष्य का अन्त हो जाये -

धारना - तेरे काल ने गुलेला मारनै,
चोगा चुगदे दे - 2, 2
मेरे प्यारे, चोगा चुगदे दे दे - 2, 2
तेरे काल ने गुलेला मारनै..........-2

कालु बिआलु जिउ परिओ डोलै मुखु पसारे मीत।
आजु कालि फुनि तोहि ग्रसि है समझि राखउ चीति॥ पृष्ठ - 631

प्यारे! इस बात को कभी मत भूलना कि पता नहीं काल ने कब गुलेल चला देनी है? इससे पहले-पहले तू भजन कर ले। सत्संग कर ले, चित्त लगाकर कर ले। जब चित्त लगाकर हम सत्संग करेंगे, हमारे करोड़ों पापों का नाश हो जायेगा। *'करि साध संगति सिमरु माधो होहि पतित पुनीत'* पवित्र हो जायेगा। अतः यह जो थोड़ा बहुत समय सत्संग प्राप्त करने का मिला है, पूरे दिल से मन को एकाग्र करके श्रवण करो।

पिछले कई दिनों से अति विस्तार पूर्वक प्रसंग चल रहा है, वह यह है कि गुरू नानक पातशाह संगलादीप, लंका के पास बहुत से टापुओं का एक संगल सा है, बहुत से छोटे-छोटे टापू हैं, वहाँ एक गुरसिख गया, जिसका नाम भाई मनसुख था। उसके वचन सुनकर, वहाँ का राजा शिवनाभ, उसके मन में गुरू नानक देव जी के प्रति प्यार उत्पन्न हो गया लेकिन दूरी बहुत अधिक है, तीन-चार हज़ार मील का फासला है। गुरू नानक पातशाह राय भोंय की तलवन्डी में हैं और वह लंका में है, लेकिन प्यार जाग पड़ा। भाई मनसुख ने यह कह दिया कि गुरू नानक पातशाह को तुम यहीं पर ही याद करो, वह अपने आप ही यहाँ पहुँच जाएंगे, क्योंकि आप समरथ गुरू हैं, हर स्थान पर जा सकते हैं। सो इसके मन में वैराग पैदा हो गया। गुरू नानक पातशाह के दर्शन करने के लिए अति विकल होता है, बहुत वैराग करता है। खाना पीना छोड़ दिया, लगन लग गई, वैराग पैदा हो गया।

जिसके ह्रदय में वैराग पैदा नहीं होता, वह जीवित नहीं होता, वह तो मुर्दा होता है। मरा हुआ किसी काम का नहीं होता, पत्थर समान होता है। महाराज कहते हैं पत्थर से भी नीचा होता है -

बिरहा बिरहा आखीऐ बिरहा तू सुलतानु।
फरीदा जितु तनि बिरहु न ऊपजै सो तनु जाणु मसानु॥ पृष्ठ - 1379

ऐ वैराग, ऐ विरहा! तू सारे साधनों का बादशाह हैं अन्य सभी साधन तेरे से नीचे हैं, तू सबका

बादशाह हैं क्योंकि तू जल्दी से जल्दी परमात्मा से मिला सकता है। कोई धर्म कर्म, वाहिगुरू तक नहीं पहुँचा सकता। यदि कोई तप करे तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता। परमात्मा ने कब कहा है, तू तप कर। तप करते काफी समय बीत जाता है पर परमात्मा नहीं मिला करता। यदि वैराग पैदा हो जाये, आकर्षण पैदा हो जाये, हृदय के अन्दर, तो इस तरह समझ लो कि एक हवाई जहाज का सफर है तो एक बैल गाड़ी का सफर है। इतना अन्तर पड़ जाता है।

सो गुरू नानक पातशाह भाई बाला जी से कहने लगे, "भाई बाला! चलो संसार को देखने चलें।"

"क्यों महाराज? कोई याद कर रहा है?"

"हाँ, याद भी करते हैं। चलो, हम भी दर्शन करेंगे और दर्शन देंगे भी।" अतः चलते-चलते महाराज लंका में, संगलाद्वीप में पहुँच गये लेकिन उनसे पहले बहुत से पाखण्डी साधु राजा शिवनाभ को धोखा देकर, अपने आपको गुरू नानक बताकर गये। राजा बेचारा बहुत परेशान होता है कि असली गुरू नानक कौन सा हुआ क्योंकि उसने दर्शन तो किये नहीं थे, वे लोग उसे धोखा दे रहे थे। उसने उनकी परख करने के लिये सुन्दरियों की सेवा ली। उसने उन्हें बहुत अच्छे-अच्छे वेतन दिए और कहा कि उनका काम कोई भी साधु महात्मा आए उसे नीचे गिराना, पतित करना, शराब पिलानी, मांस खिलाना तथा अन्य हर प्रकार के यथा सम्भव लालच देकर उसे पथ विचलित करना था और जो लालच में न आए जिसके दर्शन करने से आपका चित्त शान्त हो जाये, उसके बारे में मुझे बताना। यह आदेश राजा ने सुन्द्रियों को दे रखा था।

अतः गुरू नानक पातशाह जब संगलाद्वीप पहुँचते हैं तो वहाँ पर एक सूखे बाग में जाकर बैठ जाते हैं। चार साल से वह बाग सूखा पड़ा हुआ था। चरण रखने की देर थी कि उसी समय हरा-भरा हो गया, वृक्षों में नई-नई टहनियाँ निकल आईं, पत्ते उग आए, बाग लहलहाने लग पड़ा, हवा के झौंके के साथ टहनियाँ लहलहाती हैं। सभी हैरान रह गये कि जैसे ही यह साधु आकर बैठे, उसी समय बाग हरा भरा हो गया। चार दिन बीत गये। राजा ने अपने वज़ीर के साथ मोहिनियों को भेजा कि जाकर सन्त की परीक्षा लो। वे जब गुरू महाराज जी के पास आईं तो गुरू महाराज कहने लगे, "पुत्रियो! ये काम अच्छे नहीं हुआ करते, बुरे कर्म हैं ये।" दृष्टि डालकर शान्त कर दीं, फिर परसराम जो उनके साथ वज़ीर था, उसने जाकर बताया, "महाराज! गुरू नानक पातशाह आ गये हैं, उनके आते ही बाग हरा भरा हो गया। उन्होंने चार दिन से कुछ भी खाया पीया नहीं, निराहार हैं, भोजन नहीं खाया पर चेहरे पर कोई मलाल नहीं। ऐसा लगता ही नहीं कि चार दिन से कुछ भी न खाया हो, सभी के चेहरे चमक-दमक रहे हैं, आकर्षण पैदा होता है और अपने आप ही मन करता है परमेश्वर का नाम लें। महाराज! मैं वैष्णव हूँ, यह मेरा चित्त करता है कि मैं इनकी शिक्षा धारण कर लूँ क्योंकि सन्तों की निशानियाँ हुआ करती हैं, साध संगत जी! जब असली सन्त आ जाते हैं, वहाँ पर विकार नहीं आया करते, वहाँ पर परमात्मा ही चित्त में आया करता है। इस तरह फ़रमान है -

धारना - साहिब चित्त आउंदा है,
सन्तां दे दर्शन करके - 2, 2
सन्तां दे दर्शन करके - 2, 2
साहिब चित्त आउंदा है.............-2

सन्तों के दर्शन करने का बहुत बड़ा फल हुआ करता है। कई बार एक साखी में आपने सुना

है। एक प्रेमी को गुरू नानक पातशाह ने बताया, ''भाई! तू प्रातः काल वहाँ जाना, तुझे वहाँ पर जाकर पता चलेगा कि सन्तों के दर्शनों का क्या लाभ होता है?'' अमृत बेला में गुरसिख उठा, रोही का टीला था, वहाँ चला गया। उगते हुए सूर्य की ओर मुँह करके, पेड़ के नीचे खड़े होकर देखने लग गया कि कोई आकर उसे बतायेगा। कोई भी न आया। घंटा भर प्रतीक्षा करने के बाद वापिस लौट आया। कहने लगा, ''पातशाह! कोई भी बताने वाला नहीं आया।'' गुरू महाराज ने कहा, ''कल फिर जाना। तुझे वहाँ कुछ दिखाई नहीं दिया?'' कहने लगा, ''एक कौओं का जोड़ा बैठा था - वृक्ष पर, वही काँव-काँव कर रहा था।'' गुरू महाराज ने कहा, ''कल फिर जाना। पौ फटने से पहले जाना और सूर्य निकलते ही वापिस लौट आना।'' दूसरे दिन वह फिर गया, वहाँ पर देखता है बगुले बैठे हैं। आकर महाराज जी को बता दिया। महाराज कहते हैं फिर जाना एक बार। तीसरे दिन फिर गया वहाँ पर हंस बैठे थे। कहता है, ''महाराज! आज हंस बैठे थे।'' महाराज बोले, ''कल फिर जाना।'' चौथे दिन जब वह गया तो क्या देखता है कि दो देवता बैठे हैं। वे देवता गुरसिख के चरणों में आकर गिर पड़े और कहने लगे, ''धन्य है गुरसिख, तू धन्य है, तेरी साधना धन्य है, सफल है।'' कहता है, ''हैं! मैं तो गरीब सा सिख हूँ।''

वे बोले, ''गुरसिख! तू गरीब नहीं है। तेरे दर्शन हमने किये। हम पहले दिन कौवे थे, दूसरे दिन बगुले बने। तीसरे दिन हंस बन गये। आज चौथे दिन तेरे दर्शनों का फल इतना मिला कि तू गुरू नानक पातशाह के दर्शन करके आया हैं, तेरे दर्शनों का ही इतना फल मिला कि हम कौवों से बगुले बने और बगलों से हंस और फिर हंसों से देवता बन गये हैं।''

सो महाराज जी फ़रमान करते हैं कि साधुओं के दर्शनों का ऐसा फल मिलता है। साधु सही हो, संशयों की निवृत्ति हो जाती है। उनके अन्दर मन में ज्ञान की ज्योति जग रही होती है। बाकी सभी के अन्दर बुझी रहती है। मन में घटाटोप अन्धेरा होता है। महाराज कहते हैं -

इहु सरीरु सभु धरमु है जिसु अंदरि सचे की विचि जोति॥ *पृष्ठ - 309*

परन्तु महात्मा ने खोज करके उस ज्योति को ढूँढ लिया होता है, इसलिये उनका शरीर पवित्र, उनके दर्शन पवित्र, उनकी दृष्टि पवित्र होती है। साधुओं के दर्शनों का स्वतः सिद्ध फल होता है। जो भी श्रद्धा से आता है, वही विश्वास वाला व्यक्ति अनेक फल ले जाता है। सो महाराज कहते हैं *'आवै साहिबु चिति तेरिआ भगता डिठिया' (पृष्ठ - 520)* वाहिगुरू चित्त में आ जाता है। अपने आप ही वाहिगुरू-वाहिगुरू होने लग जाता है, सन्तों के पास आकर विकार नहीं उठते, साधुओं के साथ आकर मन्द बातों के विचार नहीं उठा करते, परमेश्वर का भजन होने लग जाया करता है। जब भजन होने लग जाये, वाहिगुरू-वाहिगुरू होने लग जाये फिर अन्दर जो मैल लगी होती है विषय विकारों की, वह मैल उतरनी शुरू हो जाती है -

मन की कटीऐ मैलु साध संगि वुठिआ॥ *पृष्ठ - 520*

फिर क्या होता है? जब मनुष्य के मन की मैल उतर गई, फिर इसे अपने आत्म स्वरूप के दर्शन हो जाते हैं। जब आत्मा के दर्शन हो गये फिर परमात्मा के दर्शन हो जाते हैं। जब मन की मैल उतर जाती है तो हउमै का अन्धकार मिट जाता है फिर 'मैं-मैं' नहीं करता। 'मैं-मैं' वही करता है जिसने यमदूतों के पास जाना होता है, जिसने जन्म मरण के चक्कर में पड़ना होता है -

हउमै एहा जाति है हउमै करम कमाहि।
हउमै एई बंधना फिरि फिरि जोनी पाहि॥ *पृष्ठ - 466*

क्योंकि 'मैं-मैं' करता है - मैंने यह किया, मैंने वो किया मेरा परिवार बहुत बड़ा है, मेरे पास

इतनी जमीन जायदाद है, मेरे पास इतना धन है। 'मैं' और 'मेरी' का भ्रम पड़ा हुआ है, इसी 'मैं' तथा 'मेरी' के अलगपन के भाव को 'हउमैं' कहते हैं। यह जिसके अन्दर हो, उसे सजा मिलती है जन्म मरण की -

धारना - जंमदा ते मरदा है, हउमै दा बंनिआ होइआ - 2, 2
हउमै दा बंनिआ होइआ - 2, 2
जंमदा ते मरदा है..............-2

'हउमै एहा जाति है हउमै करम कमाहि। हउमै एई बंधना फिरि फिरि जोनी पाहि॥' (पृष्ठ - 466)
यह जो मैल लगी हुई है, यह हमें जन्म मरण के चक्कर में से बाहर नहीं निकलने देती। पैदा होंगे, मर जायेंगे, फिर पैदा होंगे मर जायेंगे। कभी कुछ बन गये तो कभी कुछ जब सन्तों की संगत मिल जाती है फिर 'वाहिगुरू-वाहिगुरू' होने लग जाता है, 'राम- राम' होने लग जाता है फिर अन्दर जो मैल लगी हुई है जैसे कि-

जनम जनम की इसु मन कउ मलु लागी काला होआ सिआहु॥ पृष्ठ - 651

वह मैल उतरनी शुरू हो जाती है। वह जब कम होने लग जाती है, फिर इसका हृदय इसका अन्तसकरण निर्मल हो जाता है, पापों से रहित हो जाता है। जब पाप कोई भी न रहा, कर्म भी कोई न रहा -

गुर का सबदु काटै कोटि करम॥ पृष्ठ - 1195

जन्म मरण समाप्त हो जाता है। महाराज कहते हैं -

जनम मरण भउ कटीऐ जन का सबदु जपि॥ पृष्ठ - 520

महापुरुषों का, गुरूओं का दिया हुआ शबद, पाँच प्यारों द्वारा दिये गये मन्त्र का जप करके, जन्म-मरण की मैल उतारी जाती है, जन्म मरण का डर (भय) दूर हो जाता है। फिर ये जो बन्धन पड़े हैं, बड़े-बड़े बन्धन पड़े हैं - पाँच क्लेश हैं, पाँच बन्धन हैं। इन बन्धनों को सन्त काट दिया करते हैं-

बंधन खोलन्हि संत दूत सभि जाहि छपि॥ पृष्ठ - 520

यमदूत भाग जाते हैं और जो काल के बन्धन पड़े हुए हैं, जंजीरे पड़ी हुई हैं, उन्हें साधु काट देते हैं। युक्ति बता देते हैं कि इस तरह से खोल ले फिर जब बन्धन खुल गये फिर दूत भागते हैं कि अब कहीं फस न जायें -

तिसु सिउ लाइन्हि रंगु जिस दी सभ धारीआ।
ऊची हूं ऊचा थानु अगम अपारीआ॥ पृष्ठ - 520

फिर वह वाहिगुरू जी के साथ *'जिस दी सभ धारिआ'* जिसने सारी सृष्टि, करोड़ों ब्रह्मण्डों को धारण किया हुआ है, उनके साथ प्यार पैदा कर देते हैं। **जो संसार है, यह माया से प्यार करता है, जो साधु हैं वे परमेश्वर से प्यार करवाते हैं** फिर बहुत ऊंचा स्थान मिल जाता है -

रैणि दिनसु कर जोड़ि सासि सासि धिआईऐ।
जा आपे होइ दइआलु तां भगत संगु पाईऐ॥ पृष्ठ - 520

हर श्वांस में, ध्यान वाहिगुरू का रखो। यदि वाहिगुरू की कृपा हो जाए तो सन्तों की संगत मिल जाती है अन्यथा व्यक्ति सत्संग में जाने के लिये तैयार होकर भी फिर घर में बैठ जाता है। कोई पुण्य जागता है तो साधु के दर्शन होते हैं क्योंकि महाराज का फ़रमान है -

पूरब करम अंकुर जब प्रगटे भेटिओ पुरखु रसिक बैरागी॥ पृष्ठ - 204

जब कर्म जग पड़ते हैं, फिर कोई साधु महात्मा मिल जाता है -

मिटिओ अंधेरु मिलत हरि नानक जनम जनम की सोई जागी॥ पृष्ठ - 204

सो इस प्रकार जब गुरू महाराज आकर बाग में बैठ गये परसराम वज़ीर अपने राजा से कहने लगा, ''महाराज! उस साधु को देखते ही एक दम अन्दर से परमेश्वर का नाम निकलना शुरू हो गया, बिना जपे ही अपने अन्दर से नाम जपना शुरू हो गया। दूसरे जब उनके वचन सुने तो मेरा तो दिल करता कि मैं उनका शिष्य बन जाऊँ। वह तो वास्तव में ही गुरू नानक हैं।

राजा शिवनाभ कहने लगा, ''कहीं भ्रम न हो, तुमने अच्छी तरह से पक्की तसल्ली कर ली है?''

वज़ीर ने कहा, ''हाँ महाराज! हमने पक्की तसल्ली कर ली है और हमने उनका नाम भी पूछा, सवाल भी बहुत किये -

गुसाईं तेरा कहा नामु कैसे जाती।
जा तउ भीतरि महलि बुलावहि पूछहु बात निरंती॥ गुरू नानक प्रकाश (पृष्ठ - 992)

हमने कहा, ''गुसांई जी, आप अन्दर बैठे हो और हमें भी अन्दर बुला लो, तुम्हारे साथ बातें करना चाहते हैं, तुम्हारा नाम पूछना चाहते हैं।'' महाराज ने बाग में बनी कुटिया का दरवाज़ा खोल दिया। छोटी सी कुण्डी लगी हुई थी। कहने लगे, आ जाओ, आ जाओ अन्दर आ जाओ और अन्दर पहुँच कर हमने तीन प्रश्न किये।

''आप जोगी हैं? क्योंकि वहाँ पर जोगी ही आया करते थे, ब्राह्मण भी आते थे। आप जोगी हैं या दुकानदार हैं या ब्राह्मण हैं? बताओ तो सही आप कौन हैं?''

महाराज कहने लगे, ''देखो भाई! जोगी जानते हो कौन होता है? **जोगी उसे कहते हैं जो बन्दगी करके परमेश्वर के साथ मिल गया हो। कपड़े पहनने से जोगी नहीं बन जाते।** कपड़े पहनने से तो सब कोई जोगी बन जाता है, सिख भी बन गये कपड़े पहनकर। कहने लगे सिख कपड़े पहनने से नहीं बन जाते सिख की तो बहुत कठोर रहतें (नियमावली) होती हैं जिनका पालन हर हालत में करना होता है -

गुर सतिगुर का जो सिखु अखाए सु भलके उठि हरिनामु धिआवै।
उदमु करे भलके परभाती इसनानु करे अंम्रितसरि नावै।
उपदेसि गुरू हरि हरि जपु जापै सभि किलविख पाप दोख लहि जावै।
फिरि चड़ै दिवसु गुरबाणी गावै बहदिआ उठदिआ हरिनामु धिआवै॥ पृष्ठ - 305

गुरू नानक जी कहते हैं जो गुरू के उपदेशों पर चलते हैं, अमृत बेला में जागते हैं, स्नान करते हैं तथा हर समय नाम जपते हैं, वे सिख होते हैं। भेष धारण करके तो बेअन्त सिख हो सकते हैं। भेष धारण किया देखकर, सिखी का भ्रम पैदा होता है कि सिख है। जब पूछते हैं तब पता चलता है कि वह तो सिगरटें भी पीता है, जरदा भी खाता है, वह सिख कैसे हो गया? उसने गुरू के वचनों को क्या मानना है, अभी तो बाहरी वचन ही इसने नहीं माने। यदि पूछें कि अमृतपान किया हुआ है? तो कहता है नहीं। फिर अमृतपान किये बिना तू सिख कैसे बन गया? तेरा तो गुरू के साथ सम्बन्ध ही नहीं बना। केवल शीश झुकाए जाता है। जब तक तू अमृतपान नहीं करता, तू किसी का बना ही नहीं,

जब गुरू ने तुझे नाम देना है फिर गुरू की जिम्मेवारी हो जायेगी, तुझे नरकों में नहीं जाने देगा।

गुरू नानक देव जी ने फ़रमाया, ''परसराम जी! आप जानते हैं कि जोगी कौन होता है, उसकी मर्यादाएं क्या होती हैं? भेष देखकर जोगी कहना यथार्थ नहीं है।''

परसराम वज़ीर हैरान रह गया। ऐसा प्रश्न तो आज तक किसी ने भी मुझ से किया ही नहीं था। कहने लगा, ''महाराज! आप ही बता दो फिर जोगी कौन होता है?''

गुरू नानक पातशाह ने कहा कि नाम जप कर जिसके अन्तसकरण की मैल उतर गई, निर्मल हो गया और जो प्यार के साथ वाहिगुरू के साथ जुड़ गया, वह जोगी पापों की मैल से रहित होता है। बाकी को जोगी नहीं कहते हैं इस तरह पड़ लो -

धारना - जिहड़ा जाणै जोग दी जुगती,
असली जोगी उह ही है - 2, 2
असली जोगी ओही है, - 2, 2
जिहड़ा जाणै जोग दी जुगती,.......-2

कहने लगे, ''वज़ीर साहिब! जो इकतारा (एक तार वाला साज) लेकर बजाता फिरता है, वह जोगी नहीं होता, जो घर-घर जाकर झोला लेकर मांगता फिरता है वह जोगी नहीं होता। जोगी वह होता है जो वाहिगुरू के साथ मिल जाये और वाहिगुरू जी को सदा अंग संग अनुभव करता है -

जोगी जुगति नामु निरमाइलु ता कै मैलु न राती।
प्रीतम नाथु सदा सचु संगे जनम मरण गति बीती॥ *पृष्ठ - 992*

मामूली सी भी जिसके अन्दर मैल नहीं रहती -

सो वजीर कहने लगा, ''फिर तो आप ब्राह्मण होंगे?''

महाराज कहते हैं, हमें तो कोई फर्क नहीं पड़ता कि ब्राह्मण कौन है और जोगी कौन है? जात में ब्राह्मण नहीं हुआ करता। **ब्राह्मण वह हुआ करता है जिसने घट-घट में व्यापक परमात्मा को जान लिया तथा जो ब्रह्मज्ञान के अमृत सरोवर में स्नान करता है, हरि के गुण गाता है और सभी के घट-घट में वाहिगुरू को देखता है, हम उसे ब्राह्मण कहते हैं।** तुम किसे ब्राह्मण कहते हो? इस तरह फ़रमान करते हैं-

धारना - ब्राह्मण देखदै, सारिआं जीआं विच वाहिगुरू - 2, 2
सारिआं जीआं विच वाहिगुरू - 2, 2
ब्राह्मण देखदै सारिआं जीआं विच वाहिगुरू- 2

कहने लगे, ''वज़ीर परसराम जी! आप ब्राह्मण किसे कहते हो? जात वाले को ब्राह्मण कहते हो, जिसने जनेऊ पहना होता है तिलक लगाया होता है, चोटी रखी होती है। वह तो ब्राह्मण नहीं होता। ब्राह्मण तो वह है जो हर एक के अन्दर वाहिगुरू को देखता है और ब्रह्मज्ञान में स्नान करता है -

ब्रहमणु ब्रहमु गिआन इसनानी हरि गुण पूजे पाती।
एको नामु एकु नाराइणु त्रिभवण एका जोती॥ *पृष्ठ - 992*

जो सभी के अन्दर वाहिगुरू की ज्योति को पहचानता है, हम उसे ब्राह्मण कहते हैं। हम उसे ब्राह्मण नहीं कहते जो तुमने बताया है।''

साध संगत जी! सन्त महाराज अतर सिंघ जी मस्तुआणे वाले, हजूर साहिब से वापिस आ रहे थे। उनके साथ एक सेवक था। रास्ते में जब विन्ध्याचल पहाड़ में से गुज़र रहे थे, वहाँ एक शेर खड़ा

था। उस सेवक ने जब शेर देखा, इतना घबरा गया कि गला खुश्क हो गया, बोल नहीं निकले, पैर चलते नहीं, टांगे काँपने लग गईं, भाग कर एक वृक्ष पर चढ़ गया। सन्त महाराज जी आगे-आगे बढ़ते जा रहे हैं और जब शेर के पास पहुँचे, शेर उन्हें सूँघने लग गया। उसके बाद पूँछ हिलाने लग गया। जब पूँछ हिलाये तो इसका मतलब होता है कि वह मित्र है शत्रु नहीं। जब पूँछ तान ले तो समझो हमला करेगा। वह बिल्ली की तरह पूँछ हिलाता जा रहा था। सन्त जी इसी तरह नाम जपते-जपते आगे निकल गये और जब शेर जंगल में चला गया फिर वह सेवक पेड़ पर से उतर कर महापुरुषों से जाकर मिला, बहुत घबराया हुआ था। महापुरुष कहते हैं, ''क्या बात?'' ''महाराज! शेर आ गया था, तुम्हारे पास से निकला, मेरी तो बोलती भी बन्द हो गई, गला खुश्क हो गया, आपको भी न बता सका, मैं तो वृक्ष पर चढ़ गया।'' महापुरुष कहने लगे, ''कहाँ आया था?'' महाराज वह देखो पीछे। महापुरुष मुस्कराने लग पड़े। कहने लगा, ''महाराज! आपने शेर नहीं देखा?'' महापुरुषों ने कहा, ''तेरे वाला शेर तो नहीं देखा हमने, फिर आपने क्या देखा?'' हमें तो गुरू नानक साहिब के अतिरिक्त और कुछ दिखाई ही नहीं देता। जिधर भी देखते हैं, वही एक ही नज़र आता है। इस प्रकार फ़रमान है -

धारना - तूंही तूंही मोहिना, तूंही तूंही मोहिना - 2, 2

सन्त जी कहने लगे, ''प्रेमी! तूने शेर देखा, इसलिये तुझे शेर दिखाई दिया। हमने गुरू नानक देखा है हमें गुरू नानक दिखाई दिया। नज़रों में फर्क है।'' महाराज! हमारे नेत्र गलत हैं? हाँ, इन पर एक पर्दा पड़ा हुआ है ये असली चीज़ नहीं देख सकते, नकली चीज़ नज़र आती है। पर वे नेत्र और होते हैं, जिन्हें गुरू खोलता है -

गुरहि दिखाइओ लोइना।
ईतहि ऊतहि घटि घटि घटि घटि तूंही तूंही मोहिना॥ *पृष्ठ - 407*

इस प्रकार गुरू महाराज कहने लगे, ''प्यारे! ब्राह्मण तो वह होता है जो घट-घट में व्याप्त परमेश्वर को देखता है।

परसराम वज़ीर कहने लगा, ''महाराज, फिर आप वनजारे हो? इस देश में कोई व्यापार करने के लिये आये हो? महाराज कहते हैं, ''वनजारा जानते हो किसे कहते हैं?''

''महाराज! वही जो सामान लाकर बेचते हैं, इधर से सामान ले जाकर उधर बेचते हैं, उन्हें हम वनजारा कहते हैं।''

हम भी वनजारे हैं पर वैसे नहीं जैसे तुमने बताया। हमारे पास तराजू भी है, हमारे पास डण्डी भी है, सामान भी हमारे पास है, हर समय तोलते भी रहते हैं एक सैकिण्ड के लिये भी खाली नहीं बैठते। **हम हैं वनजारे परमेश्वर के नाम के और हमारी जो जीभ है, यह तो है डण्डी, जो शरीर है यह है हमारा छाबा (पलड़ा) और तोलते है हम सिमरण के साथ, हर वक्त तोलते हैं, वाहिगुरू-वाहिगुरू करके और दुकान हमारी जो है जैसे तुम बैठे हो इसे सत्संग रूपी दुकान कहते हैं। इसमें बैठकर हम हरि का नाम तोलते हैं, जो सबसे महान परमेश्वर है, हम उसके वनजारे हैं।** आपने फ़रमान किया -

जिहवा डंडी इहु घटु छाबा तोलउ नामु अजाची।
एको हाटु साहु सभना सिरि वणजारे इक भाती॥ *पृष्ठ - 992*

हम इस संसार के वनजारे हैं।

वज़ीर हैरान रह गया कि किसी भी बात का कोई स्त्रोत नहीं पता चलता। बड़ी हैरानी जनक

बातें कर रहे हैं कोई पता ही नहीं लग रहा फिर सवाल कर दिया, ''महाराज! आप गृहस्थी हो या त्यागी?''

महाराज फिर मुस्करा दिए। कहने लगे, ''प्यारे! साधु तथा गृहस्थी में तू अन्तर जानता है। **चाहे गृहस्थी हो या त्यागी हो, साधना सम्पन्न होकर जिसने अज्ञान का नाश कर लिया, वही गृहस्थी है चाहे वह साधु है, उसके दोनों ही सिरे पूरे हो जाते हैं।** कहते हैं हमारे दोनों सिरे निपट गये। न अब तुम हमें गृहस्थी कहो और न ही हम भ्रम में हैं। जिसकी लिव लग जाए, वही इस बात को जानता है। जन्म मरण जो दो सिरे हैं, हमने दोनों ही गुरू की कृपा से पूरे कर दिये। अब हमारे हृदय में शबद बस गया और हमें जो भ्रम था कि यह संसार और है तथा वाहिगुरू और है, वह समाप्त हो गया और अब हम दिन रात करोड़ों ब्रह्मण्डों के मालिक की सेवा करते हैं जो सभी का पालनकर्ता, एक ही दाता अनेक रूप धारण करके, भिखारी मंगता भी है, महानदानी बिन मांगे ही दान देने वाला भी है। गुरू शबद की धुनकार सभी ब्रह्मण्डों में गूंज रही है - सोहम की, औंकार की, ऐकंकार की, वाहिगुरू की धुन का हृदय में प्रकाश हो रहा है। यहाँ और कोई है ही नहीं, वही मालिक आदि में भी स्वंय ही था, देश, काल, वस्तु के प्रकाश में आप ही है, अब सारा दृष्टिमान, अदृश्यमान जो कुछ भी है वह स्वंय ही है जब सारा स्थूल आलोप हो जाये फिर भी वह स्वंय ही रहता है। अतः इस सत्य की गुन्जार पड़ रही है। अन्धकार नष्ट होकर पूर्ण ज्योति सभी दिशाओं, सभी साधनों में, अन्दर, बाहर, वनों, पानी, हवा, अग्नि, सूर्य, चन्द्रमां, तारों में प्रकाशित हो रही है। गृहस्थी त्यागी कहाँ रह गया, जब स्वंयमेव ही है और आपने फ़रमान किया है -

दोवै सिरे सतिगुरू निबेड़े सो बूझै जिसु एक लिव लागी जीअहु रहै निभराती।
सबदु वसाए भरमु चुकाए सदा सेवकु दिनु राती॥ ***पृष्ठ - 992***

दिन रात वाहिगुरू-वाहिगुरू का संगीतक नाद बज रहा है। फिर परसराम जी कहने लगे, ''महाराज! एक बात तो बताओ आपका गुरू कौन है?''

महाराज कहने लगे, ''हमारा गुरू पूछता है, प्यारे?''

इस बात की बहुत ही चर्चा है कि गुरू नानक देव जी के गुरू कौन थे? कई कहते हैं कि गुरू नानक साहिब के गुरू कबीर साहिब थे। गुरू नानक साहिब कभी भी अपने गुरू को छिपाते ना। गुरू नानक पातशाह का गुरू हो और हम उसे छिपाते फिरें। गुरू तो हमारा -

ऊपरि गगनु गगन परि गोरखु ता का अगमु गुरू पुनि वासी।
गुर बचनी बाहरि घरि एको नानकु भइआ उदासी॥ ***पृष्ठ - 992***

यह जो दसवां द्वार है, इसके ऊपर परमेश्वर है जो इस शरीर में प्रकट होता हुआ, सभी घटाओं में कुदरत के कण-कण में ज्योति रूप हुआ कौतुक कर रहा है ***'अगम गुरू पुनि वासी'*** उसकी गमता तो कोई नहीं जानता वह हमारा गुरू है प्यारे! ***'गुर बचनी बाहरि घरि ऐको'*** हम बाहर भी एक ही, घर में भी एक ही का ध्यान धरते हैं। 'नानक भइआ उदासी' घर तथा बाहर अपने परम गुरू को एक ही करके फिर हम उदासी हो गये हैं। इस प्रकार फ़रमान करते हैं -

धारना - घर बाहर ओ, इको जाणिआ - 2, 2
पिआरे, नानक भइआ उदासी - 2, 2
नानक भइआ उदासी संगते, इको जाणिआ,
घर बाहर ओ, इको जाणिआ - 2

कहने लगे, ''वज़ीर साहिब! न तो हमें घर में रहने से कोई फर्क पड़ता है, न ही बाहर रहने में कोई अन्तर दिखाई देता है। हमारा सर्व व्यापक मालिक हर जगह एक ही है। हर स्थान पर परमेश्वर है भाई! 'नानक भइआ उदासी' जब नाम सुना 'नानक' खुशी की सीमा ही न रही। चरणों में गिर कर नमस्कार करता है और कहता है मिल गये नानक पातशाह। पहले तो पाखण्डी ही मिलते रहे, एक नहीं, बेअन्त पाखण्डी बेअन्त नकली नानक बनकर आ जाते थे।

अत: वज़ीर उसके पश्चात राजा शिवनाभ से जाकर मिला, खुशी छा गई। शिवनाभ को जाकर बताया, ''महाराज! उन्होंने अपना नाम भी बता दिया - नानक भइआ उदासी।''

राजा कहने लगा, ''वज़ीर साहिब देखो, पहले भी जितने आए, वे भी यही कहते थे कि मैं नानक हूँ। इस समय मैं बेअदबी कर रहा हूँ। मैं अपने गुरू की और परीक्षा लेना चाहता हूँ। मैं क्या करूं? मेरा पवित्र मस्तक एक बार किसी बुरे व्यक्ति के चरणों में जा गिरा था। तभी से मैं पश्चाताप करता आ रहा हूँ कि मैंने तो यह मस्तक केवल गुरू नानक के चरणों में झुकाने के लिये पवित्र रखा हुआ था, पाखण्डियों को यह मस्तक नहीं झुकाना था। इसलिये मैं डरता रहता हूँ कहावत है 'दूध का जला छाछ को भी फूंक मार-मार कर पीता है' परसराम, क्योंकि मैं धोखा खा चुका हूँ इसलिये मैं एक परीक्षा और लेना चाहता हूँ।''

''वे तो पूर्ण हैं क्या परीक्षा लोगे राजन!'' फिर भी राजा शिवनाभ बोले, देखो जो 16 से 18 साल तक की सुन्दर मोहिनियाँ हैं, इन्हें पूरे श्रृंगार के साथ सन्त के पास ले जाओ और उन्हें वहाँ छोड़ आओ। ये हाव-भाव बनाकर उन्हें रिझायेंगी, फिर देखते हैं उन पर क्या प्रतिक्रिया होती है। यह परीक्षा बहुत कठिन है साध संगत जी! वैसा ही किया गया। गुरू नानक साहिब के पास मोहिनियाँ चली गईं, कोई कैसे हाव-भाव बनाती तो कोई कुछ पातशाह ने देखा और कहने लगे, ''बेटियो! ये क्या कर रही हैं आप? ठीक है हार श्रृंगार किये हुए हैं तुमने, पर ये हार श्रृंगार करके जो चंचल तथा कामुक वृत्ति तुमने धारण की है, वह नरकों में ले जाने वाली वृत्ति है, इन हार श्रृंगारों से काम वासना पैदा होती है और काम वासना वाला प्राणी नरक में जाता है। हम हार श्रृंगार को बुरा नहीं मानते पर यदि ये मन में विकार पैदा करे तथा शरीर को पीड़ा पहुँचाए तो फिर ये किस काम के? असली श्रृंगार तो रूह का हुआ करता है जो आनन्द की खुमारी हर समय देता है। यदि तुम चाहती हो तो वैसा श्रृंगार धारण कर लो फिर तुम्हें जो प्रभु है वह प्यार करेगा। जब तक तुम आन्तरिक गुण ग्रहण नहीं करतीं, तब तक परमात्मा के साथ मेल नहीं हुआ करता।

कहने लगी, ''वे कौन से हार श्रृंगार हैं? क्या आपके देश में उन्हें पहनते हैं?'' क्योंकि अभी तक ये लोग गुरू महिमा से हीन थे, अभी तक गुरू महाराज जी पर पूर्ण विश्वास नहीं हुआ था। महाराज जी ने कहा, ''बेटियो! यदि रूह सुन्दर हो तो सुन्दरता की झलक अन्दर बाहर लगती ही रहेगी। वास्तविक शालीनता भली सुन्दरता सबका मन मोह लेगी तथा अन्दर से ही रस फुहार के कण रसिया बना देंगे -

मनु मोती जे गहणा होवै पउणु होवै सूत धारी॥ ***पृष्ठ - 359***

हर प्राणी मात्र में श्वांस चलते हैं। इन श्वासों को सूत बनाओ जो हार पहनते समय मोतियों के मनकों में डाला जाता है। श्वांस दिन रात बे-रोक टोक चलते रहते हैं इन्हें प्राण भी कहते हैं। श्वांस अन्दर को जाता है उस समय परमेश्वर का नाम रख दो, जब बाहर आए तो भी खाली मत आने दो।

उन श्वासों के साथ वाहिगुरू-वाहिगुरू करते जाओ फिर यह गहना जंचता है और परमात्मा को हाज़िर-नाज़िर समझो, धैर्य का शृंगार करो जो सारी दुनियाँ को मोह ले। जिस व्यक्ति के हृदय में क्षमा तथा धीरज हो, वह तो सारी दुनियाँ को मोहित कर लेता है। शत्रुओं को भी मोह लेता है। बेटियो! प्रभु नाम का हार पहनो। इस हार में बहुत सी बरकतें हैं। जन्म मरण के पापों ने हमारे अन्तसकरण को मलीनता की मैल लगाकर बदबूदार बना दिया है। नाम का हार पहनते ही करोड़ों पापों का नाश हो जायेगा। यह जो समस्त जगत में ओत-प्रोत, रमा हुआ परमात्मा है, हर एक के अन्दर है, हर एक के बाहर है, उसे सदा ही हाज़िर-नाज़िर जानना दन्दासा है जैसे चमकते हुए दाँत सुन्दर लगते हैं, इसी प्रकार प्रभु को हाज़िर जानना शोभायमान लगता है। पुत्रियो! जो कंगन तुमने पहने हुए हैं, उन्हें तुम करतार के समझ कर पहनो, ये कर्म जाल का नाश करने वाले हैं। जो अंगूठी है, यह सिफत सलाह (स्तुति) की पहनो। वह साहिबों का जो साहिब है, उसकी हर समय स्तुति (प्रशंसा) करो। इस प्रकार जब तुम ऐसा हार शृंगार करोगी, धीरज का शृंगार पहनोगी, परमात्मा को हाज़िर-नाज़िर देखोगी फिर वाहिगुरू तुम्हारे इस हृदय की सेज पर आयेगा, मन मन्दिर में, हृदय की सेज पर तुम्हें प्यार करेगा। उसका आना और तुम्हें प्यार करना, तुम्हारी जिन्दगी में परिवर्तन ला देगा और तुम्हारे पापों का नाश कर देगा। सो अपने मन मन्दिर में दीपक जगा लो ताकि प्रकाश हो जाये। नाम का दीपक जलाओ और अपनी काया की सेज बना लो। इस प्रकार फ़रमान करते हैं -

धारना - मन मंदर विच ओ, वासा राम दा - 2, 2
आपे सारीआं घटां दे विच वसदा - 2, 2
मन मंदर विच ओ, वासा राम दा - 2

महाराज जी ने ज्ञान की बात बहुत उच्च कोटि की बात समझाने का यत्न किया है पर वे चंचल मन थीं, उनकी ऐसी अवस्था नहीं थी, विषय विकारों में वृत्ति गुलतान रहती थी। वे रखीं ही इसलिये थीं कि साधु महापुरुषों को उनके पथ से विचलित करें। सो महाराज कहते हैं -

मनु मोती जे गहणा होवै पउणु होवै सूत धारी।
खिमा सीगारु कामणि तनि पहिरै रावै लाल पिआरी॥ पृष्ठ - 359

फिर वाहिगुरू को रूच जाती हैं -

लाल बहु गुणि कामणि मोही॥ पृष्ठ - 359

तेरे गुण बहुत हैं और कामिनी तेरे गुणों पर मोहित हो गई-

तेरे गुण होहि न अवरी। हरि हरि हारु कंठि ले पहिरै दामोदरु दंतु लेई॥ पृष्ठ - 359

वाहिगुरू को परिपूर्ण देखकर दातों का मन्जन कर तथा परमात्मा के नाम का धागा गले में डाल ले -

कर करि करता कंगन पहिरै इन बिधि चितु धरेई।
मधुसूदनु कर मुंदरी पहिरै परमेसरु पटु लेई।
धीरजु धड़ी बंधावै कामणि स्रीरंगु सुरमा देई॥ पृष्ठ - 359

परमात्मा के प्यार का नेत्रों में सुरमा डाल ले -

मन मंदरि जे दीपकु जाले काइआ सेज करेई।
गिआन राउ जब सेजै आवै त नानक भोगु करेई॥ पृष्ठ - 359

बेटियो! मन मन्दिर में ज्ञान का करोड़ों सूर्यों से भी अधिक प्रकाश देने वाला दीपक जलाओ।

काया की सुन्दर प्यार भरी सेज बिछाओ। जब ज्ञान स्वरूप परमात्मा इस सुन्दर सेज पर निवास करेंगे, फिर अति उत्तम आत्म भोग के महान रस की प्राप्ति होगी। इस रस को प्राप्त करके सभी विषयों के रस ज़हरीले तथा कड़वे प्रतीत होंगे, फिर वाहिगुरू प्यार करेगा।

सुन्दरियाँ बहुत चंचल थीं। गुरू नानक जी की बात तो सुन ली लेकिन चंचलता दूर न हुई। हर एक आदमी को यह बात समझ में नहीं आती। बहुत से प्रेमी यहाँ पर भी बैठे होंगे जिन्हें यह पवित्र और महान उपदेश, ज्ञान समझ में नहीं आया होगा। पर वे तो गुरू नानक पातशाह थे। गुरू नानक पातशाह ने सब पर दृष्टि कर दी, अकेली-अकेली पर दृष्टि कर दी। सभी के नेत्रों से गुरू नानक पातशाह के नेत्र मिल गये। जिसके नेत्र मिल जाते, वह धड़ाम से धरती पर बैठ जाती और नेत्र बन्द कर लेती। सभी ने नेत्र बन्द कर लिये, गुरू की कृपा दृष्टि क्या थी, सभी के नेत्रों से मोतियाबिन्द निकाल कर प्रकाश कर दिया। उन कन्याओं का हृदय शुद्ध हो गया, अन्दर किसी महान सुख का स्पर्श हुआ। सभी चंचल भाव समाप्त हो गये। अपने आप ही गुरू नानक के चरणों पर झुक गईं, गुरू प्यार हृदय में जाग पड़ा। गुरू नानक सारे संसार के सम्बन्धियों से निकट अपने अपने से प्रतीत होने लगे। शरीर के रोम-रोम में झरनाहटें उठीं। नेत्रों में एक अति पवित्र और उच्च खुमारी पहली बार प्रतीत हुई। कोई धुन हृदय में उठी, स्वंयमेव ही वाहु-वाहु वाहु......गुरू.......वाहि.......गुरू.....गुरू-गुरू-गुरू, तू ही, तू, तू ही तू। कभी ऐसी मीठी खुमारी किसी ने भी महसूस नहीं की थी। इस प्रकार दृष्टिमान भूलने लग गया। समय रुक गया भूत भूल चुका था, भविष्य आ नहीं रहा था, वर्तमान ही वर्तमान था। सामने प्रकाशमयी रस फुहारों से मस्त होती हुई सुरत स्थिर हो गई। 'तूं ही प्रभु हैं' यही अनुभव टिका हुआ था। 'मैं' की अपने आप ही याद बिल्कुल अलोप हो चुकी थी। शरीर बिल्कुल सीधे ऊंचे उठते हुए प्रतीत होते थे। झूम रहे थे। बची कुची सुरत आन्तरिक धुन के साथ नृत्य कर रही थी तथा अन्दर ही अन्दर समाती जा रही थी। कभी किसी अफ़ूर अवस्था के जोगी ने भी इस आनन्द को महसूस नहीं किया होगा। अपने मन को किसी सूने निर्जीव पर टिका लिया होगा, परन्तु यह अवस्था जोगियों को भी प्राप्त नहीं होती, न ही ज्ञानी इस प्रेम भरी जीती जागती अवस्था का आनन्द लूट सकते हैं। गुरू महाराज जी के मुखारविन्द से अचानक शबद निकला "राजकुमारी पुत्रियो! विषयों का मण्डल ज़हरीला विष से भरा हुआ, सुरत के नरक के दुखों में फैंकने वाला होता है। प्यार का मण्डल परम शान्त, सुखों से भरा हुआ होता है, परम आनन्द का वासी बनाने वाला है। इस अमूल्य रतन को सम्भालो। आईं तो थीं मोहनियाँ बनकर, पतित करने के लिये, चंचलता से भरी हुईं। परन्तु अवस्था प्राप्त हो गई जोगियों जैसी। अब हाव-भाव कौन दिखाये? कौन मन्द नेत्रों से बाण चलाएं? चंचल नेत्रों का पता ही नहीं चला कहाँ आलोप हो गये? वास्तविक दिव्य नेत्र खुल गये। अन्दर से ही मस्त करने वाली सुगन्धियाँ, वातावरण को सुगन्धित कर रही हैं। कान अब बाहर की बेकार की बातें नहीं सुन रहे, इसके विपरीत अति मीठी धुन आत्मिक संगीत की धुनकारें बज रही हैं। रसना ने ऐसे अकह रस का स्वाद कभी चख कर ही नहीं देखा था। सुरत अन्दर ही अन्दर ऊचाईयों पर उड़ानें भरती हुई, सभी कुछ भूल चुकी है। बाहरी ज्ञान बिल्कुल भी न रहा। धीरे-धीरे नेत्रों की पलकें बन्द हो गई और अफ़ूर समाधियाँ लग गई। अन्दर ही अन्दर मस्त समाधि लग गई। साध संगत जी, गुरू नानक देव जी कोई ऐसे वैसे साधु नहीं थे। जब आप मक्का की जिआरत करने के पश्चात बगदाद पहुँचे, ईराक में, जहाँ राजधानी है, वहाँ पर आप नदी के किनारे बैठे थे। वहाँ पर बगदाद में दस्तगीर नामक बड़ा पीर था, उसका एक चेला भारत से होकर गया था। गुरू नानक पातशाह के पास आया। जब निकट आया तो उस समय मरदाना रबाब बजा रहा था, धीमी-धीमी रबाब की सुर पर गुरू नानक पातशाह बड़े ही रहाउ में पढ़ रहे थे -

पाताला पाताल लख आगासा आगास।

ओड़क ओड़क भालि थके वेद कहनि इक वात।
सहस अठारह कहनि कतेबा असुलू इकु धातु।
लेखा होइ त लिखीऐ लेखै होइ विणासु॥ **पृष्ठ - 5**

कहने लगा, ''इतना कुफ्र! इतना झूठ? क्योंकि जो कट्टरपंथी होता है, साध संगत जी! वह अपने अन्धेरे की कैद में से बाहर नहीं निकलना चाहता - कोई भी है चाहे किसी भी धर्म का है। जो कुछ उसने जान लिया होता है, कहता है, वही बात दूसरे भी जानें और मानें। जो कुछ उसने जान लिया है, वही ठीक है, दूसरे का ज्ञान गलत है। यह कट्टरपंथियों की स्वाभाविक कमज़ोरी है। इस्लाम वाले यह कहा करते थे कि सात आकाश और सात ही पाताल हैं। कुछ हिन्दू भी कहते थे कि सात आकाश और सात पाताल हैं। यह काफिर कौन आ गया?'' वह मुरीद पीर के पास चला गया। पीर एक महान करामाती था। दस्तगीर उसका नाम था उसे जाकर बताया, ''पीर जी! गज़ब हो गया। शरां की धज्जियाँ उड़ गईं। एक हिन्दू फकीर आया है, नदी के किनारे बैठा है, तीन व्यक्ति हैं। वे चुनौती देकर कह रहे हैं कि लाखों पाताल हैं, करोड़ों अरबों-खरबों हैं, यदि कोई कहे कि इतने हैं तो लेखा हिसाब-किताब नष्ट हो जाता है। मैं अपने कानों से सुनकर आया हूँ। वह कुफ्र तोल रहा है और बड़ी भारी चुनौती दी है इस इस्लाम मत के मानने वालों को। दूसरी बात यह है कि वह वहाँ पर सरोंद बजाता है, राग गाता है, रबाब बजा रहा है।'' पीर दस्तगीर बोला, ''हैं! मेरे शहर में भी कोई ऐसा आ गया है?'' क्योंकि उन दिनों जैसे हमारे अकाल तख्त का जत्थेदार है, उसी तरह से यह दस्तगीर पीर था। संसार भर के सभी इस्लाम वालों को बगदाद वालों का हुक्म मानना पड़ता था। वहीं पर ही जाकर सभी रूहानी समस्याएं हल होती थीं। अमुक 'आयत' का क्या अर्थ है, इसमें कौन सी समस्या है, इस अमुक बात के बारे में शरां क्या कहती है? आदि-आदि बातें, वहीं पर ही पूछी जाती थीं।

पीर कहने लगा, ''वह यहाँ पर आकर शराँ की धज्जियाँ उड़ा रहा है? कौन है? इस व्यक्ति को संगसार कर दो। शहर में हुक्म दे दो।'' हुक्म की तामील की गई।

संगसार कहते हैं, ''इतने पत्थर मारना कि पत्थरों के ढेर के नीचे आकर दम घुट जाये। अब बगदाद शहर के वासी गुरू नानक को संगसार करने (पत्थर मारने) के लिये चल पड़े। पीर करामाती था, बहुत शक्तियों वाला था, किसी को भी अपने से ऊँचा नहीं समझता था। जब गुरू नानक पातशाह के पास आए तो मरदाना कहने लगा, ''पातशाह! ये तो बुरी नीयत से यहाँ आ रहे हैं, हर एक के हाथ में पत्थर हैं'' -

दिती बाँगि निवाजि करि सुनि समानि होआ जहाना॥ **भाई गुरदास जी, वार 1/35**

नमाज़ पाठ करने के बाद गुरू नानक पातशाह ने बांग लगाई उसी तरह 'इल लिलाह, ला-इल्ला! सत श्री अकाल, गुर बर अकाल!' बात एक ही है, दोनों अर्थ एक ही हैं। वह फारसी में बोलते हैं, इसे पंजाबी में कह देते हैं। यह जो मोहम्मद रसील 'इल्ला' यहाँ गुरू नानक नहीं मानते, कहते हैं, मोहम्मद नहीं है। मनुष्य के किये गये कर्म हैं - अपने अपने। सारी क्रिया, यह तो समाज में स्पर्धा के तौर पर चलता है, दरगाह में नमाज़ नहीं मानी जाती, अपने कर्मों के अनुसार निपटारा होता है। जब 'सत श्री अकाल' की ऊँची आवाज़ वाली बांग, गुरू नानक के पवित्र गले में से निकली, आवाज़ इतनी सुरीली और ज़ोरदार थी कि सभी सुन्न-मुन्न हो गये। जिसका पैर जहाँ पर था वहीं पर ही रुक गया, यदि बाजू उठाई है पत्थर मारने के लिये, तो वहीं की वहीं रुक गई। नेत्र वहीं के वहीं अटक गये, जुबान बोल नहीं सकती, जुबान को ताले लग गये, जैसे जड़ पत्थर होते हैं, ऐसे बुत बन

गये।

पीर ने देखा कि यह क्या हो गया?

महाराज जी ने पीर को खड़ा कर दिया, पीर भी शक्तियाँ दिखाने लगा, पर कुछ भी न बना। सोचने लगा कि मेरी शक्तियाँ तो फीकी पड़ गई। पीर ने देखा कि कोई कलावान दरवेश है। अन्त में जाकर इसने सिजदा किया। कहता है, "फकीर सांई! तू बहुत वली है। इनकी बाजुएं खोल दो, इन मनुष्यों की जड़ता दूर कर दो, ताकि चलने फिरने लग जायें।" गुरू जी ने कहा कि ये पत्थर मारने क्यों आए हैं? बातचीत मौखिक हुआ करती है या पत्थर मारने से? पहले आगे बढ़कर बातचीत करो। अपना इरादा, दृष्टिकोण स्पष्ट करो फिर हमारी बात सुनो, समझने की कोशिश करो, फिर जहाँ मतभेद हो, उसकी बात करो, संशय निवृत्त हो जायेगा भाई! यह कोई दरवेशों को शोभा देता है कि विचारों में मतभेद (Difference of opinion) हो तो पत्थर मार दो?" इस प्रकार महाराज जी ने दृष्टि कर दी। बोले, "फैंक दो पत्थर।" सभी ने पत्थर फैंक दिए, आस पास बैठ गये। महाराज बोले, "क्या बात है? इतने क्रोध में क्यों हो? पीर जी! दरवेशों को वृक्षों जैसे जिगर की जरूरत होती है। तुमने शैतान अन्दर बिठाया हुआ है जो अल्लाह के दरवेश को संगसार करके मारने को कहता है। क्रोध शैतान की फौज़ का सेनापति है। क्या कुफ्र हो गया जिसके कारण तुम अल्लाह को भूल कर अनीति पर चलकर अन्याय करने के लिये तत्पर हो गये?" गुरू महाराज जी ने कहा, "अल्लाह बेअन्त है, इसके पातालों की कोई गिनती नहीं, आकाशों की कोई गिनती नहीं। यदि कोई यह कहे कि इतने आकाश हैं और इतने पाताल हैं, यह कुफ्र है।" पीर ने कहा, "दूसरा तुम सरोंद बजाते हो, राग गाते हो।" महाराज कहते हैं, जब परमात्मा ने दुनियां बनाई थी, तुम्हारे ही कुरान शरीफ में लिखा हुआ है, रूह जो है, यह शरीर में टिकती नहीं थी, शरीर में से बाहर निकल जाती थी। कहती थी, महाराज! अल्लाह ताला, मैं इस सुनसान जैसी जगह में घुस कर क्या करूंगी? मुझे दरगाह में ही रहने दो। कहते हैं परमात्मा ने अपने अनहद नाद तथा अनेक राग शरीर में डाल दिये, फिर जब रूह आई, परमात्मा का राग इसके अन्दर बजना शुरू हो गया, फिर रूह स्थिर हो गई। पर थोड़ी देर बाद फिर बाहर आई। कहने लगी, महाराज! और तो सब ठीक है पर अन्दर अन्धेरा है, फिर वाहिगुरू जी ने इसके अन्दर प्रकाश कर दिया। जब ज्ञान का प्रकाश हो गया और राग होने लग गया आत्मिक सरोंद बजने लग गया फिर रूह का जीअरा लग गया। दिल लगा हुआ है फिर नेत्रों द्वारा बाहर आई, देखने लग गई यह अमुक वस्तु है, यह अमुक वस्तु है, दृष्टिमान में उलझने लग गई। कुछ कानों से सुनने लग गई, कुछ जीभ से बोलने लग गई। जब से संसार बना है, इसी के अन्दर ही उलझी हुई है –

नउ घर देखि जु कामनि भूली बसतु अनूप न पाई॥ ***पृष्ठ -339***

नौ घर देखकर कामिनी भूली हुई है। नेत्रों से देखकर अपने आपको जाना नहीं है कि मैं कौन हूँ? इसके अन्दर परमात्मा वास करता है। उस समय राग के कारण ही अल्लाह ताला ने इसके अन्दर रूह डाली थी। दूसरा राग की तासीर है जो विषय विकारों के लिये राग गाया जाता है, वह राग की मिट्टी पलीत करना है, राग का अपमान करना है। राग तो था परमात्मा से जुड़ने के लिये। यह तो आत्मा की खुराक है। सो, जब हम हरि यश करते हैं, कीर्तन करते हैं, अब हम शबद पढ़ते हैं, मन अपने आप ही जबरदस्ती परमेश्वर के साथ जुड़ जाता है। यदि राग का प्रयोग विषय विकारों के हाव-भाव से किया जाये, फिर राग का प्रयोग गलत होने के कारण यही नरक को ले जाता है। प्रयोग करने में फर्क हुआ करता है। राग उत्तम चीज़ है जो रूह को उसके असली स्त्रोत अलाह-ताला के साथ मिलाता है। रूह

अल्लाह की जात है। दस्तगीर पीर जी! आप ही बताओ राग बुरी चीज़ तो न हुई न? पीर जी! कलयुग में उथल-पुथल मचा देने वाला युग चल रहा है, मन इतना बिखर चुका है कि वह अल्लाह के नाम से एक सूई में आकर जुड़ नहीं सकता। कीर्तन प्रधान साधन है इस युग का। फिर कीर्तन कैसे कुफ्र हुआ? इसलिये राग का प्रयोग गलत है, राग गलत नहीं। दूसरी जो बात तुम कहते हो, लेखे रहित आकाश पातालों की, आप ही सोचो, अल्लाह की कुदरत के प्रसार का कोई भी अन्त नहीं, लेखा, हिसाब-किताब हो ही नहीं सकता। वह स्वंय बेअन्त है, उसकी कुदरत भी बेअन्त है। उसकी कुदरत को गिनती-मिनती में बान्धना उसके बेअन्त सामर्थय्य पर सन्देह करना है। पीर जी! जिसने सात देखे, उसने सात ही बताए, जिसने बेअन्त की झलक देखी, उसने अन्त रहित कहा। यदि सन्देह है तो चलो मैं तुम्हें दिखा देता हूँ।'' पहले महाराज जी ने एक साखी बताई। फिर कहते हैं चलो, दिखा देते हैं।

पीर कहने लगा, ''मैं तो बूढ़ा हूँ, महाराज।''

''फिर किसी विश्वास पात्र, अपने सेवक को भेज दो।''

''मेरा पुत्र बहिलोल ही मेरा पूर्ण विश्वास पात्र है, इसे ही ले जाओ।''

गुरू महाराज जी पीर के पुत्र को लेकर अगंम मण्डल में उड़ान भर गये तथा साथ लेकर गायब हो गये -

नालि लीता बेटा पीर दा अखी मीटि गइआ हवाई॥ ***भाई गुरदास जी, वार 1/36***

एक क्षण भर में ही लाखों पाताल, लाखों आकाश दिखा दिये। जहाँ भी जाता है वहीं पर ही गुरू नानक। गुरू नानक यहाँ अकेले ही तो हमारे पास नहीं आये, वे करोड़ों ब्रह्मण्डों में भी एक साथ हुए, सभी स्थानों पर हुए क्योंकि गुरू परमेश्वर थे। दंग रह गया कि संगत बैठी है, गुरू महाराज जी का आदर सत्कार होता है। एक कचकौल बहुत बड़ा बर्तन ले लिया। जहाँ-जहाँ जाते हैं, वहाँ-वहाँ से प्रसाद उस बर्तन में डलवाते जाते हैं -

भरि कचकौल प्रसादि दा धुरो पतालो लई कड़ाही॥ ***भाई गुरदास जी, वार 1/36***

गुरू महाराज कहने लगे, ''तेरे पिता ने मानना नहीं है इसलिये यहाँ का प्रसाद ले चल।'' वापिस आकर नेत्र खोले।

कहता है, ''बेटा, तुझे क्या हुआ?''

क्या होना था, मैंने तो सभी कुछ देख लिया है।

''तेरी नज़रबन्दी तो नहीं की गई? क्या तू सच बोल रहा है? इस पीर ने तेरे ऊपर कोई जादू तो नहीं किया।''

''अब्बा जान! तुम सिजदा करो इनको, ये तो स्वंय ही अल्लाह ताला हैं। यह देखो प्रसाद, हम लेकर आए हैं - सभी मण्डलों में से।''

सो वह गुरू नानक की निगाह थी। एक ही निगाह से जो पत्थर बगदाद वासियों के हाथों में थे, हाथों के साथ ही चिपक के ही रह गये, जो बाजू ऊपर थीं, वहीं पर ही रुक गई, पत्थर मार नहीं सकते। जिसका मुँह खुला है वह बोल नहीं सकता, वैसे का वैसा ही उसका मुँह खुला का खुला ही रह गया, वे निगाह करते ही पुनः सुरजीत हो गये थे।

जो मोहिनियाँ राजा शिवनाभ ने गुरू नानक देव जी के पास भेजी थीं और अपने चंचल स्वभाव वश, गुरू नानक देव जी के साथ चंचलता भरे हाव-भाव कर रही थीं, महाराज जी ने उन पर अमृत दृष्टि कर दी। जब अमृत दृष्टि पड़ी, उस समय जो चंचल मन थे, उनके अन्दर जो कुमति थी, वह सारी गायब हो गई, वासनाएं खत्म हो गईं, मन टिक गया, परम आनन्द में उठी लहर, परम आत्मा के साथ जुड़ गई। सो उस समय महाराज जी ने इस प्रकार फ़रमान किया-

धारना - जावो पुत्रीओ, जपो नाम हरी दा .....-2
नाम हरी दा, जपो नाम हरी दा - 2, 2
जावो पुत्रीओ, जपो नाम हरी दा - 2

दृष्टि कर दी, मनों में से सारे विकार दूर कर दिये और कहा, ''बेटियो! पुत्रियो! जाओ, अमृत बेला में जाग कर, सूर्य निकलने तक वाहिगुरू-वाहिगुरू-वाहिगुरू किया करो। गुरू नानक देव जी के मुख से वाहिगुरू-वाहिगुरू निकला, रोम-रोम में चला गया, आन्तरिक हृदय झूमने लगा, पता ही नहीं चला कि विषय विकार कहाँ चले गये, चंचलता कहाँ गायब हो गई? शर्म आ रही थी अपने कपड़े देखकर कि कैसे अर्ध नग्न होकर इनके पास आईं, ये कितने महान पुरुष हैं, जिन्होंने हमें शान्त कर दिया। हमें कितना आनन्द आ गया। इतना आनन्द तो हमें विषयों के भोगों में से भी नहीं मिला। उस समय महाराज जी संसार की हालत को देखकर कि ये परमेश्वर के आनन्द को छोड़कर, विषयों के आनन्द में पड़ गया है, जैसे कौवा गन्दगी से भरी चीज़ों में चोंच मारता है -

जगु कऊआ नामु नही चीति। नामु बिसारि गिरै देखु भीति॥ पृष्ठ - 1187

नाम को भूलकर, गन्दे स्थान पर आकर जैसे कौआ चोंच मारता है, चीलें आसमान में उड़ती-उड़ती जहाँ पर शिकार पड़ा होता है, जहाँ मुर्दा पशु का गला सड़ा मांस पड़ा होता है, वहाँ पर ये चीलें आकर बैठती हैं। इसी तरह से यह जो संसार है नाम को भूल कर विषयों के चोग चुन कर खाता है इस तरह पढ़ो -

धारना - विषियां दे ओ, चोग चुगदै - 2, 2
बंदा भुल के हरी दे नाम नूँ - 2, 2
विषिआं दे ओ, चोग चुगदै - 2

संसार कौवा बन गया - ***'जग कऊआ नामु नही चीति।'*** कौवा क्या खाता है? ***'नामु बिसारि गिरै देखु भीति।'*** विषय विकारों, शराबों-कबाबों, निन्दा, चुगली, झगड़े झन्झटों के पीछे भागा फिरता है। वे चीज़ें जो परमेश्वर को भुलाती हैं, उस तरफ भागा हुआ जाता है, नाम चित्त में नहीं आता। वह विषयों के अन्दर फंस गया। **विषय आनन्द शान्ति नहीं देते। जीव विषय भोगता है पर विषयों के कु-रस के प्रभाव से स्वंय ही भोग लिया जाता है। काम काया को गला देता है। बहुत अधिक स्वादिष्ट भोजन शरीर में रोग उत्पन्न करते हैं रोगी तथा मैला मन शरीर को भी रोगी बना देते हैं,** चित्त में विषयों का आकर्षण प्रबल हो जाता है और यह जीव वासनाओं का बन्धा हुआ अनेक यौनियों में भटकता है नाम रस ही श्रेष्ठ रस है, जिसे प्राप्त करके सारी भूख मिट जाती है। तृष्णा की आग बुझ जाती है -

मनूआ डोलै चीति अनीति। जग सिउ तूटी झूठ परीति॥ पृष्ठ - 1187

जगत के साथ की गई प्रीति झूठी है, टूट जाती है, हमेशा नहीं रहती। जब बूढ़ा हो जायेगा, बिरले ही हैं जिनकी इज्जत होती है। सभी बेटे बेटियाँ, बूढ़े मनुष्य की मौत के दिन की प्रतीक्षा करते रहते हैं कि कब यह बूढ़ा मरे और हम जायदाद के मालिक बनें। आदर मान नहीं मिलता बल्कि धक्के खाने को मिलते हैं, निरादर होता है। जिन्हें कन्धों पर उठाकर खिलाया करता था, जब पानी मांगता है तो पीने के

लिये पानी नहीं देते। फिर प्रीत क्या हुई, किस बात की हुई? इस प्रकार मनुष्य लुटा जाता है, ठगा जाता है – इन झूठी प्रीतों के अन्धे आवेग में, लेकिन फिर भी नहीं मानता उसे जो साथी संगी है –

संगि सहाई सु आवै न चीति। जो बैराई ता सिउ प्रीति॥ *पृष्ठ - 267*

जो वाहिगुरू हर समय साथ रहता है, वह चित्त नहीं आता। इसके अपने सम्बधी भी इस निर्धन के अपने नहीं बनते। विषयों को मीठा समझकर उनका भोग करता है। सन्तों, गुरमुखों के अतिरिक्त इसका कोई भी सहायक नहीं होता। जो वैर करते हैं, उन्हीं के अन्दर फसा हुआ सारी जिन्दगी बर्बाद कर देता है। महाराज कहते हैं, वहाँ पर मुश्किल हो जायेगी, रोयेगा फिर कुछ नहीं बन सकेगा? इस प्रकार फ़रमान करते हैं –

धारना – जिन्दे रोवेंगी ते रो रो पछोतावेंगी,
फेर तेरा कोई न बणे – 2, 2
फेर तेरा जी, कोई न बणे – 2, 2
जिन्दे रोवेंगी ते रो रो पछोतावेंगी ....-2

आपीन्है भोग भोगि कै होइ भसमड़ि भउरु सिधाइआ।
वडा होआ दुनीदारु गलि संगलु घति चलाइआ।
अगै करणी कीरति वाचीऐ बहि लेखा करि समझाइआ।
थाउ न होवी पउदीई हुणि सुणीऐ किआ रूआइआ।
मनि अंधै जनमु गवाइआ॥ *पृष्ठ - 464*

महाराज कहते हैं फिर इस तरह रोयेगा, अब तू समझता नहीं है। जिन्हें तूने अपना बनाया था, बन गये तेरे अपने? कोई बताए तो सही कि मेरा बन गया? एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं है, सभी को मुश्किल पड़ जानी है। महाराज कहते हैं, यह ***‘जग सिउ तूटी झूठ परीति’*** यह तो संसार की झूठी प्रीति है। बाकी तेरे पास क्या रह गया –

कामु क्रोधु बिखु बजरु भारु॥ *पृष्ठ - 1187*

विष से भरे पत्थरों का बोझ बान्धकर दरगाह में रोता कुरलाता जायेगा। विष के पत्थर काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ईर्ष्या, निन्दा, चुगली, वैर-विरोध पल्ले बान्धकर जीव संसार से रोता कुरलाता चला जाता है –

कामु क्रोधु काइआ कउ गालै। जिउ कंचन सोहागा ढालै॥ *पृष्ठ - 932*

ठगनी माया ने अपना बनावटी रूप दिखाया, पुत्र-पुत्रियां, सगे-सम्बन्धी, कोठियां, बैंक में सरमाया आ गया। ये सारे सम्बन्ध जीवन काल में दुखी करने लग पड़े। धोखे, छल कपट करके धन कमाया पर अन्त समय धरा ही रह गया। पैसा तो स्वच्छ, पवित्र ढंग से प्रयोग करने के लिये होता है – अच्छे कार्यों पर खर्च करने के लिये होता है, इसे परमेश्वर के प्यारों के लिये प्रयोग करें, स्कूल औषधालयों में मुफ्त दवाईयां देने के लिये सहायता दे, इस प्रकार माया सफल होकर सुखों की ओर रूख कर लेती है अन्यथा भूत प्रेत तथा साँप ही बनता है। ***‘नाम बिना कैसे गुन चारु।’*** *(पृष्ठ - 1187)* फिर कोई श्रेष्ठ गुण तो है नहीं, नाम तो जपा नहीं, दरगाह में सहायता कौन करेगा?

इस प्रकार महाराज कहते हैं कि तू किस चीज़ का अभिमान करता है प्यारे! यदि कोई यहाँ पर पास से ही गुज़रती हुई नदी में घर बना ले, रेत का – किसी तरह से रेत की ही दीवारें खड़ी कर ले – इधर उधर मिला कर यदि थोड़ा बहुत जुड़ता हो, जब चक्रवात वाली लहरें आयेगीं सभी कुछ बहा

कर ले जायेगीं। इस तरह –

घरु बालू का घूमनघेरि। बरखसि बाणी बुदबुदा हेरि॥ पृष्ठ - 1187

जिस प्रकार पानी के अन्दर बुलबुला थोड़े समय में ही फट जाता है, इसी प्रकार नदी के अन्दर रेत का बनाया हुआ घर पानी की एक ही लहर आते ही ढह जायेगा। यह पाँच तत्वों की बनी हुई देही, कुछ क्षणों के लिये है, काल की गुलेल लगते ही गिर जायेगी, इसके अन्दर से जीव ने उड़ान भर कर निकल जाना है, यह सम्भाल कर यदि रख भी लें तो जड़ देही किस काम की? **इसका अभिमान मत कर कि यह सुन्दर है – यह तो तेरी सवारी है, तेरी बग्घी है। जिसके अन्दर पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ आँख, नाक, कान, जिभ्या तथा त्वचा (स्पर्श) इन्द्रियाँ घोड़े हैं – मन घोड़ों के मुँह में वागां (लगाम) है। बुद्धि, बग्घी (रथ) चलाने वाली है, जीव आत्मा सवार है, मुहज़ोर घोड़े जीव को शराबों-कबाबों सुन्दरियों के स्थानों पर लेकर भागे फिरते हैं। जीव भोग भोगता है – पाँच ज्ञानेन्द्रियों से, नेत्र रूप देखते हैं, मन इनके द्वारा देखकर बुरे एवं गन्दे (विचार) करता है। बुद्धि भ्रष्ट होकर कर्म कुकर्म का निर्णय किये बिना, जीव को भोगों में लिप्त कराने में सहायक बन जाती है। जब अन्त समय आता है तो सजा जीव को ही मिलती है, मन, चित्त, बुद्धि को नहीं पूछा जाता, जीव ही कर्मों के लेखे देता है।** इसी तरह कान गन्दे गीत सुनते हैं, मन में अन्तसकरण में मैल की तहें और अधिक जम जाती हैं। अन्तसकरण अपवित्र होकर गन्दे विचार करने लग जाता है, पाप करने के लिये उत्साहित करता है पर फंसता जीव है।

ऐसे ही जीभ है, मांस मछली के स्वादों में प्रवृत्त होकर, शराब आदि पीने में प्रवृत्त हो जाती है। दरगाह में कष्ट जीव को सहन करने पड़ते हैं। ऐसे ही स्पर्श इन्द्रियाँ (उपस्थ इन्द्रियां) काम भोगों में प्रवृत्त होकर अन्तसकरण को अति मलीनता के साथ अति मैला कर देते हैं, केवल काम के आनन्द के भ्रम में पड़ा जीव करोड़ों वर्षों तक फल भोगता हुआ दुखी होता है।

सो नाम को भूल जाना, आत्मघात से भी अधिक पाप है। इस प्रकार यह बुरे कर्म करने की अपेक्षा मर जाना अच्छा था। सभी सुख, आनन्द उपलब्धियाँ नाम के अधीन हैं। यदि **हृदय में नाम का निवास हो जाये तो नौ निधियां की दौलत उसके पीछे-पीछे घूमने लगती है।** सिद्धियाँ जो रूहानी शक्तियाँ हैं, वे भी चरणों में स्थान पाने के लिये तरले करती हैं।

गुरू महाराज जी फ़रमान करते हैं कि तेरी देही ने राख बन जाना है। देह अधिआस में लिप्त होकर नाम को मत भूल। इस तरह फ़रमान करते हैं –

धारना – तेरी देही ने खाक बण जाणा,
काहदा माण करदैं बंदिआ – 2, 2
मेरे पिआरे, काहदा माण करदैं बंदिआ – 2, 2
तेरी देही ने खाक बण जाणा – 2

'घरु बालू का घूमनघेरि।' नदी के अन्दर भंवर उठती हैं। यदि कोई नदी में रेत का घर बना ले, वह कैसे बचेगा? पानी की पहली तरंग में बह जायेगा। *'बरखसि बाणी बुदबुदा हेरि।'* पानी बरस गया, वहाँ एक बुलबुला बन गया। जब दूसरी तरंग गिरेगी, वह उसी समय टूट जायेगी। महाराज कहते हैं, क्या बुनियाद है तेरी?

धारना – ऐथे की मुनिआदां तेरीआं,
पाणी दिआ बुलबुलिआ – 2, 2

जग रचना सभ झूठु है जानि लेहु रे मीत।
कहि नानक थिरु न रहै जिउ बालू की भीत॥ पृष्ठ - 1428

शरीरों का अभिमान करता है, शरीर के श्रृंगार का अभिमान क्यों? इसे सजाता है? क्या है यह? पिछले दीवान में बताया था कि -

बिसटा असत रकतु परेटे चाम। इसु ऊपरि ले राखिओ गुमान॥ पृष्ठ - 374

किस बात का घमण्ड करता है? इस गन्दगी का अभिमान है तुझे? -

एक वसतु बूझहि ता होवहि पाक। बिनु बूझे तूं सदा नापाक॥ पृष्ठ - 374

यदि तो इस शरीर में आत्म ज्योति प्रकट कर ली, फिर तो यह महा पवित्र है, यदि नहीं तो नापाक है, गन्दगी का थैला है, प्लास्टिक के सुन्दर थैले में गन्दगी लपेटी हुई है। महाराज कहते हैं -

मात्र बूंद ते धरि चकु फेरि॥ पृष्ठ - 1187

चक्क से कुम्हार बर्तन बनाते हैं, उसका जो चौगिर्दे में हाथ के साथ जो पानी लगा हुआ गिरता रहता है वह साथ ही साथ सूख जाता है, इसी तरह से मनुष्य का हाल हो रहा है। प्यारे! तेरा शरीर काल की गति से नष्ट हो जायेगा-

सरब जोति नामै की चेरि।
सरब उपाइ गुरू सिरि मोरु। भगति करउ पग लागउ तोर।
नामि रतो चाहउ तुझ ओरु। नामु दुराइ चलै सो चोरु॥ पृष्ठ - 1187

जो नाम नहीं जपते, सारे ही चोर हैं क्योंकि यहाँ से चले जाने के बारे में नहीं जाना - चाहे कोई छोटा है, चाहे बड़ा है। संसार रहने का स्थान नहीं है, भ्रम में मत पड़ो। साध संगत जी! भ्रम में रहते हैं हम हर समय। **यह तो चले जाने वाला स्थान है, रूकने की जगह नहीं, यहाँ पर आज तक तो कोई रहा नहीं -**

धारना - एथे रिहा ना जगत उते कोई,
वारी आई उठ जावणा - 2, 2
मेरे पिआरे, वारी आई उठ जावणा - 2, 2
एथे रिहा न जगत उते कोई...... - 2

एक शिव भए एक गए, एक फेर भए, रामचंद्र क्रिशन के अवतार भी अनेक हैं।
ब्रहमा अरु बिसन केते बेद औ पुरान केते, सिंम्रिति समूहन कै हुइ हुइ बिताए हैं।
मोनदी मदार केते असुनी कुमार केते, अंसा अवतार केते काल बस भए हैं।
पीर औ पिकांबर केते, गने न परत एते, भूम ही ते हुइकै, फेरे भूम ही मिलए हैं॥
अकाल उसतति

महाराज जी ने बड़े-बड़े महापुरुषों की उम्र बताई है। गुरू दसवें पातशाह महाराज कहते हैं कि एक शिव जी आते हैं, एक चले जाते हैं (16 करोड़ साल की आयु शिव जी की है) एक राम चन्द्र आ जाते हैं, एक कृष्ण आ जाते हैं, एक चले जाते हैं फिर आ जाते हैं। करोड़ों बार आ चुके हैं, तू कौन से बाग की मूली हैं प्यारे? किसके भरोसे पर तू इस संसार में रहने का निश्चय करके बैठा है? भूल गया प्यारे! तुझे तो परमात्मा के साथ प्यार करने के लिये मनुष्य जन्म मिला था।

कुछ कहते हैं कि यह रचना किसलिये की? मनुष्य क्यों बना दिया, परमात्मा का क्या मतलब था, यह सभी कुछ बनाने का? यह बात भी समझ लो। परमेश्वर स्वंय ही अनेक रूप बना हुआ है। जो

कुछ भी हमें दिखाई देता है, जहाँ तक निगाहें जाती हैं, सभी वाहिगुरू ही है, वह अपने आप से ही फैला हुआ है। संसार इसलिये प्रतीत होता है कि प्रभु के हुक्म में ही हउमैं का अन्धकार बना। जब माया पर चेतन प्रभु का प्रकाश पड़ा तो प्रकृति में चेतना आ गई, प्रकाश हुआ, प्रकृति में प्रकाश (प्रभु शक्ति का प्रतिबिम्ब) पड़ते ही, प्रकृति के अनगिनत चित्तों में सुरत सी आई। चित्त में हउमैं के प्रभावाधीन अपना छोटा, बहुत ही छोटा घेरा वजूद 'मैं' बना लिया जहाँ 'मैं तथा मेरे' का भाव उत्पन्न हुआ। ज्ञान (सुरत) पैदा हुई। प्रकृति प्राकृतिक नियमों में, चेतन के प्रतिबिम्ब के कारण बन्ध गई। हउमै शक्ति के प्रभाव में, नाम की परिपूर्णता की इकाई को भंग करके, अनेक चित्तों के अस्तित्व में बदल गई रजो, तमो, सतो गुणों ने हिलजुल पैदा करके नाना प्रकार की सृष्टि का वजूद धारण किया। चेतन तत्व, सत्त-चित्त-आनन्द प्रिय है पर प्रकृति जड़, दुख रूप, प्रत्येक क्षण बदलने वाली क्षण भंगुर है। **दुख का मूल प्रकृति है। सारे दुखों का खातमा नाम मानने से हो जाता है।** नाम मण्डल में पहुँचने के लिये मैले चित्त की मैल पूरी तरह धोना जरूरी होती है। पहले निष्काम कर्म चित्त की मलीनता को दूर करने के लिये सहायक होते हैं, फिर उपासना (ध्यान) की बारी आती है। उपासना, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय पर्दे हटाने की समर्थ रखती है। अपने स्वरूप का जब ज्ञान होता है तब इसे निर्वाण पद प्राप्त होता है। तीन दोष चित्त में हैं – (1) मल (2) विक्षेप (3) आवरण। मल निष्काम कर्म करने से दूर होती है, विक्षेप धारना, ध्यान, समाधि की परिपच्ता से दूर होता है, आवरण (पर्दा) ज्ञान प्राप्ति से अपने स्वरूप को साक्षात देखकर, मान कर, प्रतीति के कारण दूर होती है। जब चित्त एकाग्र होकर निरूद्ध हो गया, तो आवरण का डाला हुआ पर्दा फट जाता है। वाहिगुरू जी सभी घटाओं में परिपूर्ण है पर इन्हीं शरीरों में ही एक शरीर ऐसा है जो पूर्ण ज्ञान रूप होता है, वह करोड़ों में से कोई एक आध मिलता है, उसमें प्रभु स्वंय प्रकट रूप विचरण करता है, वह शरीर सन्त का होता है –

कोटन मै नानक कोऊ नाराइन जिह चीत॥ *पृष्ठ - 1427*

वाहिगुरू जी उस सन्त शरीर में प्रकट होकर बैठ जाते हैं। सन्त महाराज कहा करते थे कि आप ईश्र्वर सिंघ कहते हो, वह तो काफी देर पहले ही इस दुनियाँ से चला गया। प्रेमियो! यहाँ पर ईश्र्वर सिंघ नाम की कोई चीज़ नहीं है। आगे की बात समझो कि वहाँ क्या है? क्या रह गया बाकी? क्या परमात्मा इस शरीर में रहता है? **इस शरीर में 'मैं' रहती है यदि 'मैं' मर जाये फिर शरीर में क्या रह गया? परमात्मा रह गया न? सन्तों के अन्दर से 'मैं' मर जाती है फिर परमेश्वर इन नेत्रों से दिखाई देता है, इन कानों से सुनाई देता है** –

संत हेति प्रभि त्रिभवण धारे।। *पृष्ठ - 224*

जैसे धरती में कोई बीज बोते हैं फिर वह वृक्ष बनता है, कितना समय लग जाता है? फिर यह बीज टहनियों में चला जाता है, यहाँ पर कोपलें बन जाती हैं, फिर टहनी, पत्ते बन जाते हैं फिर फूल बन जाता है। अन्त में यह फल बन जाता है। हर एक फल में बीज होता है –

बीजु बीजि देखिओ बहु परकारा। फल पाके ते एकंकारा॥ *पृष्ठ - 736*

इसी तरह से इस सृष्टि में वाहिगुरू है, घट-घट में रमा हुआ है – तुम्हारे अन्दर, मेरे अन्दर, सभी के अन्दर। जो सन्त का शरीर है, उस शरीर में से 'मैं' मर जाने के उपरान्त वाहिगुरू स्वंय ही फिर प्रकट हो जाता है। सो इस तरह से जो बाकी संसार है, वह नहीं हुआ करता क्योंकि अपने आपको भूल गया, भूलकर वाहिगुरू से जीव बन गया, जीव आत्मा बन गया, भ्रम में पड़ गया। भ्रम में पड़ने के कारण इसने माया से प्यार जोड़ लिया। इस तरह फ़रमान किया है –

धारना - भादों भरमि भुलाणीआं,

दूजै लगा हेतु - 2, 2
दूजै लगा हेतु - 4, 2
भादों भरम भूलाणीआं ....-2

भादुइ भरमि भुलाणीआ दूजै लगा हेतु।। *पृष्ठ - 134*

चाहिये तो यह था कि हम परमात्मा को याद करते, उसके साथ प्यार जोड़ते, पर इसका हेत (प्यार) किसके साथ हो गया? पहले तो अपने शरीर से लगा फिर वस्त्रों के साथ हो गया, फिर बाल बच्चों के साथ, फिर खाने पीने की चीज़ों से हो गया। सारी जिन्दगी वाहिगुरू को भूलकर, व्यर्थ गवाँ ली -

पहिलै पिआरि लगा थण दुधि। दूजै माइ बाप की सुधि।
तीजै भया भाभी बेब। चउथै पिआरि उपंनी खेड।
पंजवै खाण पीअण की धातु। छिवै कामु न पुछै जाति।
सतवै संजि कीआ घर वासु। अठवै क्रोधु होआ तन नासु॥ *पृष्ठ - 137*

इन चीज़ों के साथ प्यार जोड़ लिया - वाहिगुरू को छोड़कर फिर श्रृंगार बनाता है। बनाता जा, पर ये परमात्मा के द्वार पर प्रवान (मान्य) नहीं होता -

लख सीगार बणाइआ कारजि नाही केतु।
जितु दिनि देह बिनससी तितु वेलै कहसनि प्रेतु॥ *पृष्ठ - 134*

फिर क्या होगा? तुझे भूत कहेंगे, प्रेत कहेंगे, एक पल भर के लिये भी तुझे घर में नहीं रखेंगे। निकालो, निकालो, कहने लग जायेंगे? बड़ी इज्ज़त वाला बना फिरता है, एक पल के लिये भी किसी ने नहीं रखना। फिर कहते हैं जल्दी करो। डरने लग जाते हैं कि रात को काना (सरकड़े का तना) के साथ डाल दो ताकि कहीं बढ़ न जाये? डरते हैं उससे, बहुत डरते हैं। यदि कहीं मुर्दा उठकर खड़ा हो जाये, घर के सभी सदस्य एक बार तो भाग कर बाहर निकल जायेंगे। साध सगंत जी! प्यार तो हित का है, मनुष्य के साथ प्यार नहीं है। हित (स्वार्थ) के लिये दुनियाँ रोती है -

धंधा पिटिहु भाईहो तुम्ह कूड़ु कमावहु॥ *पृष्ठ - 418*

अपने धन्धे के लिये रोते हैं हम कि अमुक चला गया। महाराज कहते हैं, वाहिगुरू से प्यार कर ले -

जितु दिनि देह बिनससी तितु वेलै कहसनि प्रेतु॥ *पृष्ठ - 134*

जिस समय देही नष्ट हो गई, उसी समय आवाज़ें आने लग जाती हैं -

धारना - आखणगे प्रेत, जदों छडिआ सरीर नूँ - 2, 2
छडिआ सरीर नूँ - 4, 2
आखणगे प्रेत, जदों छडिआ,.........2

फिर कोई नहीं कहेगा सरदार साहिब! राय साहिब! उस समय इसे प्रेत-प्रेत कहना शुरू कर देते हैं। फिर कहाँ जाना है? किसी राजा की कुर्सी पर बैठना है? कर्म देख ले अपने - यदि तो किये हैं बढ़िया फिर तो भाई गुरू के द्वार जायेगा-

अंतरि गुरु आराधणा जिहवा जपि गुर नाउ।
नेत्री सतिगुरु पेखणा स्त्रवणी सुनणा गुर नाउ।
सतिगुर सेती रतिआ दरगह पाईऐ ठाउ॥ *पृष्ठ - 517*

यदि तो प्यार किया है गुरू से, सेवा की है गुरू घर की, कमाई में से दसवन्ध दिया है -

गुरू के लिये, वैर भाव किसी से नहीं रखा, लोगों के झगड़े झन्झट दूर किये हैं, सेवा की हैं, दवाईयों द्वारा की है या किसी अन्य तरीके से की है फिर तो भाई तू गुरू के पास जायेगा। यदि –

बैर बिरोध काम क्रोध मोह। झूठ बिकार महा लोभ ध्रोह॥ *पृष्ठ – 267*

इन कामों में पड़ा रहा है फिर तो मुश्किल हो जायेगी प्यारे! महाराज इस तरह कहते हैं, पढ़ो प्यार से –

धारना – जदों जिन्द ओ, लै के जाणगे – 2, 2
पिआरे भेत न किसे नूँ मिलिआ – 2, 2
जदों जिन्द ओ, लै के जाणगे – 2

कपड़ु रूपु सुहावणा छडि दुनीआ अंदरि जावणा।
मंदा चंगा आपणा आपे ही कीता पावणा।
हुकम कीए मनि भावदे राहि भीड़ै अगै जावणा।
नंगा दोजकि चालिआ ता दिसै खरा डरावणा।
करि अउगण पछोतावणा॥ *पृष्ठ – 471*

सुन्दर वस्त्र तथा सुन्दर रूप, संसार में ही रह जायेगा। संसार में आकर अच्छे-बुरे कर्म किये हैं उनका फल अवश्य भोगना पड़ता है, संसार में हकूमत के नशे में मखमूर होकर मनभावन हुक्म किये ऐसी रूहों को तंग स्थानों में दरगाह में ले जाते हैं। जब नग्न होकर दोजख (नर्क) को जाता है तो सारे बुरे कर्म वीडियो फिल्म की तरह शरीर में नज़र आते हैं पापों के ठप्पे लगे होते हैं, उस समय बहुत डरावना लगता है इन्हीं कारणों से पछताना पड़ता है –

पकड़ि चलाइनि दूत जम किसै न देनी भेतु। *पृष्ठ – 134*

भेद नहीं बताना किसी ने कि कहाँ चले गये, किस में ले गये? पर थोड़ा-थोड़ा भेद मिल जाता है। यदि मकान-मकान, ज़मीन-ज़मीन करता हुआ मरे तो यहीं पर ही आ जाता है –

अंति कालि जो मंदर सिमरै ऐसी चिंता महि जे मरै। प्रेत जोनि वलि वलि अउतरै॥
पृष्ठ – 526

यह प्रेत बन जाता है। यदि पैसा-पैसा करता हुआ मर गया फिर वह सरकड़ो में साँप बन जायेगा। यदि स्त्री को याद करता हुआ मर गया, वैश्या बन जायेगा। यदि पुत्र-पुत्र करता मर गया, सूअर बन जायेगा। मिलना तो नहीं हमें कि वह सूअरों में से कौन सा हमारा पिता है? ढूँढ लोगे?

छडि खड़ोते खिनै माहि जिन सिउ लगा हेतु॥ *पृष्ठ – 134*

जिनके साथ प्यार था, वे अब पास भी नहीं फटकते। बाजू पकड़-पकड़ कर बाहर निकालने को आते हैं। यदि कहीं बैठा बिठाया दुनियाँ से कूच कर जाये, घुटने जुड़ जाते हैं, बाजू अकड़ जाती है, सीधी नहीं होती, फिर कहते हैं कफन डालना है, अकड़ापन है, खीचों इधर से, बाजुओं और टागों को तोड़ देते हैं –

हथ मरोड़ै तनु कपे सिआहहु होआ सेतु॥ *पृष्ठ – 134*

ऐसा इसका हाल होता है। महाराज कहते हैं प्यारे! किस चीज़ का घमण्ड करता है? देही का अभिमान करता है? तू सोच, परमेश्वर का नाम जपने के लिये तू आया था। इसलिये नाम जपने वाला तो हुआ जिन्दा, बाकी सभी की तो इज्जत जाती रही –

पति खोई बिखु अंचलि पाइ॥ साच नामि रतो पति सिउ घरि जाइ॥ *पृष्ठ – 1187*

जो नाम के साथ पूरी तरह जुड़े हुए हैं, वह 'पति सिउ घरि जाई।' जो तो नाम में रम गये, वे तो इज्जत सहित जाते हैं, मान आदर के साथ जाते हैं –

रे रे दरगह कहै न कोऊ। आउ बैठु आदरु सुभ देऊ॥ *पृष्ठ - 252*

सभी कहते हैं – आओ जी, धन्य तुम्हारी माता, धन्य है तुम्हारी माता।

जिस घर के अन्दर परमात्मा का प्यार पैदा हो जाये जो अमृत बेला में उठकर स्नान करता है फिर बाणी पढ़ता है, कोई चुगली नहीं करता, निन्दा नहीं करता, ईर्ष्या नहीं करता, जितना हो सके सेवा करता है। यदि वह मर जाये तो उसके 21 कुलों का उद्धार हो जाता है वे सभी नरकों में नहीं जाते। कुत्ते, बिल्लियों की यौनियों में से निकलकर मनुष्य बन जायेंगे। कितना महान हो गया वह? यदि एक पापी आदमी हो जाये, वह 21 कुलों को नरक में धकेल देता है। ***'मदरा दहती सपत कुल'*** सात कुलों का नाश कर देती है – शराब। ***'भांग दहै तन एक' जगत जूठ शत कुल दहै'*** तम्बाकू पीने वाला, जर्दा खाने वाला, सौ कुलों का नाश कर देता है, इधर जो ब्रह्मज्ञानी है, वह 101 कुलों का उद्धार कर देता है ***'निंदा दहै अनेक।'*** यदि घर में कोई निन्दा करने वाला आ जाये तो सीधे ही नरक में जाते हैं।

अत: महाराज कहते हैं, माता क्या करती है? तू पुत्र-पुत्र करती थी, सन्तों के वचन सुना करती थी। कभी किसी सन्त के द्वार पर जाती थी तो कभी किसी के तरले करती थी। बेअन्त कुछ किया पुत्र प्राप्ति के लिये। ऐसा भी करते हैं कि दूसरे के पुत्र को मारकर, उसका खून देवताओं की बलि चढ़ाते हैं ताकि उसके घर पुत्र हो जाये। वही पुत्र जब आकर पकड़ते हैं, फिर पता चलता है, फिर कहते हैं, बता अब। इससे तो अच्छा था कि तू विधवा हो जाती। गाली दी है महाराज जी ने कि तेरा पति मर जाता और तेरे कोई सन्तान न होती –

धारना - जे तैं भगत पुत्र नहीं सी जंमणा,
विधवा हो जांदी - 2, 2

जिह कुलि पूतु न गिआन बीचारी। बिधवा कस न भई महतारी॥ *पृष्ठ - 328*

माँ विधवा हो जाती ताकि नरकों में ले जाने वाला पुत्र तो न पैदा होता –

जिह नर राम भगति नहि साधी। जनमत कस न मुओ अपराधी॥ *पृष्ठ - 328*

यदि अपनी इज़्ज़त गवाँ ली, दरगाह में डण्डे खाता है, इससे तो अच्छा था, वह पैदा होते ही मर जाता, पाप तो न करता कोई।

सो इस प्रकार महाराज कहते हैं ***'पति खोई बिखु अंचलि पाइ।'*** पल्ले में विष बान्ध ली – निन्दा की, चुगली, ईर्ष्या, वैर विरोध, धक्केशाही की, बेअन्त किस्म की विष है – काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, शबद, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि विष के पल्ले भर लिये। नाम के साथ तो प्यार नहीं किया, अब बेइज्जत होकर जायेगा। नाम वाले तो इज्जत के साथ जाएंगे, महाराज कहते हैं –

सो जीविआ जिसु मनि वसिआ सोइ। नानक अवरु न जीवै कोइ।
जे जीवै पति लथी जाइ। सभु हरामु जेता किछु खाइ।। *पृष्ठ - 142*

जो बन्दगी नहीं करता, महाराज कहते हैं, वह हराम खाता है, चोर है परमात्मा का। सभी कुछ ले लिया फिर भी नहीं याद करता –

जो किछु कीन्ह सि प्रभु रजाइ। भै मानै निरभउ मेरी माइ॥ *पृष्ठ - 1187*

भय मानता है क्योंकि निर्भय का नाम नहीं जपा –

कामनि चाहै सुंदरि भोगु। पान फूल मीठे रस रोग॥ पृष्ठ – 1187

स्त्री चाहती है, सुन्दर वस्त्र, सुन्दर भोग – ***'पान फूल मीठे रस रोग।'*** मीठे फल भोग चाहती है। महाराज कहते हैं पता है इससे क्या होगा? यह खाने से शरीर रोगी हो जायेगा। सो इस प्रकार महाराज जी ने बहुत ही विस्तार पूर्वक समझाया और कहा –

गाछहु पुत्री रामकुआरि। नामु भणहु सचु दोतु सवारि॥ पृष्ठ – 1187

जाओ बेटा, जाओ राजकुमारियो –

मोहनि मोहि लीआ मनु मोहि। गुरकै सबदि पछाना तोहि।
नानक ठाढे चाहहि प्रभू दुआरि। तेरे नामि संतोखे किरपा धारि।। पृष्ठ – 1187

इतने वचन जब कहे, जितनी भी बैठी थीं, जितनी मोहिनियां थीं, सभी की समाधि लग गई, कोई भी नेत्र नहीं खोलती। उस समय महाराज जी ने भेजा, ''जाओ बेटियो, जाओ, जाकर परमेश्वर का नाम जपो।'' वे वापिस लौट आईं वापिस राजा के पास आती है। राजा अब उन्हें बुलाकर पूछने की कोशिश करता है कि क्या हाल है? पर वे बोलती ही नहीं, नेत्र बन्द करके बैठी हुई हैं, नेत्र नहीं खोलती आंखे चुन्धियां गईं, राज नर्तकियां बोलीं, ''राजन, क्या पूछते हो?''

''क्या बात?''

''राजन! पूछो मत, अब हमसे कोई बात ही नहीं होती। बोलने को मन नहीं करता।''

''ऐसी कौन सी बात हो गई?''

बात क्या होनी है, उन्होंने एक बार वाहिगुरू बोला, वाहिगुरू कहने की देर थी, ऐसे हुआ जैसे पैरों से लेकर सिर की चोटी तक, ठण्डी झरनाहटें सी चल पड़ी –

धारना – जदों बोलिआ वाहिगुरू मुख ते
तन मन ठण्डा हो गिआ – 2, 2
मेरे प्यारे, तन मन ठण्डा हो गिआ – 2, 2
जदों बोलिआ वाहिगुरू मुख ते.......–2

राजन! आपके हुक्मानुसार हम गईं, हाव–भाव बनाये अपने हार श्रृंगार दिखाये। हमें तो महाराज जी ने और ही अर्थ बता दिये। आन्तरिक अर्थ बता दिये कि हार पहनना है तो इस चीज़ का पहनो, कंगन पहनने हैं तो ऐसे पहनो, सुरमा डालना है तो वाहिगुरू के प्यार का डालो, राजन! हमारी ओर उन्होंने बुरी नज़रों से नहीं देखा बल्कि कहने लगे –

गाछहु पुत्री राजकुआरि॥ पृष्ठ – 1187

बेटियो! जाओ, जाकर वाहिगुरू का नाम जपो, जाओ। बेटियो! कहने की देर थी, तन मन ठण्डे हो गये, वाहिगुरू हमारे रोम–रोम में चला गया। बोलने को मन नहीं करता, जीभ अपने आप चलती है, रोम–रोम में से वाहिगुरू–वाहिगुरू की आवाज़ आती है। क्या बताएं अपने हाल –

धारना – राजना! नरकां विचों धूह कढिआ – 2, 2
जदों नज़र गुरां ने मारी – 2, 2
राजना! नरकां विचों धूह कढिआ – 2

राजन! हमारा काया कल्प हो गया, हम बता नहीं सकतीं –

नानक जो प्रभ भाणिआ पूरी तिना परी॥ *पृष्ठ - 254*

कचहु कंचनु भइअउ सबदु गुर स्रवणहि सुणिओ।
बिखु ते अंम्रितु हुयउ नामु सतिगुर मुखि भणिअउ।
लोहउ होयउ लालु नदरि सतिगुरु जदि धारै।
पाहण माणक करै गिआनु गुर कहिअउ बीचारै।
काठहु स्रीखंड सतिगुरि कीअउ दुख दरिद्र तिन के गइअ।
सतिगुरू चरन जिन्ह परसिआ से पसु परेत सुरि नर भइअ॥ *पृष्ठ - 1399*

हम कच्ची मति वाली कच्ची थीं, पर गुरू जी ने हमें सोना बना दिया, लोहे को कीमती लाल बना दिया। *'सतिगुरू चरन जिन्ह परसिआ से पसु परेत सुरि नर भइअ।'* राजन! हम क्या बताएं। हम पशुओं, प्रेतों की वृत्ति वाली थीं, भोगों की वृत्ति थी, हमने कितने बुरे कर्म किए, साधुओं के सत तोड़े। अब आप अपनी नौकरी सम्भालो, हमसे यह नौकरी नहीं होती। हमारे अन्दर से बुराईयों का अन्त हो गया। अब हमारे अन्दर क्या रह गया, हमें पता ही नहीं। अब हमारे अन्दर से धुनें आ रही हैं - वाहिगुरू-वाहिगुरू-वाहिगुरू की। जाओ, अब देर मत करो, जिसकी प्रतीक्षा करते थे, वही आ गये। अब कोई टैस्ट वगैरा मत लेना। उस समय राजा की जो हालत हुई वह बताई नहीं जा सकती।

कितनी देर से प्रतीक्षा कर रहा था, काफी समय बीत गया था। उस समय खुशी में झूम उठा और उसके हृदय से यह आवाज़ निकली -

धारना - मेला पूरिआं गुरां दा हो गिआ,
सुत्ते मेरे भाग जाग पए - 2, 2
मेरे प्यारे, सुत्ते मेरे भाग जाग पए - 2, 2
मेला पूरिआं गुरां दा हो गिआ,........- 2

अपने आप ही आकर मिल गया -

घालि न मिलिओ सेव न मिलिओ मिलिओ आइ अचिंता।
जा कउ दइआ करी मेरै ठाकुरि तिनि गुरहि कमानो मंता॥ *पृष्ठ - 672*

पूरब करम अंकुर जब प्रगटे भेटिओ पुरखु रसिक बैरागी।
मिटिओ अंधेरु मिलत हरि नानक जनम जनम की सोई जागी॥ *पृष्ठ - 204*

निहाल हो गया। अपने मन की अवस्था बताता है इस तरह -

धारना - दर्शन देख के निहाल मैं तां हो गिआ,
तन मन ठण्डा हो गिआ - 2, 2
पिआरिआ, तन मन ठण्डा हो गिआ - 2, 2
दर्शन देख के निहाल मैं तां हो गिआ - 2

सोइ सुणंदड़ी मेरा तनु मनु मउला नामु जपंदड़ी लाली।
पंधि जुलंदड़ी मेरा अंदरु ठंढा गुर दरसनु देखि निहाली॥ *पृष्ठ - 964*

निहाल हो गया, जो इतने लम्बे समय से प्रतीक्षा कर रहा था, सालों के साल बीत गये, वैराग में, अकेले-अकेले से पूछता था। जिस समय मिल गये, कितनी खुशी हुई होगी, उसका अन्दाज़ा, विरह पीड़ा सहने के पश्चात हुई खुशी का अन्दाज़ा नहीं लगाया जा सकता। उसका अनुमान भी वही लगा सकता है और खुशियों का अन्दाज़ा भी वही लगा सकता है -

प्रिउ प्रिउ करती सभु जगु फिरी मेरी पिआस न जाइ॥ *पृष्ठ - 553*

सो उस समय गुरू नानक के चरणों में मस्तक झुका कर इस तरह प्रार्थनाएं करता है -

धारना - जावां बलिहार, सतिगुर तेरिआं चरनां तों - 2, 2
तेरिआं चरनां तों सतिगुर तेरिआं चरनां तों - 2
जावां बलिहार, सतिगुर........-2

धनु सु वेला जितु दरसनु करणा। हउ बलिहारी सतिगुर चरणा।
जीअ के दाते प्रीतम प्रभ मेरे। मनु जीवै प्रभु नामु चितेरे॥ *पृष्ठ - 562*

सच्चे पातशाह! दर्शन दे दिये। प्यार के आंसू, खुशी के आंसू, अपने आप ही नेत्रों से ढुलक रहे हैं। राजा का गला रुंध आया, बोला नहीं जाता, चरणों में गिर पड़ा। ऐसा भी लिखा है कि महाराज ने बहुत कठिन परीक्षा ली। जब राजा आया, महाराज खड़े हो गये। काफी देर तक महाराज जी खड़े रहे। हाथ जोड़े राजा भी खड़ा रहा। फिर महाराज जी ने राजा की ओर मुँह किया, उस समय राजा, महाराज जी के चरणों पर गिर पड़ा, प्रार्थना की, ''पातशाह! काफी दिन बीत गये आपको यहाँ पर बैठे-बैठे, मैंने बहुत बड़ी अवज्ञा की है, आपकी मैंने कई बार परीक्षा ली। पातशाह मैं क्या करता? मेरे पास यहाँ पर पाखण्डी आ गये, उन पाखण्डियों ने मेरा मन बदल दिया। आप जी का नाम ले लेकर आते रहे'' -

मै जानिआ वडहंसु है ता मै कीआ संगु। जे जाणा बगु बपुड़ा त जनमि न देदी अंगु॥
पृष्ठ - 585

''पातशाह! निर्मल पंखों वाले हंसों का भेष धारण करके आए - नानक नाम बताकर आए, सुनते ही मैं उसी समय भागा चला आया और जब मैंने परख कर देखा कि ये तो नकली नानक हैं, नकली नाम रखवा कर पाखण्डी आये हैं, पातशाह! मैंने बहुत दुख पाया, पश्चाताप किया, खूब रोया, मन में फैसला किया कि मैं फिर ऐसी भूल नहीं करूंगा और उसी दिन से मैंने सन्तों की परीक्षा लेनी शुरू कर दी। मेरी अवज्ञा क्षमा करो। पातशाह घर चलो।''

महाराज कहते हैं, ''नहीं, घर नहीं हमने जाना। एक धर्मशाला बनवाओ, वहाँ पर हम चलेंगे।''

राजा वापिस आकर धर्मशाला बनवाने लग गया। राज मज़दूर लगा दिये, स्वंय वहाँ जाकर खड़ा हो गया। न दिन में काम बन्द करता है, न रात को। धर्मशाला बनवाकर जब वापिस आया, मन में बहुत खुशी है, राजा की पत्नी के खुशी के मारे धरती पर पैर नहीं टिकते, सोचती है कि आज मेरे स्वामी, मेरे पति की काफी समय से चली आ रही अभिलाषा, जिज्ञासा पूरी होने जा रही है कितनी प्रसन्नता! कितना आनन्द! उनके अन्दर छलक रहा होगा। उनकी काफी लम्बे समय की आशा पूरी हो गई और उनके सतगुरू आ गये। बहुत खुशियाँ मना रही है, भोजन तैयार करवा रही है, मन में बड़ा चाव है। जैसे कोई बहुत बड़ा मन में चाव होता है, मनुष्य के धरती पर पैर नहीं टिकते, इस तरह वह भागी फिरती है। इधर राजा शिवनाभ इसके भी पैर प्रसन्नता के कारण धरती पर नहीं टिकते। बिना कुछ खाये पीए उसी तरह से धर्मशाला बनवा दी कि पहले महाराज जी को लाएं, भोजन खिलाएं, बिठाएं फिर कोई काम करें। साध संगत जी! जब वहाँ जाता है तो क्या देखता है कि महाराज अपने आसन पर नहीं हैं। हैरान हो गया, इधर उधर देखता है और अन्त में जब दिखाई नहीं देते तो ऊँची-ऊँची आवाज़ें लगाने लग गया। आवाज़ें लगाईं, हे सतगुरू! कहाँ चले गये? कहाँ चले गये आप? महाराज कहते हैं पपीहे को कभी सुना है, पिऊ-पिऊ करते हुए? तू भी करता रह -

कबीर केसो केसो कूकीऐ न सोईऐ असार।
राति दिवस के कूकने कबहू के सुनै पुकार॥ *पृष्ठ - 1376*

कभी तो सुनेगा ही। निश्चय पूर्वक 'वाहिगुरू-वाहिगुरू-वाहिगुरू-वाहिगुरू' करता जा। जब थक जाये, फिर करने लग जा, जीभ से करने लग जा, सांस-सांस करने लग जा। दिन रात करता जा, कभी तो सुनेगा ही। पपीहे की सुन लेते हैं बादल, पिऊ-पिऊ करते हुए की। बहुत वर्षा होती है फिर क्यों करता है? क्योंकि उसे स्वाति बूंद नहीं मिलती। जब तक स्वाति बूंद नहीं मिलती, इसकी प्यास नहीं बुझा करती। खूब ज़ोरदार वर्षा हो रही है, पपीहे से पूछो कि तुझे स्वाति बूंद मिल गई? तू वैसे ही कूकता है। कहता है, मुझे नहीं मिली। जैसे वह पपीहा पिऊ-पिऊ करता है ऐसी ही हालत राजा की हो गई -

धारना - कूकां मारदै बबीहा बिहबल हो के
तरसदा सुआंती बूंद नूं - 2, 2
मेरे पिआरे, तरसदै सुआंती बूंद नूं - 2, 2
कूकां मारदै बबीहा बिहबल हो के,....... 2

विरह का सही चित्र दर्शाने के लिये गुरू महाराज जी ने पपीहे को चुना, जिसकी विरह वियोगी कूक मनुष्य को, वैरागी को धुर से ही झखझोर कर रख देती है। ऐसी प्यास है उसके अन्दर कि एक पल भर के लिये भी जीना मुश्किल हो जाता है -

पिर भावै प्रेमु सखाई। तिसु बिनु घड़ी नही जगि जीवा ऐसी पिआस तिसाई॥ पृष्ठ-1273

एक घड़ी के लिये भी जीना दूभर हो जाता है। इस तरह फ़रमान करते हैं -

जिउ मछुली बिनु पाणीऐ किउ जीवणु पावै।
बूंद विहूणा चात्रिको किउकरि त्रिपतावै।
नाद कुरंकहि बेधिआ सनमुख उठि धावै।
भवरु लोभी कुसम बासु का मिलि आपु बंधावै।
तिउ संत जना हरि प्रीति है देखि दरसु अघावै॥ पृष्ठ - 708

ऐसी प्रीत सन्तों की हुआ करती है कि 'तिसु बिनु घड़ी नही जगि जीवा ऐसी पिआस तिसाई।' ऐसी प्यास लगी हुई है हमें दर्शनों की कि एक पल के लिये भी जीना कठिन होता है -

सरवरि कमलु किरणि आकासी बिगसै सहजि सुभाई॥ पृष्ठ - 1273

कमल खिल उठता है यदि पानी चलता हो क्योंकि पानी मिल गया उसे -

प्रीतम प्रीति बनी अभ ऐसी जोती जोति मिलाई।
चात्रिकु जल बिनु प्रिउ प्रिउ टेरै बिलप करै बिललाई॥ पृष्ठ - 1273

पपीहा पिऊ-पिऊ करता है 'बिलप करै बिललाई' बिलाप करता है, कुरलाता है, चीखें मारता है-

घनहर घोर दसौ दिसि बरसै बिनु जल पिआस न जाई।
मीन निवास उपजै जल ही ते सुख दुख पुरबि कमाई।
खिनु तिलु रहि न सकै पलु जल बिनु मरनु जीवनु तिसु तांई॥ पृष्ठ - 1273

मछली जल से पैदा होती है, यदि मामूली सी भी पानी से बिछुड़ जाये तो उसी समय मर जाती है।

ऐसी अवस्था इस राजा की हो गई, साध संगत जी! धड़ाम करके गिर पड़ा। रानी भी साथ है, अहलकार भी साथ हैं, सभी चिन्ता में पड़ गये कि अब क्या होगा? गुरू नानक पातशाह क्यों चले गये? कहाँ चले गये? उस समय का हाल इस प्रकार वर्णन किया गया है, 'नानक प्रकाश' में कि राजा

धड़ाम से धरती पर गिर गया –

न्रिप ह्वै बिकल गिरयो तहां थाउ, सुध बुध रही न कछु तहि आनि।
श्री गुरू प्रताप सूरज ग्रन्थ

न सुधि रही, न बुद्धि; धड़ाम करके गिर पड़ा –

शीघ्र सेवकन करयो उठावन, जल मुख पाइ कीन सावधान॥ श्री गुरू प्रताप सूरज ग्रन्थ

मुँह में पानी डाला, पैरों की तलियों को मसला, इत्रादि छिड़के –

तबै सशोक कही मुख बाणी॥ कहां गए श्री गुर सुखदानी? श्री गुरू प्रताप सूरज ग्रन्थ

जब पहले होश आई, उस समय बोला, ''कहाँ गये हो गुर सुखदानी।'' कहाँ चले गये मेरे सतगुरू। बार-बार बेहोश हो जाता है फिर मुँह में पानी डालते हैं। अन्त जब होश आई तो इस तरह से पुकारता है –

धारना – छेतीं मैनूं ओ, दसो पंछीओ – 2, 2
किथे गए ने प्राणनाथ मेरे – 2, 2
किथे गए ने प्राणनाथ मेरे ओ,
दसो पंछीओ, छेतीं मैनूं ओ 2

आरत होइ पुकारत भारी। श्री गुरू नानक चमतकार, पृष्ठ – 528

बार-बार पुकार कर रहा है, रो-रो कर ठण्डीं आहें भरता है। कहने लगा –

प्रान नाथ! मिलिये इक बारी।' श्री गुरू नानक चमतकार

एक बार मुझे मिलो। कभी वृक्षों को पूछता है कि क्या तुमने देखे हैं? कभी पन्छियों को पूछता है, कभी पहाड़ों को पूछता है? कभी पानी से पूछता है? श्री राम चन्द्र जी जब सीता की तलाश करते थे, ऐसे ही हालत थी उनकी, वे भी ऐसे करते थे। जहाँ पूरा प्यार होता है, उसकी हालत कुछ और ही होती है, साध संगत जी! हमने तो देखा ही नहीं, प्यार क्या होता है। ***'मैं प्रेम ना चाखिआ.......'*** प्रेम तो हमने देखा ही नहीं, चखा ही नहीं, जानते ही नहीं प्यार क्या होता है –

दौर दौर सुधि हेत मुकंदा॥ श्री गुरू नानक चमतकार, पृष्ठ – 528

कभी समुद्र को आवाज़ें लगाता है कि तू ही बता दे तू तो बहुत विशाल है। कभी पर्वतों को आवाज़ें लगाता है-

तुम देखयो कित गुनी गहीरा? श्री गुरू नानक चमतकार, पृष्ठ – 528

मुझे बताओ तो सही, तुमने देखा है –

बिकल बचन बोलति बन मांही॥ श्री गुरू नानक चमतकार, पृष्ठ – 528

बाहर ज़ोर-ज़ोर से पुकारता फिरता है। सभी हैरान हैं कि अब इसका क्या इलाज करें?

किह असथान बिलोकै नांही॥ श्री गुरू नानक चमतकार, पृष्ठ – 528

कहीं भी नज़र नहीं आते गुरू नानक –

स्वेद अंग पुन लोचन नीरा॥ श्री गुरू नानक चमतकार, पृष्ठ – 528

अंग बेकार हो गये, पीला रंग हो गया, नेत्रों में से अश्रुजल रूकते नहीं। नैनों से इतना जल निकला की गले से गर्दन से लेकर पैरों तक जितने कपड़े पहने हुये थे, वे सारे भीग गये –

सरब भीगगे चीर सरीरा। गिरयो धरनि पर हूँ मुरछाई।
तब प्रगटे श्री गुर जग साईं॥ श्री गुरू नानक चमतकार, पृष्ठ – 528

कुछ एक को संशय हो सकता है कि क्या इतने आंसू भी बह सकते हैं? महाराज जी (महापुरुष राड़ा साहिब वाले) एक बार बताते थे कि जब हम शुरू-शुरू में वाहिगुरू जी के वैराग में आकर कीर्तन किया करते थे तो इतनी व्याकुलता हो जाती कि वैराग की अवस्था में सारी रात खड़े होकर कीर्तन किया करते थे, लाईटें बुझा देते थे, उस समय हमारे नेत्रों से इतना जल बहता था कि नेत्रों से आंसू बह कर पैर के अंगूठे तक पहुँच जाते थे -

सीने खिच जिन्हां ने खाधी ओ कर अराम नहीं बहिंदे।
निहुं वाले नैणां की नींदर ओ दिने रात पए वहिंदे।
इको लगन लगी लई जांदी है टोर अनंत उन्हां दी
वसलों उरे मुकाम न कोई सो चाल पए नित रहिंदे॥ *डा. भाई वीर सिंघ जी*

जब राजा धड़ाम से गिर पड़ा तो वहाँ उसी समय गुरू नानक साहिब प्रकट होकर सिर पर हाथ फेरने लग गये। कहते हैं, ''राजन! हम तो कहीं गये ही नहीं, यहीं पर तेरे पास ही हैं। उसके मन में कितनी खुशी हुई होगी। हम तो साध संगत जी, अनुमान ही नहीं लगाा सकते, कुछ भी नहीं कह सकते। हमारे पास अक्षर ही नहीं, केवल इतना ही हम कह सकते हैं -

धारना - जावां बलिहार जी, मैं आपणे गुरां तों - 2, 2
आपणे गुरां तों जी, मैं आपणे गुरां तों - 2, 2
जावां बलिहार जी मैं,.........-2

बलिहारी गुर आपणे दिउहाड़ी सदवार।
जिनि माणस ते देवते कीए करत न लागी वार॥ *पृष्ठ - 463*

महाराज शीश पर हाथ फेर रहे हैं, मस्तक पर हाथ फेर रहे हैं, सावधान कर रहे हैं, नेत्रों पर हाथ फेर रहे हैं। कहते हैं, ''राजन! मुख से कहो, वाहिगुरू।'' 'वाहिगुरू' कहने की देर थी साध संगत जी, रोम-रोम में झरनाहटें चलने लग गई। हैरान रह गया कि यह वाहिगुरू क्या कह दिया, यह तो अन्दर प्रवेश कर गया, अवस्था बदल गई। मधमा बाणी में चला गया, पसन्ती बाणी में समाने लग गया। परा बाणी में समाने लग गया, आज्ञा चक्र में चला गया। त्रिकुटी में चला गया, दशम द्वार में चला गया, बज्र कपाट सारे बीन्ध दिये - एक बार वाहिगुरू कह कर। क्या देखता है कि चारों ओर गुरू नानक ही गुरू नानक नज़र आते हैं। वृक्षों की ओर देखता है उधर भी, समुद्र की ओर देखता है उधर भी। ज्ञान की ज्योति का प्रकाश हो गया, ज्ञान ज्योति अनुभव में आ गई। यह प्राकृतिक ज्योतियों जैसी ज्योति नहीं हुआ करती यह ज्ञान का प्रकाश अन्तसकरण में होता हुआ सारे अन्धकार, अज्ञान, भ्रम दूर करके अन्तसकरण को प्रज्वलित कर देती है। यह दीपक नहीं होता, यह ज्ञान का प्रकाश, रूप रंग से न्यारा होता है -

मनि साचा मुखि साचा सोइ। अवरु न पेखै एकसु बिनु कोइ।
नानक इह लछण ब्रहमगिआनी होइ॥ *पृष्ठ - 272*

ऐसी अवस्था में पहुँचा दिया।

अब क्योंकि समय इजाजत नहीं देता। इससे आगे की विचार फिर आगे की जायेगी।

- आनन्द साहिब -

- गुर सतोतर -

- अरदास -

7

शान...।

सतिनामु श्री वाहिगुरू,
धंन श्री गुरू नानक देव जीओ महाराज।

डंडउति बंदन अनिक बार सरब कला समरथ।
डोलन ते राखहु प्रभू नानक दे करि हथ॥ *पृष्ठ - 256*

जे हउ भूलि विगाड़िआ न कर मैला चित।
साहिब गउरा लोड़ीऐ नफर विगाड़े नित॥

धारना - तेरे दर ते सवाली हो के आइआ,
सुण लै पुकार मालका - 2, 2
मेरे साहिबा, सुण लै पुकार मालका - 2, 2
तेरे दर ते सवाली हो के,.......... - 2

जे दरि मांगतु कूक करे महली खसमु सुणे।
भावै धीरक भावै धके एक वडाई देइ।
जाणहु जोति न पूछहु जाती आगै जाति न हे।
आपि कराए आपि करेइ। आपि उलाम्हे चिति धरेइ।
जा तूं करणहारु करतारु। किआ मुहताजी किआ संसारु।
आपि उपाए आपे देइ। आपे दुरमति मनहि करेइ।
गुर परसादि वसै मनि आइ। दुखु अन्हेरा विचहु जाइ।
साचु पिआरा आपि करेइ। अवरी कउ साचु न देइ।
जे किसै देइ वखाणै नानकु आगै पूछ न लेइ॥ *पृष्ठ - 349*

धारना - तेरे दर ते सवाली हो के आइआ,
सुण लै पुकार मालका - 2, 2
मेरे साहिबा, सुण लै पुकार मालका - 2, 2
तेरे दर ते सवाली,............. - 2

'जे दरि मांगतु कूक करे' महाराज जी कहते हैं, यदि मँगता पुकार करता रहे, कूकता रहे, चीखता रहे ***'महली खसमु सुणे'*** अन्दर बैठा हुआ महलों का खसम सुन लेता है। सुनकर ध्यान देता है और कूकने के बारे में महाराज जी ने फ़रमान किया है -

कबीर केसो केसो कूकीऐ न सोईऐ असार।
राति दिवस के कूकने कबहू के सुनै पुकार।। *पृष्ठ - 1376*

कूकना जरूरी होता है। पपीहा, जिसे बबीहा भी कहते हैं, Rain Bird कहते हैं, बादलों को देखकर खुश्क आसमान को देखकर, हवा में नमी को देखकर, इसे कुछ आशा होने लगती है कि अब मैं कूक लगाऊँ। हवा में नमी, वाष्प के कण आ गये हैं, अतः बादल कहीं आस-पास ही है। ***'पिहु-पिहु-***

पिहु' दिन रात करता रहता है, दम नहीं तोड़ता, उदास नहीं होता। यदि आज बादल नहीं आए, तो कल फिर कूकेगा। यदि फिर भी नहीं आये तो फिर कूकेगा। उस समय तक कूकता रहता है जब तक स्वांति बूंद इसके मुख में नहीं जाती। समुद्र भरे पड़े हैं, नदियों का जल उछल-उछल कर बह रहा है लेकिन पपीहे से पूछो, तेरी प्यास बुझ गई? कहता है, ''नहीं, अभी मुझे स्वांति बूंद नहीं मिली, यह पानी मेरे किसी काम का नहीं है।''

संसार में माया की बाढ़ आई हुई है, पदार्थों, बेअन्त वस्तुओं, दृष्टिमान चीज़ों का बेअन्त प्रसार है पर ये मायिक पदार्थ जिज्ञासु की प्यास नहीं बुझाते। **जिज्ञासु की प्यास नाम की बूंद के बिना नहीं बुझा करती। अतः कहता है, कूकना हमारा फर्ज़ है, सुनना उसका फर्ज़ है। देना या नहीं देना, हम तो इतने में ही खुश हैं कि उसका ध्यान ही हमारी ओर हो जाये।** धन्यवाद है कि उसने हमारी ओर ध्यान कर दिया। *'भावै धीरक भावै धके एक वडाई देइ।'* यदि धक्के मरवाकर भी निकाल दिया तो भी कोई बात नहीं, ध्यान तो उसका हमारी ओर आ गया। यदि अन्दर ले गया, प्यार किया है, तो भी उसका ध्यान हमारी ओर है। कहने लगे, ''पातशाह! हमारी तो कूक है, वह है तेरे दर्शनों की? इस संसार में कोई-कोई विरला जिज्ञासु है, जिसे दर्शनों की भूख लगी हुई हो। *'कांखी एकै दरस तुहारो।' (पृष्ठ - 262)* कोई वासना नहीं है, कोई चाह नहीं है, दुनियांवी मांग कोई नहीं है। एक ही मांग है - वह है तेरे दर्शनों की चाह। महाराज कहते हैं, ''वह मामूली आदमी नहीं है, जिसके हृदय में परमात्मा की दर्शनों की चाह पैदा हो जाये। कहते हैं वह आदमी, बेशक उसे दर्शन हुए हैं या नहीं, पर दर्शनों की चाह तो है - मनुष्य के अन्दर, *'नानक ता कै सद बलिहारै।'* सौ बार बलिहार प्यारे। तू संसार में एक ही ऐसा दिखाई दिया है जिसके मन में प्यारे को प्रेम करने के लिये दर्शनों की चाह है।

एक राजा था, वह बाहर परदेश गया हुआ था। उसकी कई रानियां थीं। महारानी वह होती है जिसके पुत्र को राजकुमार कहा जाता है। बाकी के पुत्रों को कुंवर कहा जाता है क्योंकि राजगद्दी पर बैठने वाली पटरानी तथा महारानी कहलाती है। रानियां सभी हुआ करती हैं। वह भाग्यशाली हुआ करती है जिसके सबसे पहले पुत्र हो जाता।

राजा ने परदेश में रहते हुए, अपनी सारी रानियों को पत्र लिखे कि अमुक तारीख को हम वापिस आ रहे हैं, लिखकर भेजो, तुम्हें क्या-क्या चाहिये? स्वाभाविक होता है कि यदि कोई अमेरिका गया हुआ हो, इंगलैण्ड गया हुआ हो और वह पत्र लिखे कि मैं वापिस आ रहा हूँ तो चीज़ें मंगाने के लिये बड़ी-बड़ी सिफारशें लगाते हैं कि मेरे लिये अमुक चीज़ ले आना, मेरे लिये ये ले आना, वो ले आना। इसी तरह से सभी रानियों ने चीज़ें लाने की अपनी-अपनी एक सूची भेज दी। राजा था, बेअन्त धन था, कोई कमी नहीं थी, कीमती से कीमती पदार्थ, महंगे से महंगे गहने खरीद सकता था, हीरे खरीद सकता था। अतः राजा ने सारी सूचियां इकट्ठी कर लीं और अपने निजी सचिव को देते हुए कहा कि अमुक-अमुक चीज़ें इकट्ठी करके पैक करवा लो। छोटी रानी जिसका विवाह सबसे बाद में हुआ था, जो तन मन से राजा को प्यार करती थी, उसकी जब चिट्ठी राजा ने खोली, उसमें कुछ नहीं लिखा हुआ था। खाली कागज़ था। एक कोने से दूसरे कोने तक बीचों बीच में एक रेखा खींच कर, बीच में से खाली पड़ा हुआ था छोटा सा घेरा चक्र डाला हुआ था। चार रेखाएं, चारों कोनों की ओर खिंची हुई हैं, लाल कागज़ है तथा उस गोल घेरे में अति सुन्दर अक्षरों में लिख दिया 'सा'- स को आ की मात्रा 'सा'। राजा चिट्ठी खोल कर देखता है उसे कुछ समझ नहीं आती, वह उस चिट्ठी को बेकार समझता है। छोटी रानी भी सभी कुछ लिख सकती थी लेकिन उसने चारों ओर रेखाएं खींच दी और बीच में एक घेरा (गोला)

रख लिया। राजा ने वज़ीर को चिट्ठी दिखाते हुए पूछा, ''वज़ीर साहिब! मुझे ऐसा लगता है कि यह पत्र Code Word (गुप्त संकेतों) में लिखा गया है, कोई भावना है, इसके decipher (गुप्त अर्थ) समझाओ। वजीर बोला, ''महाराज! इसका अर्थ है हर जीव आत्मा चारों ओर से वासनाओं से घिरी हुई है, उसने चारों कोनों पर रेखायें खींच दीं जिसका अर्थ है कि मेरी कोई वासना नहीं है, वासनाएं खत्म कर दीं कि उसे किसी भी चीज़ की ज़रूरत नहीं है। 'सा' अक्षर उसने अपना Heart (दिल) बना दिया, अपना केन्द्र बना दिया और यदि कोई चाह है तो वह केवल आपके दर्शनों की लालसा है। लाल कागज़ है, 'सा' अक्षर है। उसने लालसा लिख दिया कि मैं आपके दर्शन चाहती हूँ, मुझे और कोई चीज़ नहीं चाहिये। जब राजा वापिस लौटा तो जो-जो चीज़ें रानियों ने मंगवाई थीं, वे सभी उनके महलों में पहुँचवा दीं, इधर महारानी इन्तज़ार कर रही है कि महाराज अब मेरे महल में आएंगे, अन्य रानियाँ भी प्रतीक्षा कर रही हैं कि उनके महलों में आयेंगे। सारा सामान बांट दिया। सामान से भरे हुए थैले अटैचियां महलों में पहुँचा दीं। खाली हाथ चल पड़ा और छोटी रानी के महल में जा पहुँचा, वहीं पर ही रहना शुरू कर दिया। महीना, दो महीने, चार महीने बीत गये। बाकी रानियाँ सन्देशे भेजती हैं, ''महाराज! एक बार दर्शन तो दीजिये।'' लेकिन राजा नहीं जाता। अपना राजसी कारोबार पूरा करने के बाद छोटी रानी के महल में चला जाया करता था। अन्त में रानियों ने सिफारिशें लगानी शुरू कर दीं। छोटी रानी से कहा, ''तू हमारी सिफारश कर।'' जब छोटी रानी ने कहा, ''महाराज! सभी रानियां दर्शनों की अभिलाषी हैं।'' राजा कहता है, ''सब झूठ है, मुझे कोई नहीं चाहती, मुझे यदि किसी ने चाहा है तो तूने। अन्य सभी ने तो चीज़ें मांगी थीं, एक अक्षर भी नहीं लिखा था कि महाराज! आप आ जाओ, बस हमें सभी कुछ मिल जायेगा। अपनी वासनाएं पूरी करती हैं, मेरी जरूरत नहीं है, उनके ध्यान में तो चीज़ें थीं। अतः मैंने नहीं जाना।''

अन्त में उन्होंने राजा से मिलने के लिये समय निधार्रित करवा लिया। यथा योग्य अपने-अपने महलों में प्रबन्ध किया। जब राजा बारी-बारी हर रानी के महल में जाता है तो रानियां, राजा के चरणों में शीश झुकाती हैं और कहती हैं, ''महाराज! हमसे कौन सी गलती हो गई, हमारी भूल, गलती को क्षमा करें।'' राजा बोला, ''तुम्हें मेरी जरूरत नहीं थी, तुम्हें तो चीज़ों की जरूरत थी। वे तुमने लिखकर भेज दीं। एक अक्षर भी किसी ने मेरे बारे में नहीं लिखा। मैंने सारी चिट्ठियां बार-बार पढ़ीं कि कहीं तुमने लिखा हो कि हमारा हृदय बहुत प्रसन्न हुआ है जब से हमने सुना कि आप आ रहे हैं। हमें किसी चीज़ की जररूरत नहीं और सहज स्वभाव यदि ये चीज़ें ला सको तो ले आना। आपने तो ताकीद की है कि ये चीज़ें जरूर लानी हैं, भूलना मत, ये चीज़ें अपने देश में नहीं मिलतीं।''

सो महाराज कहते हैं किसी के हृदय में है लालसा कि प्रभु के दर्शन करें, लालसा है पुत्र प्राप्ति की, कारोबार की, मेरा काम काज, धन्धा बढ़िया चल जाये। कोई कहता है मेरा अमुक मनोरथ पूरा हो जाये। कोई कहता है मेरे मन में शान्ति आ जाये। पढ़ने वाला विद्यार्थी कहता है कि उसके नम्बर बहुत अच्छे आ जायें। जिसे नौकरी नहीं मिली, वह चाहता है कि उसे जल्दी से जल्दी नौकरी मिल जाये। व्यापारी कहता है कि सारी दुनियाँ का धन मेरे घर आ जाये। साथ वाला पड़ौसी यदि दुकानदार है, उसकी बिक्री नहीं होनी चाहिए, सभी ग्राहक मेरी दुकान से ही सौदा खरीदें और अपनी जेबें खाली करें। महाराज कहते हैं किसी को भी दर्शनों की प्यास नहीं है पर जिसके हृदय में प्यास है, एक आधे के मन में, ***'कांखी ऐकै दरस तुहारो। नानक ता कै सद बलिहारै।'*** सदा बलिहार, सौ बार कुर्बान जाते हैं उस पर जिसे दर्शनों की चाह है।

गुरू नानक पातशाह के बारे में आप पिछले काफी दिनों से सुन रहे हो कि भाई मनसुख लंका में गये हुए हैं, वहाँ पर मनसुख जी संगलद्वीप के राजा शिवनाभ से मिलते हैं। उसे गुरू नानक का अनदेखा प्यार लगा दिया। प्यार भी इस सीमा तक पहुँच गया कि जीवन मौत का प्रश्न बन जाता है। प्यार का आकर्षण हुआ, गुरू नानक पातशाह वहाँ पहुँचते हैं। उसने बहुत सी कसौटियां लगाने के पश्चात, जब उसे यह निश्चय हो गया कि यही गुरू नानक है तो चरणों में गिर पड़ा। एक लालसा जागी, ''हे प्रभु! कृपा करके मुझे यह बताओ कि वह अवस्था कौन सी है जिससे प्यारा, हर समय मिला रहे, कभी भी बिछुड़े ना। मुझे यह बात समझ नहीं आती क्योंकि अनेक योगी आये बड़े-बड़े हठ जोगी आए, बहुत से तपस्वी आए। सभी ने अपने-अपने विचार दिये। पर मेरा प्रश्न जो मेरे दिल की इच्छा है, वह किसी ने पूरी नहीं की। आप कृपा करो,'' मुझे फ़रमान करो जैसा इस शबद के अन्दर अंकित किया है-

धारना - मैनूं दसिओ सुहागण सहीओ,
किवें तुसीं राविआ कंत प्यारा - 2, 2
राविआ कंत प्यारा किवें तुसीं - 2, 2
मैनूं दसिओ सुहागण सहीओ किवें,..........- 2

प्रश्न है जिज्ञासु के मन का। जिन्होंने प्रभु को पाया है, उन्हें महापुरुष कहो, गुरमुख सिख कहो। प्यारे का प्यारा ही होता है। जिनके मनों में शौक होता है पर रास्ता नहीं मिलता उनकी दशा इस प्रकार की होती है -

इक घणी न मिलते ता कलिजुगु होता। हुणि कदि मिलीऐ प्रिअ तुधु भगवंता।
मोहि रैणि न विहावै नीद न आवै बिनु देखे गुर दरबारे जीउ॥
हउ घोली जीउ घोलि घुमाई तिसु सचे गुर दरबारे जीउ॥ *पृष्ठ - 97*

यह कविता नहीं है, यह मन का जो आन्तरिक भाव है, तीव्र भाव है, उसे अक्षरों का पहरावा देकर हमारी जानकारी के लिये वर्णन किया गया है। इस भाव के पीछे कितनी Force (शक्ति) है, यह वही जानता है, जिसे एक पल के बिछौड़े के अन्तराल में नींद नहीं आती और कलयुग जैसा भयानक कलह तथा क्लेश मन में उत्पन्न हो जाता है। जब तक मिलाप नहीं होता, नींद नहीं आती, खाना पीना अच्छा नहीं लगता, कपड़े शरीर को सुहावने नहीं लगते, उसका प्रश्न है -

जाइ पुछहु सोहागणी तुसी राविआ किनी गुणी। *पृष्ठ - 17*

कौन सा गुण है जिससे तुमने परमेश्वर प्यारे को राविआ है, किस तरह तुम्हें मिला है। महाराज कहने लगे, ''पूछना है?'' इसकी काफी रहतें (नियम) हैं? जब तक उन नियमों को धारण नहीं करेगा, तब तक उससे दूर ही दूर रहेगा। किले पर चढ़ना हो तो बिना सीढ़ी के कैसे चढ़ जायेगा? अकेले-अकेले डण्डे पर चढ़ना पड़ेगा। देख, प्रभु को कुछ चीज़ें अच्छी लगती हैं जिनके फलस्वरूप वह प्रसन्न होता है। वैसा श्रृंगार बना ले फिर आन्तरिक गुण ग्रहण कर ले, फिर उसका मिलाप हो जायेगा। इस तरह पढ़ लो -

धारना - सुरमा अदब वाला पा लै आपणे नैणी,
पिआर दा श्रृंगार कर लै - 2, 2
मेरे पिआरे पिआर दा श्रृंगार कर लै - 2, 2
सुरमा अदब वाला पा लै आपणे नैणी,....- 2

इआनड़ीए मानड़ा काइ करेहि॥ *पृष्ठ - 722*

किस बात का अभिमान है तुझे -

आपनड़ै घरि हरि रंगो की न माणेहि॥ पृष्ठ - 722

इस अन्तसकरण के अन्दर, अपने शरीर रूपी घर के अन्दर, परमेश्वर के प्यार का रंग, नशा तू क्यों नहीं लूटती–

सहु नेड़ै धन कंमलीए बाहरु किआ ढूढेहि।
भै कीआ देहि सलाईआ नैणी भाव का करि सीगारो।
ता सोगाहणि जाणीऐ लागी जा सहु धरे पिआरो।। पृष्ठ - 722

जिस श्रृंगार से प्रसन्न होकर यदि सहु (प्रीतम) प्यार कर ले, वही सुहागन है। श्रृंगार किया फिर प्रीतम प्यारे ने प्यार न किया, फिर तो श्रृंगार किसी काम का नहीं है –

इहु तनु माइआ पाहिआ पिआरे लीतड़ा लबि रंगाए।
मेरै कंतु न भावै चोलड़ा पिआरे किउ धन सेजै जाए॥ पृष्ठ - 721

लब का, लोभ का, अहंकार का, क्रोध का, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, विषयों में लिपटा हुआ चोला, परमेश्वर को नहीं भाया करता। उसे यदि रूचता है तो प्यार से भरा चोला हो, नेत्रों में अदब की सिलाईयां (सुरमा) डाला हो। भय को डर कहा जाता है जैसे शत्रु का भय होता है, कहीं शत्रु मार न दे। परमात्मा का ऐसा भय नहीं है, परमात्मा का अदब सत्कार है। आदर भाव वाले मनुष्य के मन में स्वाभाविक यह रहता है कि कहीं कोई ऐसी गुस्ताखी न हो जाये कि उसके चित्त में कोई बुरा विचार पैदा हो जाये, मेरी गुस्ताखी के कारण वह नाराज़ न हो जाए। सो अदब का जो सुरमा है, सदा ही अदब में रहना। कड़वा बोल दिया तो भी अदब में रहे, यदि धक्के भी मार दिये तो भी अदब में रहे –

भावै धीरक भावै धके एक वडाई देइ॥ पृष्ठ - 349

यह बड़प्पन ही है यदि धक्के मार कर बाहर निकाल दिया क्योंकि प्यार है। प्यार वाले को धक्के मारते जाओ, वह और किसी का सहारा नहीं देखता, अपने प्यारे के प्यार में ही रहता है, अपने प्यारे को पीठ दिखाकर और किसी जगह नहीं जाता। कितनी भी उसकी बेइज्जती कर लो, वह और कहीं नहीं जायेगा।

निज़ामुदीन औलिया, दिल्ली में जहाँ आजकल रेलवे स्टेशन है, वहाँ पर उनका स्थान बना हुआ है। बहुत ही साधना सम्पन्न, बेपरवाह महापुरुष थे, बाबा फरीद के बाद तीसरे नम्बर पर आते थे। पूर्ण महापुरुषों की गद्दी के स्वामी थे, बहुत निर्भय थे, सात पातशाही, उनके रहते-रहते दिल्ली के तख्त पर बैठ चुकी थीं। पर उनका हुक्म था कि गरीब दिन में भी आ सकता है, रात को भी आ सकता है। जब भी वह आवाज़ लगायेगा, उसी समय औलिया हाज़िर हो जायेगा। पर बादशाह बिना इजाजत के नहीं आ सकता। अपनी जिन्दगी में उन्होंने किसी बादशाह को इजाजत नहीं दी जो उनकी दरगाह में आ सका हो। मर्ज़ी होती है उनकी क्योंकि वे तो बादशाहों के भी बादशाह होते हैं, उनकी मौज़ होती है किसी को आने दें या न आने दें –

जा का कहिआ दरगह चलै। सो किस कउ नदरि लै आवै तलै॥ पृष्ठ - 186

जिसके चित्त में परमेश्वर का नाम बस गया, वह बादशाहों का बादशाह, सारी सृष्टि का बादशाह हुआ करता है –

जिसनो बखसे सिफति सालाह। नानक पातिसाही पातिसाहु॥ पृष्ठ - 5

वह बादशाहों का बादशाह है। वह सब कुछ करने में समरथ होता है। सो इस महापुरुष के पास हर समय भीड़ लगी रहती थी, लंगर चलता रहता था, बेअन्त मुरीद थे। एक से बढ़कर एक योग्य

मुरीद था। उन्हीं दिनों आपका एक प्रेम की मूरत, साधना सम्पन्न मुरीद था जिसका नाम अमीर खुसरो था। बहुत प्यार करता था और साथ ही साथ राज कवि भी था। सात बादशाहों के राज कवि रहने के कारण बेअन्त धन था। बदांयू का रहने वाला था। जब रिटायर हुए, उस समय दिल्ली के बादशाह ने इतना सामान दिया कि 200 ऊँटों पर लाद कर उसके घर बदांयू पहुँचाने के लिये एक काफिले के रूप में भेजा। उस समय औलिया ने एक कौतुक रचा। एक कोई उसी शहर का आदमी निजामुदीन औलिया का नाम सुनकर कि बहुत बड़े दाता हैं, जो भी प्रश्न किया जाये, वह पूरा हो जाता है, वहाँ पर आकर उसने प्रार्थना की, ''हे औलिया! मैं गरीब आदमी हूँ पर इज्जतदार आदमी हूँ। सफेद पौश हूँ, इज्जत रखता हूँ, पर मेरे पल्ले कुछ नहीं है। मेरी लड़की की शादी है, पैसा कोई नहीं है मेरे घर बारात आने वाली है, कृपा करो मुझे कुछ दे दो।'' कहने लगे, ''प्यारे सुन! हम धन को पल्ले बान्ध कर नहीं रखते, हम अपने पास कुछ नहीं रखते एक तरफ से आता है, दूसरी ओर लगा दिया जाता है। हम धन इकट्ठा नहीं किया करते क्योंकि इकट्ठा किया हुआ धन विक्षेपता पैदा करता है, झगड़े-झंझट खड़े करता है। कल परसों और तरसों जो सत्संग होगा, उसमें जितना धन भेंट आयेगा, सारी तेरे कार्य के लिये बहुत होगा।'' पर हुआ यह कि तीन दिन तक कोई पैसा न आया। ऐसी कुदरत हुई कि कुछ भी न आया। अन्त में बहुत निराश हो गया। उस प्रेमी के ध्यान में यही था कि पहले तो हर रोज़ चढ़ावा आता है पर अब क्यों नहीं आया। कहने लगा, ''औलिया! मैं बहुत बद किस्मत हूँ। मैं बहुत बड़ी आशा रखकर बड़ी दूर से चलकर आया हूँ, कहाँ बदांयू कहाँ दिल्ली? रास्ते में यहाँ पहुँचते-पहुँचते कितने दिन लग गये। अब मेरा दिल टूट गया। मैं क्या करूं?'' औलिया ने सारी बात सुनी, अगंम देखा और उसे कहा निराश मत हो, हमारा जोड़ा (चरण पादुका) जो किसी प्रेमी ने मनौत मान कर भेंट की है, यह हमने बहुत कम समय ही पहना है। पीरों, फकीरों की चरण पादुकाएं भी बड़ी बरकत वाली हुआ करती हैं, तू यह चरण पादुकाएं ले जा, अल्लाह तेरा कार्य सिद्ध करेगा।''

श्रद्धा थी नहीं मन में। पता था नहीं कि उन चरण पादुकाओं में कितनी रहमतें भरी पड़ी हैं। महापुरुषों की यदि चरण पादुकाएं मिल जाए, किसी को प्रसन्न होकर कह दें कि यह चरण पादुकाएं ले जा हमारी, उसे तो दीन दुनियाँ की बादशाही मिल गई समझो। चरण धूलि के लिये दुनियाँ तरसती है, सभी तीर्थ इच्छा करते हैं -

गंगा जमुना गोदावरी सरसुती ते करहि उदमु धूरि साधू की ताई।
किलविख मैलु भरे परे हमरै विचि हमरी मैलु साधू की धूरि गवाई॥ पृष्ठ - 1263

साधुओं की चरण धूलि के लिये सारे तीर्थ भी लालायित रहते हैं। यदि किसी को महापुरुष की चरण पादुकाएं मिल जायें, वह तो महा पवित्र हो जाया करता है। इस बात का उसे ज्ञान नहीं था। दीन दुनियाँ की सारी दौलतें मिल जाती हैं, यदि महापुरुष प्रसन्न होकर किसी को चरण पादुकाएं दे दें। बुझे हुए दिल से, कोई मान न देता हुआ उसने चरण पादुकाएं रूमाल में लपेट लीं, लेकर चल तो पड़ा, पर मन में उदासी थी। चलते-चलते अमीर खुसरों से उसका बदांयू जाने वाले काफिले के साथ सम्पर्क हो गया। मिलाप बढ़ता गया और इसी बीच बात चल पड़ी, कहने लगा, ''मैं औलिया के पास से आया हूँ पर वे तो करामाती है, मेरा दिल टूट गया और सारी बात बता दी और बोला कि यह चरण पादुकाएं मुझे दी हैं।'' खुसरो ने चरण पादुकाएं लेकर सिर पर रखीं, नेत्रों से स्पर्श कीं, चूमी, छाती से लगाई, नेत्रों में प्रेम के आंसू बह चले। साक्षात मुरश्द की चरण पादुकाएं इस कद्रहीन के हाथ में है जिसे पता ही नहीं है कि कितनी बड़ी दौलत है। कहने लगा, ''देना चाहते हो, यह बेचना चाहते हो?''

वह कहने लगा कि इसका कितना मूल्य देगा? कोई चार आने दे देगा, कितना पैसा देगा? अमीर खुसरो बोला कि मैं इसका मूल्य बताऊं, वापिस तो नहीं लौटायेगा क्योंकि इस चरण पादुका के सामने मैं तो बहुत गरीब हूँ इसका मैं कोई भी मूल्य नहीं दे सकता। यदि मैं इसका मोल लगाऊं, मैं सारी जिन्दगी तेरा गुलाम भी रहूँ तो भी इसका मूल्य नहीं दे पाऊंगा, पर तू कृपा कर मुझ गरीब की भेंट न-मन्जूर मत कर देना। वह बोला, ''इन चरण पादुकाओं का मूल्य, मेरी सारी जिन्दगी की कमाई इन दो सौ ऊटों पर लाद कर ले जा रहा हूँ, यह तू सारी ले ले, कृपा करके मुझे चरण पादुकाएं दे दे, कृपा कर, अब मेरी इस भेंट को अस्वीकार मत करना''

उस अश्रद्धक ने अपने मन में सोचा, यह अमीर खुसरो तो पगला आदमी है, यह कोई मस्ताना ही है जिसे दुनियां की दौलत की कोई कद्र नहीं है। यह चरण पादुकाएं कोई हीरे, लालों से जड़ी हुई तो है नहीं, जिससे इसका इतना मूल्य हो जाये। साधारण चमड़े पर कढ़ाई की हुई बनाई गई जूतियां हैं। इसमें और तो कुछ लगा नहीं है, आम जूती की तरह है। उस अश्रद्धक का न तो महापुरुषों के प्रति कोई सम्मान था और न ही महिमा जानता था। सन्तों, पीरों की महिमा तो वेद भी नहीं जानते। सन्त और पारब्रह्म में अन्तर नहीं हुआ करता, इस शरीर में अखण्ड ज्योति प्रकट होती है। अमीर खुसरो ने उस अश्रद्धक से चरण पादुकाएं ले ली और अपनी सारी जिन्दगी की कमाई उसके हवाले कर दीं।

चरण पादुकाएं शीश पर रखकर वापिस मुरश़द के पास आ गया। महापुरुषों ने पूछा कि खुसरो, तू तो चला गया था, वापिस क्यों लौट आया?

अमीर खुसरो बोला, ''पातशाह! तूने बहुत बड़ी रहमत कर दी। यह साक्षात चरणों की पादुकाएं भेज कर, तूने मुझ भटकते हुए को बचा लिया और अब मैं तेरी चरण शरण में आ गया हूँ। मैं माया के मोह में फस कर तुझे भूल गया था और अपने प्यारे मुरशद से दूर अपने घर को जा रहा था। हजूर! आपने रहमत कर दी और चरणों में बुला लिया। शैतान के वार से बचा लिया।''

बदांयू से आया प्रेमी माल लेकर खुश हो गया इधर खुसरो चरण पादुकाएं लेकर खुश है। इसके पश्चात महात्मा का अन्त समय निकट था। फिर देखने की कोशिश की कि कोई उत्तराधिकारी जिसे यह रूहानी कार्य सम्भाल दिया जाये जो इस वस्तु को सम्भाल कर रख ले। स्वंय भी अल्लाह के दर पर पहुँचे तथा मुरीदों को भी रादे-रास्त (सच्ची राह) पर चलाये।

बड़ा कठिन है साध संगत जी! गुरू नानक पातशाह को लाखों में से, करोड़ों में से एक गुरू अंगद पातशाह मिले बाकी न टिक सके क्योंकि जब आपने कौतुक रचाया, गुरू अंगद साहिब जी जब आपके पास आ गये, उस समय बहुत से सिख थे, ऐसा लिखा है कि 20 हज़ार सिख करतारपुर में थे। तब महाराज जी ने देखा, इनमें से बहुत से कामचोर हैं, कुछ गरीबी से दुखी हैं, लंगर चलता है यहाँ खाने पीने को मिल जाता है, रूहानियत के साथ इनका कोई सम्बन्ध नहीं। **सन्तों को भीड़ पसन्द नहीं हुआ करती, केवल जिज्ञासुओं को पसन्द करते हैं।** लोगों के इकट्ठ से उन्हें कुछ नहीं लेना होता। पैसा तो उनके फुरनों में होता है, पैसे की जरूरत नहीं होती उन्हें, सन्तों का कितना खर्च होता है? वे तो बल्कि श्रद्धालुओं द्वारा दी गई माया जब आती है तो उसे वह और कामों में लगाते है कि यह पैसा अमुक जगह पर खर्च करो, यह पैसा अमुक जगह पर खर्च करो।

सो महाराज जी ने हुक्म कर दिया कि सारे प्रेमी गेहूँ बोने के लिये हल चलाया करो। हल चलाने लग गये, सभी प्रबन्ध कर दिये गये। कोई सरकड़े काटता है, कोई जड़ें उखाड़ता है क्योंकि

करतारपुर का क्षेत्र काफी लम्बा था और महाराज जी ने यह भी हुकम कर दिया कि लंगर भी एक टाईम बांटा जाया करेगा। आधे तो छोड़कर भाग गये, वे यह कहते चले गये तीन दिन हो गये रोटी भी पेट भर कर नहीं मिलती, सारा दिन काम करते हैं क्योंकि वे तो इसी आशा से ही आए थे। यदि भजन तितिक्षा के लिये आते, जीवन मरण का दुख काट लेते, उनके वहाँ पर आने का और कोई मनोरथ था। मन में स्पष्ट नहीं था, वह निर्णय पूर्वक निश्चय नहीं कर सके कि हम गुरू नानक से क्या लेने आए हैं। तब गुरू महाराज ने देखा कि आधे रह गये तो हुक्म कर दिया कि दो दिन लंगर मसत (बन्द) तथा तीसरे दिन चला करेगा फिर तीन दिन बन्द चौथे दिन चला दिया, यहाँ तक पहुँच गये कि हफ्ते में एक दिन लंगर चलता और बाकी दिनों बन्द कर दिया। लगभग 100 के करीब आदमी रह गये, हठ-तप कर रहे हैं, उस समय महाराज जी ने कहा, ''आप जाते क्यों नहीं। फसल कट गई। महाराज जी कहने लगे कि ढेर लगा दो।'' गेहूँ के ढेर लगा दिये गये, इकट्ठी कर दी गई, बेशुम्मार गेहूँ हुई।

कहने लगे, ''जाओ, सभी को ले जाओ, हाथों में जलती हुई मशालें (चिन्गारियां) ले जाओ और जितने भी ढेर लगाये हैं, उन सब को आग लगा दो।'' कुछ तो डर गये कि अन्न भगवान को नहीं जलाना। गुरू का हुक्म एक तरफ रह गया और अपनी अक्ल ऊपर रख दी। गुरू अंगद साहिब सबसे आगे हैं, सारे ढेर जला दिये। माता सुलक्षणी जी को पता चला, वह बोली, ''पातशाह! सिख संगत इसी आशा में भूखी रहकर सेवा करती रही और जब अनाज आ गया तो आपने उसे भी आग लगवा दी।''

महाराज कहते हैं, ''ऐसी ही आज्ञा थी परमेश्वर की।'' चुप हो गई। उसके पश्चात महाराज जी ने रावी दरिया के किनारे रहना शुरू कर दिया। सभी वस्त्र उतार दिये, बस सिर पर एक छोटा सा पटका और तेड़ एक कोपीन, मात्र पहनना शुरू कर दिया। डा. भाई वीर सिंघ जी ने भी ऐसा ही लिखा है, इसी तरह से समय बिताते रहे और एक छोटी सी कुली (झौंपड़ी) बना ली और आप अन्दर की तरफ पत्थरों की सेज बना ली, उस पर सोना शुरू कर दिया। पहली बार भाई लालो के पास कठिन तपस्या की थी -

रेतु अक्कु आहारु करि रोड़ा की गुर करी विछाई॥ *गुरदास जी, वार 1/24*

अब फिर वही शुरू कर दिया। आक की कुछ डोडियां खानी शुरू कर दीं, फिर एक खाया करते, वह भी धीरे-धीरे बन्द कर दी, फिर एक तली रेते की लेने लग गये। वह भी खानी बन्द कर दी। निर-आहार रहना शुरू कर दिया। भाई लहणा जी (गुरू अंगद साहिब) हर समय सेवा में तत्पर रहते। आप गुरू नानक की रज़ा में राज़ी रहते हैं। इसी तरह संगत में आ जाते हैं, सेवा करते रहते हैं।

अन्त में गुरू महाराज जी सारी संगत से कहने लगे, ''आप यहाँ से अपने-अपने घरों को जाते हो या नहीं? भागते हो या नहीं? मेरे पीछे क्यों आ रहे हो?'' गुरू महाराज जी एक सघन जंगल की ओर जा रहे हैं। पहले पीछे आने वालों को वापिस लौटने के लिये डण्डे मारते हैं पर लगभग 100 के करीब सिख पीछा नहीं छोड़ते। गुरू महाराज जी ने माया फैला दी, पैसों के ढेर लग गये और कहा, ''उठा लो इन्हें।'' कुछ प्रेमियों ने पैसों की गठड़िया बांध लीं और वहीं से ही लौट गये। जो बच गये उनके लिये रूपयों के ढेर लगा दिये, वे भी लेकर चले गये और महाराज जी फिर लौटकर वहीं पर आ गये। पता चल गया कि ये माया के प्यारे हैं। फिर भी बहुत से सिख धर्मशाला में से निकलकर नहीं जाते। महाराज जी ने धानक (भयानक) रूप धारण कर लिया और हाथ में एक कुतका ले लिया। संगत को मारना शुरू कर दिया और कहा कि तुमने माया तो ले ली, अब क्यों नहीं जाते?

बहुत से तो भाग गये। उसके पश्चात महाराज जी जंगल में फिर चले गये। डण्डे मारते हैं, सभी भागे चले जाते हैं। दो रह गये भाई लहणा (गुरू अंगद देव जी) और बाबा बुड्ढा जी। डण्डों की मार खाये जा रहे हैं, चोटें लग रही हैं, जब एक तरफ डण्डा लगता है तो दूसरा पासा भी कर देते हैं और कहते हैं, ''महाराज इधर भी पवित्र कर दो।''

महाराज कहते हैं, ''तुम हमारा पीछा छोड़ते हो या नहीं? हमारे पीछे क्यों आते हो? कौतुक फैला दिया -

जे गुर भरमाए साँगु करि किआ सिखु विचारा॥ ***भाई गुरदास जी, वार 35/22***

सिख की क्या ताकत है यदि गुरू स्वांग करके भुलाना चाहे। सिख में ताकत नहीं है। भाई गुरदास जी द्वारा रचित वार में लिखा है -

जे गुर साँगि वरतदा सिखु सिदकु न हारे॥ ***भाई गुरदास जी, वार 35/20***

यह निश्चय गुरमत के अनुकूल नहीं है। सिख में हिम्मत नहीं है। गुरू की कृपा हो तो बचता है अन्यथा नहीं बच सकता क्योंकि सिख उस दर्ज़े पर नहीं पहुँचा होता जहाँ गुरू से इकमिक होना होता है। उसके अन्दर हउमै है, अभिमान है अपने आप सुरक्षित है और मन में गुमान है कि मैं कुछ जानता हूँ। मैं ज्ञानी हूँ, मैं कथाकार हूँ, मैं बहुत बड़ा सेवादार हूँ, मेरे बिना यह काम हो नहीं सकता। भूल जाता है प्रेमी को कि यह तो गुरू की बख्शीश है। वह कृपा करके हमारे शरीर को स्वस्थ रखे और अन्दर से मानसिक रूप से भी स्वस्थ रखें।

यदि अधरंग हो जाये फिर क्या करेगा? बख्शीश में रहना चाहिए। भूल जाता है, अभिमान आ जाता है।

महाराज कहते हैं, ''नहीं प्यारे! सिख की ताकत नहीं है, गुरू द्वारा लगाई गई कसौटी को पार कर सके। यह तो गुरू की कृपा हो जाये तो कोई विरला पास हो जाता है। गुरू नानक देव जी ने फिर पीछे-पीछे आ रहे दोनों सिखों से कहा, ''जाते हो या नहीं?''

उत्तर में गुरू अंगद देव जी ने प्रार्थना की, ''पातशाह! जिनका इस संसार में कोई स्थान था, वे चले गये, मेरा तो इस संसार में तेरे चरणों के बिना अन्य कोई स्थान ही नहीं है, मैं कहाँ जाऊँ? गुरू नानक के चरणों में मैंने स्थान बनाया है, अब यह नहीं मैं छोड़ सकता -

भावै धीरक भावै धके एक वडाई देइ॥ ***पृष्ठ - 349***

डण्डे मारो या धक्के मारो, यह भी आपका बड़प्पन है। बेशक आप हृदय से, छाती से लगा लो, इसमें भी आपका बड़प्पन है। मैं तो दोनों हालातों में खुश हूँ पर मेरी और कोई जगह नहीं है। इस सारे ब्रह्मण्ड में मेरा कोई स्थान नहीं है सतगुरू जी! मेरा कोई सहारा, कोई स्थान नहीं है, इस तरह से पढ़ लो, इस भाव को -

धारना - कोई किसे दा, किसे दा है कोई,
मेरा तूं है इको मालका - 2, 2
मेरा तूं है जी इको मालका - 2, 2
कोई किसे दा, किसे दा है कोई,........- 2

किसही कोई कोइ मंञु निमाणी इकु तू।
किउ न मरीजै रोइ जा लगु चिति न आवही॥ ***पृष्ठ - 792***

"पातशाह! जिन्होंने इस ब्रह्मण्ड में अपना कोई स्थान बनाया हुआ था, वे अपने-अपने स्थानों पर चले गये पर मुझ लहणे ने तो कोई स्थान नहीं रखा, केवल आपके चरणों में स्थान है। इसे छोड़कर मैं कहाँ जाऊँ?" कहते हैं, "यदि नहीं जाना, वह देख, सामने क्या पड़ा है?"

"पातशाह! जो कुछ तूने रखा है, वही पड़ा है।"

गुरू की मत में सिख इतना लीन हो जाता है कि अपनी मत बिल्कुल खत्म हो जाती है।

गुरू नानक पातशाह कहने लगे, "बाबा बुड्ढा जी! देखो तो सही कितनी रात हो गई, हम उठकर स्नान करें।" उन दिनों घंटे नहीं बजा करते थे, तारों को देखकर हिसाब किताब लगाया करते थे। गाँव के लोगों को तारों को देखकर पता चल जाता था कि कार्तिक में भिगंड (तीन तारों का समूह) सुबह दो बजे कहाँ होता है और खिति (चार तारों का समूह) कहाँ होता है। पौष और माघ के महीने में कहाँ होता है। उसके हिसाब से हल चलाने के लिये तैयारी किया करते थे, उसी को देख कर कुआं आदि चलाया करते थे। उसी से ही -

चउथै पहरि सबाह कै सुरतिआ उपजै चाउ॥ पृष्ठ - 146

भजन करने वालों के मन में भी चाव पैदा हुआ करता था -

तिना दरीआवा सिउ दोसती मनि मुखि सचा नाउ॥ पृष्ठ - 146

मन में भी, हृदय में भी, मुख में भी परमेश्वर के नाम का उच्चारण होता है -

झालाघे उठि नामु जपि निसि बासुर आराधि।
काहर्ा तुझै न बिआपई नानक मिटै उपाधि॥ पृष्ठ - 255

अमृत बेला में उठकर, स्नान करना, गुरसिख के लिये जरूरी है। पहले वाहिगुरू मन्त्र का सिमरण करे, एक मन, एक चित्त होकर शबद धुन सुने। ज्यों-ज्यों एकाग्रता बढ़ेगी, अन्य संगीतक धुनें भी सुनने लग जायेंगी। समाधि का आनन्द आने लग जायेगा फिर बाणी का प्रेम पूर्वक पाठ करे। गुरू महाराज जी इस ब्रह्म मुहुर्त को अमृत बेला कहते हैं। बाणी में तो फ़रमान है कि अन्त में जब देही में से सांस निकल गये तो फिर जी भर कर सदा के लिये सो लेना, तुझे फिर किसी ने नहीं जगाना। जितना तेरा मन करे, खूब सो लेना, युगों के युग बीत जायेंगे। फरीद जी कहते हैं - युग बीत गये, पासा (करवट) भी नहीं उलटा जब प्राण निकल गये तो कब्र में सीधा ही लिटा देते हैं। वैसे का वैसा सीधा ही पड़ा है फिर वहाँ जैसे तेरा मन करे, पड़े रहना। फिर तो पासा (करवट) भी किसी ने नहीं बदलना। करवटें धुख धुख के उठा करेंगे। बन्दगी करने वालों के मन में चाव उठता है - ***'झालाघे उठि नामु जपि निसि बासुर आराधि। काहर्ा तुझै न बिआपई नानक मिटै उपाधि।'*** कलह क्लेश का नाश हो जायेगा, उपाधियां खत्म हो जायेंगी, तू अमृत बेला की सम्भाल कर-

करि इसनानु सिमरि प्रभु अपना मन तन भए अरोगा॥ पृष्ठ - 611

मन भी निरोग और तन भी निरोग। सो इस तरह महाराज जी कहते हैं, "देखो तो बाबा बुड्ढा जी! कितनी रात बाकी रहती है? स्नान करें।"

"पातशाह! आधी रात है।"

"तुझे कैसे पता चला, कोई घड़ी, घंटा आदि तो बजा नहीं?"

"महाराज! हम हल चलाने के लिये जाया करते हैं, अत: हमें मालूम है कितनी रात बाकी

है।'' भाई भगीरथ जी, ''आप देखो, कितनी रात बीत गई?''

''महाराज, आधी रात हो गई।''

''भाई मनसुख! तुम देखो, कितनी रात बीत गई?''

''पातशाह! तारों का तो मैं हिसाब-किताब जानता नहीं पर मुझे इतना पता है कि आधी रात से थोड़ा सा समय और ढल गया है।''

''भाई लहणा, तू देख तो कितनी रात है?''

बाहर चले गये, वापिस लौट आये। तारों की ओर देखा ही नहीं। वे तो सर्वज्ञ हैं, मुझे क्यों पूछते? नेत्रों में से जल बह चला, अन्दर वापिस आकर, नमस्कार करके चुप होकर खड़े रहे। भाई लहणा! बताया नहीं? कितनी रात रहती है बकाया, और तो सभी ने बता दिया। भाई लहणा (गुरू अंगद साहिब) जी जानते हैं कि गुरू परमेश्वर है, सर्व कला समरथ है, वह स्वंय ही जानते हैं, काल (Time) की चाल को।

अति विनम्रता सहित बोले, ''पातशाह! दिन का मालिक तू, रात का भी मालिक तू, तारों का मालिक तू, समय का मालिक तू, काल तेरे अधीन, जितना काल निकाल देता है, व्यतीत करवा दिया, जितना रह गया, बस वही बचा है। उस समय गुरू की समर्थता पर पूर्ण भरोसा न होने के कारण कह दे कि इतना समय हो गया, अपनी मति में नहीं आया कि कह दे कि ब्रह्म बेला है महाराज। जितना समय आपने बाकी रख लिया, उतना ही रहता है।''

गुरू महाराज जी जंगल में चले गये, कसौटी लगा-लगा कर सिखी परख रहे हैं। लहणा जी से कहा, ''तुम और बाबा बुड्ढा जी दोनों चले जाओ। यदि नहीं जाना तो देखो, सामने क्या पड़ा है?''

गुरू अंगद जी ने प्रार्थना की, ''महाराज! जो कुछ रखा है, वही पड़ा है।''

कहते हैं, ''नज़र नहीं आता, मुर्दा नहीं नज़र आ रहा, जाओ, जाकर उसे खाओ।''

पास जाकर खड़े हो गये, ''पातशाह! हुक्म करो, किधर से शुरू करें।''

कहते हैं, ''केशों की तरफ से शुरू करो।''

बिना किसी झिझक के, बिना कोई बात चीत के 100ज दृढ़ विश्वास के साथ आगे बढ़ कर, जब कपड़ा उठाया तो हैरान रह गये कि यह तो कड़ाह प्रसाद पड़ा हुआ है मुर्दा अलोप हो गया। टैस्ट पास कर लिया, दोनों नमस्कार कर रहे हैं और कह रहे हैं, ''धन्य हैं तू! डगमगाने से तूने हाथ देकर रक्षा कर ली। पातशाह! तेरी कुदरत तू ही जाने, तू ही जानता है, अपनी कुदरत को।''

गुरू नानक जी आगे बढ़े, कहते हैं, ''भाई लहणा! आओ हमारे पास। अब हमने तेरे अन्दर समा जाना है। तैयार कर लिया हमने शरीर, इतनी बड़ी कसौटी लगाकर। हज़ारों की संख्या में एक निकला और अब नानक से रूप बदला, ज्योति उस शरीर में समा गई और अब गुरू नानक ही, गुरू अंगद जी बन गये। हाँ अब अपने अंश से पैदा किये, 'अंगद' के रूप में प्रकट हो गये। यही मेरा दूसरा रूप होगा। गुरू नानक घर वापिस लौट आए, अब सभी को पता चल गया कि गुरू नानक जी अंगद बन गये।

माता सुलखणी जी कहने लगीं, ''पातशाह! आपके सभी कौतुक निराले हैं। सुना है आपने भाई

लहणा जी को सभी कुछ दे दिया है।''

कहने लगे, ''और कोई लेने वाला नहीं था। यह नानक ज्योति, गुरू ज्योति, गुरू परमेश्वर ज्योति को और कोई भी शरीर सम्भालने वाला नहीं था, यही शरीर था जो इसे सम्भाल सकता है। तेरे पुत्रों के पास राज, भाग, रिद्धियां, सिद्धियां, मान सभी कुछ होगा, इनके तो कुत्तों में भी ताकतें होंगी। ये माया के चाहवान हैं, माया इन्हें मिल गई। भाई लहणा मुझे मांगता था, मैं इसे मिल गया। सो कसौटी हुआ करती है। गुरू नानक कहाँ चले गये, वह गुरू अंगद जी के हृदय में बस गए।

निजामुदीन औलिया ने भी अपने मुरीदों को परखने के लिये कसौटी लगा दी। 30-32 मुरीद जो एक से बढ़ कर एक कहलाते थे। अनुमान नहीं लगाया जा सकता था कि औलिया के पश्चात कौन गद्दी पर बैठेगा। आखिर परख करने के लिये, पहली बार दिल्ली शहर की ओर चल पड़े। सभी प्रमुख मुरीद साथ जा रहे हैं। वेश्याओं के बाज़ार में दाखिल हो गये। आज पहले ही दिन शहर में आये थे। वहाँ एक बहुत सुन्दर वेश्या देखकर, सीढ़ियों द्वारा उसके घर में प्रवेश कर गये। दृष्टि की, महात्मा की दृष्टि बहुत दुर्लभ होती है, एक सैकिन्ड में दर्शन करते ही जीव निहाल हो जाता है। दर्शन होते ही सारे पापों का नाश हो जाता है। वेश्या ने कहा, ''महापुरुषो! मैं नरक का कीड़ा, आपने अपने पवित्र चरण इस कुंभी नरक में रखे, सेवा बताओ। समझा दिया कि इन चेलों को भगाना है। ऐसा ड्रामा कर जिससे उनकी श्रद्धा भी खत्म हो जाये, मेरे पीछे एक भी न रहे, सभी चले जाएं।''

उस समय उसने नाटक किया, मुरीदों से कहा, ''औलिया जी, अब यही रहा करेंगे,'' अपने नौकरों को हुकम दिया, औलिया के लिये बढ़िया सी शराब लेकर आओ। कबाब भी साथ लाओ। थोड़ी-थोड़ी देर बाद आती है, फिर कहती है, औलिया ने वह पी ली, और शराब लाओ। मुरीदों को सुना-सुना कर कहती है।

कई कट्टर मुरीद कहने लगे, ''हैं! औलिया, इतना ऊँचा होकर, इतना नीचा गिर गया। कई अश्रद्धक बनकर घरों को जाने शुरू हो गये। रात को दस बज गये, 11 बज गये। आवाज़ फिर भी बन्द न होती, अरे जाओ, दुकान खुलवाकर और लेकर आओ, कबाब भी और बनाओ।

जो मुरीद अभी भी खड़े थे, उन्हें खूब फटकारें मारती है साथ ही साथ यह भी कहती जाती है कि मेरे घर के सामने से चले जाओ। डांटती है, बार-बार आती है। चार बज गये। सिर्फ दो मुरीद रह गये, 30 मुरीद चले गये।

अन्दर आकर औलिया से कहने लगी, ''महाराज, दो रह गये।''

उन्होंने कहा, ''इन्हें भी धक्के मारो, डण्डे मारो।''

डण्डे मारने शुरू कर दिये। एक भाग गया। कहता है, ऐसे औलिए से तो वैसे ही अच्छे हैं। बस अब एक बच गया 'अमीर खुसरो'। कहने लगी, ''महाराज! गीदड़ों जैसी मार पड़ी है पर वह तो वहीं का वहीं बैठा है, हिलता ही नहीं है।''

कहता है, ''चाहे मार दो, मैंने यह दर तो छोड़ना ही नहीं।''

कहता है, ''**मेरा मुरश़द इसके अन्दर है, यह महा पवित्र मन्दिर है जहाँ मेरा मुरश़द है। यह पापों का मन्दिर नहीं है।** यहाँ मेरा मुरश़द आ गया, मेरा तो सभी कुछ यहीं है, मैं कहाँ जाऊँ?''

मुरशद ने कहा, ''इसे घसीट कर दूर फैंक आओ।''

धरती पर घसीटते हुए दूर फैंक आए। पर वह फिर आ गया। कहने लगी, ''वह तो फिर आ गया, महाराज।'' कहते हैं, ''फिर घसीट कर फैंक दो।'' ऐसा ही किया। पर वह फिर आ गया। अन्त में औलिया बाहर आ गया, पौ फटने से पहले। कहता है, ''खुसरो, 31 चले गये, तू क्यों नहीं गया?'' खुसरो के नेत्रों में से जल बह रहा है, कहने लगा, ''पातशाह! **इस संसार में मेरा कोई स्थान नहीं है, जिन्होंने इस संसार में अपने स्थान बनाये, वे चले गये, पर मेरा स्थान तो तेरे चरणों में ही है, मैं और कहाँ जाऊं?''**

यह शिकवा नहीं किया कि मैंने सारी ज़िन्दगी की कमाई एक जोड़े के बदले में दे दी। हमारे अन्दर तो शिकवा आ जाता है, गिनती में पड़ जाते हैं, हम तो अपना ऐहसान जताते हैं कि हमने गुरू के लिये ऐसा किया, वैसा किया, गुरू ने हमारे लिये कुछ भी नहीं किया। इतनी कुर्बानी भी की, इतनी बाणी भी पढ़ी, इतना त्याग भी किया, पता नहीं गुरू के मन में क्या है? गिनती के चक्कर में पड़ जाते हैं। महाराज कहते हैं जो गिनती के चक्कर में पड़ेगा, वह सिख नहीं हुआ करता, मुरीद नहीं हुआ करता। मुरीद जो होता है, उसकी अवस्था कुछ और हुआ करती है –

धारना – मुरदा होइ के, मुरीद बण जावणा – 4, 2

मुरदा होइ मुरीदु न गली होवणा। साबरु सिदकि सहीदु भरम भउ खोवणा।
गोला मुल खरीदु कारे जोवणा। ना तिसु भूख न नीद न खाणा सोवणा।
पीहणि होइ जदीद पाणी ढोवणा। पखे दी तागीद पग मलि धोवणा।
सेवक होइ संजीदु न हसणु रोवणा। दर दरवेस रसीदु पिरम रस भोवणा।
चंद मुमारखि ईद पुगि खलोवणा॥ ***भाई गुरदास जी, वार 3/18***

ऐसे मुरीद नहीं बना करता।

माता सुलखणी कहने लगी, ''पातशाह! मेरे पुत्रों का क्या बनेगा?''

गुरू नानक जी ने पुत्रों को आवाज़ लगाई, ''श्री चन्द! देख, भाई लहणा जी ने कोई बात नहीं बताई कि अब कितने बज गये हैं, तू ही देख ले, कितने बज गये हैं?''

श्री चन्द ने उत्तर दिया, ''आपने आराम करने देना है या नहीं करने देना?''

''लखमी चन्द! काका तू देख ले। कितने बज गये हैं?''

उस समय, ''महाराज क्या कहूँ? अब तो आप 70 साल से भी अधिक उम्र के हो गये। 70-72 के हो गये। 70 पर पहुँचते ही मति क्षीण हो जाती है।''

सुन लिया माता जी ने कि पुत्र गुस्ताखी कर रहे हैं। सुर में सुर नहीं मिला रहे। अपनी सुर अलग है। जब अपनी सुर अलग है, फिर गुरू की गोद में सिख नहीं समा सकता। म्यान एक है, तलवारें दो डालनी हैं। यदि दो तलवारें एक बन जायें तभी डाली जा सकती हैं, दो कभी नहीं डाली जा सकतीं। दूसरा दिन बीत गया, इसी तरह से कुछ दिन और बीत गये।

गुरू नानक पातशाह कहने लगे, ''भाई श्री चन्द! जाग रहा है। हमारा यह चादरा धो ला, आज

हमने कहीं बाहर जाना है।''

कहता है, ''महाराज! आधी रात हुई पड़ी है। आप तो बस ऐसे ही करते रहते हो, न तो आप सोते हो और न ही हमें आराम करने देते हो? दिन निकलेगा किसी दास से धुलवा देंगे, इतनी कौन सी जल्दी है और बहुत चादरे पड़े हैं, लेकर चले जाना।''

''लखमी दास! बेटा, तू ही धो ला।''

वही जवाब उसने दिया।

''भाई लहणा! तू धो ला।''

भाई लहणा जी ने चादरा उठाया, धोकर, सुखाकर थोड़ी देर बाद ले आया।

आपने पूछा, ''बहुत जल्दी सुखा लाया।''

''महाराज! धूप बहुत तेज़ थी।''

इधर रात है, उधर 12 बजे दिन के धूप निकली हुई है। माता जी ने फिर सुन लिया।

एक चूही मरी पड़ी है। तीनों बैठे हैं। गुरू नानक पातशाह ने श्री चन्द से कहा, ''बेटा, इसे बाहर फैंक दे।'' कहने लगा, ''महाराज! महा-अपवित्र चीज़ है, अभी दास आ जाता है, फिंकवा देंगे, जल्दी क्यों कर रहे हो, सुबह की यहीं पड़ी हुई है।''

लखमी दास को भी कहा, उसने भी वही जवाब दिया। आपने भाई लहणा जी की ओर देखा। आपने उसी समय, मरी चूही को उठाकर बाहर फैंक दिया।

इसी तरह से एक बहुत गन्दा हौज़ है। गुरू अंगद देव पातशाह ने बहुत सुन्दर कपड़े पहने हुए हैं। महाराज जी के हाथों से खड़े-खड़े कौल गिर गया। कहने लगे वह कौल (एक कटोरी) हौज़ में गिर पड़ी। श्री चन्द, बेटा निकालना।''

वह बोला, ''महाराज! कपड़े खराब हो जायेंगे, इतना गन्दा जल है, पता नहीं कितनी बिमारियां लग जायेंगी? कोई दास आ रहा है उसे कह देते हैं, निकाल देगा।''

''लख्मी चन्द, बेटा, तू ही निकाल ला।''

कहता है, ''मैं कैसे निकाल लूँ। इसकी कोई बहुत खास जरूरत पड़ी है और बर्तन खत्म हो गये क्या? निकलवा देंगे धीरे-धीरे।''

आपने लहणा जी की ओर देखा और बोले, ''पुरखा! तू निकाल ला।''

आपने कोई कपड़ा नहीं उतारा, वैसे ही कपड़ों सहित छलांग लगा दी, छाती-छाती तक पानी है, बर्तन निकाल लिया, आपके सारे कपड़े कीचड़ में लथपथ हो गये, वे दोनों चले गये, भाई लहणा जी स्नान करने चले गये।

गुरू महाराज ने कहा, ''क्यों सुलखणी जी, अब बताओ, तेरे पुत्र कहाँ हैं और सेवक कितनी श्रद्धा से भरा हुआ है। जिसे तू दास कहती है, यह तो मेरा अपना रूप है, यह नानक ही है।''

सो इस प्रकार *'मुरदा होइ मुरीदु न गली होवणा'* बातों से नहीं बनता यह तो –

पहिला मरणु कबूलि जीवण की छडि आस।
होहु सभना की रेणुका तउ आउ हमारै पासि॥ *पृष्ठ – 1102*

यदि अपनी हउमैं कायम रख कर मुरीद बन गया, उसे गुस्सा आ जायेगा। टोक कर देख लो उसे जो 'मैं' को बचाकर सिख बना हुआ है। क्रोध आयेगा, बेरुखी आयेगी, विरोध करेगा क्योंकि 'मैं' है। यदि 'मैं' भाव न हो, कह लो उसे फिर जितना मर्ज़ी कह लो। कहते हैं कितनी ही गीदड़ मार मार लो, जिद्दी है, गिनता ही नहीं क्योंकि उसके अन्दर 'मैं' भाव नहीं है। साध संगत जी! 'मैं' भाव से गुस्सा होता है। जितना मैं भाव बड़ा होता है उतना ही छोटी सी बात का गुस्सा बहुत अधिक होता है। छोटी सी बात में विरोध विद्रोह है क्योंकि 'मैं' है, मैं बड़ा हूँ, मुझे कुछ समझते ही नहीं हैं, मुझे देखते ही नहीं हैं, मुझे जानते ही नहीं हैं कि मैं कौन हूँ। यह बात रूहानियत के रास्ते में बहुत बड़ी रूकावट है।

अत: अमीर खुसरो को मारते हैं, डण्डे मारते हैं, घसीटते हैं, बाहर फैंक आते हैं फिर आ जाते हैं। कहते हैं, तू जाता है या नहीं, तुझे गुस्सा नहीं आता।

कहता है, ''नहीं, मेरे हजूर! गुस्सा किस बात का? तेरे द्वारा मरवाये गये धक्के भी उतने ही प्यारे हैं जितना तेरे द्वारा दिया गया बड़प्पन होता है। ***'भावै धीरक भावै धके एक वडाई देइ।'*** मैं अपने मुरश़द को याद तो हूँ न? उनके अन्दर बैठा हूँ कि वे मुझे याद करते हैं। अभी-अभी आपने जो कहा कि उसे घसीट कर फैंक दो, मैं आपको याद तो हूँ, यही मेरे लिये बहुत बड़ी बात है कि मैं मुरश़द को याद रहता हूँ।

बाहर आ गया औलिया, कहता है, ''खुसरो, तू जाता नहीं, सभी चले गये?''

कहता है, ''औलिया! संसार में मेरा कोई घर, स्थान नहीं है। तेरे चरणों में मेरा स्थान है। मैं तेरे चरण छोड़कर कैसे चला जाऊँ। तेरे बिना मैं जीवित नहीं रह सकता। तू यहाँ बैठा है, यह पवित्र मन्दिर है। नेत्रों वालों को दिखाई देता है, मैं कहाँ जाऊँ?'' सीढ़ियों से उतर कर खुसरो को अंक में भर लिया। कहने लगा, ''खुसरो, तूने रूहानियत की रमज़ समझ ली। बाकी जो 31 थे वे तो बातें ही बनाया करते थे –

धारना – गल्लां वाले हैन घनेरे,
चाकर कोई कोई है – 2, 2
चाकर कोई कोई है – 4, 2
गल्लां वाले हैन घनेरे .... – 2

अत: बातों से *'गली हउ सुहागणि भैणे कंतु न कबहूं मैं मिलिआ॥ (पृष्ठ – 433)'* बातों से सुहागन बने हुए हैं। इस तरह चाहे, 'भावै धीरक भावै धके एक वडाई देइ॥' कोई बिरला है जो धक्के मारे और फिर भी वहीं खड़ा रहे, वृत्ति डांवाडोल न हो।

महाराज कहते हैं, ''है कोई ऐसा?''

महाराज बताते हैं, *'कोटि मधे कोऊ बिरला सेवकु होरि सगलै बिउहारी॥'* करोड़ों में से एक है, सारे नहीं हैं? **सारा संसार परमात्मा के दर्शन नहीं चाहता। करोड़ों में से एक आध है जिसके अन्दर प्रभु दर्शनों की तड़प है।** गुरू महाराज जी शिवनाभ से कहने लगे, ''राजन! वाहिगुरू हर समय तेरे अंग संग है। बाहर नहीं ढूँढना –

इआनड़ीए मानड़ा काइ करेहि।
आपनड़ै घरि हरि रंगो की न माणेहि।
सहु नेड़ै धन कंमलीए बाहरु किआ ढूढेहि॥ पृष्ठ - 722

प्रभु तो सभी के साथ रहता है, जिसे तूने मिलना है, केवल अन्तर यह है कि हम उसे प्यार नहीं करते, हमारे अन्दर लालसा नहीं है, पपीहे की तरह कभी व्याकुल नहीं होते। महापुरुषों की बात नहीं मानते। वह हमें बहुत अच्छी बात कहते हैं लेकिन हमारे मन में नहीं बैठती, *'सहु नेड़ै धन कंमलीए बाहरु किआ ढूढेहि॥'* शिवनाभ ने कहा, ''प्रभु! दिखाई नहीं देता।'' महाराज कहते हैं, ''अदब की सिलाईयां, अदब का सुरमा डाल ले - भय का। एक भय होता है डरावना, काला भय, एक होता है निर्मल भय जिसे 'भऊ' कहते हैं। जब अदब का सुरमा नैनों में डाल लेगा फिर तुझे नाम जपते हुए कुछ और तरह का लगेगा कि यदि मेरी सुरत यहाँ से चली गई, बेअदबी हो जायेगी, वह मुझे देख रहा है -

पेखत सुनत सदा है संगे मै मूरख जानिआ दूरी रे॥ पृष्ठ - 612

वह तो मुझे देख रहा है, मैं उसका नाम ले रहा हूँ। मैं नाम ले रहा हूँ या बेअदबी कर रहा हूँ, मैं तो अपने कारोबारों में घूमता फिर रहा हूँ। इस तरह अदब नहीं बल्कि बेअदबी कर रहा है।

एक महापुरुष हज़रत मोहम्मद साहिब के समय हुए हैं, वह मोहम्मद साहिब का दूधिया भाई था। वे जब भजन किया करते, कांपते रहते थे। एक बार उनके मुरीदों ने पूछा, ''मुरशद! जब तुम मुराकबे (समाधि) में जाते हो, तो आप कांपते क्यों हो?'' कहने लगा, ''मैं अल्ला-ताला के हजूर में होता हूँ। वहाँ बेअन्त हैं -

इकदू इकि चड़ंदीआ कउणु जाणै मेरा नाउ जीउ॥ पृष्ठ - 762

वहाँ पर मेरा कोई नाम नहीं जानता क्योंकि वहाँ पर बेअन्त होते हैं बार-ए-गाह खुदा (सचखंड) के अन्दर मुझे डर लगता है कि कहीं मैं गुस्ताखी न कर लूँ, कहीं मेरे से भूल न हो जाये, यहाँ आकर मेरा मन कहीं दुनियाँ की बात न सोच ले क्योंकि उसके नैनों में अदब की सलाईयां पड़ी हुई हैं -

भै कीआ देहि सलाईआ नैणी भाव न करि सीगारो॥ पृष्ठ - 722

प्यार का शृंगार कर। हमारा प्यार तो परमात्मा के साथ नहीं है बल्कि दुनियाँ के साथ है। जब दुनियाँ के साथ प्यार है, वह तो झूठा प्यार है, परमेश्वर के साथ तो प्यार है नहीं। हज़ारों लाखों (दस करोड़) में से एक होता है जिसका परमेश्वर के साथ प्यार होता है, दुनियां से नहीं है। गुरबाणी में फ़रमान है -

लोग कुटंब सभहु ते तोरै तउ आपन बेढी आवै हो।। पृष्ठ - 657

सभी प्रीतों को छोड़कर, एक के साथ प्रीत रख ले, फिर आ जायेगा। यदि प्रीत अन्य से की हुई है फिर नहीं आया करता Unbreakable Love कभी न टूटने वाला प्यार वह चाहता है, जिसके अन्दर रज़ा में रहने की भावना हो, निहोरा न हो, शिकवा न हो, ताना न दे, ताना मारने की तो बात ही और हो जाती है। सधने भगत ने ताना मारा था -

न्रिप कंनिआ के कारनै इकु भइआ भेखधारी।
कामारथी सुआरथी वाकी पैज सवारी।
तव गुन कहा जगत गुरा जउ करमु न नासै।

सधना भगत जब अपने इष्ट देव के मन्दिर जाता है एक नगर में, एक वृक्ष के नीचे आसन लगाकर रात बिता रहा था तो एक व्यभिचारिनी औरत काम वासना से पीड़ित सधने के पास आई। इसने उसे इस मन्द कर्म करने से मना कर दिया। उसने समझा कि वह मेरे पति से डर रहा है। उसने टोका (तेज़ धार का शस्त्र) लेकर अपने पति का सिर धड़ से अलग कर दिया, फिर सधना भगत के पास आकर कहने लगी, ''अब तो मैंने अपने पति को कत्ल कर दिया।'' सधने ने कहा, ''बीबी, इतनी बुरी बात। इतना बुरा तेरा विचार।'' जब उस महिला ने देखा कि वह उसका कहना नहीं मानता तो उसने शोर मचा दिया कि इसने मेरा पति मार दिया। सधना पकड़ा गया। हुक्म हो गया कि राजा के दोनों हाथ काट कर दीवार में चिनवा दो। उधर किले की दीवार गिर जाती थी। ज्योतिषियों ने कहा, ''किसी जीवित मनुष्य को चिन दो तो दीवार नहीं गिरेगी, दीवार में बहुत कठोर जगह है। यह स्थान बलि मांगता है।'' सो चिनाई शुरू हो गई।

सधना प्रार्थनाएं करता है, ''हे प्रभु! मैं तो तेरी भक्ति कर रहा था, मैं तो तेरे दर्शनों के लिये आ रहा था, यह मेरे साथ कैसा व्यवहार हो गया, तू तो इतना दयालु, कृपालु है कि यदि किसी ने तेरा भेष भी धारण कर लिया तो भी उसकी तू रक्षा कर देता है।

यह साखी इस प्रकार है कि एक राजा के राज्य में किसी लड़के ने सुना था कि इस देश के राजा की लड़की विष्णु भगवान से शादी करना चाहती है। उसका एक मित्र इन्जिनियर था, उसे कहा, ''मुझे एक उड़न खटोला बनाकर दे, जिससे मैं महलों में जाकर उतर सकूं और मेरी चार बाजू लगा दे जो हिलती हों (आजकल तो ऐसे हाथ पैर लगा देते हैं जो हिलते हैं) उसे ऐसा ही कर दिया। विष्णु जी का पूरी तरह भेष बनाकर चला गया। खटका हुआ, लड़की छत पर आ गई। उसके महलों में जाकर उतर गया। नमस्कार करती है, प्रार्थना करती है, ''हे भगवान! तूने मेरे मन की इच्छा पूरी की है।'' राजा को सूचना दी गई अत: वहीं पर ही राजकुमारी का विवाह कर दिया गया।

कहने लगा, ''देखो, मैंने संसार में ऐसे नहीं रहना यह मेरा देव लोक का शरीर है, मैंने मनुष्य का शरीर धारण करके आना है।'' अत: दूसरे दिन अपने असली रूप में आ गया और महलों से उतर कर नीचे रहना शुरू कर दिया। काफी समय बीत गया। साथ के पड़ौसी राजा ने जब सुना कि इस राजा के घर विष्णु जी रहते हैं तो उसने विचार किया कि ऐसा हो नहीं सकता, यह कोई षडयन्त्र है, छल है, कपट है। राजकुमारी के पिता राजा ने इस भरोसे पर कि उसका दामाद तो विष्णु भगवान है, मुझे फौज़ें रखने की क्या जरूरत है, उसने फौज़ें हटा लीं। हमला करने वाले राजा ने सारी बात पर विचार किया। फौज़ों के बिना राज्य खाली पड़ा है, चलो चलकर उसका राज माल लूट लें। फौज़ों ने हमला कर दिया। वजीरों ने, युद्ध के बड़े-बड़े अधिकारियों, जरनैलों ने आकर राजा से कहा, ''महाराज! आपने फौज तो हटा दी, अब युद्ध कैसे करें? आज्ञा दें तो उन सभी सैनिकों को फिर बुला लें। वह सीमा पार करके आ रहा है और उस आक्रमणकारी राजा का कोई विरोध नहीं कर रहा।''

राजा कहता है, ''नहीं, मेरे दामाद विष्णु भगवान हैं, फिर मुझे क्या जरूरत है, 100ज निश्चय है।''

वह आक्रमणकारी राजा पास आ गया। शहर के द्वार बन्द किये हुए हैं। कहने लगे, ''महाराज! अब तो वे बाहरी मंजिल पर आ गये हैं। सीढ़ियां लगाकर चढ़ रहे हैं दरवाज़ा तोड़ दिया, हुक्म दें तो

गोली चलाएं।''

''कहता है, नहीं, भगवान सभी कुछ आप जी ने ही करना है।''

इधर इस प्रेमी को पता चल गया। उसे लड़की कहती है, ''हे भगवान! अब आप रक्षा करो।'' वह कहता है, ''कोई बात नहीं, तू चिन्ता मत कर, मैं रक्षा करता हूँ।''

वह अन्दर वाले कमरे में गया, अन्दर जाकर गले में फन्दा डालने लग गया। रस्सा गले में बान्ध लिया कुर्सी पर खड़ा हो गया और जब फांसी लटकाने के लिये कुर्सी से छलांग लगाने लगा उसी समय भगवान ने आकर पकड़ लिया। भगवान कहते हैं, ''अब क्या करता है, तुझे तो किसी ने बुरा नहीं कहना, मेरे भगवान की निन्दा होगी, जनता के निश्चय टूट जायेंगे। सारी दुनियाँ नास्तिक हो जायेगी। तू जा, मेरी कला का कौतुक होगा।'' ऐसा निराला कौतुक हुआ, ऐसी गुप्त लड़ाई हुई कि हमलावर राजा को हार माननी पड़ी।

सो सधना कहने लगा, ''हे भगवान! आपने इतनी लाज रखी कि एक ***'कामारथी सुआरथी वाकी पैज सवारी (पृष्ठ - 858)'*** उस कामी मनुष्य की भी आपने लाज रखी। वह भगत नहीं था। उसने तुम्हारा रूप बनाया, पाखण्ड किया।

कहते हैं, ''सधना! तेरा कर्म है, जिसका तूने फल भोगना है।''

कहता है, ***'तव गुन कहा जगत गुरा जउ करमु न नासै। (पृष्ठ - 858)'*** फिर तेरी शरण में आने का क्या लाभ? यदि तेरी शरण में आने के बाद भी मेरे कर्मों का नाश न हुआ। प्रार्थना करके पूछा, ''मेरा कौन सा कर्म है जिसका मुझे फल भुगतवा रहे हो।''

भगवान ने कहा, ''सधना, पिछले जन्म में तू मौनी सन्त था। बूचड़ गाय मारने के लिये ले जा रहे थे। उस गाय ने रस्सा तुड़वा लिया। जहाँ तू बैठा था, उस स्थान के पीछे एक गहरा गड्ढा था, उसके अन्दर छिप गई। तुझे बूचड़ों ने पूछा, ''गाय कहाँ छिपी है?'' एक के हाथ में छुरा है, तुझे पता चल गया कि यह तो कसाई हैं। तूने मौन व्रत रखा हुआ था। बोल कर बताने की बजाए तूने अपने दोनों हाथों से इशारा करते हुए बताया कि गाय मेरे पीछे इस गहरे गड्ढे में छिपी हुई है। दोनों हाथों से इशारा करके बताया, इसलिये तेरे दोनों हाथ काटे गये।'' यह तेरा कर्म था जिसका तुझे फल भुगतना पड़ा है -

भोगे बिन भागे नहीं करम गती बलवान।

ददै दोसु न देऊ किसै दोसु करंमा आपणिआ।
जो मै कीआ सो मै पाइआ दोसु न दीजै अवर जना॥ ***पृष्ठ - 433***

परमेश्वर को ताना मारते हुए प्रार्थना की, ''हे प्रभु! तेरी भक्ति करने का क्या लाभ हुआ यदि कर्मों का नाश ही न हुआ। शेर की शरण जाये और फिर गीदड़ों का भय बना रहे फिर शेर की शरण आने का क्या फायदा हुआ? सधना की यह प्रार्थना सुनकर, आकाश वाणी हुई, ''सब्र रख।'' सधना ने फिर प्रार्थना करते हुए कहा -

एक बूंद जल कारने चात्रिकु दुखु पावै।
प्रान गए सागरु मिलै फुनि कामि न आवै॥ ***पृष्ठ - 858***

हे प्रभु! कमर के ऊपर से दीवार चिन दी गई है। मेरा दम घुटना शुरू हो गया और आप

कहते हैं, रुक जा, तसल्ली रख। एक बूंद के लिए चात्रिक दुख उठा रहा हो और प्यासा ही रह जाये फिर यदि मरने के बाद यदि सागर भी मिल जाये, वह किस काम का? फिर दूसरी बार आकाशवाणी हुई ''ठहर सधना, ठहर।''

थोड़ी देर पश्चात दीवार छाती तक पहुँच गई, दम और घुटने लग गया। कहता है, ''प्रभु! अब मैं कैसे रुकूं?''

प्रान जु थाके थिरु नही कैसे बिरमावउ।
बूडि मूए नउका मिलै कहु काहि चढावउ॥ पृष्ठ - 858

हे प्रभु! मेरे प्राण निकलने वाले हैं। मैं मरने के किनारे पहुँचने वाला हूँ। प्रभु जी! यदि कोई व्यक्ति पानी में डूबता हुआ पुकार करता हो कि मेरी सहायता करो, पानी में से मुझे निकाल लो। वह यदि पानी में डूब कर मर जाये फिर उसकी सहायता करने के लिये किश्ती पहुँचे, फिर आप ही बताओ किश्ती पर किसे चढ़ाओगे। तब किश्ती किस काम की?''

कहते हैं, सधना शरीकों की तरह, तानें मारने लग गया, उलाहने दे रहा है, यह प्यारों की तो बात नहीं है। प्यारे तो मेरी रज़ा में राज़ी रहते हैं। बन्द-बन्द काटे जा रहे हैं, 'प्रभु! ***तेरा कीआ मीठा लागै।'*** मेरे प्यारे शिकवा नहीं करते। होश आई प्रार्थना की -

मैं नाही कछु हउ नही किछु आहि न मोरा।
अउसर लजा राखि लेहु सधना जन तोरा॥ पृष्ठ - 858

इस तरह प्यार में कोई शिकवा नहीं हुआ करता ***'भावै धीरक भावै धके एक वडाई देइ'*** जो बडप्पन मिल गया धक्कों वाला मिल गया तो धक्कों वाला ही सही।

अत: महाराज जी कहते हैं, वे नेत्र और हैं। प्यार करने वाले रज़ा में, प्रसन्न, चित्त, आनन्द में रहते हैं। इस प्रकार के प्यार का शृंगार कर। प्यार में शिकवा नहीं हुआ करता। जो कुछ करता है, उसी में ही भलाई समझे। इस तरह से आप फ़रमान करते हैं -

ता सोहागणि जाणीऐ लागी जा सहु धरे पिआरो।
इआणी बाली किआ करे जा धन कंत न भावै।
करण पलाह करे बहुतेरे सा धन महलु न पावै॥ पृष्ठ - 722

यदि करण पलाह करती है उलाहने देती है, कहते हैं, उसे रहने के लिये जगह नहीं मिला करती -

विणु करमा किछु पाईऐ नाही जे बहुतेरा धावै।
लब लोभ अहंकार की माती माइआ माहि समाणी।
इनी बाती सहु पाईऐ नाही भई कामणि इआणी॥ पृष्ठ - 722

फिर प्रश्न उठता है कि प्रभु मिलन कैसे हो?

गुरू नानक पातशाह कहते हैं, ''भाई यह बात उनसे पूछो, जिन्हें मिला है। गुरू नानक पातशाह उन्हें -

धारना - मैनूं दसिओ सुहागणि सहीओ,
किवें तुसीं राविआ कंत पिआरा - 2, 2
किवें तुसीं राविआ कंत पिआरा - 2, 2
मैनूं दसिओ सुहागण सहीओ,........ - 2

पूरे जिज्ञासु के मन में जब दर्शनों की तड़प उठती है तब उसके हृदय में से पुकार उठती है, कोई है ऐसा पुरुष जो मुझे मेरे प्यारे से मिला दे। बड़ी से बड़ी कीमत देने को तैयार हूँ। अपना तन, मन, धन तथा अपने मन की मति भी भेंट करने के लिए तैयार है।

गुरू इतिहास में एक साखी आती है कि गुरू नानक पातशाह जब आसाम और चटागांग होते हुए सोन दीप की ओर गये, वहाँ पर छोटे-छोटे टापुओं के अलग-अलग राज्य थे, जो पूरी तरह से निश्चिंत होकर सुख पूर्वक रहते थे। राजा शुद्रसैन का राज्य था, उसका भानजा इन्द्रसैन था जिसे रूहानी लगन लगी हुई थी। वह भाई झण्डे का सत्संगी मित्र था। नये देश में आ जाने के कारण, मरदाना ने गुरू नानक पातशाह से कहा, ''यहाँ पर मुसलमानों से नफरत होने के कारण कई प्रेमी मेरे साथ भी नफरत करने लग जाते हैं कि इसका जन्म मुसलमान का है। मैं बताया करता हूँ कि मैं न तो हिन्दू हूँ, न मुसलमान हूँ। आपके दिये गये ज्ञान के अनुसार कहा करता हूँ कि पाँच तत्वों की कोई जात नहीं हुआ करती जैसे हवा, आग, पानी की कोई जात नहीं है पर वे लोग इस तत्व की बात को समझते नहीं हैं।'' गुरू महाराज कहने लगे, ''मरदाना! तू झण्डा बाढ़ी (बढ़ई) के घर चला जा। वह प्रेमी है, उसका मित्र इन्द्रसैन है, वह भी प्रेमी है, हम उनके कारण ही इन टापुओं में आये हैं। तू वहाँ पर भोजन कर आना और हमारे पास उन्हें ले आना। उसका मित्र शुद्रसैन सत्त-चित्त-आनन्द की अवस्था की लालसा रखता है। भाई झण्डा बढ़ई भक्ति मार्गी है और इन्द्रसैन ज्ञान मार्गी है, दोनों ही जिज्ञासु और मित्र हैं। प्रभु दर्शन के पक्के अभिलाषी हैं? भाई मरदाना शहर चला जाता है और भाई झण्डा बढ़ई साथ ही आ जाता है। गुरू महाराज जी ने उसे भक्ति मार्ग द्वारा परमेश्वर की प्राप्ति का उपदेश दिया तो उसने प्रभु मिलाप की सत्त-चित्त-आनन्द वाली अवस्था की अभिलाषा बताई, वह उच्च अवस्था वाला जिज्ञासु ज्ञान का अधिकारी था। जब गुरू नानक जी के पास आकर प्रार्थना की, आत्म साक्षात्कार होने की प्रार्थना की तो महाराज जी ने हुक्म दिया, ''इन्द्रसैन! यदि तूने प्रभु से मिलना है तो पूरे सौदागर की तरह कुछ लेन-देन का व्यवहार करना पड़ेगा, यदि तैयार है तो वचन करें।'' उसने कहा, ''मैं अपना तन, मन, धन सभी कुछ अर्पण करने के लिये तैयार हूँ। कोई सन्त महापुरुष मुझे साक्षात्कार करवा दे।'' गुरू नानक साहिब जी ने कहा, ''इन्द्रसैन, संसार में, केवल दो वस्तुएं हैं। एक तो अनात्म वस्तुएं जो पल-पल बदलती रहती हैं। एक वह हैं जो सदा एक रस रहती हैं जिसे आत्मा, परमात्मा कहा जाता है। महाराज कहने लगे, ''प्रभु ज्ञान की अवस्था नाम प्राप्ति कहलाती है। नाम अमूल्य है सो तू सदीवी आनन्द लेने के लिये अनात्म वस्तुएं हमारे हवाले कर दे, फिर वचन करेंगे।''

इन्द्रसैन बहुत समझदार सत्संगी था। साधुओं के दर्शन किया करता था। उसने गुरू महाराज जी के चरणों में अपनी जमीन, जायदाद, कोठियां, दुकानें, सोना चांदी, सभी वस्तुएं भेंट करने का संकल्प कर लिया और गुरू महाराज जी को बता दिया।

गुरू महाराज जी कहने लगे, ''इन्द्रसैन! अभी तेरे पास अनात्म वस्तु पाँच तत्वों का बना शरीर है, इसके अन्दर 25 प्रकृतियों से बनीं पाँच ज्ञानेन्द्रियां हैं।'' इन्द्रसैन ने प्रार्थना करके वे भी भेंट कर दीं। उस समय फुरना (विचार) कर रहा है कि मैंने शरीर अर्पण कर दिया। सामने खड़ा होकर फुरना कर रहा है। गुरू नानक जी ने कहा, ''इन्द्रसैन! अब तू सोच रहा है, कुछ विचार कर रहा है। फुरने करना मन का धर्म हुआ करता है। यह तेरे पास अनात्म वस्तु है।'' उसने मन भी सतगुरू के चरणों में अर्पित कर दिया। अब बुद्धि से निर्णय करने लग गया। महाराज जी ने कहा, ''इन्द्रसैन! निर्णय करना बुद्धि का

धर्म है जो अनात्म वस्तु है।'' इसने बुद्धि भी अर्पण कर दी। अब चुप चाप खड़ा है पर अन्दर चितवना कर रहा है कि मैंने अपना, तन, मन, धन बुद्धि सभी अर्पण कर दीं हैं। गुरू महाराज जी कहने लगे, ''इन्द्रसैन! अभी सारी अनात्म वस्तुएं हमें अर्पण नहीं की? तू अभी चितवना कर रहा है। चितवना करना चित्त का धर्म होता है जो अनात्म वस्तु है, चित्त सूक्ष्म शरीर का हिस्सा है, यह भी अपने पास मत रख।'' उसने वह भी अर्पण कर दिया पर अब अपने आपको महसूस कर रहा है। गुरू महाराज जी ने कहा, इन्द्रसैन, तेरा जो जीव भाव है वह तू अन्तसकरण द्वारा अनुभव कर रहा है। यह भी अनात्म है, यह भी हमें अर्पण कर दे।'' उसने अपने प्रतिबिम्ब स्वरूप का अस्तित्व अनुभव किया और अपनी 'मैं' भी अर्पण कर दी। गुरू महाराज जी कहने लगे, ''इन्द्रसैन! अब जो शेष बचा हुआ अस्तित्व तुझे महसूस हो रहा है यह तू है, यह तेरा स्वरूप यही आत्मा है। यही परमात्मा है।'' इन्द्रसैन की समाधि लग गई और समय बीतता चला गया। गुरू महाराज जी ने समाधि से सावधान किया और कहा, ''इन्द्रसैन, यही ज्योति निरंकार है, ऐकंकार है, सत्त-चित्त-आनन्द है। यह परम चेतन तत्व तेरा स्वरूप है। सारा अनात्म जगत माया है, प्रकृति है, तीन गुणों में रजो, तमो, सतो के अधीन हरकत कर रहा है, अन्धकार है, क्षण भंगुर है, दुख रूप है, आत्मा इसके विपरीत है, सत-चित्त-आनन्द है। गुरू महाराज ने कहा, ''इन्द्रसैन! जो अनात्म वस्तुएं तूने हमें सौंपी हैं, हम वापिस करते हैं, तू मर्यादा अनुसार इनका प्रयोग करके निर्लिप्त रहता हुआ, प्रालब्ध अनुसार समय व्यतीत करता हुआ निर्वाण अवस्था का आनन्द लूटता रह। तू स्वंय ही ज्ञान है, आनन्द है, सत है, चेतन है और दूसरा कोई नहीं है। यह सारा अनात्म जगत माया का प्रसार है जो वाहिगुरू में ही है।

जिज्ञासु की प्रबल लालसा है कि मुझे कोई प्रभु से मिला दे। गुरू महाराज जी एक स्थान पर बताते हैं कि पूछो, जाकर सुहागिनों से जिन्होंने अपने प्यारे को रिझाया है -

जाइ पुछहु सुहागणी वाहै किनी बात सहु पाईऐ॥ पृष्ठ - 722

वे बेपरवाह हैं पर कृपा करके सन्त (सुहागनें) बताते हैं कि अपने मन की मति, सोच, चतुराई सभी कुछ छोड़ दे और मालिक की रज़ा में सुर मिला कर, जो कुछ भी हो रहा है, उसे धुर अन्दर से प्रवान करो। चालाकियां, अगर-मगर, ऐसा वैसा, अन्देशे छोड़कर जो कुछ भी तेरा प्रभु कर रहा है, उसे पूरी प्रसन्नता सहित, हृदय से मान ले। जैसे गुरू दशमेश पिता जी माछीवाड़े में ठण्डी गीली धरती, ठण्डी बर्फ जैसी चल रही हवा में बिना किसी गर्म वस्त्रों के लेटे हुए थे। उन्हें महलों की जगह सथर (धरती पर विश्राम का स्थान) प्रवान करके अपने प्यारे मित्र को सन्देशा दिया -

मित्र पिआरे नूँ हालु मुरीदां दा कहणा।
तुधु बिनु रोग रजाईआं दा ओढण, नाग निवासां दे रहणा।
सूल सुराही खंजर पिआला, बिंग कसाईआं दा सहणा।
यारड़े दा सानूं सथर चंगा, भठ खेड़ियां दा रहणा॥ ख्याल पातशाही १०

इस तरह से प्यारे! *'जो किछु करे सो भला करि मानीऐ हिकमति हुकमु चुकाईऐ॥ (पृष्ठ - 722)'* वाहिगुरू जी प्रेम करने से मिलते हैं, उसके चरणों में हृदय से प्यार पैदा करके जुड़ जाओ। प्रभु तेरे अंग संग है, उसे यदि मिलना है तो शृंगार कर। नेत्रों में सुरमे की जगह अदब (प्यार) का सुरमा डाल और पूर्ण प्रेम का शृंगार कर, जब तेरी ऐसी अवस्था हो जायेगी -

जिउ मछुली बिनु पाणीऐ किउ जीवणु पावै।
बूंद विहूणा चात्रिको किउकरि त्रिपतावै।
नाद कुरंकहि बेधिआ सनमुख उठि धावै।

भवरु लोभी कुसम बासु का मिलि आपु बंधावै।
तिउ संत जना हरि प्रीति है देखि दरसु अघावै॥ पृष्ठ - 708

प्रभु प्रेम के वश में होता है, चालाकियों, दलीलों, ज्ञान, ध्यान से नहीं रीझता, वह तो सच्चे प्रेम के आकर्षण द्वारा प्रकट हो जाता है। धन्ने ने रोटी खिलाई, लस्सी पिलाई। नामदेव जी ने दूध पिलाया। उसके प्रेम द्वारा ही नाम प्राप्त होता है, प्रभु प्राप्त होता है, जो कुछ भी वह करता है, उसमें भलाई ही समझो। जो उसे भाता है, उसी में भला समझो। तन, मन उसका है, उसे अर्पण कर दो -

गुर कै ग्रिहि सेवकु जो रहै। गुर का आगिआ मन महि सहै।
आपस कउ करि कछु न जनावै। हरि हरि नामु रिदै सद धिआवै।
मनु बेचै सतिगुर कै पासि। तिसु सेवक के कारज रासि।। पृष्ठ - 286

गुरू को मन दे दे, सभी कार्य ठीक हो जायेंगे। पीर बुल्लेशाह वैरागी होकर, अल्लाह की तलाश में घूमता फिरता लाहौर में पीर अनायत अली के पास आकर, अल्लाह को पाने के लिये प्रार्थना करता है। पीर ने कहा, ''बुल्ले! परमात्मा का क्या पाना, इधर से उखाड़ना, उधर लगा देना।'' पीर साहिब प्याजों की पौध उखाड़-उखाड़ कर लगा रहे थे और बोले, ''बुल्ले! अपना आप (निजित्व) भाव से उखड़े जाने के बाद अल्लाह के अस्तित्व में समा जाना, अल्लाह को पाना हुआ करता है। बुल्लिया! भाई अपना परिचय दो।

उसने कहा, ''जी मुझे बुल्ले शाह सैयद कहते हैं।''

पीर ने कहा, '' हम तो गरीब अराईं (जाति) हैं भाई! यहाँ पर सैयदों का कोई काम नहीं क्योंकि एक अक्षर फालतू लगा लिया अपने नाम के साथ बुल्ले शाह शब्द ही बहुत भारी था। उसके आगे एक अक्षर सैयद और लगा दिया। जब कोई जिज्ञासु सन्तों के पास मुरीद बनने के लिये, कुछ बनकर आता है तो सन्त कहते हैं कि यह तो पूरा भरा हुआ है, इसमें अभिमान है -

जो पावहि भांडे विचि वसतु सा निकलै किआ कोई करे वेचारा। पृष्ठ - 449

वसतू अंदरि वसतु समावै दूजी होवै पासि।। पृष्ठ - 474

यदि मिर्चों से घड़ा पहले ही भरा हो, उसमें चीनी डालना चाहते हो, उसके अन्दर कैसे आयेगी? घड़ा तो पहले ही भरा पड़ा है। घड़ा तो ऊपर गर्दन तक मिर्चों से लबालब भरा है। पहले उसे बाहर निकालो, कड़वाहट साफ करो, फिर उसमें चीनी आयेगी। कहने लगे, ''सैयद-पना, साथ लिये फिरता है प्यारे।''

कहता है, ''हे महापुरुषो! भूल हो गई। मुझे सत्पुरुषों के सामने बोलने का ढंग नहीं आया। कुदरती तौर पर जात का अभिमान रह गया। कृपा करो।''

पीर बोले, ''बुल्ले! परमात्मा का क्या पाना, इधर से उखाड़ना, उधर लगाना।'' दुनियाँ की ओर से मर जाना और परमात्मा की ओर से जीने लग जाना। यह जो क्यारी है इसे तो दुनियाँ मान ले और जिधर हमने लगानी है, इसे परमात्मा की क्यारी मान ले।''

मोटे तौर से समझा दिया कि दुनियाँ के पक्ष से अपने आप को मार ले और परमात्मा की ओर आ जा। सो सेवा करने लग गया। बहुत सेवा करता है, वस्त्र आदि धोता है और भी कई तरह की सेवा करता है। पीर के पुत्रों की सेवा करता है, पीर पत्नी की सेवा करता है। कुछ लोगों का विचार होता है, महापुरुषों को सेवा की जरूरत नहीं हुआ करती। उनका आदर नहीं करना। महापुरुष यहीं से देख लेते

हैं कि इसके अन्दर अभिमान है। बुल्ला वहीं पर ही रहने लग गया, सेवा में जुट गया। एक दिन पास के किसी रिश्तेदार का सन्देशा आया। अनायत शाह को, कि शादी है और सारे परिवार ने जरूर-जरूर आना है। अपने पुत्रों को बुलाया, कहते हैं, ''बेटा मैंने तो नहीं जाना, तुम चले जाओ।'' वे बोले, ''अब्बा जान! हमने तो जरूर जाना है, अच्छा होता आप भी हमारे साथ चलते। हम तो नहीं रूकेंगे।'' पीर जी बोले, ''तुम्हारी मर्ज़ी भाई, जाओ। पर इस बुल्ले ने मुझे लूट लेना है, इसने लूट लेना है मुझे।'' पीर के लड़के कहते हैं, यह तो परखा हुआ सेवादार है, हमें इसकी पूरी जान पहचान है। कहने लगे, इसका घर भी जानते हैं लूट कर कहाँ ले जायेगा? फिर पकड़कर ले आएंगे?

बच्चे रमज़ नहीं समझते। बच्चे अपने अब्बा जान (पीर जी) कहते चले जा रहे हैं, 'लूट लेना है, लूट लेना है,' आखिर बच्चे पीर साहिब को अकेला छोड़कर चले गये। पीछे अनायत शाह और बुल्ले शाह रह गये। पीर जी ने मुँह लगाकर पानी पी लिया। कहते हैं, ''बुल्ले! यह बाकी का पानी पी ले, इसी में ही सभी कुछ दे दिया इसी के अन्दर ही है। पी ले पानी।''

यदि किसी में शक्ति वाले शीत प्रसाद में ताकत है तो दे दो, ऐसे ही जूठन मत खिलाता रह लोगों को। तेरे ऊपर बोझ आ पड़ेगा। यदि तेरी जूठन में, कोई शक्ति नहीं है तो फिर किस लिये देता है?

गुरू तेग बहादर साहिब ने गन्ने चूस कर छिलके फैंक दिये। भाई मति दास ने छिलके चूस लिये। जबरदस्त ताकत आ गई, शरीर टिकता नहीं है, उछलता है। बात मुँह तक आती है, रोक नहीं पाता। भाई सती दास और भाई दिआला जी से कहने लगे, ''यदि गुरू जी आज्ञा दे दें तो मैं दिल्ली और लाहौर को बर्बाद कर दूँ।'' सिपाहियों ने सुन लिया। औरंगजेब को खबर कर दी कि सिख करामात दिखाने को तैयार हो गया है और करामात भी इतनी जबरदस्त है कि दिल्ली और लाहौर दोनों ही गर्क (बर्बाद) हो जायेंगे। मती दास जी का यह वचन गुरू तेग बहादुर जी ने सुन लिया। कहने लगे, ''भाई मती दास यह क्या करने लगे हो? हम तो कौतुक करने के लिये आए हैं -

ठीकरि फोरि दिलीस सिरि प्रभ पुरि कीआ पयान॥ ***बचित्र नाटक***

अब हमने जाना है। औरंगजेब के सिर पर ही बहाना बनाकर शरीर रूपी ठीकरा तोड़ना है। यह पाप का बेड़ा नहीं डूबेगा, जब तक इसमें पापों के भारी पत्थर न डलवाए जायें। इसने ब्रह्मज्ञानियों का विरोध अपने सिर पर लिया हुआ है बहुत से महात्मा मारे हैं और अब यह बेड़ा भर कर डूब जायेगा। इतनी ताकत तेरे अन्दर कहाँ से आ गई?''

''पातशाह! तुम्हारे जूठे छिलके चूस लिये हैं।''

गुरू महाराज जी ने कहा, ''जिसके छिलके चूसे हैं, उसके अन्दर कितनी ताकत है, वह क्या नहीं कर सकता, अनुमान लगा सकता है तू? शान्त रह, इसे जर। शक्ति इस बात पर प्रयोग करनी है कि शरीर को आरा चीर रहा हो, उधर जपुजी साहिब की आवाज़ दोनों फाड़ों में से आती हो। इन कामों में शक्ति प्रयोग नहीं करनी कि आरे के दान्ते मन्द कर दिये जाये या तोड़ दिये जाये या चीरने वालों को बुत्त बना दें। एक नई शिक्षा, उपदेश देना है कि Adverse circumstances (विपरीत दुखित, बुरे हालातों) में जब सिख मौत का सामना कर रहा हो, उस समय भी उसकी जुबान में परमेश्वर का नाम हो। किसी को श्राप न दे, बद-दुआ न दे। उसकी रज़ा में राजी हो'' -

कबीर जिसु मरने ते जगु डरै मेरे मन आनंदु। मरने ही ते पाईऐ पूरनु परमानंदु॥

हमने तो शहीदी देनी है।

सो शीत प्रसाद में इतनी ताकत है।

पीर जी कहने लगे, ''बुल्ले! पानी पी ले।'' पानी पीते ही बुल्ले के अन्दर अलौकिक शक्ति आ गई। धरती पर पैर नहीं टिकते क्योंकि अजर को जर करना बहुत कठिन होता है। एक उदाहरण में मैं समझाता हूँ।

आप जी के बीजी के पिता जी के बारे में है। एक बार भाई साहिब भाई रणधीर सिंघ जी कीर्तन कर रहे हैं। आप ताबे में बैठे चंवर डुला रहे हैं। बैठे-बैठे इतना जलाल आ गया कि शरीर का धरती से सन्तुलन टूट गया और छत से जा लगे। बापू जी अन्दर ही अन्दर अरदास करके जर करने की सोच रहे हैं। अरदास कर रहे हैं फिर उसी तरह से लौट कर गुरू महाराज जी के ताबे में आ गये। दोबारा फिर उठे, गुरुद्वारे की छत से जा लगे। फिर धीरे-धीरे दीवारों के साथ-साथ चलते हुए आगे बढ़कर गुरू ग्रन्थ साहिब जी के सामने लम्बे होकर लेट गये। प्रार्थना करते हैं, ''पातशाह! इतना जलाल, जर नहीं हो पा रहा।'' इतनी ताकत आ गई। उस समय शरीर में से बरोले बन बन कर लाईट निकलनी शुरू हो गई। सारा गुरुद्वारा प्रकाश से भर गया। भाई साहिब कहते हैं, बाजे बजने बन्द हो गये, कीर्तन बन्द हो गया, अन्दर नाम धुन की Vibration (कम्पन) होने लगी। अन्दर इतना रूहानी कम्पन आया कि समय ही भूल गया, 6 घंटे बीत गये, संगत में से कोई भी प्रेमी न उठा, इतना अकह रस फैला क्योंकि सभी के अन्दर गुरू घर में नाम फुहार द्वारा रस तारी हो गया। 6 घंटे बाद बापू जी उठे, धरती पर पैर नहीं लगते, ऊपर को उठते हैं। सो यह जलाल हुआ करता है। सहन नहीं हो पाता। इसे जर (सहन) करना बहुत कठिन होता है।

बुल्ले शाह से सहन नहीं हुआ। महापुरुषों ने कहा एक हमारे मेल मिलाप वाले पीर हैं, आज उनके यहाँ उर्स (समागम) है, तू वहाँ पर जाकर आ और आज शाम को ज़रूर पीर जी से मिलकर मेरी हाज़िरी लगवा कर वापिस लौट आना। 9 मील दूर थी वह जगह। चला गया, वहाँ पर बहुत भीड़ थी, काफी देर खड़ा रहा। मन में आया कि मैं एक छलांग लगाकर पहुँच जाऊँ या मैं किसी चीज़ पर बैठ कर जाऊँ। इधर देर होने लगी और महापुरुष बोले, ''क्या तूने अब वापिस जाना है? अन्धेरा हो गया है?'' कहता है, ''नहीं महाराज, मैं चला जाऊँगा।'' सभी के सामने वहाँ पर एक दीवार थी उस पर बैठ गया। कहता है, ''भाग ले, चल अब घोड़े की तरह।'' दीवार पर बैठकर पीर अनायतशाह के पास आ गया। मुरशद ने पूछा, ''कैसे आया वहाँ से?'' सारी बात बता दी। मुरशद ने पूछा, ''कितने बजे चला था?'' कहता है, ''अभी चला था, महाराज कुछ एक मिनट हुए हैं।''

फिर पूछा, ''किस पर चढ़ कर आया है?''

कहता है, ''आपकी कृपा से दीवार को भगा कर लाया हूँ।''

कई प्रेमी सवाल करते हैं कि दीवार टूटी नहीं? यह हमारे गाँव धमोट की बात है। जरग हमारे गाँव के पास है। वहाँ पर एक सन्त रहा करते थे। जरग वाले सन्त शेर की सवारी किया करते थे। वह जब शेर की सवारी करके, धमोट वाले सन्त से मिलने आए, जो वैरागी सम्प्रदा के सन्त थे, वे दांतुन कर रहे थे और दीवार पर बैठे थे। जरग वाले सन्तों की शेर की सवारी देखकर कहने लगे, ''चल भाई, देख,

महापुरुष कितनी दूर से आए हैं, तू भी चल।'' वह शेर पर आ रहे हैं ये दीवार पर चढ़े हुए हैं। वह दीवार हमने देखी है, जो खेतों में खड़ी है। उसे कोई छेड़ता नहीं है। कहते हैं शक्ति वाली दीवार है, सख्त है, इसे छेड़ना नहीं।

इधर मुरश़द कहने लगा, ''बुल्लेशाह! किसी अन्य तरीके से भी आ सकता था, तूने आडम्बर किया है, दिखावा किया है। लोगों में इसकी चर्चा होने लग पड़ी। पीर जी ने हाथ ऊँचा किया, सारी शक्ति खींच ली, बुल्लेशाह को खाली कर दिया, इसने बड़े तरले किये। फिर कई साल बाद मुरश़द प्रसन्न हुआ। उन्होंने फिर शक्ति दे दी। कहने लगे, ''देख बुल्ले! अब हमारे पास मत रह। अपने शहर में जाकर प्रचार कर। वहाँ जब इन्हें पता चला तो इन्होंने देखना चाहा कि बुल्ला पूरा हुआ है या नहीं क्या इसमें जर सकने की शक्ति आयी या नहीं क्योंकि हमने इसे बहुत सी शक्तियाँ दी थीं। इसके अदब (मान) में कोई अन्तर तो नहीं आया। कहीं अभिमानी नहीं हो गया हो क्योंकि जब मनुष्य के अन्दर कोई ताकत आ जाये, उसकी उपमा होने लग जाती है, प्रशंसा होने लग जाती है तो वह Polution (प्रदूषण) कहलाती है। उसमें मनुष्य के कदम थिरकने लगते हैं, जिज्ञासुओं के, सन्तों के भी कदम थिरकते हैं। सभी के थिरकते हैं। कहते हैं, ''कहीं थिरक तो नहीं गया।'' उस समय अपने पुत्र को भेज दिया कि जाओ बुल्लेशाह के पास उसका हाल चाल पूछ कर आओ। बुल्ले शाह ने बहुत आदर मान किया, अकेला ही मिला। जब वापिस आने लगा तो उसने कहा, ''महाराज! अब मैंने जाना है।'' इतनी देर में संगत बुल्ले शाह के चरणों में आकर इक्ट्ठी हो गई। बुल्ले शाह ने वहीं पर बैठे-बैठे ही कह दिया, ''अच्छा! पीर जी को हमारी नमस्कार कहना, सिरोपा दिया और भी सेवा की। लड़का जब वापिस आया बहुत खुश था। मुरश़द कहने लगे, ''कैसे मिला था वह?'' एक-एक करके सारी बात बता दी। कहते हैं, ''अच्छा, सरोपा दिया ठीक है, पर तू एक बात बता, जब तू चला था, मुरीद पास बैठे थे?''

कहता है, ''हाँ महाराज, उनके पास बहुत मुरीद आये हुए थे।'' कहते हैं, ''फिर उसने तुझे वहीं पर बैठे-बैठे ही सलाम कर दी?''

कहता है, ''हाँ जी।''

''बुल्ले शाह शहर से बाहर छोड़ने नहीं आया?''

''नहीं, महाराज।''

कहते हैं, ''अच्छा, गुरू पुत्र का आदर मान नहीं किया वहीं पर ही हाथ ऊपर को किया, सारी शक्ति खींच ली और साथ ही वचन कर दिया कि बुल्ले से कह दो हमारे सामने न आए।''

बारह साल फिर स्त्री वस्त्रों वाला जामा बनाकर। कवालियाँ गाता रहा, फिर जाकर महात्मा प्रसन्न हुए।

इस तरह से महाराज कहते हैं, ''इस बात का ध्यान रखना प्यारे, यदि तू मिलना चाहता है –

सहु कहै सो कीजै तनु मनो दीजै ऐसा परमलु लाईऐ॥ *पृष्ठ - 722*

तन भी दे दे, मन भी दे दे, जब तन और मन दे दिया अभिमान भी साथ ही चला जाता है फिर शेष क्या रह गया, कुछ भी नहीं। रज़ा में रह जाता है –

एव कहहि सोहागणी भैणे इनी बाती सहु पाईऐ।
आपु गवाईऐ ता सहु पाईऐ अउरु कैसी चतुराई॥ *पृष्ठ - 722*

अपने निज 'आपे' को तो तू अपने पास रखे हुए है। कहते हैं, 'मैं' भी हूँ। ऐसे परमात्मा नहीं मिलता। 'मैं' भाव ने जब मरना है तब परमात्मा मिलता है, दोनों कभी इकट्ठे नहीं हुआ करते। 'मैं' भी रहे और परमेश्वर भी मिल जाये। 'मैं' खोनी पड़ती है, खत्म करनी पड़ती है ***'आपु गवाईऐ ता सहु पाईऐ अऊरु कैसी चतुराई।' (पृष्ठ - 722)*** और कैसी चतुराईयां दिखाता है, वेद पढ़ लिये, शास्त्र पढ़ लिये, जितना मन करता है ज्ञान पढ़ ले, पुस्तकें पढ़ ले। दान कर ले, तीर्थ कर ले, ऐसे कर्मों के करने से प्रभु नहीं मिला करता और न ही चतुराईयों से परमात्मा मिलता है -

सहु नदरि करि देखै सो दिनु लेखै कामणि नउनिधि पाई।
आपणे कंत पिआरी सा सोहागणि नानक सा सभराई।
ऐसै रंगि राती सहज की माती अहिनिसि भाइ समाणी।
सुंदरि साइ सरूप बिचखणि कहीऐ सा सिआणी॥ *पृष्ठ - 722*

गुरू प्यार के वश आता है, फिर उसकी कृपा दृष्टि हो प्यार से भरी हुई, रज़ा में चलने वाला हो। प्यार के अन्दर रहते हुए दिन रात प्रभु प्रेम में समाया रहने वाला, प्रभु में समाई प्राप्त करता है। यदि प्यारे! तू परमात्मा से मिलना चाहता है तो ऐसे कर।

सो राजा शिवनाभ गुरू नानक पातशाह जी से प्रश्न करते हैं, ''पातशाह! मेरे भाग्य खुल गये कि आप आ गये। कृपा कीजिए मुझे रास्ता बताओ। परमेश्वर से मिलने का मार्ग बताओ। किसी विधि से मैं वहाँ पहुँच सकूं जहाँ, पर आपका और मेरा बिछोड़ा न हो क्योंकि आप परमेश्वर स्वरूप हो, सरगुण होकर गुरू परमेश्वर आए हो। यह सरगुण स्वरूप सदा नहीं रहता। आप निर्गुण स्वरूप हैं, मैं आप तक कैसे पहुँचू? कृपा करके रास्ता बताओ।'' महाराज कहने लगे, ''शिवनाभ! रास्ते तो अनेक हैं पर ये दो भागों में बंटे हुए हैं। एक को चींटी मार्ग और एक को पन्छी मार्ग कहते हैं। दोनों रास्तों में से सियाना आदमी चुनाव कर लेता है कि वह कौन सा रास्ता अपनाए।''

कहीं, ऊँचे वृक्षों पर फल लगे हुए हैं, दूर से सुगन्धि आ रही है, धीमी-धीमी हवा चल रही है, अमृत बेला में दो-दो चार-चार मील तक हवा सुगन्धि ले जाती है। कीड़ी को सुगन्धि बहुत जल्दी पता चल जाती है, चाहे कितनी दूर क्यों न हो, वहीं पर पहुँच जायेगी। उसके रास्ते में छोटा सा नाला भी आ जाये तो वह इससे पार नहीं होता। उस समय तक इन्तज़ार करेगी जब तक पानी नहीं सूखेगा। फिर चलेगी। फिर कोई और रूकावट आ गई, कहीं हल चलाया हुआ है। इसने कभी ऊपर जाना तो कभी नीचे जाना। फिर भी कोई गारंटी नहीं, रास्ते में कोई पैर के नीचे दबा कर मार दे, कोई जानवर ही उठाकर ले जाये। कहते हैं, भाई! उसे पहुँचने में कितना समय लग जायेगा और वहाँ पर पहुँचना बहुत कठिन हो जाता है। वह चलती तो ठीक दिशा में है पर लम्बा रास्ता अपना लेती है।

जो दूसरा रास्ता है विहंगम मार्ग, वह यह है कि पन्छी को पता चल गया, तोते को पता चल गया कि बाग के फल पक गये हैं। उड़ान भरता है और अपनी बोली में मगन होता हुआ वृक्ष पर जा बैठता है तथा फल का आनन्द भोगता है।

इस तरह से दो रास्ते हैं - एक को तो चीटीं मार्ग कहते हैं और एक को विहंगम मार्ग कहते हैं। कहने लगा, पातशाह! मेरा मन करता है कि मैं दोनों ही रास्तों को अच्छी तरह व्याख्या सहित सुनूं क्योंकि मन में बहुत से भ्रम पड़े हुए हैं। बहुत से साधु महात्मा यहाँ आए, सभी अपने प्रवचन सुनाते हैं लेकिन आप गुरू परमेश्वर आए हो, आपके वचन सत्य हैं। सो कृपा करके मुझे दोनों ही रास्ते बता दीजिये। महाराज जी ने वहाँ पर प्राण संगली लिखवाई और उसमें बताया, ''देख जो चींटी मार्ग है, इसका नाम है '**हठ योग तथा कष्ट योग**' इस रास्ते पर चलने वाला पहुँचता नहीं, कई जन्मों के जन्म बीत जाते

हैं तब भी पता नहीं पहुँचेगा या नहीं। दूसरा रास्ता होता है **'राज योग'** इस रास्ते पर चलने से कुछ जल्दी पहुँच जाता है। तीसरा रास्ता है **'भक्ति योग'** इस रास्ते पर चलने से और भी जल्दी पहुँच जाता है और एक होता है **'नाम योग'** इसमें इधर से उड़ो और दूसरी ओर पहुँच जाओ। इसमें बहुत समय नहीं लगता। अतः जो पहला रास्ता बताया गया है इसे हठ योग कहते हैं। इस मार्ग पर चलने के लिये अपने शरीर से शुरू करना पढ़ता है, सबसे पहले बाहरी शरीर को पवित्र, कठोर, मजबूत करना पड़ता है। पहले 'नेती' होती है, फिर 'धोती' होती है। सारा शरीर पवित्र करना पड़ता है। महाराज कहते हैं, ''कभी शरीर भी किसी का पवित्र हुआ है? खा लेता है फिर वैसा हो जाता है।''

एक पण्डित से जमींदार ने पूछा, ''पण्डित जी! मुख कैसे पवित्र हो सकता है?'' पण्डित बोला, ''डेढ़ मन मिट्टी जहाँ सूअर ने खोदी हुई हो, वह लाकर किसी कुएं पर बैठकर किसी बहते हुए पानी में कुरली करके फैंका जाये तो मुँह पवित्र हो जाता है। उसने कहा, ''पूरी गारन्टी देते हो?'' मैंने तो यही सुना है, ***'सुध कहा होइ काची भीति।' (पृष्ठ - 265)*** यह शरीर रूपी कच्ची दीवार है, यह शुद्ध नहीं होती।

पण्डित जी कहने लगे कि मुँह इस क्रिया से शुद्ध हो जाता है क्योंकि शरीर के अन्दर विष्ठा, रक्त, मांस (मिझ) आदि अपवित्र वस्तुएं हैं शरीर की मैल किसी तरह भी खत्म नहीं हुआ करती। स्नान करने के थोड़ी देर पश्चात शरीर मैला होना शुरू हो जाता है शरीर में साढे तीन सौ करोड़ रोम हैं, जिनके द्वारा शरीर की मैल बाहर निकलती रहती है। खाया पीया कुछ तो खून, मांस, वीर्य के रूप में अंग-अंग में पहुँचता रहता है कुछ पेशाब, विष्ठा आदि के रूप में मैल रूप होकर बाहर निकलता है। रेशा आदि जल मूत्र में से निकलता रहता है। कानों में निकलने वाली मैल ज़हरीली और बदबूदार होती है। इतना कुछ होते हुए शरीर शुद्ध नहीं हुआ करता। इसलिये कई बार स्नान, कुरलियां, दाँतुन आदि किये जाते हैं। इसलिये कहा गया है कि दीवार शुद्ध नहीं होती। वह डेढ़ मन मिट्टी उठा लाया और जहाँ रहट चलता था, वहाँ बैठ गया। पण्डित जी भी आ गये और इसने कुरली करनीं शुरू कर दीं। कई घंटे बीत गये ऐसा करते-करते। अन्त पण्डित जी दोपहर का स्नान करने के लिये फिर आए। इतनी देर में जमींदार ने कुरलियां करके सारी मिट्टी समाप्त कर दी और पण्डित जी से बोला, ''लो पण्डित जी! हो गया मुँह पवित्र?'' कहता है, ''हाँ, हो गया भाई तेरा मुँह पवित्र।'' जमींदार ने पास आकर, वहाँ से अंजलि में जल भरा, मुँह में पानी भर लिया, भर कर पण्डित जी पर कुरली करके फैंक दिया। पण्डित बोला, ''अरे दुष्ट! यह क्या किया?''

वह बोला, ''आपने ही तो कहा था, मुख पवित्र हो गया। अब आप मुझे दुष्ट कहते हो?''

जमींदार ने कहा, ''तेरे ऊपर मुँह में से शुद्ध पानी फैंका है, फिर आप गुस्से क्यों होते हो?'' अत ***'सुध कहा होइ काची भीति।'*** यह कभी भी शुद्ध नहीं हुआ करता। अतः इस तन को शुद्ध करने के लिये नेती, धोती दो तरीके हैं। इसके पश्चात कपाली हुआ करती है - प्राणों को ऐसे खींचना बाहर, ज़ोर-ज़ोर से करना। ज़ोर-ज़ोर से सांस खींचना और छोड़ना। इसके पश्चात भाठी होती है, निऊली होती है, त्राटक होता है, बसती होती है। ये पन्द्रह हैं। भाठी होती है जीभ को लम्बा करके, नाक की जड़ तक लम्बी कर लेना, प्राणों को दँसवे द्वार की ओर खींचना। भाठी की क्रिया द्वारा लम्बी की गई जीभ को गले तक लाकर, श्वांस वाली नाड़ी को बन्द करके, ऊपर गये हुए श्वांस को रोक देना तथा नीचे न उतरने देना। फिर भुजंगा नाड़ी के प्राणायाम के बल द्वारा मुँह खोल देना तथा कुन्डलनी जगा देना। कुन्डलनी को जगाकर फिर सुखमना नाड़ी द्वारा रीढ़ की हड्डी में से ऊपर को चढ़ाना। मूलाधार चक्र से लेकर आज्ञा चक्र तक 6 चक्र आते हैं। कहते हैं फिर सांस के बल द्वारा कुन्डलनी के ऊपर खींचना। यदि

कुन्डलनी शक्ति का जगाना किसी अनुभवी शिक्षक के नेतृत्व के बिना किया जाये, गलत हो जाये तो शरीर रोगी, कुष्ठी हो जाता है, फट जाता है, फुन्सियां निकल आती हैं फिर मनुष्य बहुत दुखी होता है, डाक्टरों के पास इस चीज़ का इलाज नहीं हुआ करता।

इस प्रकार जो अन्य कर्म हैं उन्हें षट-कर्म कहते हैं संध्या, जप, होम, स्नान, वेद, अर्चना, पूजा। हठ योग के सारे साधन घर से बाहर, शहर से दूर दराज़, एकान्त में रहकर ही किये जाते हैं। इनमें सफलता प्राप्त करने के लिये काफी समय की, पूरी तरह से फुर्सत की तथा चिन्ता रहित वातावरण की आवश्यकता है। ये कर्म घर में रहते हुए नहीं हुआ करते। कहते हैं, घर छोड़ना पड़ता है। महाराज कहते हैं ये बड़े-बड़ों ने करके देखे हैं, उन्हें ही पता है।

बाबा फरीद जी की माता रूहानी सूझबूझ वाली धार्मिक, अल्लाह को प्यार करने वाली, नेक तथा बहुत अच्छी थीं। माता ने पाँच साल की आयु में फरीद को अल्लाह का नाम जपने के लिए धार्मिक काम में लगा दिया, उसका निश्चय बना दिया। कहने लगी, ''फरीद! तसब्बी फेरा कर, अल्लाह का नाम लिया कर।'' फरीद बोले, ''माता! अल्लाह क्या देता है?'' बच्चा है, बच्चे को समझाने के लिये वही बात सामने होनी चाहिये। वह शक्कर खा रहा था। कहने लगी, ''अल्लाह! शक्कर देता है।'' कहने लगा, ''फिर तो मैं माला जरूर फेरा करूंगा।'' उसने माला ले ली, फेरनी शुरू कर दी, उसके बाद जब उसने अपना मुसल्वा उठाया, आसन उठाना तो माता ने नीचे चुप-चाप शक्कर की पुड़िया रख देना। एक बार ऐसा हुआ कि आप कहीं चली गईं। इधर भजन करने का समय हो गया और इसने खूंटी पर लटकी माला उतारी और सन्दूक से आसन उठाकर, बिछाया और माला फेरने बैठ गया। उसके बाद माता को चिन्ता हुई कि आज फरीद क्या करेगा? यदि शक्कर न मिली, मैं कौन सा बहाना बनाऊंगी।

माता वापिस आ गई। कहने लगी, ''फरीदा! तसव्वी फेरी थी।''

कहता है, ''हाँ माता।''

डरते-डरते पूछ लिया, शक्कर मिली थी।

कहता, ''माता! आ तुझे दिखाऊँ। अंगुली पकड़कर ले गया। शक्कर से सारे बर्तन भरे पड़े थे।

कहने लगी, ''यह कहाँ से आ गई?''

कहता है, ''आज तो खुदा ने बहुत सारी दे दी, पहले तो थोड़ी-थोड़ी दिया करता था।''

माता को पता चल गया कि शबद सिद्ध हो गया है। निश्चय के साथ कोई शबद पढ़ लो, परमेश्वर का नाम ले लो किसी शबद का विधिपूर्वक जाप कर लो, वह शबद बार-बार पढ़ा हुआ सिद्ध हो जाया करता है। फरीद की माता ने फिर परीक्षा लेनी चाही। एक दिन फरीद से कहने लगी, ''बेटा! आज अपने घर राशन नहीं है, जब इबादत करके उठेगा, अल्लाह ताला से कहना हमें एक समय की रोटी दे दे। आप चली गई और उसने वैसा ही किया और राशन के भरे हुए गड्डे आ गये। कहने लगे, ''फरीद का घर यही है?''

कहते हैं, ''हाँ जी।''

फरीद ने कहा, ''क्या बात है?''

कहते हैं, ''राशन है।''

"हमने तो एक समय का मांगा था।" कहते नहीं, "तूने यह नहीं कहा था कि आदमी के लिये एक समय का राशन दो। जितना बड़ा परमात्मा है, उतना ही बड़ा उसका समय है, सारा ही घर भर दिया। माता आई, पूछने लगी, "फरीद! राशन मांगा था?"

कहता है, "हाँ, माता! अन्दर आकर देख, पैर रखने के लिये भी जगह नहीं है। बोरियां, बर्तन सभी भरे पड़े हैं।"

माता ने समझ लिया कि इसे शबद की सिद्धि हो गई। सो ऐसे ही करवाती रही। जब 18 साल का हुआ बड़े-बड़े उलमाओ (विद्वानों) के पास रह कर धार्मिक इल्म प्राप्त कर लिया। अच्छे-अच्छे पीरों की संगत में रहकर उनके प्रवचन सुन कर विद्वान हो गया। उस समय माता ने कहा, "फरीद! *'हनूज दिल्ली दूर अस्त'* - अभी दिल्ली दूर है। जिस परमपद को तूने प्राप्त करना है, उसके लिये तुझे तप करना पड़ेगा।"

अतः माता ने तप करने के लिये, कष्ट योग करने के लिये बाबा फरीद को भेज दिया। कहने लगा, "माता! मुझे तो पता ही नहीं तप कैसे किया जाता है? मुझे कृपा करके बता तो सही?"

कहने लगी, "फरीदा! देख लेना वहाँ पर जैसे तपस्वी कर रहे हों, तू भी कर लेना। मैं तुझे तीन बातें बताती हूँ। एक तो तू किले में रहना, बाहर मत निकलना। दूसरा तू रेशमी गद्दों पर सोना, तीसरा तू नर्म प्रसाद, कड़ाह प्रसाद वगैरा-वगैरा 36 प्रकार के व्यजनों से तैयार भोजन किया करना।" फरीद का सिर चकरा गया। कहने लगा, "माता! मुझे तो कुछ भी समझ में नहीं आया। एक तरफ तो तू मुझे जंगलों में तप करने के लिये भेज रही है, वहाँ पर किले किसने बनाये होंगे, किसने मुझे वहाँ पर रेशमी गद्दे देने हैं, 36 प्रकार के व्यंजन कौन खिलायेगा?"

माता कहने लगी, "फरीदा! जिन साधुओं, सन्तों के बीच में तूने रहना है, उन्होंने तुझे कोई भी बात विस्तार से नहीं बतानी। उन्होंने संकेत देने हैं, रमज़ मारा करेंगे। तुझे समझनी पड़ेगी। बड़ी बात विस्तार के साथ नहीं किया करेंगे। रमज़ मारा करेंगे, समझ लिया करना। किला मैं उसे कहती हूँ, जहाँ सत्संग होता हो, साधु हों, वहाँ रहना, बाहर रहने वाले को माया चिपट जाती है। अकेले सन्त को माया नहीं छोड़ती, नीचे गिरा देती है। संगत में सन्त बचा रहता है। दूसरा 36 प्रकार के भोजन, जब हद से ज्यादा भूख लगे उस समय रूखी रोटियां भी तुझे अच्छी लगा करेंगी। 36 प्रकार के भोजन खाने वालों को डाक्टरों से दवाईयां लेनी पड़ती हैं कहते हैं जी, दूध हज़म नहीं होता, चूर्ण दे दो, दवाई दे दो। तुझे ये सभी हज़म हो जायेगा और स्वाद भी लगेगा तथा रेशमी गद्दे वह हैं, जो रेशमी गद्दों पर सोते हैं उन्हें पूछो कि नींद आती है? कहते हैं, डाक्टर साहिब, मुझे कोई गोली दे दो, कम्पोज़ की ताकि मुझे नींद आ जाये। कहने लगी भजन करने वालों को जब हद से ज्यादा नींद आए तो वह धरती पर, डलों पर ही लेट जाये, रोड़े पत्थरों पर ही सो जाये उनके लिये वही रेशमी बिस्तरे होते हैं।

अतः बाबा फरीद जी को भेज दिया। आप तप हठ (जुहद) में बड़ी साधना करते, अनेक प्रकार के साधन अपनाए। कई-कई दिनों तक खड़े रहते। कुएं में लटक जाते तो उलटे ही लटके रहते क्योंकि हठ योग कर रहे थे। आशा यह थी कि मुझे प्रभु मिल जाये। एक दिन जंगल में खड़े थे, वहाँ एक लुहार आया - सिर पर मटका है और कन्धे पर एक कुल्हाड़ा रखा हुआ है, प्रातः काल की बेला है, धुन्ध छाई हुई है, साफ दिखाई नहीं देता और फरीद एक वृक्ष के पास खड़ा है। लुहार ने समझा कि यह वृक्ष सूखा है, इसे ही काट लेते हैं। यह देखने के लिये कि वृक्ष सूखा है या गीला, उसने कुल्हाड़े का वार किया। पीन मारने (कुल्हाड़े से उल्टी चोट मारने) से बाबा फरीद की जो लिव लगी

हुई थी, ध्यान लगा हुआ था, वह भंग हो गया। टीस नहीं हुई, कोई बद-दुआ नहीं दी। समझ गया, यह भी कुछ ढूँढता फिरता है और मैं भी ढूँढता फिरता हूँ। खोज हम दोनों की सांझी है लेकिन इसकी खोज और मेरी खोज में अन्तर है - इस तरह फ़रमान करते हैं -

धारना - किते मार न गवाईं मेरे वीरनां,
तैनूं भाल कोलिआं दी - 2, 2
मेरे पिआरे, तैनूं भाल कोलिआं दी - 2, 2
किते मार न मुकाईं मेरे वीरना..........-2

कंधि कुहाड़ा सिरि घड़ा वणि कै सरु लोहारु।
फरीदा हउ लोड़ी सहु आपणा तू लोड़हि अंगिआर॥ ***पृष्ठ - 1380***

कहने लगे, ''प्यारे! तू भी कुछ ढूँढता फिर रहा है मैं भी कुछ ढूँढता फिर रहा हूँ। सो ऐसी कठिन तपस्या बाबा फरीद करते हैं, खाना-पीना छोड़ दिया। उस समय बाबा फरीद जी के श्लोक हैं -

फरीदा रोटी मेरी काठ की लावणु मेरी भुख।
जिना खाधी चोपड़ी घणे सहनिगे दुख॥ ***पृष्ठ - 1379***

तप त्याग जिज्ञासु के लिए आवश्यक है परन्तु संयम से करना जरूरी है तितिक्षा के बिना जिज्ञासु आलसी बन जाता है, लेकिन महाराज जी यह बताते हैं कि जिज्ञासु केवल तप पर ही निर्भर करे, फिर गलत है। तप भी करना चाहिये। अमृत बेला में जागता है, वह तप नहीं है? जब सभी सोये पड़े हों, वह उठकर बैठ जाता है। ठण्डे पानी में स्नान करता है जबकि बाकी लोग ठण्ड के मारे उठते ही नहीं, यह भी तप है? अन्यथा आदमी सुस्त हो जाया करता है। खाना-पीना भी सेहत के अनुसार होना चाहिये। जिस देही के साथ प्रभु प्राप्ति करनी है, उसे खुराक जरूर दो, बिल्कुल भूखा भी न रखें। पर उस समय जो वैरागी पुरुष होते हैं, उनकी वृत्ति अपनी होती है। अन्दर शौक होने के कारण अधिकतर अपनी वृत्ति तितिक्षा में ही रखते हैं।

अब बाबा फरीद ने तप साधना करते हुए नित्य प्रति का खाना-पीना छोड़ दिया। ऐसा तप किया कि शरीर सूख गया। फरीद जी के मन में आया कि चलो, माँ को मिलकर आएं। 12 वर्ष बीत गये। जब वापिस आ रहे थे तो एक छोटा सा जंगल पड़ता था, बस्ती से अभी थोड़ी दूर थे। उस समय सोचने लगे कि मेरे अन्दर कोई शक्ति भी आई है या नहीं? वृक्ष के नीचे बैठे थे। गहन जंगल था, बहुत सी चिड़ियां दोपहर के समय आराम कर रही थीं लेकिन अपनी खुशी में, कुछ अपनी बोली में राग अलाप रही थीं। **तप करने वाले के मन में क्रोध आ जाता है, नाम जपने वाले के मन में प्यार बढ़ जाता है। दोनों का उलटा प्रभाव पड़ता है। एक श्राप दे देता है, एक सब का भला मांगता है। वरदान देता है।** तपस्वी फरीद को चिड़ियों का चहचहाना अच्छा न लगा। दरवेश के मन में क्रोध आ गया। प्रतिकूलता महसूस करने लगा। ऊपर को देखा और बोले, ''चिड़ियो मर जाओ।'' धड़ाम से सारी चिड़ियां गिर पड़ी और मर गईं। फिर सोचता है कि यह तो मैंने बहुत बुरा काम किया। जिन्दगी तो अल्लाह ही देता है और अल्लाह ही लेता है, यह मैंने क्या कर दिया? पश्चाताप करने लगा, कहता है, ''अच्छा जिन्दा हो जाओ चिड़ियो।'' वे सभी जीवित हो गईं। मन में बड़ी खुशी हुई कि मेरे अन्दर करामात करने की शक्ति आ गई। मैं मार भी सकता हूँ और ज़िन्दा भी कर सकता हूँ। चलता-चलता जंगल से बाहर आ गया। पानी की प्यास बहुत तेज़ लगी। कुएं की जगत पर एक 22 साल की महिला पानी से भरकर डोल निकालती है और बिखेर देती है, निकालती है फिर बिखेर देती है। इसने कहा, ''बीबा, पानी पिलाओ।'' बीबा दरवेश को जल पिआलो। मन में कुछ अभिमान है कि मैं तपस्वी हूँ, मेरा मान होना चाहिये, मेरे अन्दर ताकत है मारने और ज़िन्दा करने की। बीबी ने कोई परवाह न की। खड़ा

हुआ देखता रहा, इतनी देर में कोई अनजान व्यक्ति आया, उस बीबी ने उसे पानी पिला दिया। फरीद ने फिर कहा, ''बीबा! दरवेश प्यासा खड़ा है, जल्दी पानी पिलाओ।'' बात करते समय बड़ा रौब है। लड़की सुनकर कहने लगी, ''बाबा! ये चिड़ियां नहीं हैं, जिन्हें तू मार देगा और ज़िन्दा कर देगा।'' जब यह वचन उस लड़की के मुख से निकला तो बड़ी तेज़ी के साथ शरीर में एक लहर सी महसूस हुई कि वह तो यहाँ पर पानी भर रही है, मैंने यह काम दस मील की दूरी पर था, तब किया, इसे कैसे पता चला? सब कुछ भूल गया। प्यास खत्म हो गई। एक ही लालसा रह गई कि मुझे यह समझ में नहीं आता कि यह पानी क्यों बिखेरती है। फिर उम्र में भी मेरे से यह कोई अधिक बड़ी नहीं है। बैठ गया वहीं पर। वह बीबी धीरे-धीरे पानी बिखेरती गई। काफी देह बाद आवाज़ दी, ''आओ दरवेश सांई! अब जल पीओ।''

फरीद कहने लगा, ''बीबी! मेरी प्यास बुझ चुकी है। अब मुझे पानी की ज़रूरत नहीं है। मुझे पहले यह बता कि तुझे यह कैसे पता चला कि मैंने चिड़ियां मारीं और ज़िन्दा की थीं?''

बीबी कहने लगी, ''बाबा, हम स्त्रियां हैं तथा तुम्हारी तरह जप तप नहीं कर सकतीं। घर से बाहर नहीं जा सकतीं। विवाहित हैं, घर में रहती हैं, पर हमें महापुरुषों ने यह बताया हुआ है कि यदि पति को परमेश्वर रूप में मानो परमेश्वर भावना में रहे तो उसकी तन मन से सेवा करो। कहते हैं उसके अन्दर शक्तियां आ जाती हैं, सूझ आ जाती है। अतः मैं जब से मेरा विवाह हुआ है, मैं अपने पति को परमेश्वर रूप मानती हूँ। वह भी प्रभु के प्यारे हैं। अमृत बेला में उठ जाते हैं। सिमरण करते हैं। मैं उनकी सेवा करती हूँ। सेवा करने से मेरे नेत्र खुल गये और मुझे तेरी चिड़ियां भी दिखाई देती हैं और जहाँ मैं पानी उडेल रही हूँ, वह स्थान भी दिखाई देता है।''

कहने लगे, ''बीबा! मुझे यह दृष्टि प्राप्त नहीं हुई है। कृपा करके मुझे बता कि पानी क्यों उडेल रही थी?''

वह बोली, ''बाबा! मेरी बहन महापुरुषों के सत्संग में गई हुई है। पीछे से उसके घर को आग लग गई, मैंने पानी डालकर बुझा दी। जाओ जाकर देख लो।''

फरीद एक दम दंग रह गया। उस गाँव में पहुँच कर फरीद ने जाकर देखा और सोचा कि यह बीबी ऐसे ही नहीं कहती। कहते हैं, क्या हुआ था? बोले, ''आग भी अपने आप लगी थी और अपने आप ही बुझ गई।'' समझ गया कि इस बीबी में बहुत बड़ी शक्ति है। इसे पतिव्रता शक्ति कहते हैं।

साध संगत जी, एक और साखी धार्मिक इतिहास में इसी सन्दर्भ में आती है।

एक ऋषि हुए उनका नाम मांडव था। वह बाबा फरीद की तरह तप किया करते थे। बहुत महान तपस्वी थे। तपस्या में लीन थे। चोर चोरी करने के लिये जा रहे थे तो इन्हें देखकर मन में मनौत रख ली। राजा के महल से चोरी कर ली और लौटते समय कहने लगे कि इस महात्मा को मनौत के बदले में क्या दें? रानी के गले का बहुत सुन्दर हार उसके गले में डाल दिया। आप समाधि लगाये बैठे थे। कुछ पता नहीं क्या डाला हुआ है, क्या नहीं पहना हुआ? इतनी देर में राजा के सिपाही आ गये। उन्होंने पकड़ लिया। उस समय राजा ने हुक्म दिया कि चोर को फांसी पर चढ़ा दो। इतना दुस्साहस, राजा के घर में आकर चोरी की? उसने बहुत कहा, ''मैं तो तपस्वी हूँ, तप करता हूँ, मांडव मेरा नाम है।'' सिपाही कहने लगे, ''तेरे पास से माल-ए-मशरूका निकला है, चोरी का माल निकला है, तू चोर

है।'' सूली पर चढ़ा दिया गया। जप और तप के बल के कारण मरता नहीं है, लटकता है। धर्म राज के पास पहुँच गया, जाकर कहने लगा, ''मैं तुम्हें श्राप दूंगा। मैंने तो कुछ भी नहीं किया, मेरा कोई कसूर नहीं है और मुझ पर इतना बड़ा दोष लगाकर यह आपने मेरे साथ क्या किया?'' धर्म राज कहने लगा, ''हे महापुरुष! मेरे अन्दर कोई ताकत नहीं कि मैं निर्दोष को सजा दे सकूं। यह तो पारब्रह्म परमेश्वर का नियम है। उसके नियम के अनुसार तुम काम करते हो। दुनियाँ के लोगों को उन कर्मों का फल कुछ तो वहीं पर ही भुगता दिया जाता है, कुछ जो शेष रहता है, वह यहाँ पर भुगता दिया जाता है। अतः जो कर्म हैं उनके बारे में परमेश्वर का हुक्म है, उसके अनुसार ही सभी कुछ हो रहा है। उसका मुझे दोष मत दो –

धारना – फल दित्तिआं बाझ न जाणा,
फल दित्तिआं – 2, 2
फल दित्तियां बाझ ना जाणा
तेरिआं करमां ने फल दित्तिआं.......... –2

ददै दोसु न देऊ किसै दोसु करंमा आपणिआ।
जो मै कीआ सो मै पाइआ दोसु न दीजै अवर जना॥ ***पृष्ठ – 433***

कहता है, ''हे महापुरुष! मैं कुछ भी नहीं करता।'' वह बोले, ''फिर मैंने कौन सा अपराध किया है?''

कहने लगे, ''पिछले जन्म में जब तू चार साल का था, तेरे हाथ में एक आक का टिड्डा आ गया और तूने एक कांटा लिया और उसके पेट में से आर-पार कर दिया तथा उस टिड्डे ने तड़प-तड़प कर जान दे दी। उसका बदला यह है कि तुझे इस जन्म में सूली पर लटकना पड़ा।'' बहुत से प्रेमी कहते हैं, ''अमुक व्यक्ति पाठ भी करता है, सेवा भी करता है, उसके साथ ऐसा हो गया। कर्म होते हैं, किये गये कर्मों का फल भुगतना ही पड़ता है –

भोगे बिन भागे नही करमगती बलवान।

कर्म दो प्रकार के होते हैं। एक होते हैं क्रियामान कर्म, जो अब हम कर रहे हैं। अभी सोच लो, ऐसा काम मत करो –

ऐसा कंमु मूले न कीचै जितु अंति पछोताईऐ॥ ***पृष्ठ – 917***

ऐसा काम मत करो, जिससे पश्चाताप करना पड़े। दूसरे होते हैं प्रालब्ध कर्म। जब हम जन्म लेकर यहाँ आते हैं प्रालब्ध कर्म, प्रालब्ध कोटि में आते हैं। ये टलते नहीं हैं। ये मनुष्य को भोगने पड़ते हैं। तीसरे हुआ करते हैं – संचित कर्म। जो हज़ारों करोड़ों कर्म हमारे जमा पड़े हैं फिर तो वे भी भोगने पड़ेंगें? महाराज जी कहते हैं, नहीं भाई –

गुर का सबदु काटै कोटि करम॥ ***पृष्ठ – 1195***

यदि तुम्हें ज्ञान हो गया, नाम की प्राप्ति हो गई फिर सारे कर्म ऐसे दग्ध हो जाते हैं, जैसे बीज रखा हुआ हो और वह गर्मी और उमस से खराब हो जाये, वह बीज सड़ जाया करता है, फिर ऐसा बीज हरा नहीं हुआ करता। उसे गमना (गम गया) कहते हैं। क्या यह अब गम गया, यह अब हरा नहीं होगा। वे गम जाते हैं – नाम जपने से। जो क्रियामान कर्म, हम रोज़ करते हैं, उन्हें बन्द कर दो। ऐसा कर्म करो ही मत, जिसका लेखा देना पड़े –

फरीदा जे तू अकलि लतीफु काले लिखु न लेख।
अपनड़े गिरीवान महि सिरु नींवां करि देखु॥ *पृष्ठ - 1378*

ऐसे मन्द कर्म (लेख) क्यों करता है, जिनका लेखा हिसाब किताब देना पड़े। जो कर्म हमारे शरीर के साथ आए हुए हैं, आदर भी साथ आया है, निरादर भी साथ आया है, गरीबी भी आई है, उसे भोग ले भाई - खुश होकर, वह तुझे भुगतना पड़ेगा क्योंकि तेरे प्रारब्ध कर्मों में प्रवेश कर चुके थे। कहने लगा, ''मैं तुझे श्राप दूंगा?'' कहता है, ''क्यों?'' उसने कहा, ''मैं चार साल का था, चार साल के बच्चे को दोष नहीं लगा करता। पाँच साल तक बच्चे के कर्मों का दोष उसके माँ बाप को लगा करता है, ऐसा कोई कानून नहीं जो बच्चे को सजा मिले। माँ बाप को सजा मिलती है।'' कहने लगा, ''महाराज! अब क्षमा करो, अकाल पुरुष जी के पास अब यह रख देते हैं, आगे के लिये जो आज्ञा होगी, मैं मानूंगा। पाँच साल से कम आयु का बच्चा जो कर्म करता है उसका दोष माँ-बाप को लगता है। पाँच साल से बड़ा होने पर जो कर्म करता है, उसका दोष कर्ता को भोगना पड़ता है।

अतः सूली पर लटक रहा है। इतनी देर में एक बीबी सिर पर टोकरा रखा हुआ है जिसे खारा कहते हैं, उसमें एक सूखा हुआ पिंजर लिये फिर रही है, पति बीमार है, दर-दर भटक रही है, भीख मांगती है, रहने के लिये कोई स्थान नहीं है, बाहर आकर जहाँ सूली गाढ़ी हुई थी, इसने ऊपर को देखा नहीं और उसके साथ टोकरा लगा कर रख दिया। अन्धेरा हो चुका था। टोकरा उस सूली के सहारे रख दिया और आप वहीं पर नीचे सो गई, यह विचार करके कि कोई जानवर न आये। जागती रहती है, रक्षा करती है, सेवा करती है। जब वह चलने लगी तो उसका टोकरा सूली से जा टकराया और सूली हिल गई। सूली हिली तो उस पर लटक रहे मांडव ऋषि को बहुत दर्द हुआ। तब वह ऋषि उस महिला को कहने लगे, ''तू कौन है, जिसने आकर मुझे दुख दिया? मैं श्राप देता हूँ कि जिसे तू टोकरे में बिठाये, सिर पर रखे, घूमती फिर रही है, यह सूर्य निकलने से पहले-पहले मर जाये।''

कहने लगी, ''बाबा, ठीक है तेरी मर्ज़ी। तुझे तप का बड़ा अभिमान है। यदि मैं पतिव्रता स्त्री होऊंगी तो सूरज ही नहीं निकलने दूंगी, सारा ब्रह्मण्ड अपनी चाल से रूक जायेगा।'' दस दिन बीत गये, सूरज नहीं निकल रहा, सारे परलोक में हाहाकार मच गई, ब्रह्मण्ड के मालिक ब्रह्मा, शिवजी, विष्णु आदि सभी के पास गई और अपने पति के लिये प्राण दान मांग रही है। कहने लगी, ''मैंने सांसारिक मर्यादा अटका दी है। इधर साधु का वचन है, वह नहीं टलेगा।'' दोनों बातें हो गईं। अब देवता चलकर आये। कहने लगे, ''बीबा! सूर्य निकलने दे, हम वचन देते हैं कि इसको प्राण दान देंगे।'' इस प्रकार सूर्य निकला, उसके पति ने शरीर छोड़ा, देवताओं ने उसके अन्दर पुनः प्राण डाले और शरीर भी तन्दरूस्त दे दिया। इसे पतिव्रता स्त्री का तप कहते हैं। रजनी के बारे में सभी को पता है और बहुत सी महती महिलाएं हुई हैं, जिन्होंने पतिव्रता धर्म पालन करके बेअन्त शक्तियां प्राप्त कीं।

काबुल वाली महिला की मैंने कथा सुनाई थी कि रोज़ काबुल से शबद पर सवारी करके अमृतसर सरोवर की कार सेवा करने के लिये आया करती थी और सेवा करके वापिस चली जाया करती थी। थोड़ी-थोड़ी देर बाद वह इस तरह करती थी जैसे झूला दे रही हो। सभी सिखों ने यह बात गुरू महाराज जी के पास जाकर बताई और कहा, ''पातशाह! यह कौन है?'' कहते हैं, ''भाई, यह बीबी रोज़ काबुल से आती है।'' संगत ने कहा, ''महाराज! यह ऐसे-ऐसे झूला सा भी देती है।'' महाराज जी ने

बताया, ''वह अपने बच्चे को सुलाकर आया करती है। यहीं से ही उसे दूध पिलाती है और यहीं से ही उसे सुलाकर झूला दिया करती है और अपने पति के घर आने से पहले, सेवा करके वापिस चली जाती है। इसने आज्ञा ली हुई है। कल उस बीबी को हमारे पास लेकर आना।'' जब दूसरे दिन उसे महाराज जी के पास लेकर आये तो महाराज जी कहते हैं, ''बेटा, कहाँ से आया करती है?'' कहने लगी, ''पातशाह, आप तो सर्वज्ञ हैं? काबुल से बुलवाते हो मैं वहाँ से आया करती हूँ।'' ''बेटा, इतनी शक्ति तेरे अन्दर कहाँ से आई?''

कहने लगी, ''पातशाह! गुरू नानक साहिब हमारे गृह में पधारे थे। उन्होंने मेरे पिता जी को नाम दिया, मेरे ससुर को भी नाम की दात बख्शी। इन पर दृष्टि की, तभी से गुरू घर के साथ जुड़े हुए हैं। जपी तपी पुरुष हैं और मेरी भावना में मेरा पति आप परमेश्वर है।''

भावना है गुरसिख की। गुरसिख की नज़रों में, *'गुर गोविंदु गोविंदु गुरू है नानक भेदु न भाई।'*

समुंदु विरोलि सरीरु हम देखिआ इक वसतु अनूप दिखाई।
गुर गोविंदु गोविंदु गुरू है नानक भेदु न भाई॥ ***पृष्ठ - 442***

अतः यदि इतनी श्रद्धा हो मन में तथा गुरू पर पूरा-पूरा विश्वास हो कि मेरा गुरू स्वंय परमेश्वर है, तभी नाम चित्त में बसा करता है -

धारना - गुर की परतीत जी
जिसदे मन विच है भाई - 2, 2
जिस दे मन विच है भाई - 2, 2
गुर की परतीति जी,........ - 2

जा कै मनि गुर की परतीति। तिसु जन आवै हरि प्रभु चीति॥ ***पृष्ठ - 283***

कहने लगी, ''पातशाह! मैं अपने पति पर इतना भरोसा रखती हूँ कि वह स्वंय ही निरंकार का रूप हैं। सो उसके भरोसे में से आपकी कृपा से यह शक्ति आई है कि मैं अपनी इच्छानुसार जहाँ जाना चाहूँ, जा सकती हूँ।''

महाराज जी कहते हैं, ''देखो प्यारे! पतिव्रता स्त्री तथा एक साधु ने इतना तप किया है, वह साधु से भी अधिक शक्तिशाली हो गई।'' कहते हैं -

जैसे तउ पपीहा प्रिय प्रिय टेर हेरे बूंद,
वैसे पतिब्रता पतिब्रत प्रतिपाल है॥ ***कबित स्वैये, भाई गुरदास जी 645***

पपीहा हर समय 'पिउ-पिउ-पिउ' करता रहता है, किसलिये, ताकि उसे स्वांति बूंद मिल जाये। एक पतिव्रता का जो व्रत है, वह उसका पालन करती है। एक सैकिन्ड के लिये भी मन चित्त से कोई वासना, कोई गलत बात, अपने पति के बारे में नहीं सोचती, पर-पुरुष की ओर किसी तरह का भी ध्यान नहीं करती -

जैसे दीप दिपत पतंग पेखि ज्वारा जरै,
जैसे प्रिआ प्रेम नेम प्रेमनी सम्हार है॥ ***कबित स्वैये, भाई गुरदास जी 645***

जैसे दीपक को देखकर जो पतंगा है, वह आग में चला जाता है, उसी तरह से वह पतिव्रता स्त्री अपने पति से प्यार करती है, उसके लिये अपनी जान भी कुर्बान कर देना चाहती है -

जल सै निकसि जैसे मीन मर जात तात,
बिरह बियोग बिरहनी बपुहार है॥ *कबित स्वैये, भाई गुरदास जी 645*

जैसे जल से बाहर निकल कर मछली एक दम मर जाती है, एक सैकिण्ड के लिये भी जीवित नहीं रह पाती, उसी तरह विरह में रहने वाली स्त्री, विरह सहन नहीं कर पाती –

सतीआ एहि न आखीअनि जो मड़िआ लगि जलंन्हि।
नानक सतीआ जाणीअन्हि जि बिरहे चोट मरंन्हि॥ *पृष्ठ – 787*

भगत पीपा जी की स्त्री, पीपा भगत जी का परलोक गमन सुनकर जिन्दा न रह सकी, पता चलते ही उसने भी शरीर छोड़ दिया। सो इस तरह से –

बिरहनी प्रेम नेम पतिब्रता कै कहावै।
करनी कै ऐसी कोटि मधे कोऊ नार है॥ *कबित स्वैये, भाई गुरदास जी 645*

पतिव्रता सदा प्यार के नेम में रहती है, ***'करनी कै ऐसी कोटि मधे कोऊ नार है।'*** करोड़ों में से एक है। पतिव्रता स्त्री अपने पति से प्यार करती है, कभी भूल कर भी बुरा नहीं कहती, कभी भूल कर भी चित्त में ग्लानि नहीं आने देती।

वह बीबी जब कुएं में से पानी निकाल रही थी, फरीद जी को कहने लगी, ''बाबा फरीद जी! हम स्त्रियों को ये व्रत वगैरा नहीं बताये गये, उलटा लटकना नहीं बताया गया। हमें तो बहुत ही आसान तरीका बताया गया है कि पति को परमेश्वर मान कर पूजो, इसी से ही ये शक्तियां आ जाया करती हैं।''

फरीद का सारा अभिमान टूट गया। शर्मिन्दा हो गया। कहता है, ''बीबा! तू घर में रहती है, सुन्दर कपड़े पहनती है, मेरे से आगे निकल गई, मुझे तो अभी कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ।'' घर चला गया। माँ उसके केश संवारने लगी। फरीद 'सी-सी' करके चीखता था। ''माँ केश उलझे हुए हैं, धीरे-धीरे कर।'' कहने लगी, ''फरीद! वहाँ क्या खाया करता था?'' कहता है, ''मैं वृक्षों के पत्ते सूत कर यानि खींच कर खाया करता था।'' कहने लगी, ''उन्हें दुख नहीं होता था? जा दोबारा, अभी तुझे कुछ नहीं आया।'' माँ ने फिर तप करने के लिये भेज दिया। अब फरीद खाना-पीना छोड़कर तप करता है और बिल्कुल पिंजर बन गया। कभी कुएं में उलटा लटकता है, बहुत उग्र तप की उसने साधना की। कभी कभी पत्थरों पर सो जाता है, कभी एक टांग के बल पर खड़ा रहता है, कभी बाजू ऊपर करके, कभी कैसे तो कभी कैसे तप करता रहता है। शरीर बिल्कुल पिंजर बन गया। तब फरीद के मन में आया, कहने लगा, ''अरे मन! अब तो पता नहीं मर ही जाना है परन्तु अभी तक परमात्मा के दर्शन तो हुये नहीं।'' इस तरह फ़रमान किया –

धारना – तन सुक्क के हड्डां दी मुट्ठी हो गिआ,
अजे वी ना रब्ब बहुड़िआ – 2, 2
मेरे पिआरे, अजे वी न रब्ब बहुड़िआ – 2, 2
तन सुक के हड्डां दी मुट्ठी हो गिआ,........-2

फरीदा तनु सुका पिंजरु थीआ तलीआं खूंडहि काग।
अजै सु रबु न बाहुड़िओ देखु बंदे के भाग॥ *पृष्ठ – 1382*

ऐसी अवस्था हो गई, रंग काला पड़ गया। कोयल बोल रही है। कोयल ने मीठी-मीठी ध्वनि में बोलकर कहा। फरीद जी ने देखा, कहते हैं, ''कोयल! तेरा भी रंग काला है, मेरा भी रंग काला है।

तेरी आवाज़ में कितनी तरले भरी विरह पीड़ा प्रतीत हो रही है, कोई तरला है? मेरी आवाज़ में भी तरले हैं। तू मुझे कुछ बता सकती हैं? मेरे साथ कुछ दुख सांझा कर ले –

काली कोइल तू कितु गुन काली॥ *पृष्ठ – 794*

तू क्यों काली हो गई?''

कहने लगी, ''फरीदा! *'अपने प्रीतम के हउ बिरहै जाली।'* मुझे भी विरह की चोट लगी हुई है, मेरे पति, मेरे साथ नहीं रहते, मुझे उनका बिछोड़ा तड़पा रहा है।''

इस तरह से बाबा फरीद जी की ऐसी हालत हो गई *'फरीदा तनु सुका पिंजरु थीआ तलीआं खूंडहि काग। अजै सु रबु न बाहुड़िओ देखु बंदे के भाग।'*

कागा करंग ढढोलिआ सगला खाइआ मासु।
ए दुइ नैना मति छुहउ पिर देखन की आस॥ *पृष्ठ – 1382*

हे कागा! तुम चोचें मारे जा रहे हो, मांस निकाले जा रहे हो, देखना, यह कोई नया काम मत कर बैठना, आखों की तरफ चला आ रहा है, मेरे नेत्र मत निकाल लेना। मुझे आस लगी हुई है कि मुझे प्यारे के दर्शन जरूर होंगे। इस तरह से प्रार्थनाएं करता है। इसी तरह से बहुत कठोर तपस्या करने के पश्चात आवाज़ आई, फरीदा! तेरी कठिन साधना को देखकर बड़ी दया आती है पर तूने रास्ता बहुत ही गलत पकड़ लिया। यह तो बहुत लम्बा चींटी वाला रास्ता है, और रास्ता अपना ले। ऐसे तो तू शरीर का भी खातमा कर रहा है। इस तरह से तरले करता है। साध संगत जी, पढ़ो प्यारे से –

धारना – ओ कागा, इह दोइ नैना मति छेड़िओ – 2, 2
मैनूं पिर देखण दी आस – 2, 2
ओ कागा, इह दोइ नैना मति छेड़िओ.......–2

कागा करंग ढढोलिआ सगला खाइआ मासु।
ए दुइ नैना मति छुहउ पिर देखन की आस॥ *पृष्ठ – 1382*

मुझे आस लगी हुई है –

कागा चूंडि न पिंजरा बसै त उडरि जाहि।
जितु पिंजरै मेरा सहु वसै मासु न तिदू खाहि॥ *पृष्ठ – 1382*

आवाज़ आई –

तनु न तपाइ तनूर जिउ बालणु हड न बालि।
सिरि पैरी किआ फेड़िआ अंदरि पिरी निहालि॥ *पृष्ठ – 1384*

तेरे तो अन्दर बसता है, ढूँढ ले उसे –

धारना – पिआरे जी, जंगलां 'च काहनूं ढूंडदैं – 2, 2
रब्ब वसदै अंदर तेरे – 2, 2
पिआरे जी, जंगलां 'च...... –2

फरीदा जंगलु जंगलु किआ भवहि वणि कंडा मोड़ेहि।
वसी रबु हिआलीऐ जंगलु किआ ढूढेहि॥ *पृष्ठ– 1378*

तेरे तो अन्दर बसता है। मुरश़द-ए-कामिल की शरण में जा, हठ योग से परमात्मा नहीं मिलता। यह बहुत लम्बा रास्ता है। सरल मार्ग गुरू सेवा, प्यार भरा आकर्षण, विश्वास, सत से प्यार का

होता है।

गुरू नानक पातशाह, राजा शिवनाभ से कहने लगे, राजन! एक तो यह रास्ता है। दूसरा रास्ता है इसे 'राजयोग' कहते हैं। यह पहले वाले से कुछ आसान है, लेकिन फिर भी इसके अन्दर एक बात यह है कि मनुष्य को अपने तन और मन द्वारा सभी कर्म शुद्ध करने पड़ते हैं। मन के सारे कर्म शुद्ध करने पड़ते हैं। जब तक तन और मन साफ नहीं होता, तब तक सुरत ऊपर नहीं उठती। यहीं पर ही उलझा रहता है। उसके अन्दर चित्त वृत्तियों को एकाग्र करना पड़ता है। उसे राज योग कहते हैं। **जोग कहते हैं, जोड़ने को। जुड़ने से मनुष्य के अन्दर ये पाँच क्लेश हैं जिसके फलस्वरूप सारा संसार दुखी हो रहा है, कलह क्लेश में भ्रमित हो रहा है, वे दूर हो जाते हैं।**

चित्त वृत्तियां जो गिनती में पाँच हैं, इन्हें इनके विषयों से रोक कर एक ध्येय पर केन्द्रित करने को 'योग' कहा जाता है, चित्त वृत्तियों का निरोध करना या होना योग कहा जाता है, जिसे प्राप्त करने के अनेक साधन हैं।

पहली प्रमाण वृत्ति, दूसरी विपरजा वृत्ति, तीसरी विकल्प वृत्ति, चौथी निद्रा वृत्ति, पांचवी स्मृति वृत्ति होती है। ये तो केवल प्रमुख वृत्तियां हैं वैसे तो असंख्य पदार्थ हैं, उनसे उत्पन्न होने वाली भी अनेक वृत्तियां हैं, पर उपयुर्क्त बताई गई पाँच प्रमुख वृत्तियां हैं। वृत्तियों का प्राकृतिक स्वभाव है कि वे अपने विषयों के अनुसार संस्कार उत्पन्न करती हैं।

जो वस्तुएं हम नेत्रों से देखते हैं, कानों से सुनते हैं, नासिका से सुगन्धि लेते हैं, रसना से रस महसूस करते हैं, शरीर के स्पर्श से प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करके, चित्त में उनका अस्तित्व धारण करते हैं, उसे प्रमाण वृत्ति कहते हैं। प्रमाण कई प्रकार के होते हैं - अनुमान प्रमाण, आगम प्रमाण, प्रत्यक्ष प्रमाण, शबद प्रमाण आदि-आदि, वे प्रमाण वृत्ति के विषय हैं। दूसरी वृत्ति विपरजा वृत्ति है। इससे मिथ्याज्ञान उत्पन्न होता है जैसे सिप्पी पर चन्द्रमा की किरणें पड़ने से सिप्पी चांदी की तरह चमकती है। वह है तो सिप्पी, पर उसे चांदी समझना मिथ्या ज्ञान है, जैसे जेठ आषाढ़ के महीने में रेतीले मैदान में पानी दिखाई देना, अन्धेरे में पड़ी रस्सी को साँप होने का अनुमान लगा लेना, भैन्गी आँख से दो चन्द्रमा प्रत्यक्ष देख कर दो समझना। किसी वस्तु में विपरीत वस्तु कल्पित करके निश्चय करने को विपरजा वृत्ति कहते हैं।

तीसरी वृत्ति विकल्प वृत्ति हुआ करती है। यह वृत्ति भेद में अभेद और अभेद में भेद आरोपित करती है जैसे अहम वृत्ति प्रभु में भेद उत्पन्न करती है।

चौथी निद्रा वृत्ति होती है। जो सखोपत (गहरी नींद) में पैदा हुए आनन्द को प्रकट करती है। इसमें जाग्रत तथा स्वपन अवस्था का अभाव होता है। इस वृत्ति में याद तो रहता है कि मुझे नींद आई है, मैं सुख पूर्वक सोया आदि।

पांचवी स्मृति वृत्ति है जो बातें हम जाग्रत अवस्था में करते हैं और जो चीज़ें जाग्रत अवस्था में देखते हैं, पढ़ते हैं, सुनते हैं, उनके संस्कार याद मण्डल में फिल्म की तरह चित्रित हो जाते हैं। काफी समय बीत जाने के बाद भी याद रहते हैं। भजन अभ्यास के समय बीत जाने के बाद भी याद रहते हैं। भजन अभ्यास के समय ये बीते हुए चित्र, शब्द, देखे हुए स्थान, दोबारा अंकुरित होकर याद में साकार हो जाते हैं। इस क्रिया को स्मृति वृत्ति कहते हैं। यह वृत्ति भजन करते समय बहुत विक्षेपता पैदा करती

है तथा वृत्ति को एकाग्र नहीं होने देती। **दृढ़ अभ्यास द्वारा इन वृत्तियों को शान्त करना, निरुद्ध करने की क्रिया को साधन कहते हैं तथा प्राप्ति को योग कहते हैं। जब चित्त टिक जाता है तो चित्त वृत्तियों का निरुद्ध हो कर योग प्राप्त होता है।**

भजन करने के लिये चित्त की एकाग्रता बहुत जरूरी साधन है। **चित्त एक नदी की तरह है, जिस में चित्त वृत्तियों का प्रवाह दिन रात निरन्तर बहता रहता है और चित्त को अशान्त रखता है।** इन वृत्तियों का प्रवाह दो सागरों की ओर रहता है। एक प्रवाह संसार सागर की ओर बड़ी तेज़ी से उछलता हुआ बह रहा है, दूसरा प्रवाह बहुत धीमी चाल से रूक रूक कर कल्याण सागर की ओर बह रहा है। सांसारिक लोग, विषय सागर के दुखों भरे बदबूदार, अति कड़वे तथा खारे सागर की ओर चले जा रहे हैं पर जिज्ञासु कल्याण सागर की ओर चल रहे हैं।

सभी वृत्तियों का निरुद्ध अभ्यास तथा वैराग भी दृढ़ लगन पर आधारित है, गुरू संगत, सत-संगत, दृढ़ता अति आवश्यक है। ये सभी वृत्तियाँ क्लेशों को जन्म देती हैं जो दुख रूप है। अभ्यासियों ने पाँच क्लेश बताये हैं, जिनका इलाज प्रभु नाम का लगातार सिमरण है।

सभी क्लेशों को जन्म देने वाली माँ का नाम है **अविद्या**। मोह आदि, शरीर आदि,अनात्म पदार्थों में आत्म अभिमान धारण करने को अविद्या कहा जाता है। अविद्या के कारण ही अस्मिता, राग, द्वैष और अभिनिवेश क्लेश पैदा होते हैं।

संक्षेप में सत्य में असत्य, अनित्य में नित्य, अपवित्र में पवित्र, दुख में सुख समझना, अविद्या कहलाती है। यह शेष चार क्लेशों को जन्म देती है। तीन गुणों का परिणाम महितत (समष्टि बुद्धि) का अस्तित्व प्रकट करता है। महितत से समष्टि हउमै की उत्पत्ति होकर चित्त अनेक चित्तों में अलग-अलग होकर संसार के रूप को धारण करता है। चेतन तत्व से प्रतिबिम्बत हुआ व्यष्टि (अकेला-अकेला) चित्त अविद्या धारण करता है जिससे **अस्मिता क्लेश** पैदा होता है। यह क्लेश इन्द्रियों तथा शरीर में आत्म भाव दृढ़ करवाता है। मैं तथा मेरी का भाव दृढ़ हो जाता है। जो 'मैं' तथा 'मेरी' के हितु हों उनके साथ राग (लगाव) पैदा हो जाता है।

शरीर तथा इसकी इन्द्रियां, मन, बुद्धि में आत्म अधिआस परिपक्व होकर जिन वस्तुओं, प्राणियों से सुख मिलता है उनके साथ सम्बन्ध जुड़ा रहे, इसे **राग** कहते हैं। यह क्लेश अस्मिता से उत्पन्न होता है। यह राग ही **द्वैष** का कारण है। जिन वस्तुओं, प्राणियों से दुख महसूस हो, उनके साथ द्वैष पैदा हो जाता है जिसे द्वैष क्लेश कहते हैं। जो मृत्यु का भय, नाश हो जाने का भय, अन्देशा चित्त में बना रहता है उसे **अभिनिवेष** क्लेश कहते हैं।

ये सभी क्लेश साकाम कर्मों के कारण हैं, जिनकी वासनाओं के वश यह जीव जन्म मरण का दुख सदा ही सहन करता रहता है और अपने बोये हुए कर्मों का फल स्वंय ही भोगता रहता है।

कृष्ण महाराज फ़रमान करते हैं, ''हे कुन्ती पुत्र! यह जीव मरते समय जिस वासना की प्रबल स्मृति धारण करता है उसके अनुसार ही उसे जन्म मिलता है। हिंसक, मांस भक्षण करने वाला जीव आत्मा, जहाँ भी नया शरीर धारण करेगा, पिछली वासना के अनुसार कोई हिंसक यौनि ही उसे प्राप्त होगी। अन्त समय में 'जैसी मति तैसी गति' के अनुसार ही उसका अगला सफर शुरू होगा।

जीव आत्म रथ का स्वामी है, शरीर रथ है, बुद्धि रथ का सारथी है। मन लगाम है, इन्द्रियां घोड़े हैं। इनकी सड़क विषयों से भरपूर है।

गुरू नानक पातशाह कहने लगे, ''राजन! पाँचों क्लेश प्रभु मार्ग पर चलने के लिये विघ्नकारी हैं जिनसे प्रभु सिमरण में पूरी तरह लिवतार होने से छुटकारा मिल जाता है।'' बाणी में फ़रमान है –

सिमरउ सिमरि सिमरि सुखु पावउ। कलि कलेस तन माहि मिटावउ॥ पृष्ठ - 262

एक रहत (नियमावली) तो वह होती है जो किसी व्यक्ति को, मज़हब को धारण करते समय उसके आचार्य बताते हैं, दूसरी रहत निज से सम्बन्ध रखती है। कुछ शरीर से सम्बन्ध रखती हैं, कुछ का मन से सम्बन्ध होता है। इन नियमों का पालन करना बहुत जरूरी है। सभी महान पुरुषों ने अपने विचारों में इनका उल्लेख किया है। महात्मा बुद्ध ने भी अष्टांग योग के आठ नियम बताए हैं।

इसके अनुसार कुछ कर्म धारण करने वाले हैं, कुछ कर्म छोड़ने योग्य हैं क्योंकि **विचारों से ही उच्च आचार बनते हैं। आचार और विचार का घनिष्ठ सम्बन्ध है।** अष्टांग योग के नियम हैं –

1. सत्य दृष्टि (ज्ञान)
2. सत्य संकल्प
3. सत्य कर्म
4. सत्य वचन
5. सत्य किरत (व्यापार)
6. सत्य व्यायाम
7. सत्य सिमरण
8. सत्य समाधि।

1. सम्यक (सत्य) दृष्टि – आचार और विचार का अटूट सम्बन्ध है। विचार की भूमि पर आचार खड़ा है। सत्य दृष्टि पहला अंग है। इनमें कुछ कर्म करने योग्य हैं, कुछ कर्म करने योग्य नहीं हैं। इन कर्मों को तीन भागों में बांटा गया है। 1. कायिक कर्म 2. वाचक कर्म 3. मानस कर्म

बुरे न करने वाले कर्म	**करने योग्य कर्म**
(क) कायिक कर्म	
1. हिंसा	अहिंसा
2. चोरी	चोरी न करना
3. व्यभिचार	अव्यभिचार (जति)
(ख) वाचक कर्म	
1. झूठ बोलना	सच बोलना

2. चुगली करना	चुगली रहित वचन
3. कड़वे वचन बोलना	मीठे वचन बोलना
4. बकवास	कम बोलना

(ग) मानस कर्म

1. लोभ	लोभ रहित रहना
2. सभी का बुरा चितवना	सर्वस्व का भला मांगना
3. मिथ्या दृष्टि (झूठी धारना)	सत्य दृष्टि

2. सत्य संकल्प – सत्य दृष्टि होने पर ही सत्य संकल्प का निश्चय पैदा होता है। दृढ़ संकल्प धारण करना चाहिये कि मैं विषयों की कामना नहीं करूंगा। दूसरों के साथ धोखा, विश्वासघात नहीं करूंगा और न ही किसी जीव की हत्या करूंगा।

3. सत्य वचन – कड़वे, कठोर वचन, चुगली, बकवास को पूरी तरह से छोड़ दूंगा।

4. सत्य कर्म – पंच शील पूरी तरह से अपनाना (हिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य धारण करना, शराब मांस का पूरी तरह से त्याग करना।)

5. सत्य किरत (व्यापार) – परिश्रम से, मेहनत, ईमानदारी से व्यापार (किरत) करना आवश्यक है। झूठी आजीविका को छोड़कर दसों नाखूनों से की गई कमाई से सन्तुष्ट रहे। आजीविका का साधन ऐसा होना चाहिये, जिससे दूसरों को दुख न पहुँचे। तराजू की ठगी, रिश्वत, वेश्याओं का पेशा, कृतघ्नता, कुटिलता, कत्ल, बन्धन, डाका, लूटमार, हथियारों का व्यापार, मांस का व्यापार, गुलामों का व्यापार, शराब, विष का व्यापार न करे। पवित्र कमाई करे। दसों नाखूनों का परिश्रम तथा सतोगुणी प्रभाव का व्यापार करे।

6. सत्य व्यायाम – इन्द्रियों पर संयम, बुरी भावनाओं को रोकना, अच्छी भावनाएं ग्रहण करना।

7. सत्य स्मृति – वाहिगुरू जी की महिमा को सदा ही हृदय में बसाये रखना। सत स्मृति के चार रूप हैं 1. काया 2. वेदना 3. चित्त 4. धर्म के रहस्य को समझना। इनके वास्तविक स्वरूप को समझना और इनकी स्मृति सदा ही रखना।

1. काया, मलमूत्र, केश, नाखून आदि पदार्थों से बनी है।

2. सुख-दुख – न सुख, न ही दुख के भाव को समझना वेदना है।

3. चित्त की परिस्थितियां बदलती रहती हैं। कभी खुशी, कभी गमी, कभी राग, कभी वैराग, कभी द्वैष रहित तो कभी द्वैष सहित, कभी मोह सहित, कभी मोह रहित।

4. चित्त के अनेक धर्म हैं – कभी कामुकता, कभी द्रोह, कभी आलस्य, कभी संशय, कभी खेद आदि में अपने आपको पहचानना।

8. सत्य समाधि – बुद्ध धर्म में ऐसा माना जाता है कि ज्ञान बिना मुक्ति नहीं मिलती। ज्ञान को निर्वाण, कैवल्य मुक्ति का प्रमुख साधन माना गया है। ज्ञान तब तक नहीं होता जब तक उसे धारण करने की क्षमता शरीर में नहीं होती। ज्ञान के लिये शरीर की शुद्धि की आवश्यकता है। बुद्ध धर्म में शील तथा समाधि द्वारा काया शुद्धि तथा चित्त शुद्धि पर विशेष बल दिया जाता है।

इसी तरह धर्म में पाँच नियमों को, पाँच महाव्रत कहा गया है। पहला अहिंसा किसी भी तरह से न हाथों से, न पैरों से, न वचनों से किसी भी प्राणधारी को पीड़ा न पहुँचाना। 2. सत्य वचन बोलना, असत्य किसी प्रकार का भी न बोलना 3. चोरी न करना। 4. ब्रह्मचर्य 5. अपरिग्रह (पूर्ण संयमी) के लिये धन, धर्म, नौकर चाकर का त्याग जरूरी है। सभी पाप कर्मों का त्याग जरूरी है। अपनी जरूरत से अधिक अपने पास कुछ न रखना। फालतू को बांट देना।

हठ योग में 6 प्रमुख साधन करने आवश्यक हैं जिनके नाम धोती, बसती, नेती, निऊली, त्राटक तथा कपालभाती हैं। ये 6 क्रियाएं शरीर को शुद्ध करने के लिये जरूरी हैं।

1. धोती – यह तीन प्रकार की हुआ करती है। तीन इंच चौड़ी कपड़े की पट्टी, पन्द्रह हाथ लम्बी, धीरे-धीरे मैदे तक ले जाकर मैदा (पेट) साफ किया जाता है। यह क्रिया बहुत ही सावधानी के साथ करनी पड़ती है। वारी धोती, ब्रह्मा दांतुन तथा वास धोती, तीन प्रकार की होती है।

2. बसती – बसती मूलधार के समीप है। एक नलकी द्वारा पानी अनीमे की तरह अन्दर ले जाकर मलमूत्र साफ किया जाता है।

3. नेती – नेती कर्म के लिये महीन सूत की डोरी द्वारा नाक की सफाई की जाती है। यह जल द्वारा भी हो सकती है। मुँह द्वारा पानी पीकर नाक द्वारा निकाल दिया जाता है।

4. निऊली – यह क्रिया हठ योग की आवश्यक क्रिया है। पेट की हवा बाहर निकालनी, पेट को घुमाकर की जाती है। इस क्रिया से गला, तिल्ली, मन्दग्नि, बाल, पेट का कठोरपन, पेचिश संग्रहणी आदि पेट के सभी रोग दूर हो जाते हैं। वात, पित्त, कफ तीन दोष एक साथ दूर हो जाते हैं।

5. त्राटक – किसी आरामदेय आसन पर बैठकर किसी छोटी वस्तु कागज़ पर काला धब्बा बनाकर, मोमबत्ती जलाकर बिना पलक झपके की जाती है। बलौर तथा त्राटक करने से कोई हानि नहीं होती। त्राटक के कई भेद होते हैं।

6. कपालभाती – इसके भी कई भेद हैं। सुख आसन पर बैठ कर प्राणायाम की तरह दोनों नासिकाएं चला कर रखें।

इन साधनों का बहुत विस्तार भी है पर हर एक प्राणी ये साधन नहीं कर सकता क्योंकि समय, स्थान, साफ हवा का अनास्तित्व बना रहता है।

जिस प्रकार बुद्ध मत, जैन मत के महापुरुषों ने अपने-अपने योग के साधन बताये हैं, इसी तरह माननीय पतंजलि ऋषि जी ने राज योग के अष्टांग साधन नियत किए हैं जिनके क्रमशः नाम यम, नेम, आसन, एकान्त स्थान प्राणायाम, धारना, ध्यान, समाधि हैं। यम और नेम संख्या में दस-दस हैं –

यम - एक अहिंसा जानिये, मन बच काइआ तीन।
पर का बुरा जि चितवना, मन की हिंसा चीन।
फिका बोल दखाइ हनावै, हिंसा बचन कहि लीजै।
तीजी मारन जीवन केरी। तिआगै इन कौ ह्वै बिन देरी।

यम – ये दस प्रकार के होते हैं। परमेश्वर के द्वार पर पहुँचने के लिये, आत्म मार्ग पर चलने के लिये, इन यमों का पालन करना बहुत ज़रूरी है। ये बेशक ऋषियों, मुनियों, अनुभवी महापुरुषों ने बनाए हैं, गुरू ग्रन्थ साहिब में 'निर्मल कर्म' के घेरे में ये समूचे तौर पर आ जाते हैं। इतिहास के अनुसार इन यम और नियम का उल्लेख सांख्यकारों ने किया है। इन नियमों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है।

1. अहिंसा – यह कई प्रकार की होती है। मानसिक अहिंसा, वाचक अहिंसा, शारीरिक अहिंसा। मानसिक अहिंसा के अन्तर्गत किसी का बुरा न चितवना, किसी प्राणी को अपनी बुद्धि की तीक्ष्णता से कोई नुकसान न पहुँचाना, मन्त्र बल से किसी का बुरा न करना शामिल हैं। सबसे बुरी हिंसा अपने आप का घात करना है, जिससे हम सदा ही अनभिज्ञ रहते हैं। वह यह है कि मानस जन्म प्राप्त करके निगुरे रहना तथा–

नामु न जपहि ते आतम घाती॥ *पृष्ठ - 188*

उपर्युक्त गुरू फ़रमान है। मानसिक हिंसा का केवल एक ही इलाज है कि नितनेम करके, नाम जप कर अति विनम्रता तथा स्वच्छ हृदय सहित प्रभु के चरणों में प्रार्थना करना, ''हे प्रभु! ***'नानक नाम चढ़दी कला, तेरे भाणे सरबत का भला'*** मैं ही बुरा हूँ, तू सभी घटाओं में बिराजमान है सभी का भला कर। मेरा, परिवार का, समस्त भाईचारे का, देश, प्रजा, पशु पन्छियों अन्डज, जेरज, सेतज, उदभुज सभी का भला कर।'' इस परम उच्च आत्मिक मण्डल की सभी जगह प्रभु को रमा हुआ जानकर प्रार्थना करना, यह मानसिक हिंसा से मुक्त कर देती है।

2. वाचक हिंसा – फीका बोलना, कड़वा बोलना, ताने उलाहने आदि बोल हृदय को बीन्ध देते हैं तथा ये कर्म बुरे परिणाम निकालने में समर्थ होते हैं। संसार में हुए भयंकर राज्य युद्धों का कारण भी बन जाते हैं जैसे द्रोपदी ने दुर्योधन को, जब वह युधिष्ठिर के निमन्त्रण पर, पाण्डवों द्वारा बनाये गये नये महल में, दरवाजे के स्थान पर दीवार तथा सूखी जगह के स्थान पर पानी का भ्रम खाकर, दीवार में जा लगा और सिर पर चोट आई और सूखी एवं खुश्क जगह समझ कर वस्त्रों सहित पानी में गिर पड़ा, यह कहा था, ''अन्धे पिता का पुत्र भी अन्धा ही है (अन्ध का अन्ध)।'' दुर्योधन ने उस समय जघन्य सामाजिक अपराध किया और कहा, ''मैं द्रौपदी को भरी राजसी सभा में नग्न करूंगा।'' और यही एक कारण महाभारत के युद्ध होने का बताया जाता है।

फीका बोलना दिल तोड़ देता है, परमात्मा हर घट में निवास करता है –

इकु फिका ना गालाइ सभना मै सचा धणी।
हिआउ न कैही ठाहि माणक सभ अमोलवे।
सभना मन माणिक ठाहणु मूलि मचांगवा।
जे तउ पिरीआ दी सिक हिआउ न ठाहे कहीदा॥ *पृष्ठ - 1384*

फीका बोल कर व्यक्ति को बर्बाद होना पड़ता है, जिसके बोलने से, सुनने वाले के दिल में, प्रसन्नता पैदा हो, वही बोलना परवान माना जाता है –

जितु बोलिऐ पति पाईऐ सो बोलिआ परवाणु।
फिका बोलि विगुचणा सुणि मूरख मन अजाण॥ पृष्ठ - 15

फीका बोलना (दुहागिनों जो पति से विहीन हो) का कर्म माना जाता है, जो परमेश्वर रूप पति को पूरी तरह से भूली हुई हैं। फीका बोलने के कारण, अपने प्यारे के संग से सदा वंचित रहती है -

दोहागणी महलु न पाइन्ही न जाणनि पिर का सुआउ।
फिका बोलहि ना निवहि दूजा भाउ सुआउ॥ पृष्ठ - 426

बन्दगी करने के लिये अपने अन्दर प्रेम रस सहाई होता है पर फीका बोलना प्रेम रस से हीन कर देता है। कड़वा बोल कर दूसरे का दिल तोड़ देता है तथा वाचक अहिंसा का दोषी होने के कारण दरगाह में से भी निकाल दिया जाता है। अपना कार्य स्वंय बिगाड़ने वाला मूर्ख होता है। उसकी शोहरत भी फीकी होती है, उसे कोई भी पसन्द नहीं करता जैसे कि -

नानक फिकै बोलीऐ तनु मनु फिका होइ।
फिको फिका सदीऐ फिके फिकी सोइ।
फिका दरगह सटीऐ मुहि थुका फिके पाइ।
फिका मूरखु आखीऐ पाणा लहै सजाइ॥ पृष्ठ - 473

फीका बोलने के कारण, घर से बाहर निकाल दिये जाने की अनेक कथाएं प्रचलित हैं, जैसे कि एक प्रेमी सफर कर रहा था। उसे जब भूख लगी, उसके मन में विचार आया कि किसी के घर में जाकर, अपने पल्ले में बन्धे चावलों को उबाल कर खा लूँ। एक महिला का अच्छा स्वभाव देखकर चावल बनाने के लिये, उसकी रसोई में जाकर, बर्तन ले लिया तथा उस बीबी ने और भी जो चीज़ें चाहिये थीं, वे भी दे दीं। वह महिला तुरन्त भाँप गई कि इस राही में फीकापन बहुत है। जब चावल बन रहे थे तो इसकी नज़र उस महिला की अच्छी स्वस्थ भैंस पर चली गई तो उसी समय बोला, ''ओ माई! तेरी भैंस तो बहुत सुन्दर है, खूब पली हुई है पर तेरे घर का दरवाज़ा बहुत तंग है। यदि तेरी भैंस मर जाये तो यह बता, तू इसे बाहर कैसे निकालेगी?'' उस महिला को यह सुनते ही गुस्सा आ गया। वह उठी और चूल्हे से अधपके चावलों का पतीला उतार कर उसके परने में पलट दिया और घर से बाहर निकाल दिया। जब वह गली में से जा रहा था तो साफे में से चावलों का पानी रिसता देखकर किसी ने पूछा, ''इस परने (साफे) में से क्या रिसता जा रहा है?'' उस राही ने उत्तर दिया, ''भाई! क्या बताऊं? यह तो मेरी जुबान का ही रस रिसता जा रहा है।'' यह वाचक हिंसा हुआ करती है।

फिका बोल दुखाइ हनावै (दिल ढाहे) हिंसा बचनन की कहलावै।
श्री गुरू नानक प्रकाश, पृष्ठ - 530

3. तीसरी अहिंसा **'जीवों को मार देना'** हुआ करती है। सभी जीव वाहिगुरू जी ने पैदा किये हैं। अकारण ही जीव हत्या करना, प्रभु के दर पर मान्य नहीं है। बाणी में फ़रमान है -

बेद कतेब कहहु मत झूठे झूठा जो न बिचारै।
जउ सभि महि एकु खुदाइ कहत हउ तउ किउ मुरगी मारै॥ पृष्ठ - 1350

बाणी में फ़रमान है कि जब यज्ञ करते समय कुर्बानी दी जाती है, यह दया का काम तो न हुआ। बलि दिलवाने वाला श्रेष्ठ पुरुष कसाईयों का काम करके मुनवर कहलाता है। श्रेष्ठ मुनि कहा जाता है पर यह मुनिवर का काम नहीं है। यदि यह बलि देने का काम श्रेष्ठ मुनियों, आचार्यों, पुरोहितों का है फिर कसाई किसका नाम हुआ -

जीअ बधहु सु धरमु करि थापहु अधरमु कहहु कत भाई।

आपस कउ मुनिवर करि थापहु का कउ कहहु कसाई॥ *पृष्ठ - 1103*

तीजी मारन जीवन केरी। तयागै इह को ह्वै बिन देरी॥
श्री गुरू नानक प्रकाश, पृष्ठ - 530

दूसरा यम सच बोलना है, कभी भी झूठ न बोले। महाभारत के युद्ध का उल्लेख है कि राजा युधिष्ठिर सत्यवादी थे कभी झूठ नहीं बोलते थे। जब द्रोणाचार्य और अर्जुन में युद्ध हो रहा था, तब इसे कहा गया कि तू कह दे 'अश्वथामा हतो' अर्थात अश्वथामा मर गया। परन्तु वह कहने के लिये तैयार नहीं था। जब तक द्रोणाचार्य अपने पुत्र की मृत्यु का समाचार नहीं सुनता, उसे मारा नहीं जा सकता था और अर्जुन का वध हो जाना स्वाभाविक था। उस समय सेना में एक हाथी इसी नाम का था, उसे मार दिया गया और घोषणा करवा दी गई, ***'अश्वथामा हतो नरो न कुंचरो'*** अश्वथामा मर गया मनुष्य है या जानवर। जब यह ऐलान हतो तक पहुँचा, नरो अक्षर बारे सुनने दिया पर जब कुंचरों बोला जाने वाला था तो खूब ज़ोर-ज़ोर से ढोल बजा दिये जिसे सुनकर द्रोणाचार्य ने अपने पुत्र अश्वथामा का वध हो गया समझ कर, शस्त्र रख दिये और अर्जुन ने उसका वध कर दिया।

फ़रमान है झूठ नहीं बोलना चाहिए। यह छल कर्म हुआ करता है -

मिथिआ नाही रसना परस। मन महि प्रीति निरंजन दरस॥ *पृष्ठ - 274*

झूठी मन की मति है करणी बादि बिबादु।
झूठे विचि अहंकरणु है खसम न पावै सादु॥ *पृष्ठ - 1343*

बोलीऐ सचु धरमु झूठु न बोलीऐ। जो गुरु दसै वाट मुरीदा जोलीऐ॥ *पृष्ठ - 488*

दूसरा यम सच बोलना है -

दुतीये सच उचरन निरबहै। कबहूं कूर न किह बिधि कहै॥
श्री गुर नानक प्रकाश, पृष्ठ - 530

3. तीसरा है **चोरी न करना** - चोरी कई प्रकार की हुआ करती है।

(i) किसी दूसरे के वस्त्र, धन, माया आदि चोरी कर लेना यह शरीर की चोरी कहलाती है।

(ii) वचनों की चोरी - किसी दूसरे के द्वारा किये गये प्रवचनों की चोरी करके अपने बना लेना। कई प्रेमी कीर्तन, व्याख्यान करते समय महापुरुषों के तत्व अनुभव वचन कंठ करके अपने बनाकर श्रोताओं से प्रशंसा करवाते हैं। ये वचनों की चोरी है, इसी तरह से कविता चोर, लेख चोर हुआ करते हैं।

(iii) किसी स्त्री के रूप को चोर नेत्रों से देखना, नेत्रों की चोरी हुआ करती है। किसी की गुप्त बात जानने की कोशिश करना सुनने की कोशिश करना, कानों की चोरी हुआ करती है। गुरू घर में चोर को अच्छा नहीं कहा गया -

चोर की हामा भरे न कोइ। चोर कीआ चंगा किउ होइ।
चोरु सुआलिउ चोरु सिआणा। *पृष्ठ - 662*

खोटे का मुलु एकु दुगाणा॥ *पृष्ठ - 662*

(iv) परमेश्वर के चोर -

से हरि के चोर वेमुख मुख काले जिन गुर की पैज न भाइ॥ *पृष्ठ - 881*

ऐसा महापुरुषों का विचार है कि यह जीव अपने 24 घंटे के समय में से दसवन्ध के श्वांस

परमेश्वर की याद के लिये वचन बद्ध है जिसमें 24000 श्वांस प्रतिदिन के जो लिये जाते हैं उनमें से 2400 श्वांस परमेश्वर की याद में लगाने का विधान है। पर यह जीव परमेश्वर के निमित्त दिये गये श्वासों को भी अपने ही काम-धन्धों की चितवना में ही खर्च कर देता है। इसलिये यह परमेश्वर के निमित्त दिये गये समय की चोरी करता है -

ते तसकर जो नामु न लेवहि वासहि कोट पंचासा॥ पृष्ठ - 1328

भउजल तारण हारु सबदि पछाणीऐ। चोर जार जूआर पीड़े घाणीऐ।। पृष्ठ - 1288

मन की चोरी - पाप करके, अनेक विधियों सहित अपने आपको छिपाकर पाप रहित होकर ही अपने आपको श्रेष्ठ जताना या दिखाना, मन की चोरी कहलाती है -

पाप पुन राखि दुराए। इह मन की चोरी कहिलाए॥श्री गुर नानक प्रकाश, पृष्ठ - 530

4. ब्रह्मचर्य - काम वासना को नियन्त्रण में रखना, ब्रह्मचर्य कहलाता है। क्रोध के समान वासना का वेग भी बहुत बुरी तरह प्रहार करता है। बड़ी-बड़ी साधनाएं करने वाले, जंगलों में रहने वाले साधक, ज्ञानी-ध्यानी, विद्वान, उसकी मार से नहीं बच सके। यह जीव काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा अहंकार आदि का माया के दिये पाह वाला चोला (शरीर) पहनकर ही संसार में विचर रहा है -

काम क्रोध का चोलड़ा सभ गलि आए पाइ॥ पृष्ठ - 1414

कामी पुरुष को नर्क विश्रामी कहा गया है जो अनेक यौनियों में घूम रहा है और घूमता रहेगा। काम का दुरुपयोग जप-तप, शरीर का नाश कर देता है, कामी की कोई मर्यादा नहीं होती। आवारा कुत्ते की तरह, किसी भी मर्यादा की परवाह न करते हुए हर समय पीछे देखता रहता है। इस काम सुख को एक कच्चा सुख, अल्प सुख, क्षणभंगुर सुख कहा गया है। जो वास्तव में एक महान दुख आने की चितवनी दे रहा है। फ़रमान है -

हे कामं नरक बिस्रामं बहु जोनी भ्रमावणह।
चित हरणं त्रै लोक गंम्यं जप तप सील बिदारणह।
अलप सुख अवित चंचल ऊच नीच समावणह।
तव भै बिमुंचित साध संगम ओट नानक नाराइणह॥ पृष्ठ - 1358

काया का वैरी है। Aids जैसी बिमारियों तथा अन्य गुप्त रोगों को लगाकर काया को गलाने के लिये सबसे ताकतवर मसाला है -

कामु क्रोध काइआ कउ गालै। जिउ कंचन सोहागा ढालै॥ पृष्ठ - 932

कामी साधक को कभी एकाग्रता प्राप्त नहीं होती क्योंकि चित्त की सेज पर काम नाद हो रहा है-

पापी हीऐ मै कामु बसाइ। मनु चंचलु या ते गहिओ न जाइ।
जोगी जंगम अरु संनिआस। सभ ही परि डारी इह फास॥ पृष्ठ - 1186

काम वासना, बन्दगी से खाली करके, जन्म मरण के चक्कर में गोते लगवाने में पूरी समर्थ रखती है, मौत को भी भुला कर रखती है -

निमख काम सुआद कारणि कोटि दिनस दुखु पावहि।
घरी मुहत रंग माणहि फिरि बहुरि बहुरि पछुतावहि।
अंधे चेति हरि हरि राइआ। तेरा सो दिनु नेड़ै आइआ॥ पृष्ठ - 403

काम का ऐसा जाल फैला हुआ है, इसके बेअन्त रूप हैं -

प्रिथमै त्रिय की बातैं करनी। दूजे सुनि सुनि मन महिं धरनी।

तीजै तिय इकांत मिल बैसन। चौथे होवति अंग सपरशन।
पंचम हित करि देखै तिय को। छठे अलिंगन करै हीय सों।
सपत चितवनो मन महिं नारी। अशटम भोग करन बिधिसारी।
इन सभिहिनि को तयागे जेई। ब्रहमचरज धारति हैं तेई॥

श्री गुर नानक प्रकाश, पृष्ठ - 530-31

गुरमत अनुसार ब्रह्मचर्य विधान है। अपनी पत्नी के अतिरिक्त कामुक दृष्टि से अन्य किसी स्त्री को देखने की सख्त मनाही है। बेशक पाँच चोर शरीर में वास करते हैं, खतरनाक चोर हैं पर मनुष्य की जीव आत्मा, इन चोरों के अधीन होने की बजाए, इन चोरों पर पूरा नियन्त्रण रखे, इन चोरों के गुण पक्ष को उभार कर संयम से काम ले।

मोह से प्यार, काम से आन्तरिक काम रस, लोभ से नाम धन इक्ट्ठा करने की पूर्ण लालसा, क्रोध से संयमी मर्यादा, अहंकार से अपने ब्रह्म स्वरूप का अधिआस धारण करे फिर यह चोर, चोर नहीं रहते, मित्र बनकर सहायता करते हैं।

गुरमत अनुसार ***'एका नारी जती होइ'*** का विधान है पर उसमें भी संयम का पालन करना पड़ता है। वासना के वेग में बहने की गृहस्थ में मनाही है। बेशक गृहस्थी ही है। शास्त्रों के अनुसार ऋतु आने पर सन्तान उत्पत्ति के लिये ही, इस ज़ज़बे का पैदा होना कोई निन्दनीय नहीं है। अन्यथा यह काम एक रोग है जो शरीर की तथा मानसिक शक्तियों का विनाश ही करता है। उच्च दृष्टि रखते हुए, सांसारिक कार्य निभाना, आजकल के वातावरण में, स्त्री पुरुष इकट्ठे काम करते हैं, इकट्ठे सफर करते हैं। आवश्यकता है एक दूसरे को समझने की। एक दूसरे के निजी अधिकार क्षेत्रों के पहचान करने की। स्त्री पुरुष का मिलन तथा उसे संयमी मर्यादा में रखना, यह उच्च कर्तव्य है। ऊपर बताए गये ब्रह्मचर्य के आठों अंगों की पालना करना, मानसिक उच्चता तथा दृढ़ता की आवश्यकता है।

परमेश्वर घट-घट में विराजमान है। इस परम ज्योति को अपने अन्दर रमा हुआ अनुभव करके संसार के कार्य करता हुआ उपयुर्क्त बताए गये आठ अंगों से बचा जा सकता है। केवल अपनी स्त्री के बिना, शेष स्त्री वर्ग बहन, माँ तथा पुत्रियां हैं, उनके अन्दर ब्रह्म दृष्टि रखने से पूर्ण ब्रह्मचर्य की प्राप्ति होती है। प्राकृतिक नियमों का विरोध करना ठीक नहीं है क्योंकि -

पुतर निशान है, इसत्री, ईमान, धन गुज़रान है।

मन के अन्दर तो कामुक भाव हों, बाहर से प्रतिबन्ध लगाये हों, यह मन की अति निर्बल अवस्था है। पहले पाँच तत्वों के पुतले को समझना पड़ता है। शरीर लगभग एक पक्ष से, निखेदी वाले पक्ष से, कूड़े कर्कट का थैला है। विषय शक्ति रक्त चर्म की सुन्दर गाँठ है, इसे इसी पक्ष से देखें पर असली निश्चय इसके अन्दर बसने वाली अनूप ज्योति पर रखे। जब सभी घटाओं में मेरा प्यारा बसता है तो मेरे अन्दर दुजायगी क्यों उठे। सभी पुरुष अलग-अलग गुणों वाले, पाँच तत्वों के शरीर हैं, पर ज्योति (आत्मा) सभी में एक ही है। यह दृष्टि गुरमत अनुसार है।

दुरह-दुरह करना मानसिक कमज़ोरी है। इस प्रकार सचेत होकर धारण किया गया ब्रह्मचर्य ही रूहानी मंज़िल में सहायक है। अन्यथा तो यह लगातार संग्राम है जिसमें कायर पुरुष सदा ही उलझे रहते हैं। स्त्री जाति को मनुष्य द्वारा नफरत से या स्त्री द्वारा मनुष्य जाति को हीन भाव से देखना, अज्ञान की निशानी है। स्त्री पुरुष नारी-नर शरीर है। यह मर्यादा संयम में रहते हुए संसार की यात्रा पूरी करनी है -

नीचे लोइन करि रहउ ले साजन घट माहि।
सभ रस खेलउ पीअ सउ किसी लखावउ नाहि।
आठ जाम चउसठि घरी तुअ निरखत रहै जीउ।
नीचे लोइन किउ करउ सभ घट देखउ पीउ॥ *पृष्ठ - 1377*

अपनी इन्द्रियों को पूर्ण संयम में रखना, अपनी ज्ञानेन्द्रियों, कमोन्द्रियों, मन, बुद्धि को संयम में रखना पूरा ब्रह्मचर्य होता है।

ब्रह्म में हर समय लीन रहने वाला पुरुष ही ब्रह्मचर्य धारण कर सकता है। केवल काम इन्द्रिय को जबरदस्ती कमज़ोर करके वासनाओं पर काबू नहीं पाया जा सकता -

मिथिआ नाही रसना परस। मन महि प्रीति निरंजन दरस।
पर त्रिअ रूपु न पेखै नेत्र। साध की टहल संतसंगि हेत।
करन न सुनै काहू की निंदा। सभ ते जानै आपस कउ मंदा।
गुरप्रसादि बिखिआ परहरै। मन की बासना मन ते टरै।
इंद्री जित पंच दोख ते रहत। नानक कोटि मधे को ऐसा अपरस॥ *पृष्ठ - 274*

इसलिये ब्रह्मचर्य पूर्ण रूप में तभी धारण किया जा सकता है यदि अपनी कर्मेन्द्रियों, ज्ञानेन्द्रियों, मन तथा बुद्धि में परमेश्वर प्राप्ति की पूर्ण लगन हो तथा ब्रह्म प्राप्ति की दृढ़ जिज्ञासा हो।

5. पाँचवां यम हुआ करता है **'धीरज धरना'** - रूहानी प्राप्ति के लिये धैर्य की बहुत जरूरत है क्योंकि जीवन की चाल कभी समान नहीं रहा करती। जीवन की चाल में कभी दुखों के पहाड़ टूटते हैं, कभी बेअन्त सुखों की प्राप्ति होती है, कहीं सम्पत्ति का नाश होता है, कभी कोई रोग लग जाता है, कहीं खुशहाली आ जाती है तो कहीं गर्मी-सर्दी से पाला पड़ता है, कभी बहुत सुन्दर हालात बन जाते हैं। अतः इन दुख सुख, लाभ हानि, निन्दा-स्तुति, मान-अपमान में अपने आपको धैर्य में रखना, रूहानी प्राप्ति का एक बहुत बड़ा गुण है जैसे धरती को कोई चन्दन का लेप करता है, कोई तोड़ता है, कोई संवारता है, कोई बिगाड़ता है, इसी तरह से जिज्ञासु का हृदय दोनों हालातों में धैर्य रखने के लिये तत्पर होना चाहिये। विपदा आने पर घबराना नहीं चाहिये, सुख आने पर बहुत खुशी में उछलना नहीं चाहिये। बिना सोचे समझे, कोई भी ऐसा काम मत करो जिसे करने के पश्चात पछताना पड़े -

ऐसा कंम मूले न कीचै जितु अंति पछोताईऐ॥ *पृष्ठ - 918*

इस सन्दर्भ में एक ऐसी कथा आती है जो मार्ग दर्शन करने में काफी लाभकारी सिद्ध हो सकती है। भारत वर्ष में, भोज नामक राजा राज्य किया करता था। उसके दरबार में 9 रतन थे। दूर-दूर से बहुत बड़े-बड़े विद्वान उसके दरबार में सुशोभित हुआ करते थे। एक बार उस पर एक पड़ौसी राजा ने आक्रमण कर दिया। राज्य की सीमा बहुत निकट थी। राजा भोज तथा उसका पुत्र युद्ध में स्वंय भाग ले रहे थे काफी समय के युद्ध के पश्चात, उस आक्रमणकारी राजा की फौजें कुछ कमज़ोर दिखाई दे रही थीं और पीछे हटनी शुरू हो गई थीं। राजा भोज के लड़के के मन में विचार आया कि मैं अपनी माता से मिल आऊँ। वह थोड़ी देर के लिये युद्ध भूमि में से निकलकर माता से मिलने के लिये घर आ गया। उसने अपनी माता को उसके शयन कक्ष (Bed Room) में जाकर देखा पर माँ किसी कार्य में व्यस्त थी, अतः वह प्रतीक्षा करने लगा राज कुमार बिस्तरे पर लेट गया और लेटते ही उसे नींद आ गई। अपने मुँह पर उसने दोशाला ओढ़ लिया। रात को राजा भोज भी युद्ध क्षेत्र से वापिस लौट आया। जब रानी को मिलने के लिये उसके कमरे में गया तो इसने देखा कि बिस्तरे पर रानी सोई हुई है तथा कोई और पर पुरुष भी उसी पलंग पर सोया पड़ा है। राजा भोज को देखते ही क्रोध चढ़ आया। उसने मन

में एक दम इरादा कर लिया कि वह दोनों को कत्ल कर देगा। मेरी रानी का सदाचार ठीक नहीं है, इस पर मुझे शक होता है। राजा के साथ बहुत ही सूझबूझ वाला वज़ीर था। उसने राजा के क्रोध को शान्त करने की कोशिश की और कहा, महाराज धैर्य रखो। किसी के अन्दर इतनी हिम्मत नहीं है कि वह आपके शयन कक्ष में कदम रख सके। रानी इतनी सुशील तथा पवित्र चरित्र वाली है कि इस तरह से कोई भी पर-पुरुष उनके शयन कक्ष में आ ही नहीं सकता। न ही वह इतनी नीच भावनाओं में ग्रसित हो सकती है। थोड़ा सा धैर्य रखो। वैसे आप मालिक हैं। यदि एक दम कत्ल कर दिया तो आपका पुलिस विभाग भी पूछताछ नहीं कर सकेगा परन्तु पहले हमें यह दृढ़ता पूर्वक निर्णय करना चाहिये कि बात क्या है?

राजा आगे बढ़ा और सोये हुए पुरुष के मुँह पर से दोशाला उतार लिया तो देखते ही वह एक दम दंग रह गया कि वह तो उसका अपना ही पुत्र था। उसने रानी को जगाया। वह राजा भोज को सामने खड़ा देखकर हैरान हो गई कि मेरे बिस्तरे पर यह पुरुष कौन सोया पड़ा है? उस समय निश्चय करने के लिये रानी से पूछताछ की गई कि क्या कारण है? उसने बताया कि वह आज पूजा पाठ में काफी देर तक व्यस्त रही, आपके लिये प्रार्थना करती रही, काफी रात बीत गई थी, जब मैं अन्दर सोने के लिये शयन कक्ष में आई तो यह पुरुष सोया पड़ा था। मैंने सोचा कि आप सोये पड़े होंगे यह तो आपको भी पता है कि राजा लोगों को नींद बड़ी मुश्किल से आया करती है, इसी विचार से मैं धीरे-धीरे आकर लेट गई और मैंने आपको जगाना उचित न समझा। इसमें मेरा कोई दोष नहीं है पर मैं हैरान हूँ कि यह है कौन? वज़ीर ने लड़के को जगाया, उससे पूछताछ की गई। उसने कहा, "पिता जी! आज मैं माता जी से मिलने के लिये आया था वह अपने कमरे में नहीं थीं। पूजा कक्ष में थीं, मैं बिस्तरे पर लेट गया। लेटते ही मुझे नींद आ गई। इसके पश्चात मुझे कुछ भी पता नहीं कि क्या हुआ?"

राजा भोज इन सभी बातों का निश्चय करने के पश्चात पश्चाताप में खो गया कि यदि मेरे द्वारा दण्ड देने का कार्य हो जाता तो मेरा राजकुमार मेरे ही हाथों से मर जाना था। यह एक उदाहरण है। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में जल्दीपना आ ही जाता है, मनुष्य गलत कार्य भी करता है, पर हर एक कार्य में धीरज जरूरी है। न तो कभी सदा सुख ही रहता है, न ही कभी सदा दुख रहता है, यह क्षण भंगुर सुख है। सदीवी सुख तो अपने स्वरूप का ज्ञान होने से आता है। इसलिये धैर्य पूर्वक जीवन को संयम में रखते हुए आत्म मार्ग पर सफर करना चाहिये।

कई प्रेमी ऐसे देखने में आते हैं कि लगन तो उन्हें लग जाती है पर इतने अधीर हो जाते हैं कि अपनी क्षमता से अधिक मुश्किल साधन करना शुरू कर देते हैं, जिसका परिणाम यह निकलता है कि वे किसी न किसी शारीरिक रोग का शिकार हो जाते हैं। इसलिये प्रत्येक काम में, बोलने में, हाथ पैर द्वारा किये गये कार्य में धैर्य रखना जरूरी है।

6. छठा यम है '**क्षमा**' जिसके बारे में लिखा है -

खशटम यम है खिमा सुहाई। मन महिं छोभ न कबहुं उठाई।
भला कि बुरा बखानै कोइ। सहिनशील मन सभि तो होइ॥

श्री गुर नानक प्रकाश, पृष्ठ - 531

क्षमा के बारे में फ़रमान है -

कबीरा जहा गिआनु तह धरमु है जहा झूठु तह पापु।
जहा लोभु तह कालु है जहा खिमा तह आपि॥ ***पृष्ठ - 1372***

क्षमा परमात्मा के बहुत ही निकट है और जिस हृदय में क्षमा हो परमेश्वर उस पर खुशियां प्रदान करता है -

खिमा सीगार करे प्रभ खुसीआ मनि दीपक गुर गिआनु बलईआ॥ ***पृष्ठ - 836***

क्षमा का विपरीत तत्व क्रोध है। यदि क्रोध शरीर में घर कर जाये तो मनुष्य की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। उसके अन्दर विचारों का बहुत बड़ा विस्फोट होता है, जिसके फलस्वरूप उसकी काया पर लाखों तरह की मैल जम जाती है। जिस जगह पर दिमाग में होश का वास होता है, क्रोध के कारण उत्पन्न हुआ मानसिक विस्फोट, दिमाग के उस हिस्से को नष्ट कर देता है। इस प्रकार क्रोधी का शरीर धीरे-धीरे नष्ट हो जाता है -

कामु क्रोधु काइआ कउ गालै। जिउ कंचन सोहागा ढालै॥ ***पृष्ठ - 932***

क्रोधी के बारे में ऐसा फ़रमान आता है -

ओना पासि दुआसि न भिटीऐ जिन अंतरि क्रोधु चंडाल॥ ***पृष्ठ - 40***

क्षमा हीन व्यक्ति क्रोध में आकर जलता ही है। जैसा कि फ़रमान है -

खिमा विहूणे खपि गए खूहणि लख असंख।
गणत न आवै किउ गणी खपि खपि मुए बिसंख॥ ***पृष्ठ - 937***

क्षमा भक्तों का एक बहुत कीमती धन है, ऐसी रास है जो कभी समाप्त नहीं होती। सदा ही मन तथा तन को शान्ति प्रदान करती है। बदले की भावना मन में उठने ही नहीं देती। मनुष्य की सोच विश्वमयी बन जाया करती है।

इसके बारे में एक छोटी सी कथा है कि एक बार महाराजा रणजीत सिंघ अपने अंगरक्षकों सहित कहीं जा रहे थे, अचानक उनके कन्धे पर एक पत्थर आकर लगा। अंगरक्षक बड़े हैरान हुए कि दिखाई तो कोई दे नहीं रहा, यह पत्थर कहाँ से आया है? वहाँ पर बेरियों के झुण्ड थे। उन्होंने देखा कि कुछ बच्चे बेरियों को पत्थर मार रहे हैं। उन्होंने एक बच्चे को पकड़ लिया, जिसने बेर तोड़ने के लिये जो पत्थर बेरी को मारा था, वह महाराज को आ लगा। उस बच्चे को महाराज जी के सामने पेश किया गया तो महाराज क्रोध में नहीं आए, बल्कि चट्टान जैसा धैर्य धारण कर लिया। बड़े प्यार से बच्चे को पूछा, ''बेटा! तेरा मेरे साथ कोई वैर है जिसके कारण तूने मुझे ईंट मारी? अपने मन की ठीक-ठीक बात बता। मैं तेरा भ्रम दूर कर दूँ। मेरा तो तेरे साथ कोई वैर नहीं है।'' उस समय बच्चे ने हाथ जोड़कर कहा, ''हजूर! हम तो बेरी को ईंटें मार रहे थे। हमें पता नहीं था कि दीवार के पीछे कोई आ रहा है।'' महाराज ने पूछा, ''तुम बेरी को पत्थर क्यों मार रहे थे?'' उसने कहा, ''हम बेर झाड़ रहे थे।'' आप मुस्कराए और कहने लगे, ''बेरी कितनी अच्छी है। ईंट पत्थर खाकर भी कुछ नहीं कहती, बल्कि मीठे-मीठे बेर देती है।'' अपने सचिव को बुलाकर कहा, ''राजा को ईंट लगे तो क्या देना चाहिए?'' यह एक अजीब सवाल था। राजा ने अपने मुन्शी से कहा, ''दो गाँव इसे जागीर में से काट कर दे दो।'' यह क्षमा का बहुत बड़ा उदाहरण है।

3. सातवां यम **'दया'** हुआ करता है -

भला कि बुरा बखानै कोइ। सहिन शील मन सति ते होइ।
सपतम दुखी न देखे कांही। दया करे सभि सों निरबाही।
श्री गुर नानक प्रकाश, पृष्ठ - 531

धर्म में से सभी गुणों का विकास होता है पर धर्म को दया का पुत्र कहा गया है। दया बहुत

बड़ा प्रशंसनीय जजबा, वाहिगुरू जी ने इन्सान को बख्शा है। संसार में रहते हुए कोई भला कहता है, कोई बुरा कहता है पर दयालु पुरुष सदा ही सहनशीलता में रहता है। वह दुखी का दुख नहीं देख सकता। दूसरे का कष्ट दूर करने के लिये पूरा-पूरा ज़ोर लगाता है।

एक बार की बात है जब सिंघ अपने अस्तित्व को कायम रखने के लिये, घने जंगलों में रहा करते थे। उस समय की सरकार इन्हें एक मिनट के लिये भी टिकने नहीं देती थी। गश्ती फौजें सदा इनके पीछे लगी रहती थीं। साहिब सिंघ का जत्था कई दिनों से जंगल में भूखा रह रहा था। आज लंगर का प्रबन्ध हो जाने के कारण सभी के मन में बड़ा चाव था कि आज पेट भर कर भोजन करेंगे। जब लंगर तैयार होकर बंटने के लिये तैयार हुआ। उस समय एक ब्राह्मण दूर इलाके का खालसा दल को ढूँढता हुआ जंगल में पहुँच गया। क्या देखता है कि पंगत लगी हुई है, भोजन बंटने वाला है। उस ब्राह्मण ने पहुँचते ही हाय पुकार शुरू कर दी। जत्थेदार ने पूछा, ''इतना विलाप क्यों कर रहे हो? क्या मुसीबत आ पड़ी है आप पर।'' उसने कहा, ''सिंघ जी! विदेशों से आई आक्रमणकारी मुस्लिम फौजों ने देश के स्त्रियां तथा बच्चे पकड़ लिये और उन्हें अपने देश में लिये जा रहे हैं। मेरी लड़की भी पकड़ ली गई है। उसे छुड़ाने के लिये मैं बड़े-बड़े राजाओं, महाराजाओं के पास गया परन्तु मेरी पुकार किसी ने नहीं सुनी। लड़कियां विलाप करती हुई जा रही थीं, पर कोई भी योद्धा उन्हें छुड़ा न सका। महाराज! जिस काफिले में मेरी लड़की जा रही है, वह आपके इसी जंगल में से ही गुज़र रहा है, कृपा करके मेरी बच्ची को छुड़वा दें।''

जत्थेदार जी को बड़ी दया आई। उन्होंने कहा, ''सिंघों! जहाँ इतने दिन भूखे रहे हैं, थोड़ी सी भूख और सहन कर लो। जो वापिस लौट आये, वहीं भोजन खायेंगे। जो न लौटे वे गुरूलोक में प्रवेश कर जायेंगे।'' सभी सिंघों में दया थी। उसी समय उठे और उस ब्राह्मण की ही नहीं बल्कि और भी काफी सारी लड़कियां आज़ाद करवा दीं और उन्हें स्वंय उनके घरों में छोड़कर आये।

दया धर्म का मूल है। इसलिये धर्म की रक्षा के लिये दया का ज़ज़बा पूरी तरह होना चाहिए। दया से परमेश्वर प्रसन्न होता है। संसार में भी शान्ति फैलती है, जीव जन्तु भी दया के ज़ज़बे से मोहित हो जाते हैं।

एक बार महात्मा बुद्ध कहीं जा रहे थे। एक गडरिया, अपने रेवड़ को भगा-भगा कर ले जा रहा था। उसमें एक मेमना भी था, उसकी टांग टूटी हुई थी। वह धीरे-धीरे चल रहा था, इसलिये उसे मार भी बहुत पड़ रही थी। उस समय महात्मा बुद्ध ने गडरिये से कहा, ''इसे क्यों मारते जा रहे हो?'' उत्तर में उसने कहा, ''महाराज! सूर्य छिपने वाला है, यहाँ चीते बहुत मिलते हैं। यदि मुझे इस जंगल में से निकलने में देर हो गई तो वे मेरी भेड़ों को खा जायेंगे। इसलिये मैं इसे डण्डे मार-मार कर भगा रहा हूँ।'' महात्मा ने कहा, ''यदि तुझे ऐतराज़ न हो तो मैं इस मेमने को गोदी में उठा लूँ।'' उसने कहा, ''यह भी कोई पूछने की बात है, महात्मा जी। जो आपके मन में आए वही करो।'' महात्मा बुद्ध ने उस मेमने को गोदी में उठा लिया। पहले तो वह कुछ-कुछ डरा हुआ था। गोदी में सहमा सा बैठा रहा जब उसकी धड़कनें महात्मा जी द्वारा दिये जा रहे प्यार से मिलीं तो उसका भय दूर हो गया और महात्मा जी का हाथ चाटने लग गया। महात्मा के शरीर के साथ कभी मुँह लगाता तो कभी चाटता, ऐसे लगता कि जैसे अन्दर प्यार की लहर चल रही हो और बेगानापन बिल्कुल भी न रहा हो।

धीरे-धीरे रेवड़ अपने बाड़े में पहुँच गया। महात्मा जी ने भी मेमने को गोदी में से उतारा, पर वह मेमना टकटकी लगाकर महात्मा जी की ओर देख रहा था। उसे ऐसा महसूस हो रहा था कि जैसे कोई मेरा अति प्यारा, मेरा साथ छोड़कर जा रहा है। महात्मा जी जब भेड़ों के बाड़े में से बाहर आए तो वह भी पीछे-पीछे आ गया। आपने उसे उठाया तथा रेवड़ में छोड़ आए। जब आप फिर बाहर निकले तो वह आपके पीछे-पीछे फिर बाहर आ गया, आप उसे फिर अन्दर छोड़ आए। गडरिया यह सारा तमाशा देख रहा था। उसने महात्मा जी से पूछा, ''तुमने इसे क्या खिला दिया कि यह तुम्हारा पीछा ही नहीं छोड़ रहा?'' आपने कहा, ''खिलाने वाली तो कोई चीज़ नहीं है, पर मेरे अन्दर दया है। दयालु पुरुष सभी को प्यारा लगता है। दया धारण करना श्रेष्ठ गुण है। वाहिगुरू जी स्वंय ही दयालु हैं जो बिन मांगे वरदान दिये जा रहे हैं। दयालु पुरुष ही परमात्मा के साथ जुड़ सकता है।

८. आठवां यम है '**कोमल हृदय**' जिसके बारे में लिखा है -

अषटम कोमल हिरदा राखै। शुभ उपदेश सभन सों भाखै॥

श्री गुर नानक प्रकाश, पृष्ठ - 531

हृदय की कठोरता एक बहुत बड़े उग्र पाप जैसा अवगुण है। कठोर हृदय अवगुण होने के कारण कभी नम्र नहीं होता, किसी को कभी सुखी नहीं कर सकता। कठोर पुरुष आम तौर पर निर्दयी हुआ करता है क्योंकि उसे किसी के दुख से कोई मतलब नहीं हुआ करता। कठोर पुरुष के हृदय में रूहानी उपदेशों का कोई असर नहीं हुआ करता।

एक बार गुरू दशमेश पिता जी से प्रार्थना की गई, ''महाराज! सभी आपके सिख हैं पर सभी के ऊपर, उपदेशों का एक जैसा प्रभाव क्यों नहीं पड़ता? क्या सिखी में कोई अन्तर है?'' उस समय गुरू महाराज जी ने पास बैठे एक सिख को इशारा किया और कहने लगे, ''प्यारे, तीन बर्तन जल के भर कर लाओ।'' जल के तीन बर्तन लाए गये। आपने कहा, इन्हें धरती पर रख दो तथा पानी से भर दो। एक सिख को हुक्म दिया, ''पताशे लाओ, दूसरे को कहा मिट्टी की डली लाओ, तीसरे को कहा, तुम एक पत्थर उठाकर लाओ। इस प्रकार तीनों चीज़ें आ जाने के पश्चात महाराज जी ने कहा कि एक-एक बर्तन में एक एक चीज़ रख दो।

काफी देर बीतने के पश्चात महाराज जी ने पहले सिंघ को बुलाया जिसने बर्तन में पताशे डाले थे और कहने लगे, ''सिंघ! तूने बर्तन में पताशे डाले थे, निकाल कर लाओ। दूसरे को कहा कि तुम मिट्टी की डली निकाल कर लाओ और तीसरे को पत्थर निकाल कर लाने को कहा।'' पहले सिंघ ने जवाब दिया, ''महाराज जी! पताशे तो पानी में घुल गये। दूसरे ने मिट्टी की डली के स्थान पर गारा निकाल कर महाराज जी को दिखाया। महाराज जी ने उसे धूप में रखवा दिया। तीसरा पत्थर निकाल कर ले आया। महाराज जी ने तीसरे से पूछा, ''भाई! पत्थर गीला हुआ या नहीं?'' उसने कहा, ''महाराज! जब निकाला था तब तो यह गीला था पर यह जो गर्म हवा चल रही है, इसने फिर सुखा दिया। थोड़ी देर बाद दूसरे ने जो गारा बाहर रखा हुआ था, उसे लाने का हुक्म दिया। उसने कहा, ''महाराज! यह तो फिर मिट्टी की डली बन गई।''

तब गुरू महाराज जी ने सारी संगत को सम्बोधन करते हुए फ़रमान किया, ''प्यारे! आपने पानी में तीन चीज़ें देखी हैं। पहले बर्तन में पताशे देखे जो पानी में पूरी तरह घुल चुके हैं। दूसरा मिट्टी का डला देखा जो पानी में डालते ही गारा बन गया था, पर जब खुश्क हवा में बाहर रखा गया तो फिर

दोबारा मिट्टी का डला ही बन गया। तीसरा, पत्थर तुमने देख ही लिया, जब तक पानी के अन्दर था, तब तक गीला नज़र आता रहा परन्तु अन्दर से कठोर था।'' सभी सिख महाराज जी के पास आते हैं पर उनकी भावनाओं में बहुत अन्तर पड़ा हुआ है। एक कठोर दिल वाले हुआ करते हैं, उनका सतगुरू के साथ भी कोई प्यार नहीं हुआ करता। वे अपने चौगिर्दे में फंसे रहते हैं और अपने विचारों में इतने दृढ़ हुआ करते हैं कि सतगुरू को कुछ समझते ही नहीं बाणी में उनके बारे में ऐसा फ़रमान है –

जिन के चित कठोर हहि से बहहि न सतिगुर पासि।
ओथै सचु वरतदा कूड़िआरा चित उदासि॥ पृष्ठ – 314

कठोर चित्त वाले, झूठे (असत्य बोलने वाले) लोग हुआ करते हैं। वे आध्यात्मिक मार्ग पर कोई भी उन्नति नहीं कर सकते। अत्याधिक दुख यदि उन पर आ पड़े तब कुछ ढल जाते हैं अन्यथा कठोर ही रहते हैं ऐसा बाणी में फ़रमान है –

जिन के चित कठोर हहि से बहहि न सतिगुर पासि।
ओथै सचु वरतदा कूड़िआरा चित उदासि।
ओइ वलु छलु करि झति कढदे फिरि जाइ बहहि कूड़िआरा पासि।
विचि सचे कूड़ु न गडई मनि वेखहु को निरजासि।
कूड़िआर कूड़िआरी जाइ रले सचिआर सिख बैठे सतिगुर पासि॥ पृष्ठ – 314

दूसरे वे हैं जिनका गुरू के साथ प्रेम हुआ करता है पर अपने कारोबार से, अपने चौगिर्दे में मस्त रहने से, गुरू के साथ प्यार उच्च कोटि का नहीं हुआ करता। अपने मन को पूरी तरह से गुरू चरणों में अर्पित नहीं करते। ऐसे पुरुष जब गुरू दर्शनों के लिये आते हैं, उनके उपदेश सुनते हैं, उनके ऊपर मिट्टी के ढले के समान प्रभाव पड़ जाता है परन्तु अपने वातावरण में जब वे लौटते हैं तो विकारों की हवा लगने से फिर सूख जाते हैं।

तीसरे वे हैं जिनके चित्त कोमल हैं, अन्दर से गुरू से प्यार करते हैं। जब वे शबद के साथ जुड़ते हैं तो गुरू रूप में लीन हो जाते हैं। पानी का ही रूप होकर अपने अस्तित्व (हस्ती) से परे हो जाते हैं। अतः जो गुरसिख गुरू को परमात्मा का रूप मानता है, वह बन्दगी करता हुआ गुरू में लीन हो जाया करता है, उसे अभेद अवस्था की प्राप्ति हो जाया करती है। इसलिये इस रूहानी मार्ग पर चलने के लिये हृदय कठोर नहीं होना चाहिए बल्कि कोमल हृदय होना चाहिए।

९. **मर्यादा** – 'आत्म मार्ग' पर चलने के लिये मर्यादा का आधार बहुत ही आवश्यक है। पेट भर कर पशुओं की तरह सोने से रूहानी उन्नति नहीं हुआ करती बल्कि इसके विपरीत अल्प आहार शरीर को तरो ताज़ा रखता है। अल्प आहार की मर्यादा, भूख से चौथा हिस्सा कम खाने का विधान है। दूसरा विचार है कि बिना विचार किये किसी का अन्न अंगीकार नहीं करना चाहिये क्योंकि जैसा अन्न खाता है मन बुद्धि तथा शरीर पर वैसा ही प्रभाव पड़ता है। आम कहावत है, 'जैसा अन्न वैसा मन।' इस सन्दर्भ में एक कथा है।

एक बार एक राजा घोड़े पर सवार होकर अपने राज्य में घूम रहा था। उसने लोगों की काफी भीड़ देखकर, दर्शन करने का मन बनाया। वहाँ पर आकर क्या देखता है कि एक बड़े प्रभावशाली महात्मा, अति मधुर वचनों से उपदेश कर रहे हैं और सभी श्रोता समय तथा स्थान को भूले हुए प्रवचन सुनने में लीन हैं। राजा ने भी वचन सुने, श्रद्धा भाव में आ गया। कथा की समाप्ति के पश्चात, उसने महात्मा से प्रार्थना की, ''मैं आपके वचनों से बहुत प्रभावित हुआ हूँ। मेरे मन में विचार उठा है कि मैं

आपके वचन प्रजा को सुनवाऊँ, प्रजा सुखी होगी और मुझे भी सुख मिलेगा। प्रजा दुखी होती है तो शासक को भी दुख होता है। इस तरह के वचनों द्वारा महात्मा जी को मना लिया और अपने महलों में ले जाकर उनका आसन लगवा दिया।

प्रतिदिन कथा कीर्तन होने लगा। बेअन्त संगत आने लगी। एक दिन ऐसा हुआ कि रानी अपने स्नानागार में महात्मा के स्नान करने से पहले ही स्नान करके चली गई पर अपना नौलखा हार वहीं पर भूल गई। जब सन्त जी अपने नियत समय उस स्नानागार में स्नान करने गये तो महात्मा जी की नज़र खूंटी पर लटके नौलखे हार पर पड़ी। मन में विकार उठा और लोभ की भावना जाग उठी। आपने खूंटी पर लटका हार उठाया और बिना स्नान किये बाहर आ गये तथा गठड़ी में बान्धकर राजा के महलों से बाहर चले गये।

दिन निकलने पर रानी को याद आया कि उसका नौलखा हार स्नान घर में ही रह गया, ढूँढने पर भी न मिला। यह भी पता चला कि सन्त जी जो ठहरे हुए थे वे भी आज ही चले गये हैं। उनके पीछे पुलिस भी भेजी। पर पता चला कि उन्होंने इस राज्य की सीमा पार करके अगले राज्य में पहुँच कर एक मन्दिर में आसन जमा लिया है।

काफी समय बीत गया। दोबारा वही पोटली उठाये महात्मा, एक दिन राजा के महल में हाज़िर हो गये। राजा उस समय कचहरी में था, उसने महात्मा को देखा और आने का कारण पूछा। महात्मा ने कहा, ''महाराज! मैं आपका चोर आ गया हूँ। मैं आपकी रानी का नौलखा हार चुरा कर भाग गया था।'' राजा ने पूछा, ''अब ऐसा कौन सा कारण है कि तुम हार वापिस करने आए हो?'' उसने कहा, ''मैं यही जानने के लिये आया हूँ। जिन दिनों मैंने हार चुराया था, उस समय अनाज कहाँ से आया था?'' खोज करने पर पता चला कि यह अनाज़ किसी भले पुरुष का नहीं था, मन्द कर्म करने वाले से सम्बन्ध रखता था, किसी कारण वश उसका घर ज़बत हो गया। कर्मचारी उसके घर से अनाज चुरा लाये और राजा के लंगर में खिलाने लगे।

महात्मा ने कहा, ''मैं अशुद्ध अपवित्र अन्न खाकर अपने मार्ग से भटक गया था तथा मैंने आपकी रानी का हार चुरा लिया। जब मैं दूसरे राजा के राज्य में गया वहाँ मुझे मरोड़ (ऐंठन) शुरू हो गई। तीन महीने मैं लगातार मरोड़ से पीड़ित रहा और सूख कर ढांचा रह गया। जब उस अपवित्र अन्न का प्रभाव, मेरे शरीर के रक्त में से समाप्त हो गया तब मैं बहुत पछताया कि मैंने इस हार का क्या करना है? यह हार मैंने क्यों चुराया? सो महाराज मुझ पर उस अपवित्र अनाज का असर था, जिसने मेरी बुद्धि को भ्रष्ट कर दिया। रहतनामें में फ़रमान है –

जा की रहित ना जाणीऐ गुरबाणी नही रीत।
तिस दे हथहु खाधीऐ विसरै हरि की प्रीत॥

इसलिये गुरू महाराज जी ने मेहनत द्वारा की गई कमाई को सत्य मार्ग पर चलने के लिये सहायक बताया है। आहार करने से पहले, यह जानना बहुत जरूरी होता है कि आहार पाप की कमाई का तो नहीं। गुरू नानक पातशाह ने इस बात का स्पष्ट निर्णय करके सभी को बताया था कि लूट खसूट कर, धक्केशाही से चोरी आदि कर्म करके कमाया गया अन्न, अन्न नहीं हुआ करता, वह बदबूदार खून पाक हुआ करती है।

गुरू नानक पातशाह जी ऐमनाबाद, भाई लालो जी के प्यार में बन्धे, उसके पास कुछ दिनों के

लिये ठहरे हुये थे। भाई मरदाना भी साथ थे। उसी शहर के एक अमीर खत्री मलिक भागो ने अपने घर ब्रह्म भोज किया, उसने गुरू नानक देव जी को निमन्त्रण दिया। भोजन बांटते समय उसने गुरू महाराज जी के सामने खीर, पूरी आदि भोजन रखकर, भोजन खाने के लिये प्रार्थना की। गुरू महाराज जी ने कहा, ''प्यारे! शुद्ध अन्न खाना चाहिये। अपवित्र अन्न शरीर में गन्दगी से भरे विचार पैदा करता है। वृत्ति भजन बन्दगी में नहीं लगा करती।'' आपने भाई लालो किरती को कहा, ''भाई लालो! अपनी नेक और मेहनत की कमाई का अन्न लाओ।'' गुरू महाराज जी ने सभी साधुओं की संगत में लगी पंगत में, जब दोनों का अन्न लेकर निचोड़ा, तो भाई लालो की पवित्र किरत वाले भोजन में से दूध की धार बह चली तथा मलिक भागो की पूड़ियों, मिठाईयों में से खून की धार बह चली। उस समय गुरू महाराज जी ने कहा, ''प्यारे! रिश्वत, चोरी, धोखे से कमाया धन मैला हुआ करता है, जिससे अन्तसकरण में मैल भर जाया करती है। इसकी बजाए मेहनत का धन शुद्ध और पवित्र हुआ करता है।

9. शौच (पवित्र होना) – मनुष्य के अन्दर अनेक प्रकार की मैल जमा होती है। कपड़े मैले हो जाते हैं, जिसके फलस्वरूप शरीर भी मैला हो जाया करता है। मनुष्य के अन्दर सस्कारों की मैल भरी पड़ी है, राग-द्वैष की मैल से हृदय भरा पड़ा है, जिसे साफ करने की ज़रूरत है। शरीर तथा वस्त्रों की मैल पूरी विधि से स्नान करके तथा धोकर दूर हो जाती है पर हृदय में राग द्वैष की जो मैल है इसे दूर करने के लिये अन्य प्रकार का साबुन मिलता है। बाणी में ऐसा फ़रमान है –

भरीऐ हथु पैरु तनु देह। पाणी धोतै उतरसु खेह।
मूत पलीती कपड़ु होइ। दे साबूणु लईऐ ओहु धोइ।
भरीऐ मति पापा कै संगि। ओहु धोपै नावै कै रंगि॥ *पृष्ठ - 4*

पूरी पवित्रता, शुद्धता प्राप्त करने के लिये, बाहर की मैल पानी तथा साबुन से साफ की जाती है। वचनों की मैल मीठा बोलने से दूर हो जाती है। मन की मैल उतारने का सबसे सरल तरीका है एक तो अपने आपको सबसे बुरा समझे, दूसरा सभी के अन्दर एक ही वाहिगुरू व्याप्त देखता हुआ प्रार्थना करे –

नानक नाम चढ़दी कला, तेरे भाणे सरबत का भला।

इस प्रकार इसके अन्दर से राग द्वैष की मैल उतर जायेगी। तीसरी मैल बुद्धि की होती है, वह गुरबाणी, सत-शास्त्रों की विचार करने से उतर जाती है। चौथी मैल अन्तसकरण में होती है जो जन्म जन्मातरों से लगी होती है। महाराज जी ने इसके बारे में फ़रमान किया है –

जनम जनम की इसु मन कउ मलु लागी काला होआ सिआहु।
खंनली धोती उजली न होवई जे सउ धोवणि पाहु॥ *पृष्ठ - 651*

अतः इन मैलों से दिव्य नेत्र बन्द हो चुके हैं। जिस प्रकार एक शीशे पर लगातार मैल जम जाने के बाद, उसमें से चेहरा दिखाई नहीं दिया करता। इसी तरह अन्तसकरण पर जन्म जन्मातरों की मैल लगी हुई है। जिसके परिणाम स्वरूप इसे अपने स्वरूप का ज्ञान भूल गया तथा यह अपने आपको साढ़े तीन हाथ की देह ही समझता है।

गुरू नानक पातशाह, राजा शिवनाभ को उपदेश देते हैं, ''राजन! आपने 10 यमों के बारे में वर्णन किया है। परमात्मा के साथ जुड़ने के लिये ये दस नियम धारण करना बहुत जरूरी हैं क्योंकि मनुष्य का मन युगों-युगान्तरों से सस्कारों के अधीन बहिर्मुख हुआ, बाहरी चीज़ों में लीन रहता है, इन सुरत वृत्तियों को जब हम एकाग्रता प्राप्त करने के लिये अन्तर्मुख टिकाने के लिये यत्न करते हैं, उस समय इनका पालन करना बहुत ही जरूरी होता है क्योंकि मनुष्य की बहिर्मुखता ही सबसे अन्तिम अवस्था उसका व्यवहार है

जो उसने अपने माता-पिता, पुत्र, भाई, पड़ौसी, साथी तथा अपने धर्म देश, लोगों के साथ निभाना है। इसी के अन्दर ही उसका सारा व्यवहार देश, विदेश, अपने मत, दूसरों के मत में प्रवृत्त होकर इतनी शान्ति में पहुँचना है कि कोई वाद-विवाद उसके मन की शान्ति भंग न करे। इसलिये अन्य सभी प्राणियों के साथ व्यवहार अति शान्ति पूर्ण होना चाहिये। इसे सिद्ध करने के लिये जो दस अंग बताए गये हैं, इनका पूरी तरह से पालना करो। अपने व्यवहारिक जीवन को सतोगुणी दिव्य बनाना होता है। हम जो भी साकाम कर्म करते हैं, उनका फल हमें जन्म-मरण, आयु भोगने तथा अन्य सुखों का कारण हुआ करता है, परन्तु ये कर्म मनुष्य को फल देने के लिये बान्धे रखते हैं। यमों का पालन करके जो बाहरी सम्बन्ध बनाए रखने के लिये हमारा लगाव उनसे रखते हैं तथा दूसरों से वैर, बेगानापन है, हर समय आशा और अन्देशा में जीवन रिड़कता रहे, वह इन 10 यमों का पालन करने से शान्त हो जाता है।

हे राजन! इसी प्रकार दस नेम हुआ करते हैं। नियमों का सम्बन्ध केवल अपने व्यक्तिगत शरीर, इन्द्रियों तथा अन्तसकरण के साथ होता है। इसलिये इनके यथार्थ पालन से, अपने व्यक्तित्व से सम्बन्ध रखने वाला, सारा ब्रह्म व्यवहारिक जीवन राजसी, तामसी, विक्षेप तथा आवरण रूप मैलों से धुलकर, सतोगुणी, पवित्र और दिव्य बन जाता है। इसलिये सबसे पहला नियम तप है। तप अन्तर्मुखी होने का अभ्यास तथा परमात्मा के साथ प्यार करने के लिये क्रिया योग्य है। जिस प्रकार हम किसी चंचल घोड़े को सिधाते हैं, उसी प्रकार शरीर, प्राण, इन्द्रियां तथा मन को सही तरीके तथा अभ्यास से वश में करने को तप कहते हैं। इसकी प्राप्ति के लिये दृढ़ इरादे के साथ परिश्रम करना पड़ता है। जिस प्रकार हम एक चंचल घोड़ा खरीदकर, उसे सिधा कर अपने इशारों पर चलने वाला बना लेते हैं, ठीक इसी तरह मन को साधना पड़ता है। चंचल घोड़े को साधने के लिये कितनी कठोर मेहनत की जरूरत पड़ती है, जब वह सध जाता है फिर इशारों से ही चलने लग जाता है। बड़े-बड़े युद्धों में कितना सहायक बनता है। विजय प्राप्त करने के लिये साधन बनता है।

इसी प्रकार हमारा मन, इन्द्रियां, कितनी अस्वच्छता के साथ चल रहे हैं न ही हम अपने शरीर की ओर ध्यान देते हैं। गलत चीज़ों का प्रयोग करके खराब कर लेते हैं। यदि शरीर ने ही साथ न दिया तो आत्म मार्ग का राही, अगला सफर करने की समर्थ नहीं रख सकता। शरीर के रख-रखाव के लिये काफी समय नष्ट हो जाता है। इसी तरह प्राण शरीर में बिना रोक-टोक के आते जाते हैं। प्राण विज्ञान का ज्ञान न होने के कारण, हमारे प्राण नियमित ढंग से नहीं चल रहे होते, पवन का दरिया, उछलता हुआ चलता रहता है, यदि इसे सीमित कर दिया जाये तो यह पानी नहर के रूप में खेतों की सिंचाई, अन्य बड़े-बड़े कार्य करने की समर्थ रखता है। अब हमारे प्राण एक पानी के वेग के समान चल रहे हैं जिनका उचित उपयोग न करने के कारण हम अपने प्रभु से बिछुड़े रहते हैं।

इसी तरह से पाँच कर्मेन्द्रियां, पाँच ज्ञानेन्द्रियां, हमारे वश में नहीं हैं। अपनी मर्ज़ी से हरकतें करती हैं जैसे कोई प्रेमी दूसरे सज्जन से बातें कर रहा हो, दूसरे के साथ हंसी मज़ाक कर रहा हो, अचानक ही कान में अंगुली का चला जाना या नाक में डाल लेना या इधर-उधर देने लग जाना या दूर की आवाज़ को सुनने लग जाना या व्यर्थ में बोलने लग जाना वह किसी लक्ष्य पर नहीं पहुँचा करता। अतः इन्द्रियों का सुधार करना बहुत ही आवश्यक है। मन सबसे चंचल चीज़ है जो इस शुद्ध शरीर में एक सैकिन्ड के लिये भी नहीं टिकता। हर समय करोड़ों मील के सफर पर रहता है। इसे एक ध्येय पर केन्द्रित करना आध्यात्मवाद में एक महत्वपूर्ण कदम है क्योंकि हमारा सारा सम्बन्ध मन से है, मन से ही हमारा प्यार है, मन से हमारा झगड़ा है। जब तक इसे साधा नहीं जाता तब तक यह जिज्ञासु को एक

कदम भी आत्म मार्ग की ओर नहीं बढ़ने देता क्योंकि मन की अपनी ही मति है। अपने ही दृश्य हैं, इसलिये यह गुरू की मति नहीं ले सकता। इसलिये मन को प्राणायाम द्वारा वश में किया जा सकता है। इस शरीर, प्राण, इन्द्रियाँ, मन तथा बुद्धि को वश में करने के साधनों को तप कहा जाता है जिसके फलस्वरूप गर्मी-सर्दी, भूख-प्यास, सुख-दुख, हर्ष-शोक, मान अपमान, लाभ-हानि, खुशी-गमी की अवस्था में बिना किसी विघ्न के तथा स्वस्थ शरीर के तथा निर्मल अन्तसकरण के साथ योग मार्ग में दृढ़ता पूर्वक टिका रह सके।

तप के कई भेद हैं। शरीर में बिआधि (पीड़ा) इन्द्रियों के विकार तथा चित्त में उदासी उत्पन्न करने वाले तामसी तप का निखेद किया गया है। इस मार्ग में यह तामसी तप निन्दनीय तथा वर्ज़ित है। जो तप चित्त की प्रसन्नता के लिये हो तथा शरीर, इन्द्रियां की क्रिया में कोई रूकावट, कोई पीड़ा पैदा न करता हो, वह तामसी तप सहायता करता है क्योंकि बिआधि उपाधि, शरीर की पीड़ा, चित्त की उदासी, ये योग में विघ्नकारी हैं। इसलिये जिस प्रकार अग्नि में तपाने से सोने की मैल भस्म हो जाती है, उसके अन्दर स्वच्छता और चमक आ जाती है। इसी तरह तप की अग्नि में शरीर, इन्द्रियां, प्राण, बुद्धि तथा चित्त में तमोगुणी पर्दे का नाश करने की समर्थ है। तप करने से सतोगुण प्रभाव पैदा हो जाता है। सतोगुण को आहार तथा शुद्ध व्यवहार शरीर के तप माने गये हैं। सम तथा दम की पालना करना जरूरी है। इस क्रिया द्वारा इन्द्रियों तथा मन में पड़े हुए तमोगुणी तथा रजोगुणी प्रभाव दूर हो जाते हैं। यह योग पेट भर कर खाने वाले को, न ही भूखे रहने वाले को, न ही बहुत कम सोने वाले को, न ही बहुत जागने वाले को प्राप्त होता है। जो जिज्ञासु आहार, व्यवहार अन्य कर्मों जैसे सोना, स्नान करना, नियत समय पर खाना पीना जारी रखता है, उसका योग दुःख नाशक होता है। इसलिये खाने पीने में पूरा ध्यान रखना तथा सावधान रहना बहुत जरूरी है। स्वादिष्ट, मीठा, अच्छा लगाने वाला भोजन तथा भूख से चौथा हिस्सा कम खाने का विधान है। तामसी तथा राजसी हिंसा से प्राप्त किये गये तथा वाय पैदा करने वाले, कफ़ पैदा करने वाले अति उष्ण, खट्टे चटपटे, सूखे हुए, सड़े हुए, जूठे, नशा करने वाले, उत्तेजक पदार्थ खाने से शरीर में विघ्न पैदा हो जाते हैं। इसलिये ऐसे व्यवहार का त्याग करके शुद्ध, सतोगुणी, हल्के, मीठे रसदार ताज़े स्वास्थ्य वर्द्धक, चित्त को प्रसन्न करने वाले, पदार्थ जैसे दूध घी आदि है - मीठा सन्तरा, मीठा अनार, मौसमी, अंगूर, सेब, केला, आड़ू, खुरमानी आदि सूखे फल बादाम, अन्जीर, मुनक्का आदि सतोगुणी सब्जी जैसे लौकी, परवल, तोरी आदि, सात्विक अनाज जैसे गेहूँ, चावल, मूंग आदि का नियमित रूप से भूख का चौथा हिस्सा कम खाने का विधान है। पेट के दो भाग अन्न से भरो, एक भाग जल से, एक भाग हवा के लिये खाली रखना जरूरी है। रात को सोने से पहले दूध, फल आदि थोड़ा बहुत ले लेना चाहिये। जिसने इस योग में पड़ना है, उस प्राणी को स्वाद के वश होकर अपने स्वास्थ्य को खराब नहीं करना चाहिये। भोजन हम इसलिये करते हैं ताकि हम जीवित रह सकें और अपने परम उत्तम पदार्थ को इसी जीवन में ही प्राप्त कर सकें। इसके विपरीत साधारण मनुष्य स्वाद के वशीभूत हुआ, देह अधिआस में, ममता रखता हुआ खाने-पीने में लिप्त रहता है। योगी और भोगी में यही अन्तर है। योग, अभ्यासी प्राणी को कभी भी मांस, अण्डे, मछली तथा लाल मिर्च आदि नहीं खानी चाहिये। उसे इन चीज़ों का प्रयोग करने की बजाये, भूखे रहना ज्यादा अच्छा है। उनके खाने पीने में आपत्ति तथा धर्म की आड किसी अवस्था में नहीं लगाई जा सकती।

अभ्यासियों को अन्न खाने के बारे में पूरी तरह सावधान रहना चाहिए क्योंकि अन्न का प्रभाव मन तथा शरीर पर पड़ता है। अन्न पवित्र एवं सतोगुणी कमाई का होना चाहिए। इसके बारे में पण्डित

बाबू राम कवि ने एक कविता लिखी है -

> ***अन्न की बनावे मन, मन जैसी इन्द्रियां हों,***
> ***इन्द्रिओं से करम, करम भोग भुगवाते हैं।***
> ***अन्न ही से वीर कलीब, कलीब वीर होते देखे,***
> ***अन्न के प्रताप योगी भोगी बन जाते हैं।***
> ***अन्न ही के दूसण से तामसी ले जनम जीव,***
> ***अन्न की पवित्रता से दव खिंच आते हैं।***
> ***म्रितू लोक से हे 'ब्रहम' मोक्ष और बंधन का***
> ***वेद आदि मूल तत्व अन्न ही बताते हैं।***

इसमें और भी कई सावधानियां रखनी पड़ती हैं। इतनी लम्बी यात्रा न करना जिससे भजन करने में विघ्न पड़े। ऐसा भी न हो कि चलना फिरना बन्द करके एक ही स्थान पर बैठा रहे जिसके फलस्वरूप तमोगुणी रूपी आलस्य पैदा होकर भजन में बाधा बने। इसके विपरीत नियमित रूप से चलता-फिरता, सैर करता रहे जिससे शरीर स्वस्थ तथा चित्त प्रसन्न रहे और भजन करने वाले सारे कार्य सफलता पूर्वक होते रहें।

नियमित रूप से जो इसके नित्य कर्म हैं, उन्हें निभाता रहे। उनके लिये न तो इतनी मेहनत करे कि जिससे थकावट हो जाये जो भजन में रूकावट पैदा करे और ऐसा भी न हो कि सदा के लिये आलसी होकर भजन की ओर रूचि ही न रहे। महापुरुषों का ऐसा विधान है कि रात को सात घंटे से अधिक न सोयें। अधिक सोने से तमोगुण बढ़ता चला जाता है। चार घंटे से कम भी नहीं सोना चाहिये ताकि भजन करते समय नींद न आए। कई-कई दिनों के व्रत नहीं रखने चाहिएं। यदि व्रत रखना भी पड़े तो सप्ताह में एक दिन का व्रत रख कर पुनः भोजन को नियमित बना लें जिससे सप्ताह में पैदा हुए शारीरिक मानसिक विकार निवृत्त होते रहें। व्रत वाले दिन अनाज का सेवन न करें, दूध, फल आदि हल्का आहार लेना चाहिए। बिल्कुल भूखे रहने से यदि मस्तक में खुश्की हो जाये तो भजन में सुरत नहीं लगती, विघ्न पैदा होने शुरू हो जाते हैं तथा शरीर विकारी हो जाता है। यदि मन रजोगुणी बन जाये तो इसकी चंचलता के कारण वृत्ति एकाग्र नहीं हुआ करती। अल्प आहार ही इसका सबसे बढ़िया रास्ता है।

काफी लम्बे व्रत रखने से पित्त ज्यादा बढ़ जाती है। अन्तड़ियों में मल सूख जाता है और अन्दर ही अन्दर गैस आदि बनने लग जाती है। इसलिये व्रत रखने की बजाए, अल्प आहार ही सबसे अच्छा साधन है। खट्टे फल, दूध के साथ नहीं खाने चाहिए। यदि किसी ने काफी लम्बा व्रत रख ही लिया तो उसे मूंग की दाल के पानी से धीरे-धीरे तोड़े। लम्बे व्रतों के पश्चात, पाचन शक्ति खराब हो जाती है। इसलिये गुरमत मार्ग में अल्प आहार ही प्रधान है। सो पहला नियम तप है। यह तीन प्रकार का होता है। तमोगुणी, रजोगुणी तथा सतोगुणी।

1. तमोगुणी तप - भूखे रहना, आग जलाकर, उनके मध्य बैठना, धूप में बैठना, पानी में खड़े रहना, इसे तामसी तप कहते हैं। इसके करने से बहुत से विकार पैदा हो जाते हैं। अतः इन तपों से सावधान रहकर सतोगुण तप ही लाभकारी है।

तामसी तप इस प्रकार का है जैसे कोई व्यक्ति लकड़ी या तूड़ी का व्यापार करता है, उसे कष्ट बहुत उठाना पड़ता है पर लाभ बहुत कम मिलता है। कई बार तो देखने में आया है कि तमोगुणी तप

करने वालों के शरीर बिमारियों से घिर जाते हैं और गलत कर्मों की सजा शरीर को मिलती रहती है। इस तप के करते समय जो अन्य पक्ष है कि किसी के साथ वैर भाव रख कर किसी मन्त्र का पाठ करना, किसी विधि द्वारा दूसरे को नुक्सान पहुँचाने के लिये अपनी आन्तरिक लहर प्रज्जवलित करना, ये भी तामसी तप हुआ करते हैं। इस तप से कभी भूल कर भी ज्ञान पैदा नहीं हुआ करता। मन भी शान्त नहीं रहता, शरीर में क्रोध का निवास हो जाता है। तमोगुणी तपस्वी किसी को भी प्रसन्नता पूर्वक वरदान नहीं दे सकते, इसके विपरीत वे श्राप ही देंगे।

2. राजसी तप – इस तप में सावधान रहना पड़ता है तथा अपने आप की जाँच पड़ताल करनी पड़ती है कि जो मन बे-नकाब हो गया है और जो इन्द्रियां बे-नकाब हैं तथा मन विकारों की ओर भागता है, उसे रोकने के लिये, शुभ कर्म करना, महापुरुषों की बाणी पर विचार करना, सेवा करना, सत्संग करना तथा साधनों द्वारा इन्द्रियों तथा मन को विकारों से रोकना, इससे आन्तरिक मैल दूर होने लग जाती है और कुछ लाभ प्राप्त होता है।

तीसरा जो श्रेष्ठ तप है वह श्रेष्ठ साधनों से वृत्तियों को केन्द्रित करने के लिये अन्दर ले जाना तथा वृत्ति को एक ध्येय पर टिका कर रखना, यह **'सांतकी तप'** हुआ करता है। इसे और भली भान्ति समझाने के लिये बताया जाता है कि बाणी का तप सबसे जरूरी होता है। बहुत से प्रेमी जब पाठ करते हैं तो साथ ही साथ बातों का हुंकारा भी देते रहते हैं, बन्दगी भी करते हैं और बीच-बीच में बातें भी करते हैं। इस प्रकार बाणी पर संयम रखना, यदि बहुत ही जरूरत पड़े तो केवल सच्चे, प्यारे तथा आवश्यकतानुसार सम्मान करने के लिये बाणी में से वचन निकाले। आम अवस्था में बाणी पर संयम रखना। बहुत से तपस्वी किसी विशेष दिन, कुछ समय के लिये मौन व्रत भी रख लेते हैं। बाणी को संयम में रखना, केवल देखा-देखी मौन रखना हानिकारक होता है क्योंकि उसने बोलना तो बन्द कर दिया पर उसके अन्दर विचारों का घमासान युद्ध चल रहा होता है। इसलिये दूसरे को देखकर मौन रखने का कोई लाभ नहीं होता। केवल थोड़े समय के लिये मन में अपनी बाणी का मौन रखना सहायक हुआ करता है। इसी तरह मन का तप बहुत लाभकारी हुआ करता है। मन को संयम में रखने के लिये हिंसक, बुरी भावनाएं, अपवित्र विचारों से मन को हटा कर शुभ विचारों से भरना जरूरी है। दूसरे की भलाई के लिये सोचना, दूसरों को सहयोग देना, ऐसा विचार करने से, मन में उठने वाले बुरे विचार समाप्त हो जाया करते हैं। भविष्य की बातें सोचते रहते हैं जिन्हें हवाई किले कहते हैं, वही बनाते रहना, इनसे मन को शान्त रखना चाहिए। फल को न चाहने वाले, निष्कामी योगी पुरुषों द्वारा परम श्रद्धा के साथ किये गये, इस तीन प्रकार के तप को सान्तकी तप कहते हैं। जो तप अपने मान, इज्ज़त, बड़प्पन तथा पूजा के लिये केवल पाखण्ड धारण करके किया जाता है, उसका फल बहुत कम समय तक रहता है। जो तप मूढ़ता पूर्वक, हठ के साथ, मन तथा शरीर को कष्ट देकर तथा दूसरों का बुरा करने के लिये किया जाता है, वह तामसी तप कहलाता है। सबसे बढ़िया तप स्वाध्याय है। इसमें अपने मन को फुरनों (अक्समात विचारों) से एकाग्र करके, गुरू शबद के साथ मन को लगा कर उसका अभ्यास करना असली तप हुआ करता है। स्वाध्याय तप किसी पूर्ण महापुरुष तथा गुरू की संगत करने से शीघ्र सिद्ध होता है।

गुरू नानक पातशाह ने बताया, "राजन! पहला नेम तप हुआ करता है। दूसरा नेम सन्तोष। सन्तोष भी कई तरह का होता है। पल्ले कुछ भी न हो और कहे कि मैं सन्तोषी हूँ ये मिथ्या वाक होता है। ऐसा कहने से चित्त में कोई प्रसन्नता नहीं आती, मन तो पदार्थों में चिपटा हुआ है। यह तो अपना बड़प्पन दिखाने के लिये कहा जाता है।

दूसरा सन्तोष है, जी भर कर मेहनत करे, चाहे नौकरी करता है, चाहे व्यापार करता है, चाहे खेती करता है, जहाँ भी मेहनत करता है, पूरी ईमानदारी के साथ मेहनत करे। वहाँ से जो लाभ प्राप्त हो, उस पर सन्तोष धारण करे। कई बार ऐसा होता है कि मनवान्छित लाभ प्राप्त नहीं होता। इसलिये 'यथा लाभ सन्तुष्टे' यानि जो मिल जाये उसी में सन्तोष रखे, यह सन्तोष भजन करने वाले, बिना किसी दोष के धारण करते हैं।

तीसरा प्रकार है यदि मेहनत करने पर भी फल प्राप्त नहीं हुआ तो भी अपनी खुशी भंग न करे और यदि प्राप्त हो गया तो वाहिगुरू का शुक्र करे, अपनी वृत्ति को समान रखे।

इसके अतिरिक्त मानसिक सन्तोष है जो अपने शरीर से इन्द्रियों से सम्बन्ध रखता है। नेत्रों से महापुरुषों के दर्शन करे, कानों से उनके प्रवचन श्रवण करे। अपनी ज्ञान्द्रियां, पाँच कर्मेन्द्रियों को नियम बद्ध वश में रखे। यह इन्द्रियों का सन्तोष कहलाता है। इसी तरह मन को गुरू चरणों के साथ जोड़ कर रखे, यह मानसिक सन्तोष हुआ करता है।

तीसरा आसतक बुधि है गुरु बच द्रिड़ निशचाइ॥ श्री गुर नानक प्रकाश, पृष्ठ - 532

तीसरा जो नियम है, वह है आस्तिक बुद्धि। श्रद्धा वाली बुद्धि धारण करे। गुरू के वचनों पर पूरा निश्चय रखे। कभी भूल कर भी गुरू के वचनों पर संशय न करे। गुरू पर आस्तिक बुद्धि धारण करे तथा उसे परमेश्वर का साक्षात रूप समझे जिसकी प्रौढ़ता बाणी में भी बताई गई है -

समुंदु विरोलि सरीरु हम देखिआ इक वसतु अनूप दिखाई।
गुर गोविंदु गुोविंदु गुरू है नानक भेदु न भाई॥ ***पृष्ठ - 442***

जो भी प्रेमी, गुरू को मनुष्य रूप समझता है, मानता है, वह आस्तिक बुद्धि वाला नहीं है। जो 'गुरु परमेसर एको है' के निश्चय के साथ गुरू उपदेश धारण करते हैं, उनके अन्दर नाम का प्रकाश हो जाता है। गुरू पर कई प्रकार के निश्चय हुआ करते हैं। पहला निश्चय होता है, मेरा गुरू अच्छा सन्त है। दूसरा निश्चय हुआ करता है, मेरा गुरू सारे सन्तों से अच्छा सन्त है। तीसरा निश्चय हुआ करता है मेरा गुरू परमात्मा जैसा है। चौथा जो निश्चय है वह यह हुआ करता है कि मेरा गुरू आप ही पारब्रह्म परमेश्वर है। यह आस्तिक बुद्धि का निश्चय है क्योंकि गुरू के वचनों पर तब तक विश्वास नहीं आता जब तक आस्तिक बुद्धि ग्रहण नहीं की जाती।

गुरू अंगद साहिब जी के जीवन में एक ऐसा उदाहरण मिलता है कि आपने पास बैठे गुरसिखों से पूछा, ''भाई! तुम गुरू नानक पातशाह को क्या समझते रहे?'' भाई बाला जी ने उत्तर दिया, ''आप पूर्ण सन्त थे।'' आपने फ़रमान किया, ''अच्छा भाई, तुम पूर्ण सन्त हुए।'' बाबा बूढ्ढा जी से पूछा, उन्होंने कहा, ''गुरू महाराज पूर्ण ब्रह्मज्ञानी थे।'' आपने कहा, ''अच्छा भाई, आप ब्रह्मज्ञानी हुए।'' जब सभी ने गुरू महाराज से पूछा, ''महाराज! आप गुरू नानक पातशाह को क्या समझते रहे?'' तब आपने पूर्ण भाव में आकर फ़रमान किया, ''गुरू नानक पातशाह आप ***'आपि नराइणु कला धारि जग महि परवरियउ'*** वह तो स्वंय ही पारब्रह्म परमेश्वर, गुरू रूप में संसार में प्रकट हुए थे।'' सभी ने नमस्कार की और कहा इसीलिये आप भी उनका ही रूप बन गये।

इस प्रकार गुरू पर जितनी श्रद्धा होगी, उतना ही रूहानी सफर, जल्दी तय हो जायेगा।

4. चौथा नेम **'दान'** हुआ करता है। इसके तीन भेद हैं -

तमोगुणी दान - इसके बारे में ऐसा लिखा हुआ है -

चौथे दान देनि को दाता। तम, रज, सत गुन तिह त्रै भांता।
कलहि क्रोध सों बिन शुभ काला। देति तामसी रीति बिसाला॥ ४७॥
निज जस हेत देति जो दाना। अहै राजसी, फल लघु जाना।
करि कै बिनै देयनर देखी। एहु शांतकी फलति विशेखी॥ ४८॥
दोहरा॥ वाहिगुरू को जानिकै सभै पदारथ देइ।
तनक न अपना मानई तांहि अखै फल लेइ॥ ४९॥
चौपई॥ दरब किधौं बिदया कौ दाना। देति शांतकी ह्वै निरमाना।
तिहं को फल ह्वै अमित बिसाला। बेद संत भाखति इस ढाला॥ ५०॥

दान देने के अनेक भेद हैं। दान देने से मनुष्य के अन्दर से माया का मोह छूटता है और दान सफल होता है जिसके बारे में फ़रमान है –

दमड़ा तिसी का जो खरचै अर खाइ। देवै दिलावै रजावै खुदाइ।
होता न राखै अकेला न खाइ। तहकीक दिलदानी वही भिशत जाइ॥ ***नसीहतनामा***

दान देने से विघ्नों का नाश हो जाता है। कमाई शुद्ध हो जाती है और सतोगुणी विचार पैदा हो जाते हैं जो भजन करने में सहाई होते हैं। इसलिये परिश्रम करके, अपनी नेक कमाई में से परमेश्वर के निमित्त, धार्मिक कार्यों के लिये नियमपूर्वक शान्ति से, दान के रूप में, माया, वस्त्र, दूध फल आदि गुरू निमित्त भेंट करें। इसका आम नियम यह है कि दसवां हिस्सा गुरू के निमित्त दे। एक अनुमान के अनुसार मनुष्य को अपने व्यापार, खेती आदि कार्य में से 10ज बचत हुआ करती है। इसलिये यदि सौ बोरी अनाज पैदा हो जाये तो एक बोरी अनाज गुरू के निमित्त अवश्य दे। यदि 10,000 रूपये की बचत हो तो 1000 रूपये दे या 100 रूपये के पीछे एक रूपया अवश्य गुरू के निमित्त दान दे। इससे मन में शान्ति रहती है, विघ्नों का नाश हुआ करता है जैसे जमींदार खेतों में कीट नाशक दवाईयों से, फसल खराब होने से अनेक कीड़ों को मारता है। उसके इस दोष के निमित्त दान देने से नाश हो जाते हैं क्योंकि वह अनाज उत्पन्न करने का काम करता है वैसे दान के तीन भेद बताये गये हैं।

तामसी दान – कलह तथा क्रोध के वश होकर तथा शुभ समय विचारे बिना जो दान देना है वह तामसी दान कहलाता है। आम तौर पर तामसी दान अपनी क्षमता से अधिक दान देना, उसकी चितवना मन में करते रहना, क्रोध आना। तामसी दान देने वाले को तथा लेने वाले दोनों को दोष लगता है। दान लेने वाले को विचार करना चाहिये जो यह दान दे रहा है क्या यह इसकी क्षमता से अधिक तो नहीं है। तामसी दान अन्दर आकर शान्ति पैदा नहीं करता। चितवनी तथा विचार बने ही रहते हैं।

राजसी दान – अपनी शोभा बढ़ाने के लिये, दान देकर अखबारों में इश्तहार निकलवाने, धर्म स्थानों पर पत्थर लगवाने, राजसी दान हुआ करता है। इसका फल कम हुआ करता है।

सतोगुणी दान – जरूरतमन्द को देखकर जो दान श्रद्धा पूर्वक विनम्रता से अंगीकार कराया जाये, वह सतोगुणी दान होता है। यह दान वहाँ पर भी फल देता है और दरगाह में भी फलता फूलता है। ऐसे दान का फल दूसरे जन्म में अमीर होकर भोगा जाता है। दान देते समय पात्र एवं कुपात्र का ध्यान रखना चाहिये। कुपात्र को दिया गया दान दुख देता है। जिस प्रकार सही खेत में सही बीज डालने से फलता है इसी तरह अधिकारी को दिया गया दान सैकड़ों गुणा बढ़ जाता है। इसमें यह भी ध्यान रखना चाहिये कि सभी पदार्थ हमें वाहिगुरू जी ने दिये हैं, उसमें से हम उसे ही अर्पण करें, यह एक विचारणीय बात है। विनम्रता धारण करके सभी पदार्थ परमात्मा के समझकर दान करे। ऐसा दिया गया दान काफी समय तक फल देता है तथा इसका नाश नहीं होता।

इसी सन्दर्भ में एक कथा आती है कि श्री 108 सन्त ईश्र सिंघ जी महाराज राड़ा साहिब वाले जब 1934 में प्रभु ध्यान में लीन हुए, राड़ा साहिब बैठा करते थे। उन दिनों अमीर लोगों के पास पानी वगैरा निकालने के लिये इन्जन आदि आ चुके थे। राड़ा साहिब के इलाके के साथ नहर नहीं थी, इसलिये धरती में से पानी निकालना पड़ता था। इन्जनों की आवाज़ भजन में विघ्न पैदा करती थी। एक दिन सरदार मोहन सिंघ जी कोका कोला वाले महाराज जी के सामने पेश हुए तथा प्रार्थना की कि आप की आज्ञा हो तो आपको भजन बन्दगी के लिये एक सुन्दर इमारत बनवा दूँ। आज्ञा प्राप्त करके, एक मन्जिल जमीन के अन्दर बनवाई और तीन मन्जिलें ऊपर बनवाईं। जमीन वाली इमारत में बाहर की आवाज़ कोई नहीं आती थी। जब इमारत पूरी हो गई मोहन सिंघ जी महाराज जी के पास आए। वहीं पर तपोस्थान में मोमबत्ती जला रखी थी जो हवा के वेग से हिलती हुई तथा कुछ मद्धम सा प्रकाश दे रही थी। सन्त महाराज जी ने वचन किया, ''मोहन सिंघ! तूने हमारे लिये परमेश्वर के साथ निर्विघ्न जुड़ने के साधन हेतु एक मकान बनाया है। हमें बहुत खुशी है, बता तुझे वाहिगुरू से क्या दिलवाएं?'' भाई मोहन सिंघ जी चुप रहे। दूसरी बार फिर वचन किया, तब भी आप चुप रहे। जब महाराज जी ने तीसरी बार वचन किया तो सरदार मोहन सिंघ जी ने झुक कर अपना मस्तक धरती से लगा दिया। महाराज जी ने कहा, ''तेरा दान परम सतोगुणी है और हमारी प्रार्थना है कि तुझे गुरू महाराज जी दीन भी दें और दुनियाँ भी दें अर्थात हर प्रकार से वरदान है क्योंकि अकेली दुनियाँ (माया) परमेश्वर को भुला देती है। दीन की मदद से दरगाह में स्थान मिलता है। यहाँ भी सुख और दरगाह में भी सुख प्राप्त होता है।'' आज सारी दुनियाँ जानती है कि वह भारत वर्ष में अमीर व्यक्ति के रूप में जाने जाते हैं -

खेतु पछाणै बीजै दानु॥ ***पृष्ठ - 1411***

गृहस्थी का यह परम धर्म है कि वह हर तरह का दानी होना चाहिये। यदि वह विद्या जानता है तो वह विद्या दान अपने जिज्ञासुओं में पूरी तनमयता के साथ दे। इसी तरह से यदि वह डाक्टर है तो अपनी विद्या का दान मरीजों को स्वास्थ्य प्राप्ति के साधन में दे। विनम्र होकर, सतोगुणी वृत्ति धारण करके जब कोई अपने गुण दान करता है, उसे बहुत महान फल प्राप्त होता है। वैसे गृहस्थी का कार्य दान देना है -

सो गिरही जो निग्रहु करै। जपु तपु संजमु भीखिआ करै।
पुंन दान का करे सरीरु। सो गिरही गंगा का नीरु॥ ***पृष्ठ - 952***

इस पर एक कथा है कि जब महाभारत का युद्ध हो रहा था उस समय अर्जुन और कर्ण दो सेनापतियों के मध्य भयंकर युद्ध हो रहा था। कर्ण मारा गया। इससे पूर्व जब वह घायल होकर गिरा था, उस समय कृष्ण महाराज जी ने ऊँचे स्वर में कहा था, ''ऐ संसार! आज दान का सूर्य छिप गया।'' उस समय अर्जुन ने आनाकानी की और कहा, ''महाराज, संसार में बड़े-बड़े दानी होंगे। कर्ण तो केवल माया का दान करता है परन्तु वे दानी तो सर्वस्व दान करेंगे, क्या यह उनसे भी महान है?'' आपने कहा, ''नहीं अर्जुन! यह माया का भी दानी है और सर्वस्व दानी भी है।''

अर्जुन को प्रत्यक्ष दिखाने के लिये, कृष्ण जी ने एक वृद्ध का रूप बनाया और जहाँ पर कर्ण युद्ध भूमि में लेटा पड़ा था, उसके सामने खड़े होकर प्रार्थना की, ''हे दान के दाता, मैं बहुत गरीब हूँ, तेरे पास आया हूँ। सुना है तेरे पास आने से महादरिद्रों का दरिद्र भी दूर हो जाता है। पर मैं बद किस्मत हूँ कि इस अवस्था में तेरे पास आया हूँ। मैं बहुत दुखी हूँ, मेरी लड़की की शादी है, मुझे जरूर कुछ न कुछ दे।''

उस समय कर्ण बोला, ''हे ब्राह्मण श्रेष्ठ! इस समय मेरे पास कुछ नहीं है। मैं युद्ध के मैदान

में पूरी तरह से घायल होकर पड़ा हुआ हूँ। मेरे से हिला-जुला भी नहीं जाता। यदि तुझे मेरे नेत्र, नाक, कान कोई भी अंग चाहिये तो तुझे अपने हाथों से दान करूंगा, पर इस कार्य के लिये मुझे कोई अस्त्र ला दे।'' उस ब्राह्मण ने कहा, ''मैं तो सोना लेने आया हूँ, जब तुम बात करते हो तो तुम्हारे दातों पर चमकता हुआ दिखाई देता है।'' कर्ण ने कहा, ''अच्छा हुआ कि तुमने मुझे याद दिलवा दिया।'' उसने कहा, ''लाओ पत्थर पकड़ा दो।'' ब्राह्मण बोला, ''मैं ऐसा निन्दनीय कर्म नहीं करता। तुम स्वंय ही अपने दाँत तोड़कर मुझे दातों से सोना निकाल कर दे दो।'' कर्ण की नज़र एक पत्थर पर पड़ी उसने घिसट-घिसट कर वह पत्थर उठाया और जब दातों पर मारने के लिये हाथ उठाया तो उसी समय कृष्ण महाराज जी ने बाजू पकड़ ली और बोले, ''हे कर्ण! तू वास्तव में महान दानी है।'' उसका फल यह मिला कि उसे बैकुंठ धाम में वास दे दिया।

इसलिये अपनी माया का दान, अपनी विद्या का दान अपनी शक्ति का दान मनुष्य को अधिकारी देखकर सदा ही करते रहना चाहिये, जो प्रेमी निष्काम सेवा करते हैं तथा कष्ट सहकर धार्मिक कार्यों में पूरा-पूरा भाग लेते हैं कथा कीर्तन करते हैं और उसके बदले में कुछ भी अंगीकार नहीं करते, उनके वचन सुनकर जिज्ञासुओं के हृदय परमेश्वर के साथ जुड़ जाते हैं। उसका फल बहुत ज्यादा होता है। इसलिये इस मार्ग पर चलने के लिये जिज्ञासु का दानी स्वभाव होना चाहिए।

5. पाँचवा नियम है '**पूजा**'। जो पूजा दिखावे की बजाये मन से की जाती है, वह पूजा ज्यादा सफल हुआ करती है। बहिरंग पूजा भी फल देती है पर उसका इतना विशेष फल नहीं होता जितना अन्तरींवी पूजा का हुआ करता है। अन्तरींवी पूजा के लिये अपने ध्येय को शुभ आसन पर बिठाये, धूप दीप की सुगन्धि दे, उसकी हाज़िरी में भजन करे यह अन्तरीवी उपासना का एक भाग है। श्रद्धा धारण करके की गई पूजा सफल हुआ करती है।

इसी सन्दर्भ में एक कथा है कि कबीर साहिब अपने गुरू रामानन्द जी के दर्शन करने आये। उन्होंने देखा कि आप कमरे में पूजा कर रहे हैं अतः आप बाहर ही गुरू के ध्यान में बैठ गए। क्या देखते हैं कि रामानन्द जी ने इष्ट देव के मुकुट तो पहना दिया पर गले में माला डालनी भूल गये। अब यदि माला पहनाते हैं तो मुकुट उतारना पड़ता है और पूजा भंग होती है। यदि माला नहीं पहनाते तो पूजा अधूरी रह जाती है। सो आपने बाहर बैठे ही कह दिया, ''गुरूदेव! आप परेशान मत होइए। माला की गाँठ खोल लो, गले में डाल दो, फिर गाँठ लगा दो, इस तरह मुकुट उतारने की जरूरत नहीं होगी।'' अतः पूजा अन्र्तात्मा में गुरू का ध्यान करके हो जाती है। किसी वस्तु की जरूरत नहीं होती।

मानसिक तौर पर कल्पित की जाती है। महापुरुष आवश्यकता अनुसार इसकी युक्ति बता दिया करते हैं।

6. छठा नेम है '**नितनेम**'। गुरू पर पूर्ण श्रद्धा रख कर, उनके द्वारा दी गई बाणी पर विचार करना तथा प्रतिदिन बाणी पढ़ना, फलीभूत हुआ करता है। इसमें बड़ी सावधानी की जरूरत है। सबसे पहले यह देखना पड़ता है कि मेरा गुरू पूर्ण पुरुष है या पाखण्डी है, अन्धा है या विद्वान भी है। यदि पूरा सतगुरू प्राप्त हो जाये तो उस पर पूरी श्रद्धा रख कर, गुरमत अनुसार शबद के पुजारी बनें। शबद पूरी सृष्टि में इस तरह से रूपमान है जैसे गुरू महाराज ने समस्त रूप धारण करके अपना प्रकटावा खण्डों, ब्रह्मण्डों में किया हुआ है। सो गुरू शबद को पारब्रह्म परमेश्वर का रूप समझना, इसके सिद्धान्त पर पूरी तरह से निश्चय बनाना जिज्ञासु के लिये जरूरी हुआ करता है। गुरू पर पूर्ण श्रद्धा ही, इस उच्च ध्येय

तक पहुँचाती है। गुरू शबद को पढ़े तथा विचार करके उस पर अपना ध्यान केन्द्रित करे। इसके भी कई भेद हैं।

कई प्रेमी शिकायत करते हैं कि पाठ करते समय हमारा मन नहीं टिकता। इस सम्बन्ध में एक प्रसंग है कि गुरू दशमेश पिता जी का दरबार लगा हुआ था। बहुत से प्रेमी दूर दराज़ से आये हुए थे। उन्होंने कहा, ''महाराज जी! हम कई-कई बाणियों के पाठ करते हैं। किसी ने कहा कि हम 21-21 बाणियों के पाठ करते हैं पर फिर भी हमारा मन शान्त नहीं होता।'' महाराज जी ने फ़रमान किया, ''बाणी का पाठ ऐसी चीज़ है यदि सावधानी के साथ एक बार भी पढ़ लो, इसका नशा नहीं उतरता। जैसा कि फ़रमान है -

इह बाणी जो जीअहु जाणै तिसु अंतरि रवै हरि नामा॥ — *पृष्ठ - 797*

सो प्यारे! तुम पूर्ण विधि के साथ बाणी नहीं पढ़ते, इसलिये -

पोसत मद अफीम भंग उतर जाइ परभाति।
नाम खुमारी नानका चढ़ी रहे दिन रात॥ — *जनमसाखी*

वह अवस्था तुम्हें प्राप्त नहीं होती। गुरसिखों ने कहा, ''इसलिये हम आपके चरणों में प्रार्थना करते हैं कि चाहे हित या अहित, मान-अपमान की बातें हों, बाणी का जो नशा है, वह उतरा नहीं करता परन्तु हमारे साथ ऐसा नहीं होता।'' गुरू महाराज जी ने कहा, ''प्रेमियो! तुम विधि पूर्वक बाणी नहीं पढ़ते।'' उन्हें विस्तारपूर्वक समझाने के लिये गुरू महाराज जी ने एक बालटी सुख निधान की तथा बाटा (बर्तन) मंगवा लिये। छोटे बर्तनों में दो-दो घूंट डाल दिये तथा बड़े बर्तन भर दिये। छोटे बाटे वालों को कहा, ''ये दो-दो घूंट पी लें और बड़े बाटे वालों को कहा, तुम दूर जाकर इसकी कुरलियां कर आओ पर यह ध्यान रखना की एक बूँद भी अन्दर न चली जाये।'' जिस समय वे अपना काम पूरा करके आए तो जिन्होंने दो-दो घूंट पीये थे, महाराज जी ने उनसे पूछा, ''तुम्हें क्या महसूस हुआ?'' उन्होंने कहा, ''महाराज! हमारा तो सिर चकरा रहा है।'' (इसलिये गुरू घर में नशे वर्ज़ित हैं।)

दूसरों से पूछा, ''तुम्हें कुछ नशा हुआ।'' वे सभी कहने लगे, ''महाराज जी! जब कुछ अन्दर ही नहीं गया तो नशा कैसे होता? नशा चढ़ा ही नहीं।'' महाराज जी ने फिर पूछा कि तुम्हें नशा नहीं चढ़ा? सारे हैरान हो रहे हैं। महाराज जी ने कहा, ''प्यारे! इसी तरह बाणी का प्रभाव जरूर हुआ करता है। एक इसे प्यार से पीते हैं -

साची बाणी मीठी अंम्रित धार। जिनि पीती तिसु मोखदुआर॥ — *पृष्ठ - 1275*

एक वे हैं जो इस विधि से अज्ञात हैं, वे मन के किरदार को नहीं पहचानते, वे शबद से अछूते रहते हैं, उन्हें तो बस यही ध्यान रहता है कि मैं अब अपने सतगुरू की बाणी पढ़ रहा हूँ और न ही उन्हें बाणी का कोई सत्कार होता है। एक रस्म पूरी करते हैं क्योंकि -

जप जाप पढ़े बिना जो लेवे परसादि।
सो विशटा का जंत होइ जनम गवावै बादि॥ — *रहितनामा*

वे इन्हीं कारणों वश बाणी पढ़ते हैं, बाणी पर विचार नहीं करते। इसलिये जब भी नितनेम करना है, चाहे लम्बे समय के लिये करो, चाहे थोड़े समय के लिये करो, जितना भी करो प्यार, नम्रता तथा एकाग्रता के साथ करो। बाणी का नशा स्वभावतया अन्दर Vibration (तरंगे) पैदा कर देता है तथा रूहानी मार्ग की गाँठे खुलती हुई नज़र आती हैं।

बाणी पढ़ने के भी कई भेद हैं। पहला भेद है कि यदि बाणी नहीं आती तो गुटके से बाणी पढ़नी चाहिये। मात्रा वगैरा देख कर पढ़ो।

दूसरा दर्ज़ा उसका होता है जो मात्राओं के साथ उनके अर्थ भी जानना चाहते हैं।

तीसरे वे हैं जो बाणी में लीन हो जाते हैं। बाणी का प्रभाव उनके मन पर, शरीर पर हो जाता है। जिस तरह तुम्हें कोई प्यार का खत मिले, उसमें उसे कोई संकट है, उलझा पड़ा है, अभी तुमने वह पत्र पढ़ा ही है, तुम्हारे अन्दर परेशानी का गुब्बार उठ खड़ा होता है। यदि किसी माँ का पुत्र विदेश गया हुआ है, उसने लिखा कि, "मैं भूखा हूँ, बहुत दुखी हूँ।" उसने अभी पढ़ा नहीं, सुना ही होगा, पर सुनकर ही उसका बुरा हाल हो जाता है क्योंकि वह भावलीन हो गई। सो प्यारे! बाणी भावलीन होकर पढ़ने से दुखों का खातमा हो जाता है, विघ्नों का नाश हो जाता है। यह वह शक्ति है जो दुखदायी जन्तुओं को मार कर अन्दर शान्ति पैदा कर देती है। इसे पढ़ने से पाँच विषय - शबद, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, पाँच ठग - राज माल, रूप, जात यौवन, सभी का नाश हो जाता है। यह जो नेम है, इसमें गुरू शबद का पाठ किया जाता है या साधारणतया नितनेम करते हैं, पाठ करते हैं, यह रूहानी उन्नति करने के लिये जरूरी है।

अनेक पुस्तकें, अनेक प्रचार संसार में प्रचलित हैं, कोई व्रत रखता है, कोई मूर्तियों की पूजा करता है, कोई कर्म काण्ड में फसा हुआ है, उनके अपने-अपने विचार हैं, अपने-अपने मत हैं पर गुरमत में जो गुरू सिद्धान्त निरूपित किया गया है, हम उससे ज़रा सा भी इधर-उधर अपने मन को नहीं कर सकते। हमने सिद्धान्त को हृदय में पूरी तरह से धारण करना है। दूसरों के वचन इस सिद्धान्त से विपरीत हों, उनसे दूर रह कर दृढ़ होकर, हमने अपने गुरू सिद्धान्त की पालना करनी है। गुरू सिद्धान्त से उलट वचन हमने कानों से भी नहीं सुनने।

7. सांतवा नेम **'दंभ'** हुआ करता है। दिखावे के लिये कोई वस्त्र वगैरा पहन कर, लोगों को भेष द्वारा अपनी ओर खींचना यह वर्जित है। इसके बारे में फ़रमान है -

भेख दिखाइओ जगत को लोगन को वस कीन।
अंत काल काटी कटिओ बास नरक मो लीन।

लोका वे हउ सूहवी सूहा वेसु करी।
वेसी सहु न पाईऐ करि करि वेस रही।
नानक तिनी सहु पाइआ जिनी गुर की सिख सुणी।
जो तिसु भावै सो थीऐ इन बिधि कंत मिली॥ ***पृष्ठ - 786***

गुरू महाराज जी ने तो साफ तौर पर ही फ़रमान कर दिया कि तेरा चोला काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ईर्ष्या, वैर, निन्दा, चुगली आदि कुकर्मों से भरा हुआ है। भेषी बनकर तू कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकता, दोष का भागी बनेगा। महाराज कहते हैं, पहले शरीर रूपी चोले को पवित्र कर फिर इस चोले का श्रृंगार भेष बनाकर मत कर। नेत्रों में भय की सिलाईयां तथा अदब का सुरमा डाल तथा फिर देख, सभी ओर वाहिगुरू जी ही नज़र आते हैं। तेरे अन्दर जो मैं भाव बना हुआ है, आपा भाव बना हुआ है उसे गँवाने के लिये, गुरू साहिब का आसरा ले ले। दम्भ से कोई काम हल होने वाला नहीं और मनुष्य भेष की आड़ लेकर खुश्क हुआ अपना जीवन संसार में गवाँ कर चला जाता है। इसके बारे में कहा है -

बिना दंभ गुरू सबद कमावन।

करहि सदा ह्वै तन मन पावन॥ *श्री गुर नानक प्रकाश, पृष्ठ - 532*

अत: दम्भ रहित होकर, इस मार्ग पर चलकर जल्दी सफलता मिलती है।

जो प्रेमी दम्भ करते हैं, अपनी आशा पूर्ति के लिये षडयन्त्र रचते हैं, लोक प्रियता के लिये बड़े-बड़े साधन अपनाते हैं, अन्य भी कई प्रकार के साधन अपनाते हैं। वे दम्भ होने के कारण परमेश्वर के द्वार पर परवान नहीं होते।

बिना दम्भ के जब शबद की साधना की जाती है तो अन्तसकरण में जन्म जन्मातरों की लगी हुई मैल दूर हो जाती है।

8. आठवां अंग है **'वृत्ति शान्तमयी रखना'** जिसमें यह धारना गुरू सिद्धान्त के अनुसार धारण करना-

कबीर सभ ते हम बुरे हम तजि भलो सभु कोइ।
जिनि ऐसा करि बूझिआ मीतु हमारा सोइ॥ *पृष्ठ - 1364*
हम नही चंगे बुरा नही कोइ। प्रणवति नानकु तारे सोइ॥ *पृष्ठ - 728*

अभिमान के लिये कोई जगह नहीं है। कोई दुख, सुख, लाभ-हानि हो जाये तो भी वृत्ति को शान्त रखना। मुख से मधुर वचन बोलना सहायक हुआ करता है।

9. अगला नियम **'अबोल'** हुआ करता है। अपने नित्य समय के अनुसार जब तुम भजन बन्दगी करने लगो तथा बाणी का पाठ करने लगो उस समय वातावरण के अनुकूल देखकर यह धारण करो कि बाणी का सिद्धान्त समझता हुआ मैं मौन रहूँ, उस समय संसारी बातें या अत: बातें न करूं। इस तरफ बहुत ध्यान देने की जरूरत है क्योंकि देखने में आता है कि एक बार मैं किसी प्रेमी के घर गया, वह सुखमनी साहिब का पाठ कर रहा था, मैं काफी देर बैठा रहा। मैं सोच रहा था कि मैं गलत समय पर आ गया, उसकी वृत्ति बाणी के साथ लगी हुई थी, उसे भंग करने आ गया।

परन्तु थोड़ी देर बाद क्या देखता हूँ कि उसके लड़के ने उसे कहीं बाहर जाने के लिये कहा तो उसने पहले तो गाली निकाली, फिर चाय पीकर जो गिलास रखा हुआ था, वह उसे फैंक कर मारा। सो ऐसा जो पाठ है, वह फलीभूत नहीं हुआ करता, इसलिये जब भी तुम गुरमत सिद्धान्त की विचार करो तो यह व्रत निभाना चाहिये कि पाठ करते समय मैं कोई भी किसी तरह की बातचीत नहीं करूंगा-

नवमो नेम पाठ जो करना। तिह महिं अपर न बचन उचरना॥
श्री गुर नानक प्रकाश, पृष्ठ - 533

10. दसवाँ नेम है **'होम'** - एक तो होम वह हुआ करता है जिस में हम आग आदि में घी, सुगन्धियां डाल कर जलाते हैं, ये चीज़ें रूहानियत में कोई काम नहीं करतीं।

हम घर में प्रसाद बनाते हैं, गुरू घर में यह मर्यादा है कि जब प्रसाद तैयार किया जाता है तो गुरू महाराज जी के सामने प्रार्थना की जाती है कि भोग लगाओ। इससे सारी गुप्त शक्तियां, अपने इष्ट देव की प्रसन्नता प्राप्त की जाती है।

दूसरा ब्रह्म होम हुआ करता है। यह इस प्रकार होता है, बन्दगी करने वाले की भूख की निवृत्ति के लिये जो कुछ भेंट किया जाता है वह वाहिगुरू कह कर जब पहला ग्रास अपने मुख में डालता है, उस समय ब्रह्म होम सुहावना हो जाता है तथा यह वाहिगुरू जी, सन्त की रसना पर निवास रखते

हैं। यह रसना पर निवास करता है। सभी देवता सहित 'हरिनाम' का उच्चारण सुन कर प्रसन्न होते हैं। नाम जपने वाले क्षुधातुर के मुँह में अन्न डालना, यह भी ब्रह्म होम है। जिस-जिस में भी अन्न की आहुति पड़ती है और जीभ नाम उच्चारण वाली होने के कारण, वह आहुति ब्रह्म को पहुँचती है। ब्रह्म के प्रसन्न होने से सारा ब्रह्मण्ड प्रसन्न होता है।

तीसरा होम हुआ करता है जो सबसे श्रेष्ठ है, वह है कि इन्द्रियों के जो विषय हैं उन्हें स्व चिन्तन, आत्म चिन्तन से दग्ध करे, यह सबसे श्रेष्ठ होम है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ईर्ष्या, निन्दा, चुगली, वैर इन्हें वाहिगुरू का नाम उच्चारण करके दग्ध करें। यह होम सबसे श्रेष्ठ होम है। इसलिये भूखे को भोजन कराना, बन्दगी करने वाले महापुरुष को भोजन खिलाना और स्वंय भोग लगाना, इसका विधान है।

इस सन्दर्भ में एक कथा आती है कि द्वापर युग के अन्त में जब महाभारत का युद्ध समाप्त हो गया, उस समय पाण्डवों ने कृष्ण महाराज जी के पास शिकायत की कि बेशक युद्ध में हमारी विजय हुई है पर जो सम्बन्धी बिछुड़ गये हैं, वे मन से नहीं निकलते। कृपा करो, कोई साधन बताओ जिस से मन में शान्ति आ जाये।

कृष्ण महाराज जी ने साधन बताया कि तुम राजसूय यज्ञ करो। सभी राजाओं ने अलग-अलग सेवाओं की मांग की। विधि पूर्वक यज्ञ प्रारम्भ हुआ। यह देखने के लिये कि यज्ञ निर्विघ्न सफल हुआ है या नहीं, इसके लिये एक बड़ा शंख ऊँचे बांस के साथ बान्ध दिया गया और यह धारना की गई कि यदि यह शंख अपने आप बज गया तो समझेंगे कि यज्ञ सम्पूर्ण हो गया।

सारे भारत वर्ष के ऋषि मुनि सुशोभित हुए। कृष्ण महाराज जी ने, चरण धोने, अतिथियों की जूठी पत्तलें साफ करके दूर फैंकने की सेवा की। यज्ञ की समाप्ति के पश्चात शंख बजने की आवाज़ न आई। उस समय पाँचो भाई, द्रौपदी सहित कृष्ण महाराज जी के पास आकर बैठ गये और कहने लगे, "महाराज शंख तो बजा नहीं।" आप मुस्कराये और कहा, "तुम्हारे दिल में राग और द्वैष है। राग द्वैष होने के कारण तुमने किसी महापुरुष को निमन्त्रण नहीं दिया और उन्हें किसी कारण वश छोड़ दिया गया।" कृष्ण महाराज जी ने बताया कि दिल्ली के दक्षिण में ब्रह्मज्ञानी महापुरुष निवास किये हुए हैं। वे जाति के चण्डाल हैं, उनका नाम वाल्मीकि है। वे आपके यज्ञ में शामिल नहीं हुए। जाओ, उन्हें लेकर आओ। जब वह भोजन कर लेंगे तब तुम्हारा यज्ञ सम्पूर्ण हो जायेगा।

जब पाँचों पाण्डव वाल्मीकि जी को लेने गये तो उन्होंने कहा, "मैं छोटी जाति का हूँ। तुम्हारे यहाँ यज्ञ में आने के लिये, तुम्हें एक यज्ञ का फल मुझे देना पड़ेगा, तब मैं तुम्हारे यज्ञ में आऊँगा। वे सभी फिर कृष्ण जी के पास लौट आये। कृष्ण महाराज ने द्रौपदी से कहा कि यदि किसी महापुरुष के पास पूर्ण श्रद्धा से जाये, उसे परमेश्वर रूप मान कर जाये तो हर एक कदम का फल एक अश्वमेघ यज्ञ के फल के बराबर होता है। तू जितने कदम चल कर जायेगी उसमें से एक यज्ञ का फल उन्हें दे आना। द्रौपदी ने वैसा ही किया। पूरी श्रद्धा के साथ वाल्मीकि के आश्रम में पहुँची और यज्ञ में आने के लिये निमंत्रण दिया। जब ऋषि ने वही प्रश्न किया तो द्रौपदी ने कहा, "मैं एक यज्ञ का फल तुम्हें देती हूँ। शास्त्र विधान के अनुसार मैं आपके पास पूर्ण श्रद्धा तथा आपको परमेश्वर रूप ह्रदय में धारण करके आई हूँ। इसलिये जितने कदम मैं आपके पास चलकर आई हूँ, उसमें से एक यज्ञ का फल काट कर बाकी बचे हुए यज्ञों का फल मेरी गोदी में डाल दो।"

अतः वाल्मीकि जी यज्ञ में आ गये। भोजन परोस दिया गया। द्रौपदी बड़ी हैरान हुई जब उसने देखा कि वाल्मीकि जी ने सारे व्यंजन एक ही थाली में इकट्ठे करके मिला दिये, उस समय उसके मन में तर्क पैदा हुआ कि छोटी जाति का है ना, इसलिये इसने सारे नमकीन, चटपटे पदार्थ इकट्ठे कर दिये। भोजन करने के बाद ऋषि चले गये पर शंख फिर भी न बजा।

कृष्ण महाराज जी के चरणों में प्रार्थना की गई, ''महाराज! वाल्मीकि जी ने भी भोजन कर लिया। शंख तो फिर भी नहीं बजा।'' तब कृष्ण महाराज जी ने कहा, ''किसी प्रेमी ने वाल्मीकि जी के भोजन के खाने के ढंग पर तर्क किया है।'' द्रौपदी ने कहा, ''हे भगवन! मेरे से यह गलती हो गई।'' जब तर्क रहित होकर वाल्मीकि जी को फिर से भोजन खिलाया गया तो उसके पश्चात शंख बहुत जोर से बज पड़ा तथा उसकी आवाज़ दूर-दूर तक सुनाई दी।

द्रौपदी के मन में संशय था कि शंख पहले क्यों न बजा और इन्होंने सारे भोजन (व्यंजन) इकट्ठे क्यों किये थे? कृष्ण महाराज जी ने कहा, ''द्रौपदी अच्छा होगा यदि तू इस प्रश्न का उत्तर उन्हीं से पूछ ले।''

वाल्मीकि जी ने कहा, ''बेटा! रूहानी मार्ग में होम का विधान है जिसका पालन सभी को करना पड़ता है। इसी प्रकार आहार की मर्यादा भी अलग-अलग रखी गई है। जिसने ब्रह्मचर्य धारण किया हो, वह 32 ग्रास खाता है। यदि कामकाजी व्यक्ति है वह 24 ग्रास खाता है जो संसार को त्यागकर जंगलों में तप करते हैं उन्हें 16 ग्रास, जो वीतराग अवस्था में विचर रहे हैं उनके लिये आठ ग्रासों का विधान है। अतः आठ ग्रासों के लिये मैंने ब्रह्म होम का पालन करने के लिये भोग लगाना था। उसमें से क्या पता कौन सा रस मेरे प्रभु को भा जाता। इसलिये मैंने 36 प्रकार के व्यंजन इकट्ठे करके अपनी रसना का भोग लगवाया। सर्वत्र रमे हुए ब्रह्म का ध्यान धर कर जब ग्रास मैंने मुख में डाला तो उसी समय यज्ञ सम्पूर्ण हो गया क्योंकि इसका भोग सभी देवताओं, ब्रह्म को लग चुका था। इसलिये जो होम है यह नेम के अन्दर आता है। जिस प्रकार दो चप्पुओं से किश्ती चलती है उसी प्रकार रूहानी मार्ग पर चलने के लिये यम तथा नेम जरूरी साधन हैं।

इस प्रकार गुरू नानक पातशाह ने राजा शिवनाभ को बहुत ही विस्तार से समझाया कि योग मार्ग पर चलने के लिये यम तथा नेम जरूरी है। गुरू घर में गुरू ग्रन्थ साहिब ने Do and dont (करो तथा न करो) सिद्धान्त, स्पष्ट तौर पर अंकित है। गुरसिख को चाहिए कि वे वचन जो यमों के अन्दर शामिल नहीं है, वह स्वंय शामिल कर ले जैसे किसी की निन्दा चुगली, ईर्ष्या, वैर आदि के स्थान पर सभी से प्यार का व्यवहार करना जरूरी है। यदि वास्तव में ही इस मार्ग पर चलना है तो इन रहतों (नियमों) का पालन करना ही होगा। कुछ रहतें और भी हैं।

योग के आठ अंगों में से पाँच अंग बहिरंग साधन कहलाते हैं। तीन साधन जिनका सम्बन्ध एकाग्रता तथा निरूद्धता के साथ है वे अन्तरंग साधन हुआ करते हैं। ये आठों अंग ज्ञान प्राप्ति में सहायक होते हैं। अविद्या के नाश के लिये धारना, ध्यान तथा समाधि को सिद्ध करना बहुत ज़रूरी है। यम तथा नियम, योग में आने वाली रूकावट हिंसा आदि जिसका विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है, उसे दूर करके समाधि को सिद्ध करते हैं। दृढ़ आसन, भजन करने के लिये ज़रूरी है क्योंकि दृढ़ आसन होने के उपरान्त प्राणायाम की स्थिरता प्राप्त होती है तथा प्राणायम की स्थिरता से प्रतिहार सिद्ध होता है। धारना ध्यान तथा समाधि बिना वैराग के, प्यार के सिद्ध नहीं होती क्योंकि अभ्यास के बिना यह केवल जानने लायक ही

बात रह जाती है। **बुद्धि रूप में जाना हुआ, इनके बारे में ज्ञान से किसी ठोस परिणाम पर नहीं पहुँचा जाता। जब चित्त एकाग्र होकर समाधि लगती है तब ज्ञान का प्रकाश अन्दर उदय होता है** तथा सांसारिक वस्तुओं के प्रति वैराग बढ़ जाता है। ज्यों-ज्यों यह वैराग बढ़ता है, त्यों-त्यों निर्जीव (अफूर) समाधि में साधक प्रवेश करने के योग्य हो जाता हैं। यम तथा नेम का बहिर्मुखता तथा अन्तर्मुखता से सम्बन्ध है। इन्हें पालन करने से ऐसा अनुभव प्राप्त होता है कि जीव को व्यवहारिक जीवन पर राजसी, तामसी, विक्षेप तथा आवरण की मैल उतर जाती है तथा सतोगुणी, पवित्र तथा साधनों का आसनों के साथ गहरा सम्बन्ध है। शरीर में रजोगुण की चंचलता तथा अस्थिरता तथा तमोगुण का आलस्य तथा प्रमाद आदि विघ्न डालते हैं। दृढ़ आसन से जब हम साधना करते हैं तो शरीर में प्रकाश तथा दिव्यता पैदा होती है। यम तथा नियमों की पालना करना, किसी बन्धन में डालकर ऐसे ही फोकट कर्म नहीं हैं, इनकी विक्षेपता को समझना चाहिये। जिस प्रकार क्लेशों का मूल कारण अविद्या है, इसी तरह से सारे यमों का मूल अहिंसा है। पहले भी बताया जा चुका है कि अहिंसा पर गम्भीरता से विचार करना ज़रूरी है। हिंसा तीन प्रकार की होती है - शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक। 1. शारीरिक हिंसा - किसी प्राणी के प्राण हर लेना तथा अन्य किसी भी विधि से उसे शारीरिक कष्ट पहुँचाना। 2. मानसिक हिंसा - मन में किसी के बारे में बुरा चितवना। 3. आध्यात्मिक हिंसा - अन्तसकरण को मैला करने की क्रिया को कहते हैं। यह क्रिया राग, द्वैष, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि तमोगुणी वृत्ति से मिलकर पैदा होती है। किसी भी प्राणी के साथ हिंसक जब अपनी आत्मिक हिंसा करता है, अपने अन्तसकरण को दुर्गन्ध भरे मैले सस्कारों से मलीन करना, सबसे बड़ी आत्मिक हिंसा है। इसके बारे में महापुरुषों का मत है कि कई आत्मघाती लोग हैं (आत्मघाती यहाँ पर अन्तसकरण मलीन करने वाले कर्म करने वालों को कहा गया है) क्योंकि उसने अपनी आत्मा को दूषित कर्मों द्वारा मलीन कर लिया। पर जीव आत्मा, उसे अलग हस्ती बनाकर, माया में फसी हुई है। आत्मघाती लोग दो प्रकार के हैं। एक वे हैं जो शरीर का नाश स्वंय ही कर लेते हैं। दूसरे वे हैं जो अपने कर्तव्य को न पहचानते हुए अपने अन्तसकरण को मलीन करते चले जाते हैं। गुरू महाराज जी का फ़रमान है कि जो नाम नहीं जपता, वह आत्मघाती है -

नामु न जपहि से आतम घाती॥ ***पृष्ठ - 188***

जो इस प्रकार आत्मघात के महान निन्दनीय कर्म को अपनाकर अपने अन्तसकरण को मैला कर लेता है, वह मरने के पश्चात उन्हीं यौनियों में जाता है जो असुर लोक कहलाते हैं तथा बहुत अधिक अन्धेरे से ढके हुए हैं अर्थात ज्ञान रहित, मूढ़ नीच यौनियों में जाते हैं।

शरीर तथा मन की अपेक्षा आत्मा परम श्रेष्ठ है क्योंकि शरीर तथा मन तो आत्मा की सत्ता प्राप्त करके ही अस्तित्व में है। यह कार्य परमेश्वर जी ने जीव आत्मा को दिये हुए हैं ताकि वह इसका सही प्रयोग करके अपना कल्याण कर सके। इसलिये जो हिंसक है वह अति निर्दयता का पात्र है, बदला लेने की भावना हृदय में रखना, किसी को नुकसान पहुँचाना, यह श्रेष्ठ पुरुष के लिये हिंसा हुआ करती है। जो जिज्ञासु परमेश्वर के रास्ते पर बढ़ रहे हैं, उनके हृदयों में ऐसे आत्मघात करने वाले लोगों के लिये पूरा-पूरा प्यार होना चाहिये ताकि उसे अन्धकार में से निकाल सके तथा इसे इस हिंसक पाप से हटाना चाहिये। जिसने पूर्ण रूप से अहिंसा को समझ लिया, उसका तेज़ इतना बढ़ जाता है कि हिंसक उसके सामने आ भी जाये तो वह अपनी हिंसक भावना को त्याग देता है। जिन्हें परमेश्वर ने मानसिक शक्ति ही दी हुई है, वे अपने मानसिक बल से हिंसा को दूर कर दे। वाचक तथा शारीरिक शक्ति वाले, जहाँ तक उन्हें अधिकार है वे भी अपने बल का प्रयोग करके हिंसा को हटाए। हिंसा दूर करना केवल

योगियों, साधु, सन्तों, भले पुरुषों का ही काम नहीं है, यह तो हर एक प्राणी का काम है। जो शासक तथा न्यायधीश है, उनका परम कर्तव्य संसार में अहिंसा स्थापित करना होता है। जैसे कोई पुरुष मन्द नज़र से घातक शस्त्र से, जो उसे अपने शरीर की रक्षा करने के लिये प्राप्त है, वह अपने ही ऊपर उसका वार करे तो उसके मित्रों का यह कर्तव्य बन जाता है कि उसका हथियार उसके हाथों से छीन लें। इसी प्रकार यदि कोई हिंसक अपने शरीर की हिंसा करे या दूसरे से हिंसा करे तो शासक और न्यायधीश का यह कर्तव्य है कि उसके शरीर का वियोग करवा दे। यह हिंसा नहीं हुआ करती, अहिंसा होती है। यदि यही कार्य तमोगुणी वृत्तियों के वश होकर किया जाये तब उसके शरीर का वियोग करवाना हिंसा बन जाया करता है और पाप कर्म का भागी बनाता है।

कई प्रेमियों का विचार होता है कि फौज में फौज़ी लड़ते हैं, वे शत्रुओं को मारते हैं, पुलिस चोरों को सजा देती है, क्या यह हिंसा नहीं है? युद्ध करना तथा देश की रक्षा करना, देश में कानून के अनुसार राज चलाना यह फौज तथा पुलिस का कर्तव्य हुआ करता है। यदि अपने कर्तव्य की पालना करके, वह ठीक समय पर उचित कदम नहीं उठाता तो उनकी इसी कर्म और कर्तव्य से कोताही भी हिंसा बन जाया करती है।

एक हिंसा और भी हुआ करती है कि अपनी दुर्बलता के कारण, डरा हुआ व्यक्ति, अत्याचारों के अत्याचार को सहन कर लेता है। अपना धन सम्पत्ति को चोर, डाकुओं को लूटने के लिये इज़ाज़त दे देता है। किसी प्रकार की रक्षा का प्रबन्ध न करना हिंसा होती है, कायरता होती है। तेजस्वी, दुर्बल, डरपोक, कायर हिंसकों को, हिंसा बढ़ाने में, भागीदार होते हैं क्योंकि उन्हें हिंसा के व्रत पालन करने की जाँच नहीं आती।

महापुरुषों का ऐसा विचार है कि यदि कोई डाकुओं का टोला, मरने से बेपरवाह होकर, लूटने के लिये निकलता है, जो पुरुष मरने के भय से अपना धन तथा सम्पत्ति बिना मुकाबला किये आसानी से उन्हें दे देते हैं, वे हिंसा करते हैं क्योंकि उनका यह कायरता पूर्ण कार्य, डाकुओं को लूट खसोट करने में हिम्मत बढ़ाता है, हौंसला देता है कि हम तुम से डर के कारण तुम्हारा मुकाबला नहीं करते, जितना मन करता है, लूट लो। इतनी कायरता दिखाना हिंसा कहलाती है। जो सूरमा उनसे अधिक मौत से अभय होकर आत्म बल तथा दिव्य शक्ति रखता है, वह उनका मुकाबला करता है, चाहे उसके प्राण ही क्यों न चले जायें। यह उनकी हिंसा को कम करके अहिंसा रूपी पुण्य का भागीदार बनता है। जो देश के शासक बाहरी कोप से तो रक्षा करते हैं पर अपने देश में गरीबों के अधिकार लूटते हैं, रिश्वतें लेते हैं सभी चीज़ें जनता में नहीं बांटते, ऐसे पुरुष भी हिंसक हुआ करते हैं। इसलिये अहिंसा और हिंसा ये केवल अर्थ मात्र नहीं है, इनमें कर्तव्य का भी अन्तर हुआ करता है।

उदाहरण के तौर पर यदि किसी पशु के पेट में कीड़े पड़ जाते हैं, वह दुखी है, तड़प रहा है, कोई दवाई उस पर असर न कर रही हो, उसे इस प्रकार तड़पता देखकर कोई यत्न न करना, हिंसा हुआ करती है। पर यदि कोई विचारवान व्यक्ति, यह देख ले कि अब ठीक नहीं होने वाला तो उसे टीका लगवाकर उसके प्राणों का वियोग करवा देता है, वह हिंसा नहीं अहिंसा हुआ करती है।

अहिंसा के सम्बन्ध में अनेक प्रकार के विचार हैं। एक जमींदार की भरपूर फसल मार्कीट में आ जाती है जिससे अनेक लोगों की आवश्यकताएं पूरी होती हैं, भूख दूर करती है। यदि उसकी फसल को चूहे खाना शुरू कर दें या फसल पर कीटाणुओं का हमला हो जाये और वह इस विचार में रहे कि

मुझे दोष लग जायेगा, पाप लग जायेगा, तो वह धर्मी पुरुष नहीं हुआ करता। इसके विपरीत उसकी दुर्बल तथा विचार रहित भावना फसल के नुकसान का कारण बनती है तथा ऐसा पुरुष हिंसक पुरुष कहलाता है। क्योंकि मनुष्य का जीवन सर्व श्रेष्ठ है, नर नारायणी देह है, इसी जीवन में प्रभु प्राप्ति हो सकती है। यदि इस जीव को चूहे प्लेग का रोग लगाकर खत्म करने का कारण बनते हैं, मच्छर किसी बीमारी को फैला देते हैं, उसी तरह से और भी कई तरह की बिमारियां फैलाते हैं, इन्हें मार देना अहिंसा हुआ करती है। कई प्रेमी मेरे पास आते हैं, पूछते हैं यदि जूएं पड़ जायें तो उन्हें मार दें, क्या पाप लगेगा? पर विचार शून्य होने के कारण उन्हें यह पता नहीं चलता कि अहिंसा के रूप में सोचा हुआ कर्म भयानक हिंसा को जन्म देता रहा है। खटमल, बिच्छु, साँप अन्य अहिंसक जीव जन्तुओं की अपेक्षा हिंसा पाप नहीं है, पुण्य है। हिंसा की श्रेणियां हुआ करती हैं। साधारण जानवरों की अपेक्षा सवारी ढोने वाले पशु, काम आने वाले पशुओं को मार देने का नुक्सान अधिक होता है। इसी तरह साधारण मनुष्य की बजाये किसी विद्वान पुरुष को मार देने का दोष बहुत अधिक होता है। ब्रह्मज्ञानी महापुरुषों की हत्या कर देना, महा-महा हत्या हुआ करती है।

इसी तरह से सच और झूठ बोलने में भी अन्तर हुआ करता है। बोलने में दोष हुआ करता है, जैसे किसी काने को काना कहना, अन्धे को अन्धा कहना सच नज़र आता है पर यह द्वैष से भरा वचन हुआ करता है। जैसे अन्धे को सूरदास, लंगड़े से सुचालू आदि कहना चाहिये। इसी तरह बन्दगी करने वाले को उन सभी का विचार करके पालन करना चाहिये।

एक ऐसी कथा आती है कि महाराज यधिष्ठिर का कर्ण के साथ युद्ध हो रहा था। सारे दिन के युद्ध के उपरान्त युधिष्ठिर तथा तीन अन्य पाण्डव कर्ण का कुछ भी न बिगाड़ सके। रात को युधिष्ठिर अर्जुन का बल बढ़ाने के लिये कड़वे तथा अपशबद बोल रहे थे। हे अर्जुन! तेरे गान्डीव धनुष बाहु बल, केसरी झण्डा, हनुमान जैसा, और अग्निदत्त रथ को बार-बार धिक्कार है। तू अपने गान्डीव धनुष को जो तेरे से अधिक बलवान होने के दावा करे, वह मित्र राजा को सौंप दे क्योंकि वो तेरे से भी अधिक बलवान है, उन्हें वह मार देगा। अर्जुन ने प्रतिज्ञा की थी कि यदि कोई मेरे धनुष बाण की निन्दा करेगा तो मैं उसे मार दूंगा। इसलिये उसने अपनी प्रतिज्ञा का पालन करते हुए, युधिष्ठिर का वध करने के लिये तलवार निकाल ली। उस समय कृष्ण महाराज जी ने कहा, ''अर्जुन! तू केवल शब्द के स्थूल रूप को देख रहा है, तू इसके सूक्ष्म रूप अर्थ को नहीं देख रहा। तेरी प्रतिज्ञा केवल गान्डीव धनुष को धिक्कारने वाले का वध करने की थी और धिक्कारना अपमान के लिये द्वैष भाव से होता है। परन्तु युधिष्ठिर ने गान्डीव धनुष की प्रशंसा तथा मान बढ़ाने के लिये प्रेम-भाव से तुझे उत्तेजित करने का मुकाबला करने के लिये, ये शबद कहे हैं।'' उस समय युधिष्ठिर अपने शब्दों द्वारा प्रत्यक्ष रूप में अर्जुन का निरादर कर रहा था पर सूक्ष्म रूप में अर्जुन को ऊँचा उठा रहा था क्योंकि उसे गान्डीव धनुष अर्जुन के बाहुबल पर पूरी आशा थी। कृष्ण महाराज ने कहा, ''अर्जुन! युधिष्ठिर ज्ञानी है, शरीर उसके लिये वस्त्र के समान है, उस शरीर को यदि तू मार देता तो वह मरता नहीं है क्योंकि ज्ञानवान पुरुष की कभी मृत्यु नहीं होती। श्रेष्ठ पुरुष को मारने के लिये शस्त्र की जरूरत नहीं होती, केवल बाणी से ही उसकी मृत्यु हो जाती है।''

कृष्ण महाराज ने कहा, ''उसने तेरे धनुष की प्रशंसा की है, तेरे बल की प्रशंसा की है लेकिन कहने का जो ढंग था, वह और तरह का था। युधिष्ठिर के कहने का मतलब यह था कि वह कर्ण के साथ युद्ध करता हुआ पूरी तरह से थक चुका था। अति दुखी होकर युधिष्ठिर ने रोष वश होकर ये वचन अर्जुन से कहे थे। अतः इस प्रकार सत्य तथा असत्य वचनों में भी भेद हुआ करता है। जो वचन दूसरे

का नुकसान करें, उसके अपमान का कारण बनें, उन्हें कहना उचित नहीं होता। गुरू घर का नियम है, पराये अवगुणों को देखकर भी अनदेखा कर दे।

सो विचार यह है कि सच बोलना तभी अच्छा है, पर सच बोल कर किसी का हृदय दुखित कर देना, यह भी हिंसा हुआ करती है। जो भूख से पीड़ित, किसी की वस्तु को उठा ले और अपना पेट भर ले, वह इतना पापी नहीं होता जो सामाजिक नियमों की पालना न करता हुआ दूसरों के अधिकारों पर छापे मारता है, वह पापी है।

कई बार अपने आप को उच्च पुरुष कहलाने वाले ऊँची जातियों से सम्बन्ध रखने वाले, अपने आपको, धर्म के ठेकेदार समझकर छोटी जाति वालों के साथ नफरत करते हैं और उनके अधिकारों को छीन लेते हैं। यह उस चोरी करके रोटी खाने वाले की अपेक्षा बुरा कर्म है।

इसी प्रकार अत्याचारी राजा जो प्रजा के राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा नागरिक अधिकारों का हनन करता है। लोभी जमींदार जो गरीब किसानों से अत्याचार द्वारा धन प्राप्त करते हैं। कारखानों के लोभी मालिक जो मज़दूरों को उनकी मज़दूरी न देकर सारा लाभ अपने पास रख लेते हैं। धोखे बाज व्यापारी जो वस्तुओं में मिलावट करके अधिक लाभ कमाना चाहते हैं। रिश्वत खोर शासक, लोभी वकील, लोभी वैद्य ये अपने हित के लिये दूसरों का नुकसान कर देते हैं इनको भी बहुत पाप लगता है। **इसलिये यम तथा नेम बनाए हैं। इनके मात्र अक्षरों के अर्थ समझकर गलत परिणाम निकाल लेना कोई उचित पहुँच नहीं है।** इनके पूरे-पूरे भावों को समझकर, इनसे होने वाले रूहानी लाभ को विचार कर, एक दम नकारा नहीं कर देना चाहिये। सभी महापुरुषों का यह विचार है कि जब तक एकाग्रता के साथ बहिरंग और अन्तरंग सत्संग नहीं करता, तब तक रूहानी मार्ग पर कोई उन्नति नहीं हो सकती। कई बार जब हम साधक की सहायता के लिये ब्रह्मचर्य का उल्लेख करते हैं, कई प्रेमी ऐतराज़ करते हैं कि गुरू महाराज ने तो कहा नहीं पर गुरू महाराज जी के आशय को समझ न सके कि उन्होंने तो इस बात पर बहुत बल दिया है। ब्रह्मचर्य कोई क्रिया कर्म नहीं है, यह शरीर की तन्दरुस्ती के लिये बहुत ज़रूरी है। वैद्यों का यह विचार है कि यदि कोई 25 साल तक अखण्ड ब्रह्मचारी रहने के पश्चात गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करके शास्त्रों के अनुसार केवल सन्तान उत्पत्ति के लिये ऋतु-समय पर स्त्री संयोग करता है तो उसका ब्रह्मचर्य नहीं टूटता अर्थात गृहस्थ आश्रम में रहते हुए भी ब्रह्मचर्य का पालन हो सकता है। वह शरीर को अनेक रोगों से बचा सकता है।

ऐसा विचार है कि 40 सेर अनाज आदि प्रतिदिन के भोजन खाने से एक बूंद रक्त प्राप्त होता है 100ज खून में से 1ज मिझ हुआ करती है इसी तरह इसी ओज द्वारा वीर्य प्राप्त हुआ करता है जिसके 100ज में से 1ज ओज प्राप्त होता है जो शरीर को निरोग तथा दृढ़ता प्राप्त करने वाला बनाता है। इस प्रकार उसके अन्दर दिव्य प्रकाश पैदा हो जाता है। गुरू घर में पागल होकर भोगों में प्रवेश होने के लिये कोई जगह नहीं मिलती, इसके स्थान पर संयम और विचार के साथ चलना चाहिये।

प्राचीन इतिहास में एक ऐसा उदाहरण मिलता है कि यूनान के बादशाह ने स्पार्टा देश पर हमला कर दिया। थर्मपल्ली के युद्ध में ईरानी आक्रमणकारी सम्राट जैरकसीज़ के तीन लाख सैनिकों को केवल तीन सौ स्पार्टा के वीर, ब्रह्मचारियों, जिन्होंने समुच्चय रूप में ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया हुआ था, ने हरा दिया। उनकी शक्ति की दुनियाँ भर में धाक थी। उन्होंने अपनी शक्ति से उन्हें आगे बढ़ने से रोक कर सारे यूनान की स्वतन्त्रता को स्थिर रखा था।

इसी प्रकार गुरू दशमेश पिता जी के पश्चात सिंघों पर संकट की घड़ी आई तो उन्होंने अपने शरीर को हृष्ट-पुष्ट रखकर आत्मिक बल तथा निर्भयता के साथ अपने अस्तित्व को मिटने न दिया। बेशक उनके बच्चों को बड़ी निर्दयता के साथ मारा जा रहा था, आरों के साथ चीरा जा रहा था, अनेक प्रकार के कष्ट दिये जा रहे थे पर उन्होंने अपनी आत्मिक प्राप्ति के बल से अपने अस्तित्व को कायम रखा। वे पूरे जपी तपी थे।

गुरू महाराज यहाँ परमात्मा को प्राप्त करने का एक रास्ता बताते हैं। गुरमत में यम तथा नेम के बारे में बहुत कुछ बताया गया है जिन्हें धारण करना गुरू के शबद की कमाई करना (साधन करना) कहा जाता है। उसकी साधना के कारण ही हम अन्दर अन्तरंग साधना द्वारा आत्म देश में पहुँच सकते हैं। गुरू महाराज जी ने समुच्चय रूप में कह दिया -

विणु गुण कीते भगति न होइ॥ *पृष्ठ - 4*

जब तक आत्मिक गुण नहीं होते, तब तक भक्ति नहीं हो सकती। गुरू नानक पातशाह जी ने राजा शिवनाभ को बताया, ''राजन! योग का तीसरा अंग आसन हुआ करता है।''

आसन - जिस विधि से बिना हिले-जुले, दृढ़ इरादे के साथ आराम से काफी लम्बे समय के लिये सुरत द्वारा अन्दर विचार करने के लिये कोई विक्षेपता न आए, वह आसन हुआ करता है। आसन कई प्रकार के होते हैं। गुरू महाराज जी ने इन्हें सिद्धों के आसन भी बताये हैं चौरासियां भी गिना है, पर इनमें से सिद्ध और पदम आसन भजन बन्दगी के लिये श्रेष्ठ माने जाते हैं। इनकी जानकारी प्राप्त करने के लिये हठ योग की पुस्तकों में से हठ योग के साधन ज़रूर करने पड़ते हैं। साधारण आसन है कि किसी कोमल स्थान पर बैठो, चौकड़ी लगाकर, गर्दन तथा रीढ़ की हड्डी को एक सीध में 90 डिग्री पर सीधा रखो। जब बैठ जाओ उस समय शरीर के प्रत्येक अंग को ढीला छोड़ते जाओ। सिर को शिथिल करो, यदि दिमाग में तनाव है, उसे बहार निकालो। उसके पश्चात गालों को शिथिल करो, जबाड़े, गर्दन, कन्धे, बाजू, घुटने, टखने, पैरों की आखिरी अंगुलियों तक ढीला छोड़ दो परन्तु ध्यान यह रखना है कि रीढ़ की हड्डी तथा गर्दन में किसी प्रकार की ढील नहीं आनी चाहिये। आम तौर पर चौकड़ी लगाकर जब हम बैठते हैं तो शरीर को शिथिल करके दोनों घुटनों पर अपने हाथों को रखो। अँगूठे को तर्जनी के साथ सम्पर्क करके अपने श्वांस की ओर ध्यान दो। जैसा महापुरुषों ने बताया है उसी विधि से शबद की आराधना करो, तब तक बैठे रहो, जब तक शरीर में कोई खेद नहीं आता। ग्रन्थों में ऐसा लिखा है -

चौथे अंग योग का आसन। बेद जुगीशर करिहीं भाशन।
जेते जीव जगत महिं जानहु। आसन तेते ही परमानहु॥ ६०॥
तिन ते युगम शिरोमण बीने। महांपुरख हित करि सो लीने।
सिध आसन, पदमासन दोऊ। तिनहिं जि लच्छन सुनिये सोऊ॥ ६१॥
छिति कछु खोद मिरदुल त्रिण पाए। बैसहि पुन पट बिमल बिछाए।
ह्वै पावन, नहिं अंग डुलाए। बाम पैर सों गुदा दबाए॥ ६२॥

दोहरा॥ इंद्री पर दहिन धरै, अग्र नासका ध्यान।
सिधि आसन - इहको भनै, योगी करति सजान॥ ६३॥

चौपई॥ दाएं पग पर धरि करि बांवां। बावें पर कर दहिन टिकावा।
दोनो भुजा कंड करि पाछे। गहे अंगूठे पग ढिड आछे॥ ६४॥
भू को किधों नासका ध्याना। करि बैसे पदमासन जाना॥

श्री गुर नानक प्रकाश, पृष्ठ - 534

प्राणायाम – इस मार्ग का चौथा अंग प्राणायाम है, जो शरीर के अन्दर तीन नाड़ियों द्वारा किया जाता है। एक का नाम इड़ा, दूसरी का नाम पिंगला और तीसरी का नाम सुखमना है। प्राणायाम करने के लिये एकान्त स्थान की जरूरत है जहाँ पर कोई विघ्न न डाले, अच्छा पवित्र स्थान हो, शोर शराबा बिल्कुल भी न सुनाई देता हो, हवादार स्थान की जरूरत है। हवा भी सहज चलती हो। मक्खी, मच्छर तथा अन्य जीव जन्तुओं की सीमा से बाहर दूर हो, हवा का वेग न तो बहुत अधिक तेज़ हो और न ही बहुत अधिक धीमा हो। ऐसा स्थान ढूँढने के लिये घर में भी कोई अच्छा सुन्दर स्थान चुना जा सकता है तथा बाहर भी कोई सुन्दर स्थान देखा जा सकता है, कोई बाग बगीचा हो, कोई गहन छायांदार स्थान हो, जैसे कोई वट का वृक्ष या पीपल का वृक्ष होता है। उसके नीचे चबूतरा बना कर बैठा जा सकता है। उन वृक्षों के नीचे नहीं बैठना चाहिये जहाँ पर कीड़े मकौड़े गिरते हों, जिन वृक्षों पर फल आदि लगते हैं। जैसे नीम के वृक्ष से निबौलियां आदि गिरती रहती हैं। बेरी के वृक्ष को भी अच्छा बताया गया है क्योंकि कांटे होने के कारण पन्छी बहुत कम बैठते हैं, छिपकलियां, साँप आदि भी नहीं आते पर सबसे अच्छा वट वृक्ष या पीपल के वृक्ष को माना जाता है। घर में भी कोई यदि अति सुन्दर स्वच्छ स्थान प्राप्त हो जाये तो बहुत अच्छा है। प्राणायाम करने के लिये बाहर से सुरत को पूरी तरह स्थिर करे। श्वांस अन्दर खींचने के लिये दायें हाथ, सूर्य की नाड़ी हुआ करती है और बाएं हाथ में चन्द्रमा की नाड़ी हुआ करती है। दायें हाथ की नासिका द्वारा श्वांस खींचने से कुछ गर्मी की मात्रा अन्दर बढ़ जाया करती है। इसलिये बांई नासिका से शुरू करना चाहिए। हमारे शरीर में प्राण अपने आप ही चलते रहते हैं। प्राण केवल हवा ही नहीं होते इसके अन्दर शक्ति भी हुआ करती है ऊर्जा भी हुआ करती है। इस शरीर में पाँच प्राण हैं – प्राण, अपान, उदान, बिआन, समान। इनमें से प्राण बाहर से शुद्ध हवा आक्सीजन सहित अन्दर खींच कर खून की सफाई के लिये भेजता है और अन्दर से कार्बन डायक्साईड गैस बाहर निकालता है क्योंकि प्राण स्वंयमेव चलते हैं। इन्हें सहज में लाना प्राणायाम का काम हुआ करता है। प्राणों की गति को ठहराव देना प्राणायाम कहलाता है। वेदों के अनुसार 72 करोड़, 72 लाख 10 हज़ार दो सो एक (72, 72, 10, 201) नाड़ियां बताई गई हैं। उनमें से 10 नाड़ियां प्राणायाम में सहायक होती हैं। आम तौर पर तीन नाड़ियां इड़ा, पिंगला तथा सुखमना को विशेष महत्व दिया जाता है। नाक के बांई ओर इड़ा, दांई ओर पिंगला नाड़ी तथा दोनों के बीच की नाड़ी को सुखमना कहते हैं। दायें नेत्र में गन्धारी नाड़ी तथा बायें नेत्र में हस्ति जिभ्या नाड़ी है। दायें कान में पूशा नाड़ी तथा बाएं कान में प्यासवनी नाड़ी है, लिंग में अलम्बसा नाड़ी है। गुदा में लक्वा नाड़ी है, नाभि में सखंडी नाड़ी है। प्राणायाम के जो कठिन तरीके हैं वे बहुत हैं पर वास्तव में चन्द्रांग तथा सूर्यांग प्राणायाम भजन बन्दगी में सहायक होते हैं। ऐसे होता है कि पहले इड़ा के रास्ते जो बाईं ओर होती है, 16 बार 'ओइम' (वाहिगुरू) जप करके धीरे-धीरे प्राणों को अन्दर खींचना जिसे 'पूरक' कहते हैं। 64 बार ओइम जप कर, साथ ही श्वासों को ठहराना कुम्भक करना कहते हैं तथा 32 बार अन्दर जप करते हुए श्वांस धीरे-धीरे बाहर को निकलना रेचक कहलाता है। दूसरा सूर्यांग प्राणायाम पिंगला के रास्ते चन्द्रांग के बताये अनुसार पूरक के पश्चात कुम्भक करके, इड़ा द्वारा छोड़ देना। इन प्राणों को प्राण तथा अपान वायु की मदद से मूलाधार से लेकर ब्रह्म रन्ध्र तक ले जाना। मूलाधार चक्र से लेकर ब्रह्म रन्ध्र तक बहुत ही चमकदार सुखमना नाड़ी रहती है। इसके मध्य में, करोड़ों प्रकाशों के समान बिजली की तरह बहुत ही अति सूक्ष्म, कुण्डलनी नाम की शक्ति है। योग करने वालों का ऐसा विचार है कि कुण्डलनी के दर्शन मात्र से ही पाप तथा अज्ञान का नाश हो जाता है। प्राणायाम के बल के कारण भुजंगा नाड़ी जिसमें सुखमना का द्वार, दरवाज़ा रूप होकर बन्द किया हुआ है, दूर हट जाता है तथा सुखमना द्वारा दशम द्वार में प्राणों की गति हो जाती है इस

कष्ट की अपेक्षा एक प्राणायाम और भी सरल है जिसे हंस प्राणायाम कहते हैं। वह बहुत ही धीमा है उसकी चाल यह है कि मन को पूरी तरह से एकाग्र करके, श्वांस बाहर जाने पर 'गुरू' और अन्दर जाने पर 'वाहि' का सिमरण करना। यह वाहिगुरू मन्त्र का बहुत ही सरल तरीका, जप करने का है। मनुष्य को एक दिन में 21,600 श्वांस आते हैं। काम करते समय, सोते समय, भोग के समय, पैदल चलते समय, श्वासों की गति तेज़ हो जाया करती है। भजन करते समय श्वासों की गति, धीमी होकर 8 श्वांस प्रति मिनट से भी कम होकर 6 या 4 श्वांस प्रति मिनट रह जाया करते हैं। औसतन हर एक मनुष्य को दिन रात में 24000 श्वांस आते हैं जिसका दसवन्ध 2400 श्वांस, 2 घंटे 40 मिनट हुआ करता है। वह 21,600 बार बिना होठ हिलाए, बिना बोले, बिना मधमा के जाप करता है। इस जाप को अजपा जाप कहते हैं। जिसके बारे में फ़रमान है -

अजपा जापु न वीसरै आदि जुगादि समाइ॥ *पृष्ठ - 1291*

इसे क्रिया योग भी कहते हैं। गुरबाणी में फ़रमान है-

निवली करम भुअंगम भाठी रेचक पूरक कुंभ करै॥ *पृष्ठ - 1343*

इसी प्रकार -

खटु सासत बिचरत मुखि गिआना। पूजा तिलकु तीरथ इसनाना।
निवली करम आसन चउरासीह इह महि सांति न आवै जीउ॥ *पृष्ठ - 1343*

धोती, नेती, बसती, त्राटक, निउली, कपालभाती, कष्ट दायक साधन हैं जिसके बारे में विस्तार पूर्वक पहले बताया जा चुका है पर संक्षेप में एक बार फिर बताया जाता है।

1. धोती - चार अंगुल चौड़ी, 15 हाथ लम्बी कपड़े की पट्टी, गुनगुने पानी में भिगो कर, एक-एक हाथ रोज़ निगलने का अभ्यास करना तथा 15 दिन में यह सारा निगल जाना, पिछला किनारा दातों में मज़बूती से पकड़े रखना तथा पट्टी को धीरे-धीरे बाहर निकालना। ऐसा करने से आन्तड़ियों की सफाई होती है।

2. नेती - एक गिठ लम्बा सूत का धागा बारीक तथा मुलायम लेकर पूरक करके, नाक के मार्ग से चढ़ाते हुए, प्राणों के बल द्वारा, उसे मुँह के रास्ते से निकाल कर, दोनों तरफ से पकड़ कर अन्दर साफ करना।

3. बसती - नाभि तक पानी में बैठकर 6 अंगुल लम्बी एक अंगुल मोटी बांस की नलकी लेकर चार अंगुल गुदा में प्रवेश करना तथा प्राणों के बल से जल खींच कर आन्तड़ी साफ करना। जैसे डक्टर अनीमा कराते हैं।

4. त्राटक - नेत्रों की टकटकी किसी खास चीज़ पर लगाकर तब तक एक टक देखते रहना, जब तक नेत्रों की दृष्टि थक कर नेत्रों में से पानी न निकलने लग जाये। इसे आचार्य लोग त्राटक कहते हैं। यह त्राटक नेत्रों के रोगों को नष्ट करने वाला है। इसे बड़े यत्न के साथ सम्भाल कर करो जैसे सोने की सन्दूक की सम्भाल की जाती है। इसके अभ्यास का स्थान नासिका के अग्र भाग या भौहों के मध्य भाग (आज्ञा चक्र) में होता है।

5. निउली - दोनों कन्धे नीचे करके, पीठ को सीधा करके, सावधान बैठना। प्राणों के बल द्वारा पेट को दायें बाएं ऊपर नीचे, इस तरह चलाना, जैसे मटकी में दही रिड़का जाता है।

6. कपालभाती – लुहार की धौंकनी की तरह रेचक, पूरक द्वारा प्राणों को बार-बार चढ़ाना-उतारना।

भुजंगा कुण्डलनी नाड़ी को कहते हैं जो सुखमना का दरवाज़ा बन्द रखती है जिसे प्राणों के अभ्यास द्वारा योगी लोग दूर हटाते हैं। भाठी-मालिश करके जीभ को इतनी पतली तथा लम्बी बना ले कि जो नेत्रों के भौहों को स्पर्श कर जाये फिर उसे दोबारा कंठ में प्रवेश करना जिसके परिणाम स्वरूप जीभ की नोक यानि अगला हिस्सा तालु के ऊपर जो छेद है, उसे बन्द कर दे, ऐसा करने से प्राणायाम से पैदा हुई जो गर्मी है, वह दूर हो जाती है। त्रिकुटी के बांई ओर योगियों द्वारा लगाये गये ध्यान में से अमृतमयी रस टपकता है, उस अमृमयी रस को रसना अनुभव करती है तथा रस योग शास्त्रों में अमरवारनी के नाम से प्रसिद्ध है।

रेचक – प्राण अन्दर से बाहर को निकालना, रेचक कहलाता है।

पूरक – बाहर से प्राणों को अन्दर ले जाने को पूरक कहते हैं।

कुम्भक – प्राणों को अन्दर ठहराना होता है। यह कई प्रकार का होता है यह प्राण मूलाधार चक्र में से होते हुए दशम द्वार तक ले जाते हैं। मूलाधार रीढ़ की हड्डी के आखिरी सिरे पर स्थित है। इसमें मूलाधार चक्र चार पंखुडियों के नाम व, श, ख, स है। इसका रंग पीला है। तीन कोने हैं, उनके नाम ज्ञान, इच्छा तथा क्रिया है। जहाँ कुण्डलनी नाड़ी है तथा काम रूप तख्त है जहाँ नाद, हंस, मन पैदा होते हैं। इस स्थान पर योगी गणेश जी का ध्यान लगाते हैं।

स्वाधिष्ठान चक्र – यह लाल रंग का, नीचे की ओर मुँह वाला, 6 पंखुडियों वाला कमल है। वहाँ पर शक्ति होने के कारण योगी ब्रह्मा जी का ध्यान लगाते हैं।

तीसरा मणिपूरक चक्र है जो नाभि में स्थित है। यह नीले रंग का उर्ध मुख दस पंखुड़ियों वाला कमल है। यहाँ पर योगी जन विष्णु जी का ध्यान लगाते हैं।

चौथा अनाहत चक्र 12 पत्तियों वाला, सुनहरी रंग का कमल हृदय में स्थित है। यहाँ पर शिवजी का ध्यान किया जाता है। पाँचवा विशुद्ध चक्र है, यह धूम्र वर्ण का उर्ध मुख 16 पंखुड़ियों वाला कमल कंठ में स्थित है। यहाँ जीव आत्मा का ध्यान किया जाता है।

छठा आज्ञा चक्र है, दोनों भौहों के मध्य दो पंखुड़ियों का उलटे मुख वाला चन्द्रमाँ जैसा सफेद कमल है। यहाँ निर्वाण परमात्मा का ध्यान किया जाता है। इन 6 चक्रों से ऊपर साँतवा दशम द्वार है। इसमें एक हज़ार दल का सफेद कमल है उसमें विद्या शक्ति सहित गुरू का ध्यान किया जाता है।

सो योग के आठ अंग हैं जिनमें से यम तथा नेम का विस्तार पूर्वक वर्णन पहले भी किया गया है। सूरज प्रकाश में इस प्रकार वर्णन है –

अंग पंचमो (चौथा) प्राणायाम। पूरक, कुंभक, रेचक, नाम॥ ६५॥
बाहर ते मन सुरति टिकावे। दहिने सुर ते प्राण चढावै।
खैंचति द्वादश मात्रहि जोइ। ओअंकार जपै तब सोइ॥ ६६॥
जिते प्राण अंतर ठहिरावै। 'कुंभक' तेतो नाम कहावै।
चौबिस मात्रा ओअंकारा। जाप करै तिह समैं उचारा॥ ६७॥
बावैं सुर सों करहि उतारा। द्वादश मात्रा जप ओअंकारा।

'रेचक' यांको नाम कहीजै। सनै सनै जो छोडन कीजै॥ ६८॥
तैसे ही बाएं ते दाएं। दाएं ते बाएं सु चढाए।
खुलै राहि त्रिकुटी इस ढारा। ठहिरहिं प्राण जि दसवें द्वारा॥ ६९॥
तबै अनाहद की धुनि खुलि है। दरशन परमजोति को मिलिहै।
झिलमिलकार महान प्रकाशा। जिहं पिख ह्वै विशेख सुखरासा॥ ७०॥
दोहरा॥ जिउं जिउं धरिही ध्यान को तिउं तिउं धुनि वधि जाइ।
खशट अंग है योग का 'ध्यान' धरति सुख पाइ॥ ७१॥

श्री गुर नानक प्रकाश, पृष्ठ - 535

छठा अंग प्रतिहार हुआ करता है किसी वस्तु के साथ लगाव न रखना, सभी कुछ गुरू अर्पण करना। अपनी इन्द्रियों को वश में करके अन्तर्मुख होकर नाम जपना, यदि मन इधर उधर भटकता है तो उसे बार-बार रोक कर एकाग्र करना। जब प्राणायाम द्वारा ब्रह्मरन्ध्र यानि दसवें द्वार में पहुँच कर प्राण 25 पल तक ठहर जाये, उसे प्रतिहार कहते हैं। यदि पाँच घड़ी तक रूक जाये तो धारना कहते हैं। यदि 6 घड़ी तक ठहर जाये तो ध्यान तथा 12 दिन तक ठहर जाये तो उसे समाधि कहते हैं।

इस सारी क्रिया को राज योग कहा जाता है पर गुरमत अनुसार रास्ता बहुत ही सरल है। गुरू महाराज जी फ़रमान करते हैं कि रसना से नाम जपा जाए, इससे यहाँ भी सुख मिलता है और दरगाह में भी स्थान मिलता है। जब नाम रसना द्वारा होता हुआ अजपा जाप द्वार भूलता ही नहीं है, उस समय हउमै का रोग दूर हो जाता है। अन्दर से हरि रस प्राप्त होकर तृष्णा मर जाती है -

रसना जपीऐ एकु नाम। ईहा सुखु आनंदु घना आगै जीअ कै संगि काम।
कटीऐ तेरा अहं रोगु। तूं गुर प्रसादि करि राज जोगु।
हरिरसु जिनि जनि चाखिआ। ता की त्रिसना लाथीआ॥ *पृष्ठ - 211*

गुरबाणी के अनुसार वहाँ पर अनेक प्रकार की ज्योतियों के दर्शन होते हैं उनके विवरण में जाने की जरूरत नहीं है। अनहद शब्दों के बहुत से भेद महापुरुषों ने बताए हैं जैसे कि पहले चटका शब्द है जिसके सुनने से रोमांच हो जाता है। दूसरा चन-चन का शब्द होता है जिसके सुनने से शरीर के सारे अंग प्रफुल्लित हो जाते हैं। तीसरा घन्टे का शब्द है जिसके सुनने से मन आदि अंगों में प्रेम प्रकट होता है। चौथा शंख का शब्द है, जिसके सुनने से मतवाले पुरुष की तरह सिर घूमने लगता है। पाँचवा वीणा का शब्द है जिसके सुनने से ब्रह्मा रन्ध्र (दशम द्वार) अमृत झरता है। छठा नृत्यकारी शब्द है जिसको सुनने से कंठगत अमृत का पान होता है। सातवां बांसुरी का शब्द है जिसके सुनने से शक्तिमान होता है अर्थात अन्तर्तात्मा यानि दूर के शब्दों का सुनना तथा दूर की वस्तु को देखना होता है। आठवां पखावज का शब्द है, जिसके सुनने से हर एक शरीर के अन्दर जो नाद है उसका सुनना तथा समझना आ जाता है। नौवां छोटी नफ़ीरी का शब्द है जिसे सुनने से सूक्ष्म तथा स्थूल हो जाना तथा जहाँ भी इच्छा हो वहीं चले जाने की समर्था पैदा हो जाती है। दसवां मेघ का शब्द है जिसे सुनने से ब्रह्मात्मा के परमात्मा के साक्षात्कार होने से ब्रह्म रूप हो जाता है। बहुत से ग्रन्थकार अनहद पाँच प्रकार का लिखते हैं। पहला तन्त्री आदि का शब्द है। दूसरा मृदंग आदि का, तीसरा घंटा चौथा घटा, पाँचवी नफीरी आदि का शब्द है गुरू साहिब ने -

पंच सबद धुनिकार धुनि तहि बाजै सबदु नीसाणु।
दीप लोअ पाताल तह खंड मंडल हैरानु॥ *पृष्ठ - 1291*

द्वारा पाँच शब्द ही बताए हैं। इसलिये, इस तरह सारे शरीरों में से शब्द पैदा हो जाते हैं। अन्दर चार बाणियां हैं जिनके नाम परा बाणी, पसन्ती बाणी, मधमा बाणी और बैखरी बाणी है। परा बाणी

नाभि में निवास करती है। पसन्ती बाणी संकल्प बन कर हृदय में रहती है। मधमा बाणी कंठ में निवास करती है और बैखरी मुँह में निवास करती है।

अनहद शब्द - ऐसा ग्रन्थों का मत है कि सिद्ध आसन में बैठकर। भृकुटी के मध्य ध्यान रखता हुआ चित्त को एकाग्र करता हुआ, दायें कान में होने वाला अन्तर नाद जिसे हर समय योगी सुनता है। जब अनहद शबद का अभ्यास किया जाता है तो वह बाहरी शब्दों को रोक लेता है। पहले पहल अभ्यास में नाना प्रकार के शब्द श्रवण करता है। अभ्यास के बढ़ जाने से सूक्ष्म से सूक्ष्म को भी सुन लेता है। पहले समुद्र की तरह बड़ी गुन्जार सुनाई देती है, फिर बादलों की तरह, फिर नगाड़ा, छैनां भी सुनाई प्रतीत होते हैं। जैसे घन्टा आदि जिसे घड़िआल की धुन कहते हैं। अन्त में सूक्ष्म शब्द कई प्रकार के सुनाई देते हैं तथा वीणा, बांसुरी तथा भेरी आदि के शब्द सुनता है। कभी बादलों की गर्जन के शब्द सुनाता है। इस शब्द में लगाये हुए मन को दूसरी ओर चलाएमान न करे। जहाँ-जहाँ भी नाद में पहले मन लग जाये वहीं पर ही स्थित हुआ मन, उसके साथ तय हो जाता है। बाहरी पदार्थों का विस्मरण करता हुआ मन नाद से इस तरह मिल जाता है जैसे दूध में पानी मिल जाता है। ऐसे नाद के साथ मिलकर जल्दी चेतन आकाश में लीन हो जाता है।

इस प्रकार विस्तार पूर्वक अनहद नाद के बारे में लिखा हुआ है परन्तु आत्म वस्तु नाद से बहुत दूर है। जब मन अति सूक्ष्म हो जाता है, उस समय आत्म रूप, ब्रह्म में स्थित हो जाया करता है। आत्म ज्ञान प्राप्त हो जाने से शक्ति मिलती है। आत्म ज्ञान (अप्रत्यक्ष) योग के बिना नहीं होता। योग करने से मन निर्मल हो जाता है तथा ज्ञान प्राप्त होकर मुक्ति प्राप्त हो जाती है।

सूरज प्रकाश के अनुसार गुरू महाराज जी ने फ़रमाया कि रेचक, पूरक, कुम्भक करते हुए त्रिकुटी का रास्ता खुल जाता है, जिसमें प्राण प्रवेश कर जाते हैं, परम ज्योति के दर्शन होते हैं। जहाँ पर झिलमिल करता महान प्रकाश होता है जिसे देखकर अति आनन्द आता है -

तबै अनाहद की धुनि खुलि है। दरशन परमजोति को मिलि है।
झिलमिलकार महान प्रकाशा। जिहं पिख ह्वै विशेख सुखरासा॥ ७०॥

श्री गुर नानक प्रकाश, पृष्ठ - 535

योग का छठा अंग ध्यान हुआ करता है ज्यों-ज्यों ध्यान के अन्दर गहरा जाता है, धुन बढ़ती चली जाती है। दो प्रकार का ध्यान हुआ करता है एक आन्तरिक दूसरा बाह्य। जो शब्द मन को जोड़ता है वह अन्तरींव ध्यान हुआ करता है इसके बारे में लिखा है -

दोहरा। जिउं जिउं धरिही ध्यान को तिउं तिउं धुनि वधि जाइ।
खशट अंग है योग का 'ध्यान' धरति सुख पाइ॥ ७१॥
चौपई। द्वै प्रकार को लखहु सु ध्याना। बाह्य का, अंत्रीक बखाना।
बिशन चतुरभुज को जो ध्याना। सो बाहर का जान, सुजाना॥ ७२॥
गुर के सबद विखै जो जोरा। नाभी, रिदै कि नासा ओरा।
कै भ्रू के कै दसवैं द्वारा। धरै अनाहद धुनि कै धारा॥ ७३॥
जबहि अनाहद धुनि खुलि जावहि। किधौं जोति को ध्यान लगावहि।
इह अंत्रिक मन महिं पहिचानहिं। सपतम अंग धारना मानहि॥ ७४॥

श्री गुर नानक प्रकाश, पृष्ठ - 535

सातवां अंग धारना मानी गई है। पर योग दर्शन अनुसार धारना, ध्यान से पहले आती है। जिस समय मनुष्य ध्यान लगाता है जो मन बार-बार बाहर की ओर भागता है। इसे बार-बार रोक कर गुरू

शब्द के साथ लगाना, धारना की क्रिया होती है।

सन्त महाराज जी बताया करते थे कि यदि मन अढ़ाई मिनट के लिये टिक जाये तो सुरत ध्यान में दाखिल हो जाती है। जब ध्यान आधे घंटे का लग जाये तो समाधि लग जाया करती है। गुरू के शब्द में जब मन को रोका है, उसका ध्यान चाहे नाभि पर है, चाहे नासिका के अग्र भाग पर है, चाहे भृकुटी के मध्य है, चाहे दशम द्वार में है, चाहे अनहद धुन में जुड़ा हुआ है, जब अनहद धुन खुल जाती है फिर ज्योति का ध्यान लगाये।

जब मन स्थिर होकर रूक जाये उसे समाधि कहा जाता है। समाधि दो प्रकार की होती है। एक निर्विकल्प समाधि, दूसरी सा-विकल्प समाधि। जब ध्याता, ध्यान तथा ध्येय एक हो जायें उसे निर्विकल्प समाधि कहते हैं। जब तक ध्याता ध्यान तथा ध्येय अलग-अलग प्रतीत होते हैं तो यह सा-विकल्प समाधि कहलाती है। जिसके चार भेद हैं। ऐसा फ़रमान है -

जब मन ठहिरहि होइ अडोला। तिह को नाम समाधि अडोला।
सो समाधि है उभै प्रकारी। निरविकलप साकलप उचारी॥ ७६॥
दोहरा॥ ध्याता, ध्यान, सु ध्येय, जो प्रिथक-प्रिथक इक जान।
सो 'सा विकलप' कहति हैं जोगी पुरख सुजान॥ ७७॥
चौपई॥ आप भिंन नहिं भिंन ध्याना। धे सभि ब्रह्म रूप करि जाना।
'निरवकलप' सो लखौ समाधि। ऐसे अशट अंग तन साधि॥ ७८॥
ब्रिति अरूढ योग महिं जौ लौ। लेय तांहि को रस शुभ तौ लौ।
उतरहि ब्रिति योग ते जबही। गुरू बाणी सों परचहि तबही॥ ७९॥

श्री गुर नानक प्रकाश, पृष्ठ - 535

इस तरह भी बहुत से लोगों का कल्याण हो जाता है जगत के बन्धनों की हानि हो जाती है।

गुरू महाराज जी ने कहा, ''राजन! यह राज योग काफी लम्बा रास्ता है। इसमें काफी मेहनत करनी पड़ती है इसे कोई कामिल (पहुँचा हुआ) गुरू ही करवा सकता है परन्तु यदि इसमें कोई विकार पैदा हो जाये तो शरीर का स्वास्थ्य बिगड़ जाता है और सारे साधन अधूरे रहने के कारण किसी मंजिल पर नहीं पहुँचा करता। इसलिये इसे चींटी मार्ग कहा है।

दूसरा जो है भक्ति योग का रास्ता है, उसके भी आठ अंग हुआ करते हैं। पहला यम होता है। अपने आपको अहम भाव में न आने देना तथा मन को नीचा रखना, अपने किसी भी गुण का अभिमान न करना यदि उसकी संसार में उपमा भी हो रही है तब भी अन्दर से यह समझे कि मैं नहीं कर रहा, मेरे अन्दर कोई भी गुण नहीं है -

प्रथमै 'यम' मन राखन नीवा। निज गुन ते निरमान सदीवा॥

श्री गुर नानक प्रकाश, पृष्ठ - 534

दूसरा नेम यह है कि महापुरुषों की संगत में जाये तथा संगत में बैठकर कथा कीर्तन सुने। यदि पढ़ने की शक्ति परमेश्वर ने दी हुई है तो नितनेम समयानुसार करे। सुनने की शक्ति का प्रयोग करके गुरबाणी दत्त-चित्त होकर सुने -

दूजो 'नेम' जाइ सतिसंगति। कथा कीरतन सुनि मिल पंगति॥ ८१॥
दोहरा॥ पढन शक्ति जे होवई पढै नेम करि सोइ।
सुणनि शक्ति जे होवई सुनै सु इक मन होइ॥ ८२॥श्री गुर नानक प्रकाश, पृष्ठ - 534

तीसरा अंग देश एकान्त का है। वह इस प्रकार है कि जो महापुरुषों के वचन हैं। ***'सभु गोबिंदु है सभु गुोबिंदु है। गोबिंद बिनु नही कोई॥' (पृष्ठ - 485) 'सभै घट रामु बोलै रामा बोलै। राम बिना को बोलै रे।' (पृष्ठ - 988)*** इन वचनों को मन में धारण करे। वाहिगुरू को हर घट में व्याप्त जाने हर समय उसका ध्यान हृदय में धारण करे। यह योग का तीसरा अंग है। जैसे कि -

चौपई॥ तीजो 'देश इकंत' बखानै। सरब विखै इक गोबिंद जानै।
और दूसरा लखई नांहि। एको बयापक सभि घट मांहि॥ ८३॥

श्री गुर नानक प्रकाश, पृष्ठ - 535

चौथा अंग आसन हुआ करता है। आसन चित्त की एकाग्रता को कहा जाता है। चित्त को परमात्मा के अन्दर टिकाए अधिक से अधिक समय चित्त के आसन पर बैठ कर वाहिगुरू जी को हर घट में व्यापक समझे।

पाँचवां अंग प्राणायाम है जिसके तीन भेद रेचक, पूरक तथा कुम्भक हैं। गुरू के वचन सुनकर, सारे वचन अन्दर ले जाये, इसे पूरक कहा जाता है, जो वचन सुने हैं, उनको अन्तरीव भाव हृदय में टिकाए, यह कुम्भक होता है। जो गुरू महाराज बताते हैं कि अवगुणों का परित्याग करो। उन्हें अपने अन्दर न आने दे। जो वचन सुने हैं उन्हें हृदय में पूरी श्रद्धा तथा विश्वास के साथ धारण कर ले। सतगुरू के जो वचन आते हैं जो विकारों को छोड़ने के लिये होते हैं, उन विकारों को छोड़ दे। इसे रेचक कहते हैं। इस प्रकार यह रेचक, पूरक, कुम्भक की क्रिया सहज ही होती रहती है। इसके बारे में ऐसा लिखा है कि -

चौथे 'आसन' समझहु चित्त। करहि गुबिंद विखै थिति ब्रिति।
पंचम 'प्राणायामं' चीनि। पूरक, कुंभक, रेचक तीन॥ ८४॥
दोहरा॥ 'पूरक' गुरु के बचन सुनि सभै करख करि लेय।
बच सुनि समझी वसतु जो रिदे सदा थिर केय॥ ८५॥
चौपई॥ कर अभिआस न तिहं परिहरै। सद ठहिरावन मन मैं करै।
'कुंभक' दूजो इसी प्रकारा। तीजो रेचक करों उचारा॥ ८६॥
सतिगुरु बचन जु तजिना कहा। तिहं तजि देय, होति सुख महां।
खशटम 'ध्यान' अंग सुनि जैसै। पढन सुनन गुरु बच जब बैसै॥ ८७॥
सबद अरथ महिं राखहि ध्याना। फुरन देय संकलप न आना॥

श्री गुर नानक प्रकाश, पृष्ठ - 536

गुरू के वचनों को पूरे ध्यान के साथ पढ़े तथा जो सिद्धान्त गुरू महाराज बताते हैं, हृदय में धारण करे। शब्द के अर्थों पर ध्यान दे, मन में कोई भी, किसी तरह का फुरना न आने दे। इसके बाद धारना बताते हैं यदि कोई फुरना आए, संकल्प आए, फिर मन को बार-बार रोक कर लगाये -

सपतम अहै 'धारना' अंगा। तिस सरूप सुनिये रुचि संगा॥ ८८॥
मन संकलप विखै जे जावहि। पुन मन रोकि शबद महिं लावहि।
जब मन टिकयो घटी दो चारा। तिहको नाम 'समाधि' उचारा॥

श्री गुर नानक प्रकाश, पृष्ठ - 536

आठवां अंग समाधि हुआ करता है। शबद में जब लीन हो जाए, फुरने आने बन्द हो जाएं, उसे समाधि कहा जाता है। समाधि को तन और मन साध कर जोड़े, यहाँ तक बढ़ा ले कि आठों पहर अन्दर शब्द चलता रहे। उस समय समाधि पूर्ण हुआ करती है। इसके बारे में फ़रमान है -

अषट जाम मन शबद विखै जब।

पूरन होति समाधि भले तब॥ ९०॥ *श्री गुर नानक प्रकाश, पृष्ठ - 536*

गुरू महाराज कहने लगे, ''राजन! कष्ट योग, जिसे राज योग कहते हैं, उसे तूने विस्तार पूर्वक सुन लिया, भक्ति योग भी सुन लिया है इसकी साधना के लिये बहुत समय चाहिये। कलयुग में इन साधनों को करना बहुत कठिन है। हर एक व्यक्ति ये साधन नहीं कर सकता परन्तु भक्त योग हर एक व्यक्ति कर सकता है, चाहे वह पढ़ा लिखा है, चाहे अनपढ़ है क्योंकि यह बहुत ही सरल मार्ग है -

भगति जोग इह जानिये कलि महिं पंथ सुखेन।
कशट जोग दुशतर अहै होइ न जेनंकेन॥ *श्री गुर नानक प्रकाश, पृष्ठ - 536*

गुरू महाराज जी ने अति विस्तारपूर्वक समझाया। राजा शिवनाभ हाथ जोड़कर गुरू महाराज जी के चरणों में मस्तक नवांया। शिवनाभ ने बिनती की, ''महाराज! मैं दोनों रास्तों का अभ्यास करना चाहता हूँ क्योंकि मन को निर्मल करने के यही दोनों रास्ते हैं। आप मुझ पर कृपा करो तथा मेरे से राजयोग तथा भक्ति योग दोनों करवा लो।'' राजा शिवनाभ ने प्रार्थना की, ''मैं आपकी देख-रेख में यह साधन करना चाहता हूँ।'' ऐसा लिखा हुआ मिलता है -

सुनि करि श्री गुर को उपदेशा। हाथ बंदि द्वै कहिति नरेशा।
'मन निरमल के मारग दोऊ। करुनाकरि बखशहु, दुख खोऊ॥ २॥
करहु सरब मम देश निहाला। तुम समान नहिं आन क्रिपाला।
करहु सदीव बास मुझ सदना। हरखों हेरि कमल सम बदना॥ ३॥
जिस प्रकार तुम कितने कोसा। चलि आए निज देनि भरोसा।
तिसी प्रकार रहिन अब कीजै। सरब देश उपदेशहि दीजै॥ ४॥

श्री गुर नानक प्रकाश, पृष्ठ - 537

उसकी प्रेम पूर्वक प्रार्थना को सुनकर गुरू महाराज जी ने उसे पाहुल देकर सिखी बख्श दी। राजा ने प्रार्थना की, ''महाराज! धर्मशाला में आप विराजमान होइये तथा सभी का उद्धार करो।'' धर्म ग्रन्थों में ऐसा लिखा मिलता है कि प्राण संगली का उच्चारण किया, 113 अध्याय रचे हैं। ऐसा भी कहा गया है कि जब कोई हमारा सिख, इस देश में आयेगा तुम उसे यह पोथी दे देना। गुरू महाराज जी ने वहाँ पर रूक कर राजा शिवनाभ को हठ योग तथा भक्ति योग दोनों परिपक्व करवा दिये। उस देश में सिखी फैल गई और सभी सतनाम वाहिगुरू का जाप करने लगे।

अब क्योंकि समय इजाज़त नहीं देता। अब सभी प्रेमी गुर सतोतर में बोलो। पहले आनन्द साहिब में बोलो।

8

शान...।
धंन श्री गुरू नानक देव जीओ महाराज।

डंडउति बंदन अनिक बार सरब कला समरथ।
डोलन ते राखहु प्रभू नानक दे करि हथ॥ *पृष्ठ- 256*

फिरत फिरत प्रभ आइआ परिआ तउ सरनाइ।
नानक की प्रभ बेनती अपनी भगती लाइ॥ *पृष्ठ - 289*

धारना - कोई नाउं ना जाणे मेरा,
गुरू जी सभ तेरी वडिआई है - 2, 2
सभ तेरी वडिआई है - 4, 2
कोई नाउं न जाणे मेरा,............ -2

तूं विसरहि तां सभु को लागू चीति आवहि तां सेवा।
अवरु न कोऊ दूजा सूझै साचे अलक अभेवा।
चीति आवै तां सदा दइआला लोगन किआ वेचारे।
बुरा भला कहु किस नो कहीऐ सगले जीअ तुम्हारे।
तेरी टेक तेरा आधारा हाथ देइ तूं राखहि।
जिसु जन ऊपरि तेरी किरपा तिस कउ बिपु न कोऊ भाखै।
ओहो सुखु ओहा वडिआई जो प्रभ जी मनि भाणी।
तूं दाना तूं सदा मिहरवाना नामु मिलै रंगु माणी।
तुधु आगै अरदासि हमारी जीउ पिंडु सभु तेरा।
कहु नानक सभ तेरी वडिआई कोई नाउ न जाणै मेरा॥ *पृष्ठ - 383*

धारना - कोई नाउ न जाणे मेरा
गुरू जी सभ तेरी वडिआई है - 2, 2
सभ तेरी वडिआई है - 4, 2
कोई नाउ न जाणे मेरा,....... - 2

धारना - मैनूं दसिओ सुहागणि सहीओ,
किवें तुसीं राविआ कंत पिआरा - 2, 2

साध संगत जी! गर्ज़ कर बोले, सतनाम श्री वाहिगुरू। दूर-दराज़ से मौसम खराब होने के बावजूद भी बहुत सारी संगत गुरू दरबार में हाज़िर हुई है। बेशक बरसात हो रही है, बाहर पानी ही पानी दिखाई दे रहा है पर फिर भी संकोच कर आराम से बैठे हो और सभी शबद में बोलने का यत्न किया करो। धारणा को समझा करो। सीधी-सीधी धारणाएं हैं, कोई मुश्किल बाणी नहीं है। बाणी मुश्किल हो तो भ्रम हो जाया करता है। आम प्रयोग में आने वाली बाते हैं।

पिछले सात दीवानों में लगातार एक प्रश्न चल रहा है। गुरू नानक पातशाह के समय एक गुरसिख मनमुख नाम का लंका में व्यापार करने गया। उसका उपदेश सुनकर वहाँ का राजा जो शिवनाभ था, वह प्रेमी बन गया। गुरू नानक पातशाह के साथ इतना प्यार किया, इतना आकर्षित हुआ कि प्रेम

वश होकर पातशाह पंजाब से चल कर धीरे-धीरे उस राजा की राजधानी पहुँचते हैं और वहाँ पर राजा शिवनाभ ने आपकी बड़ी परीक्षा ली। जब अच्छी तरह से उसका मन मान गया कि आप वास्तव में गुरू नानक पातशाह हैं उस समय फिर उसने अपना तन, मन और धन सभी कुछ गुरू के अर्पण कर दिया। हमारी तथा गुरू की क्यों नहीं बनती? क्योंकि हम अपने बनावटी प्यार से Reservation (आरक्षण) रखते हैं, पनाह रखते हैं, दूरी रखते हैं, अन्तर रखते हैं। गुरू से लेते सभी कुछ हैं कि यह अमुक चीज़ भी मेरी हो जाये, वह भी हो जाये, पर गुरू के साथ प्यार नहीं करते। संसार के प्यार की रीत यह है कि प्यार करने वाला कभी भी कुछ लिया नहीं करता, दिया करता है। प्यार का स्वभाव मांगना नहीं है - प्यार का स्वभाव है कुर्बानी करते चले जाना। उस समय गुरू पर जो श्रद्धा होती है, गुरू अपने प्यारे के अन्दर प्रवेश करना शुरू कर देता है फिर अपने जैसा ही बना लिया करता है। कोई भेद नहीं रखता। हम इस बात की मनमर्ज़ी में चलते हैं, हमारी अपनी हिकमत अपनी दलील, अपना तर्क है कि जो कुछ भी हम करते हैं वह हम स्वंय करते हैं। महाराज कहते हैं जो गुरू अर्पित व्यक्ति होता है वह ऐसा नहीं सोचता। वह अपने आपा भाव (मैं मेरी) को छोड़ देता है -

आपु छडि सदा रहै परणै गुर बिनु अवरु न जाणै कोए।
कहै नानकु सुणहु संतहु सो सिखु सनमुखु होए॥ पृष्ठ - 919

जो अपना आपा गुरू के अर्पित कर देता है वह तो यह कहता है कि तेरी मर्ज़ी है, दुख भी तेरी मर्ज़ी में आता है, सुख भी तेरी मर्ज़ी में आता है, निन्दा भी तेरी रज़ा में आती है, स्तुति भी तेरी रज़ा में आती है। जैसे तुझे रूचता है, मुझे मन्जूर है -

भावै धीरक भावै धके एक वडाई देइ॥ पृष्ठ - 349

बेशक धक्के मार कर मुझे निकालता चला जा जब चाहे मुझे प्यार कर ले। यह सभी कुछ तेरी रज़ा में ही है। यदि धक्के भी मारेगा तो भी मैं समझूगां मैं तेरी नज़रों में हूँ। मुझे इतना ही नशा बहुत है कि तेरी निगाह में तो आ गया, तभी धक्के मरवाये हैं। यदि प्रशंसा करवा देगा, प्यार करेगा तो भी तेरा बडप्पन है, दोनों बातें मन्जूर हैं क्योंकि -

पहला मरणु कबूलि जीवण की छडि आस।
होहु सभना की रेणुका तउ आउ हमारै पासि॥ पृष्ठ - 1102

इस प्रकार राजा शिवनाभ ने, अपने आपको अर्पण कर दिया -

मनु बेचै सतिगुर कै पासि। तिसु सेवक के कारज रासि।। पृष्ठ - 286

जो अपना मन बेच देता है, गुरू उसके सारे कार्य सिद्ध करता है -

अचिंत कंम करहि प्रभ तिन के जिन हरि का नामु पिआरा।। पृष्ठ - 638

जिसका नाम के साथ प्यार पड़ जाता है, गुरू उनके काम स्वंय करता है और गुरू का सिख, गुरू के बिना जीवित नहीं रहा करता -

झखड़ु झागी मीहु वरसै भी गुरु देखण जाई।
समुंदु सागरु होवै बहु खारा गुरसिखु लंघि गुर पहि जाई।
जिउ प्राणी जल बिनु है मरता तिउ सिखु गुर बिनु मरि जाई॥ पृष्ठ - 757

क्योंकि यह तो प्यार की बात है। मछली का प्यार पानी से हो गया; एक सैकिण्ड के लिये भी बाहर निकले, तड़पना शुरू कर देती है, जीवित नहीं रहती। इसी प्रकार जो गुरू का सिख है, वह गुरू के हुक्म में, रज़ा में चलता है, अपना आपा गुरू को सौंप देता है। वह गुरू बिना रह नहीं सकता।

अतः उस समय राजा शिवनाभ ने गुरू नानक पातशाह के पास प्रार्थना की, ''पातशाह! मुझे वह रास्ता बताओ जिससे मैं आपसे बिछड़ूं ना, अपना बिछोड़ा न हो, वियोग न हो।''

कई प्रेमियों का ख्याल होता है कि सन्तों के पास रहें तो उनका बिछौड़ा नहीं हुआ करता लेकिन यह बात यथार्थ नहीं है। सन्त जिस रूहानी मंज़िल के वासी हैं, यदि उसी रूहानी उच्चता को प्राप्त कर ले फिर तो विछौड़ा नहीं होता। यदि यह समझ ले कि सन्त शरीर होता है तो शरीर तो किसी का भी नहीं रहा करता। शरीर तो प्रकृति के पाँच तत्वों - मिट्टी, पानी, अग्नि, वायु तथा आकाश से बनता है। इसकी तीन अवस्थाएं हैं। बाल, जवानी और बुढ़ापा, इसके पश्चात मौत अवश्य आती है। जीव आत्मा सभी छोड़कर आवागमन के चक्कर में घूमती हुई बिछुड़ जाया करती है। तब वियोग अवश्य हुआ करता है। कबीर साहिब ने पूछा, ''महाराज! आप कहाँ रहते हैं? कम-से-कम बता तो दें?'' कबीर साहिब कहते हैं, जहाँ हम रहते हैं, तुझे पता नहीं हैं। हम तो -

कबीर गंग जमुन के अंतरे सहज सुंन के घाट।
तहा कबीरै मटु कीआ खोजन मुनि जन बाट॥ *पृष्ठ - 1372*

जहाँ गंगा और यमुना का मिलाप होता है और सुन्न का घाट है, अफ़ूर अवस्था है, जहाँ इड़ा, पिंगला, सुखमना से परे दशम द्वार में जहाँ अफ़ूर अवस्था है, जिसे सुन्न मण्डल कहते हैं, उस घाट को पार करके हमने निर्मल ब्रह्म में प्रवेश कर लिया है। वहाँ पर हमारा निवास है तथा उसी के लिये मुनि भी देख रहे हैं, ऋषि भी देखते हैं परन्तु पता नहीं चलता क्योंकि उस रास्ते को कोई जानता नहीं है; यदि जान जाये तो हमारे साथ मिलाप हो जाये।

गुरू नानक पातशाह कहने लगे, ''प्यारे! सन्तों के साथ गुरूओं के साथ मिलाप इस शरीर में नहीं हुआ करता। जहाँ सन्त रहते हैं, यदि उसकी जाँच आ जाये फिर विछौड़ा कभी नहीं हुआ करता। जहाँ सन्त रहते हैं उसे 'निज घरु' कहते हैं चौथा पद कहते हैं। 'थिरु घरु' कहते हैं, सो दरु कहते हैं -

सो दरु केहा सो घरु केहा जितु बहि सरब समाले॥ *पृष्ठ - 6*

उस घर में यदि चले जाएं तो सन्तों के साथ कभी बिछौड़ा नहीं होता। यदि प्रकृति में रहे, माया में रहे, आखों से देखने का यत्न करें तो हमें लाभ नहीं हुआ करता। गुरू नानक पातशाह कहने लगे, ''राजन! जहाँ हम रहते हैं, वहाँ तक पहुँचने के अनेक रास्ते हैं।'' अतः गुरू नानक पातशाह ने हठ के बल पर जो हठ योग करते थे, तप करते थे धूनियां रमाते थे, उलटे लटकते थे, घास फूंस खाकर गुज़ारा करते थे, पत्थरों की सेजें बनाकर सोते थे, आक का आहार करते थे, उस रास्ते के बारे में बताया कि बहुत ही कठिन मार्ग है, चींटी जैसा है। प्यारे! बड़ी मुश्किल से पहुँचता है इस रास्ते से पहुँचने के लिये सैकड़ों जन्म लग जाते हैं। दूसरा आपने कृपा करके फ़रमान किया कि इसके पश्चात एक रास्ता 'कष्ट योग' है। यह भी हठ योग ही है। कष्ट योग (राज योग) के सारे भेद बताए। यह भी बताया कि इस रास्ते से भी पहुँचना कुछ कठिन है, आराम से नहीं पहुँचा जा सकता। पिछले दीवान में आपने श्रवण किया था कि बाबा फरीद का शरीर सूख गया, कौओं ने मुर्दा समझ कर, उसके शरीर पर चोंचे मारनी शुरू कर दीं लेकिन परमेश्वर नहीं मिला क्योंकि रास्ता गलत था, लम्बा रास्ता था फिर उसे ज्ञान हुआ प्यारे! पहले तो तू यह देख कि जिसे तू मिलना चाहता है, वह रहता कहाँ है? वह जंगलों में नहीं है, पहाड़ों की बर्फीली चोटियों पर भी नहीं रहता, वह तो हृदय में वास करता है, हर जगह, हर के अन्दर बाहर वास करता है -

फरीदा जंगलु जंगलु किआ भवहि वणि कंडा मोड़ेहि।

वसी रबु हिआलीऐ जंगलु किआ ढूढेहि॥ ***पृष्ठ - 1378***

वह तो तेरे अन्दर रहता है तेरे साथ रहता है तू बाहर ढूँढता फिर रहा है। इन नेत्रों से वह दिखाई नहीं देता वे नेत्र और हुआ करते हैं। वे तेरे अन्दर झांकने वाले नेत्र हैं। इन कानों से उसका शबद नहीं सुनेगा। यह तो बाहरी आवाज़ आकाश द्वारा सुनते हैं लेकिन जो आन्तरिक आवाज़ है उसे सुनने वाले कान और हैं, उन्हें दिव्य कर्ण कहते हैं। वे कान यदि तुझे प्राप्त हो जायें फिर तू उसकी बात भी सुन सकेगा। वह रसना और है जो उसका स्वाद चखती है। महान रस जिसे अमृत रस कहते हैं, उसका आनन्द लूटते हैं, वह दिव्य रसना है।

जो उसकी सुगन्धि लेती है, उसे दिव्य नासिका कहते हैं। जो इसका देह स्पर्श करता है, वह दिव्य स्पर्श तेरे अन्दर ही है। इन्द्रियों का स्पर्श तुझे अन्धेरे में ले जायेगा तू इसे जानने की कोशिश कर। अतः गुरू महाराज जी ने बड़े विस्तार के साथ इस वस्तु के बारे में उसे जानकारी दी, फिर आसान सा रास्ता बताया। कहने लगे, ''राजन! वह रास्ता और है। जो इस प्रकार है, जैसे किसी वृक्ष पर फल लगा हो और पन्छी को पता चल जाये, वह उड़ कर उस वृक्ष पर जा बैठता है। चींटी कितनी देर में जाकर पहुँचेगी? और पन्छी एक दम उड़कर पहुँच जाता है। पन्छी का जो रास्ता है, वह भक्ति मार्ग है। उसके बारे में आप फ़रमान करते हैं कि जिस प्रकार अन्य योगों की रहतें (नियमावली) बताई हैं, इसके अन्दर भी जिसे 'भक्ति योग' कहते हैं। 100 वर्षों तक तप करो तपस्या साधो, धूनियां रमाओ, सौ वर्षों तक जलधारे किये, पानी में खड़ा रहे, उलटा लटका रहे; यदि एक पल भर के लिये भक्ति कर ले, बन्दगी, ज़िआरत कर ले, एक घड़ी (साढ़े 24 मिनट) 100 साल के तप, साधना के फल के बराबर हो जाया करती है। कितना आसान रास्ता है। जहाँ सौ साल में पहुँचता है, वहाँ इस मार्ग से साढ़े चौबीस मिनट में पहुँच जाता है। अतः हमारे कल्याण के लिये गुरू नानक साहिब ने बहुत ही सरल रास्ता बताया है और फ़रमान किया है कि पहली बात तो मन में यह याद रखो कि अभिमान नहीं करना, किसी गुण का गुमान नहीं करना कि मैं कीर्तन करता हूँ, मैं व्याख्यान करता हूँ, मैं बहुत पढ़ा लिखा हूँ, मेरे पास पैसा बहुत है। यह तो अन्धकार है, अभिमान के अन्दर रहना है। कुछ लोगों में अभिमान होता है कि मेरे अन्दर शक्तियाँ हैं, मैं दूसरे के दिल की बात जान लेता हूँ, किसी को प्रेरित कर लेना यह अभिमान भी खराब है। कुछ एक को इससे भी ज्यादा अभिमान होता है कि मुझे आन्तरिक ज्ञान प्राप्त है। महाराज कहते हैं कि किसी भी प्रकार का अभिमान नहीं करना – ***'होहु सभन की रेणुका तउ आउ हमारै पासि।'*** अपने आपको अति विनम्र समझकर मेरे पास आ। दूसरा यह है कि सत्संग में जाकर चित्त को एकाग्र करो। जब तक चित्त एकाग्र नहीं होता, वृत्तियां इधर-ऊधर भागी फिरती हैं, बात सिरे नहीं चढ़ती। एक बर्तन है, अमृत की धारा उसके अन्दर पड़ रही है – बोतल में। यदि बोतल हिल जाये तो उसमें अमृत कैसे पड़ेगा? वह तो बिखर जायेगा। इसलिये चित्त की एकाग्रता हर हालत में जरूरी है। इस तरह से फ़रमान किया –

धारना - जस करो वाहिगुरू दा, पिआरिओ,
चित नूं इकागर करके - 2, 2

प्रभ की उसतति करहु संत मीत। सावधान एकागर चीत। ***पृष्ठ - 295***

यदि कुत्ता कभी बान्धा न हो, उसे बान्ध कर देख लो, वह जंजीर को ही काटता रहेगा। पशु ढोर को बान्ध दो तो वह खूंटे को तोड़ेगा कि उसे क्यों बान्ध दिया? इसी तरह मन का स्वभाव है, यह भी टिकता नहीं है। उस समय ऐसी-ऐसी बातें याद करेगा कि मनुष्य की वृत्ति को लेकर चल पड़ेगा,

इससे उसका कोई काम भी सिद्ध नहीं होगा। सो महाराज जी कहते हैं, ''भाई! परमेश्वर की ओर चित्त लगा कर रखना। फिर गुरू का उपदेश सुनकर हृदय में धारण करना।'' गुरू महाराज कहते हैं –

निंदा भली किसै की नाही मनमुख मुगध करंनि।
मुह काले तिन निंदका नरके घोरि पवंनि॥ पृष्ठ – 755

निन्दा सुननी और निन्दा करनी दो तरीके होते हैं। एक आदमी निन्दा करता है। एक व्यक्ति ऐसी बातें करता है कि दूसरे के मुख से दूसरों की निन्दा करवा कर फिर खुश होता है कि मैंने इससे निन्दा करवा ली। दोनों ही एक समान भागीदार हैं। कितना बड़ा दोष लगता है? कहते हैं, ***'मुह काले तिन निंदका नरके घोरि पवंनि॥' पृष्ठ – 755*** घोर नरकों में वास होता है। फिर कहता है कि मैंने तो निन्दा नहीं की। दरगाह में जब लेखा जोखा देता है, वहाँ फिर कहता है मैंने तो निन्दा नहीं की, पर मुझ से जानबूझ कर करवाई गई है। दूसरों के अवगुण ढूँढता है। देख कर अनदेखा करना, अवगुण देखकर आंखे बन्द कर लेना, गुरू घर में ऐसी बात नहीं है। कोई बात नहीं भाई, सभी मनुष्य गलती करके भूल जाया करते हैं –

भुलण अंदरि सभु को अभुल गुरू करतारु।। पृष्ठ – 61

यदि कुछ नहीं भूलता तो केवल वाहिगुरू नहीं भूलता, बाकी तो सारा संसार भूलों में, भ्रमों में पड़ा हुआ है। इसने भूलना ही है। दुनियां में ऐसा कौन सा व्यक्ति है जिसमें दोष, अवगुण नहीं हैं, जो दूसरों के अवगुण देखता है, चितवता है, वह पहले अपने हृदय में देखे कि उसके अन्दर कितने अवगुण हैं? महाराज कहते हैं, ऐसे नहीं करना प्यारे! गुरू का उपदेश सुनो –

करन न सुनै काहू की निंदा॥ पृष्ठ – 274

बन्द कर दो निन्दा करनी और सुननी –

पर त्रिअ रूपु न पेखै नेत्र॥ पृष्ठ – 274

नेत्रों द्वारा किसी को भी कु-दृष्टि से मत देखो। इसी तरह हाथों से बुरा काम मत करो, पैरों से बुरे स्थान पर मत चल कर जाओ, अच्छे स्थान पर जाओ, सत्संग में जाओ। हाथों से दूसरों की सेवा करने का काम लो। जब इस प्रकार करेंगे तब हमारा मन तथा चित्त स्थिर हो जायेगा फिर इस तरह से फ़रमान करते हैं कि मन के संकल्पों को रोककर नाम में लगाओ। सतगुरू के शबद में ध्यान रखना तथा उसे विचार कर हर समय याद रखना कि महाराज तो इस तरह कहते हैं, मैंने यह काम नहीं करना। जब शबद में मन स्थिर हो जाये, थोड़ा सा भी टिक जाये – गुरू ग्रन्थ साहिब का पाठ करता है, नितनेम करता है, भजन करता है, मन ने कोई भी फुरना नहीं किया, यदि अढ़ाई मिनट तक कोई फुरना नहीं आता तो उसे छोटी समाधि कहते हैं, यह एक धारना कहलाती है, ध्यान लग गया, इसे ध्यान कहते हैं। यदि साढ़े 24 मिनट मन टिक जाये तो वह समाधि हुआ करती है। इस तरह से महाराज जी कहते हैं, देखो, कितना सरल मार्ग है। इसके अन्दर सुखों का फल प्राप्त होता है तथा राज योग जैसा रस मिल जाता है तथा आनन्द लूटता है। इस तरह फ़रमान करते हैं –

धारना – गुरमुख सुख फल पाइआ जी,
राज जोग रस रलीआं माणे – 2, 2

देखि पराईआ चंगीआ मावाँ भैणा धीआँ जाणै।
उसु सूअरु उस गाइ है पर धन हिंदू मुसलमाणै।
पुत्र कलत्र कुटंबु देखि मोहे मोहि न धोहि धिढाणै।

उसतति निंदा कंनि सुणि आपहु बुरा न आखि वखाणै।
वड परताप न आपु गणि करि अहंमेउ न किसै रञाणै।
गुरमुखि सुख फल पाइआ राजु जोगु रस रलीआ माणै।
साध संगति विटहु कुरबाणै॥ भाई गुरदास जी, वार 29/11

गुरमुख का जो व्यवहार है उसके बारे में फ़रमान करते हैं कि ***'देखि पराईआ चंगीआ मावाँ भैणा धीआँ जाणै। उस सूअरु उसु गाइ।'*** जितने मुसलमान हैं, वे सारे सूअर नहीं खाते। हिन्दू कहते हैं हमें सौगन्ध है राय (राम) की, हमने गाय नहीं खानी। इस तरह से ***'पर धन हिंदू मुसलमाणै।'*** चाहे हिन्दू है, चाहे मुसलमान, चाहे सिख है, उसे सूअर तथा गाय का खाना पराये धन को खाने के समान कहा गया है। पुत्र-कुपत्र, रिश्तेदारों के परिवारों के मोह देखकर उनकी ओर आकर्षित न होता चला जाये, उनमें आसक्त न हो जाये। कर्तव्य पूरा करे, परन्तु उनमें लिप्त न हो, अपने आपको बचाकर रखे। संसार स्तुति करता है कि वह तो बहुत बड़ा विद्वान है लेकिन बात तब बनेगी यदि उसे सुने ही न क्योंकि स्तुति प्रशंसा भी फंसा लेती है। यदि कोई निन्दा करे तो कहो कि हाँ जी, मैं ऐसी ही हूँ जैसा मुझे कहते हैं क्योंकि गुरू के साथ सांझ तभी पड़ती है यदि ऐसा समझे ***'कबीर सभ ते हम बुरे हम तजि भलो सभु कोई॥' (पृष्ठ - 1364)*** मुझे छोड़कर सारा संसार भले लोगों का है। ***'जिनि ऐसा करि बूझिआ मीतु हमारा सोइ।' (पृष्ठ - 1364)*** जिसने ऐसी बात जान ली, जिसे ऐसा ज्ञान हो गया कि ***'हम नहीं चंगे बुरा नहीं कोइ।' (पृष्ठ - 728)*** गुरू नानक देव जी कहते हैं, वह हमारा मित्र है, भाई। यदि मित्रों के साथ चलना है, उनके साथ मिलना है तो अपने आपको बहुत अच्छा मत समझो। बुरों में रहो, गरीबों में रहो –

नीचा अंदरि नीच जाति नीची हू अति नीचु।
नानकु तिन कै संगि साथि वडिआ सिउ किआ रीस। पृष्ठ - 15

गुरू नानक देव जी फ़रमान करते हैं प्यारे! जो छोटे से भी छोटे हैं, मैं उनमें से हूँ, मैं उनके हृदयों में रहता हूँ। बड़े लोगों के हृदयों में तो अहंकार है, किसी को ज़मीन जायदाद का अभिमान है, किसी को धन का अहंकार है, किसी को अपनी ताकत का अभिमान है किसी को विद्या का गर्व है, तो किसी को राजसी शक्ति का अभिमान है। कहते हैं, वहाँ तो हमारे लिये जगह ही नहीं है। हमारे लिये यदि कहीं जगह है तो गरीबों के हृदय में है, हम वहाँ रहते हैं। अत: जिसने हमारे पास रहना है, वह अपने आपको नीच समझ कर रहे, ऊँचा महान, बड़ा न बने। ***'उसतति निंदा दोऊ बिबरजित तजहु मानु अभिमाना।' (पृष्ठ - 1123)*** अपने आपको जताये ना, दिखाये ना कि मैं कुछ हूँ। हऊमैं में आकर दूसरों को तंग न करे। ऐसे न कहे। इसके विपरीत दिल से ही गरीबी धारण करके, विनम्रता धारण कर ले। ***'गुरमति सुख फल पाइआ राज जोग रस रलीआ माणे'*** महाराज कहते हैं, गुरमुखों का यह रास्ता कितना सरल है। इस रास्ते को भक्ति योग का रास्ता कहते हैं क्योंकि जब तक भक्ति नहीं करता, तब तक परमेश्वर के साथ मिलाप नहीं हुआ करता। रास्ते तो बहुत हैं पर यह रास्ता सबसे सरल है। यदि धन्ना ने भक्ति की, थोड़ी सी देर में ही परमेश्वर आ गया। फिर भोजन खिलाता है, लस्सी लेकर आता है कहता है, ''हे प्रभु! आप खाइये।'' कितना समय लगा, सुबह का बैठा, दोपहर तक। परमेश्वर ने स्वंय प्रत्यक्ष प्रकट होकर, उसकी लस्सी भी पी और रोटी भी खाई। नामदेव ने दूध पिला दिया। नामदेव ने भक्ति की। छप्पर जल गया, परमेश्वर ने स्वंय आकर उसका छप्पर बना दिया क्योंकि वह भक्त का काम करता है। परमेश्वर को प्यार चाहिये, उसे भूख है, प्रेम की। 'गोबिंद भाउ भगति दा भुखा' –

साचु कहौं सुन लेहु सभै जिनि प्रेम कीओ तिन ही प्रभ पाइओ॥

गुरू चरणों का आसरा ले ले। जब तक गुरू की सेवा नहीं करता तब तक महाराज कहते हैं,

भक्ति नहीं हुआ करती। गुरू की सेवा में रह कर ही भक्ति हुआ करती है –

अंतरि अगनि न गुर बिनु बूझै बाहरि पूअर तापै॥ पृष्ठ – 1013

अन्दर तो तृष्णा की आग लगी हुई है और बाहर बैठकर धूनियां रमाता है। कहते हैं यदि गुरू नहीं मिला तो यह आग नहीं बुझेगी –

गुर सेवा बिनु भगति न होवी किउकरि चीनसि आपै॥ पृष्ठ – 1013

इसे कैसे पता चले कि मैं कौन हूँ? कैसे पहुँचेगा वहाँ तक? इस प्रकार महाराज जी कहते हैं कि भक्ति नौ प्रकार की हुआ करती है। पहली भक्ति को श्रवण भक्ति कहते हैं, जैसे अब आप बैठे हुए हैं, वचन बोले जा रहे हैं, शब्द बोले जा रहे हैं, आप बैठे हुए सुन रहे हो। यह भक्ति पहले बाहर से आया करती है तथा इसके बारे में प्रार्थनाएं करते हैं, ''हे प्रभु! मैंने तेरा यश सुना परन्तु मेरे दो कान कम हैं, अतः मुझे करोड़ों कान दे दे।''

एक ऐसा महात्मा भी हुआ है जिसे परमेश्वर ने करोड़ कान भी दिये। वह कहता है, ''महाराज! मैं तेरा बहुत यश सुनना चाहता हूँ अतः मुझे करोड़ों कान दे दे –

कोटि करन दीजहि प्रभ प्रीतम हरि गुण सुणीअहि अबिनासी राम॥ पृष्ठ – 780

क्योंकि प्यास थी। गुण सुनते-सुनते पेट नहीं भरता। सौ करोड़ कान भी दे दिये। कहता है, महाराज! और दे दो। महाराज कहते हैं, अब तो मेरे अन्दर ही मिल जा क्योंकि मुझ में और तुझ में कोई अन्तर ही नहीं रहा –

सुणि सुणि इहु मनु निरमलु होवै कटीऐ काल की फासी राम॥ पृष्ठ – 781

दूसरी हुआ करती है – कीर्तन भक्ति। चित्त को एकाग्र करके, हरियश करना और इसका फल कितना होता है, महाराज जी कहते हैं –

कलिजुग महि कीरतनु परधाना। गुरमुखि जपीऐ लाइ धिआना।
आपि तरै सगले कुल तारे हरि दरगह पति सिउ जाइदा॥ पृष्ठ – 1076

कीर्तन भक्ति मन को टिका दिया करती है। श्रेष्ठ साधन है, सभी भक्तियों का इसे सरदार माना गया है। अतः महाराज कहते हैं, ''हे प्रभु! मैं तेरा कीर्तन करना है अतः तू मुझे लाख जिभ्याएं दे दे –

लाख जिहवा देहु मेरे पिआरे मुखु हरि आराधे मेरा पाम॥ पृष्ठ – 780

मेरा मुख तेरा नाम जपे, मुझे लाख जीभें दे दे –

इकदू जीभौ लख होहि लख होवहि लख वीस॥ पृष्ठ – 7

यह संख्या खरबों तक पहुँच जाती है कि मुझे इतनी जिभ्याएं दे दे ताकि मैं तेरा नाम जपता रहूँ।

तीसरी 'सिमरण भक्ति' हुआ करती है। सिमरण का अर्थ होता है – याद रखना। हर समय याद में रहना। इसके बारे में गुरबाणी में बहुत ही ज़ोर दिया गया है –

धारना – सिमर पिआरे नूं,
सिमरउ सिमर सिमर सुख पावउ – 2, 2
सिमरउ सिमर सिमर सुख पावउ – 2, 2
सिमर पिआरे नूं सिमरउ,........ –2

सिमरउ सिमरि सिमरि सुखु पावउ। कलि कलेस तन माहि मिटावउ॥ पृष्ठ – 262

वाहिगुरू को याद रखने से सारे क्लेश मिट जाते हैं –

प्रभ कै सिमरनि गरभि न बसै। प्रभ कै सिमरनि दूखु जमु नसै।
प्रभ कै सिमरनि कालु परहरै। प्रभ कै सिमरनि दुसमनु टरै।
प्रभ सिमरत कछु बिघनु न लागै। प्रभ कै सिमरनि अनदिनु जागै॥

महाराज कहते हैं, दिन रात माया के बिना होश नहीं आया करती, जब तक वाहिगुरू का नाम हृदय में नहीं बसता। इसलिये महाराज जी कहते हैं – भूलें मत –

हरि हरि कबहू न मनहु बिसारे।
ईहा ऊहा सरब सुखदाता सगल घटा प्रतिपारे॥ *पृष्ठ - 210*

फिर यहाँ भी और दरगाह (परलोक) में भी सुखी होगा। वाहिगुरू को एक पल भर के लिये भी नहीं भूलना। जब भूल जाता है फिर क्या होता है? उस समय –

आखा जीवा विसरै मरि जाउ॥ *पृष्ठ - 9*

सो जीविआ जिसु मनि वसिआ सोइ। नानक अवरु न जीवै कोइ॥ *पृष्ठ - 142*

जीवित वही है, जिसे परमेश्वर नहीं भूलता। जिसे प्रभु भूल जाता है, वह जीवित नहीं हुआ करता, वह तो मुर्दा होता है –

अति सुंदर कुलीन चतुर मुखि डिआनी धनवंत।
मिरतक कहीअहि नानका जिह प्रीति नही भगवंत॥ *पृष्ठ - 253*

अतः सिमरण कहते हैं – याद को। याद कैसे पक्की होती है। गुरू महाराज ने सदा याद परिपक्व करने के लिये नाम का जपना, नाम का ध्यान, नाम का कीर्तन, नाम की विचार, ये सभी गुरमुख को धीरे-धीरे प्राप्त हुआ करते हैं। इरादा – दृढ़ होना चाहिए।

इसके पश्चात महाराज जी कहते हैं 'पाद सेवन' भक्ति हुआ करती है – चरणों की सेवा करना–

हरि चरण कमल मकरंद लोभित मनो अनदिनो मोहि आही पिआसा॥ *पृष्ठ - 663*

कहता है, ''हमें तो प्यास लगी हुई है हरि चरणों कमलों की। इसके पश्चात अर्चना भक्ति हुआ करती है–

तेरा नामु करी चनणाठीआ जे मनु उरसा होइ।
करणी कुंगू जे रलै घट अंदरि पूजा होइ।। *पृष्ठ - 489*

फिर वन्दना भक्ति आ जाती है।

डंडउति बंदन अनिक बार सरब कला समरथ॥ *पृष्ठ - 256*

बार-बार बन्दना करना –

नमसकार डंडउति बंदना अनिक बार जाउ बारै॥ *पृष्ठ - 820*

इसके पश्चात 'मित्र भक्ति' हुआ करती है वाहिगुरू को मित्र कहना –

मित्र पिआरे नूं हाल मुरीदां दा कहिणा।
तुधु बिन रोग रजाईआ दा ओडण नागु निवासा दे रहिणा॥

गुरू दशमेश पातशाह मित्र को सन्देशा दे रहे हैं। माछीवाड़े के जंगलों में टिन्ड का सिराहना बना हुआ है, वर्षा होने के कारण धरती गीली हो चुकी है, पौष का महीना है, ऊपर ओढ़ने के लिये वस्त्र भी कोई नहीं है, पैरों में कांटे चुभे हुए हैं, कोई ऐसा स्थान नहीं जहाँ पैरों में कांटे न चुभे हों, खून जमा पड़ा है उस समय महाराज जी अपने मित्र की याद में सन्देशा कैसा देते हैं? हमारे नेत्र खुल

जाते हैं, सुनकर और पढ़कर। प्रभु को उलाहना नहीं देते, हे प्रभु! तूने यह क्या किया मेरे बच्चे कहाँ चले गये? आनन्दपुर साहिब कहाँ चला गया? ऐसी बात नहीं है। वे कहते हैं, ''हे प्रभु! तू मुझे मन से मत भूल जाना। यदि तू मेरे मन से नहीं भूलता तो यह जो स्थान है जहाँ मैं लेटा हुआ है, यह खेडियों (परमानन्द) से भी बहुत अच्छा है। खेड़े तो भट्टियों की तरह लगते हैं पर यह जगह मुझे बहुत अच्छी लगती है क्योंकि तू मेरा मित्र है। तू यह चाहता है कि मैं यहीं पर ही लेटूं। मैं तेरी रज़ा में खुश हूँ। इस तरह फ़रमान करते हैं –

धारना – हाल मुरीदां दा कहिणा – 4, 2
मित्र पिआरे नूं कहिणा – 2, 2
हाल मुरीदां दा कहिणा – 4, 2
तुध बिन रोग रजाईआं दा ओढणु – 2
नाग निवासा दे रहिणा – 2
सूल सुराही खंजर पिआला – 2
बिंग कसाईआं दा सहिणा – 2
यारड़े दा सानूं सथर चंगा – 2
भट्ठ खेड़िआं दा रहिणा – 2
मित्र पिआरे नूं कहिणा – 2
हाल मुरीदां दा कहिणा – 2

कैसे हालात है, कोई उलाहना नहीं दे रहे, कोई शिकवा नहीं कर रहे, अपनी कोई दलील नहीं दे रहे। चारों साहिबजादे बिछुड़ चुके हैं, माताएं बिछुड़ चुकी हैं, सारे सिंघ, केवल तीन सिघों को छोड़कर शहीद हो गये। भाई दया सिंघ आदि तीन सिंघ और साथ निकले थे, वे भी बिछुड़ गये लेकिन अपने मित्र को उलाहना नहीं देते। इसे सखा भक्ति कहते हैं – उसकी रज़ा में राज़ी रहना। जहाँ रखता है वहीं ठीक है।

इसके बाद हुआ करती है – दास्य भक्ति –

मुल खरीदी लाला गोला मेरा नाउ सभागा।
गुर की बचनी हाटि बिकाना जितु लाइआ तितु लागा॥ पृष्ठ – 991

अपने आपको गुलाम समझना। कोई मांग न रखना। गुलाम की कोई मांग नहीं हुआ करती। इस तरह से दास्य भक्ति हुआ करती है –

तूं साचा साहिबु दासु तेरा गोला॥ पृष्ठ – 132

पातशाह! मैं तो तेरा गुलाम हूँ। इसके बाद अपना आपा पूरी तरह से गुरू के समर्पण कर देना –

तुधु आगै अरदासि हमारी जीउ पिंडु सभु तेरा॥ पृष्ठ – 383

शरीर भी, मेरा जीउरा भी, सभी कुछ तेरा है, हे प्रभु! मेरा कुछ नहीं है फिर 'परा भक्ति' हुआ करती है कि तू ही सभी के अन्दर व्याप्त है। इसके पश्चात 'अपरा भक्ति' हुआ करती है – अन्तिम भक्ति। इसके अन्दर तू मैं का भेद नहीं रहता –

ओइ जु बीच हम तुम कछु होते तिन की बात बिलानी।
अलंकार मिलि थैली होईहै ताते कनिक वखानी॥ पृष्ठ – 672

हे प्रभु! तुझ से अलग मेरा कुछ भी नहीं रहा। सोने के गहने सोना ही बन गये। थैली में सोने

के गहने पड़े हैं। अनजान लोग सोने के अलग-अलग गहनों के नाम लेकर बतायेंगे, परन्तु जौहरी कहेगा कि यह सारा सोना ही है। वास्तव में यह है तो सोना ही, अलग-अलग गहनों के रूप में, आकार ने, अलग-अलग नाम रखवा दिए। जौहरी की दृष्टि में थैली में पड़े हुए गहने सोना ही हैं। परा भक्ति में यह सारा संसार प्रभु ही है।

सो महाराज कहने लगे, ''राजन! जब हम इस तरह से भक्ति करेंगे, गुरू भक्ति करेंगे, ये सभी से श्रेष्ठ भक्ति होती है।

पिछले प्रोग्रामों में बताया गया था कि बाबा फरीद जी ने कितना तप तथा साधना की, शरीर सूख गया, कौवों ने मुर्दा समझ कर मांस खाना चाहा। फरीद ने कहा, ''नहीं, अभी मुझे मत खाओ, मेरे नेत्रों को मत छेड़ना, बेशक बाकी सारा मांस खा लो -

कागा करंग ढढोलिआ सगला खाइआ मासु।
ए दुइ नैना मति छुहउ पिर देखन की आस॥ ***पृष्ठ - 1382***

अब मुझे परमात्मा के मिलने की आशा है, मेरे इन नयनों को मत छेड़ो -

कागा चूंडि न पिंजरा बसै त उडहि जाहि।
जितु पिंजरै मेरा सहु वसै मासु न तिदू खाहि॥ ***पृष्ठ - 1382***

मेरा मांस मत खाओ, मुझे अभी प्रभु का मिलाप होना है। उस समय आवाज़ आई, ''फरीदा! कौन से रास्ते पर चल पड़ा है? इस रास्ते पर चलने से तो बहुत देर में जाकर पहुँचेगा। वाहिगुरू तो तेरे अन्दर वास करता है -

फरीदा जंगलु जंगलु किआ भवहि वणि कंडा मोड़ेहि।
वसी रबु हिआलीऐ जंगलु किआ ढूढेहि॥ ***पृष्ठ - 1378***

तू किसी पूर्ण महापुरुष की शरण में जा। वहाँ जाकर उसकी सेवा कर, गुरू भक्ति कर। उस समय अज़मेर शरीफ में खवाज़ा बखतियार काकी के पास जाकर, उसे मुरशद धारण करके, बहुत सेवा की। लगातार 14 साल, जिस प्रकार गुरू अंगद साहिब की, गुरू अमरदास जी महाराज ने सेवा की उसी तरह से सेवा करता है। उसके पश्चात गुरू ने देखा मुरशद ने देखा कि अब इसे दीक्षा देने का अवसर आ गया है। अब इसे दो से एक कर दें, अल्लाह ताला के दर्शन करा दे लेकिन कसौटी लगा दी। बेअन्त वर्षा शुरू हो गई। अमृत बेला में उठकर स्नान कराया करता था। बरसात होने के कारण उस जगह पर पानी भर गया, जहाँ वह आग दबाकर रखता था। अमृत बेला में उठा। सर्दी का महीना है। हैरान हो गया कि आग तो बुझ गई, अब क्या करूं? मेरा सेवा में विघ्न पड़ जायेगा। अब पता नहीं मुरशद नाराज़ होकर मुझे क्या कह दे? बाहर निकला, साहस नहीं होता। अन्त कम्बली को ओढ़कर शहर की ओर चल पड़ा। वहाँ आवाज़ लगाई, ''बीबा! बीबा! दरवाज़ा खोल।''

वह बोली, ''कौन है?''

जवाब मिला, ''मैं फरीद हूँ।''

उसने कहा, ''कौन फरीद।''

उत्तर मिला, ''मैं खवाज़ा का मुरीद हूँ।''

वेश्या बोली, ''फरीद! तुझे पता है कि तू कहाँ आ गया है? इस द्वार पर तो नरकों के टिकट

मिलते हैं। यह मुरीदों और पीरों की जगह नहीं है, तू किसी और दरवाज़े पर जा।'' बाबा फरीद बोले, ''बेटी! मुझे तेरे से एक काम है, तू मेरी प्रार्थना सुन, दरवाज़ा खोल।''

अन्त में उसने दरवाज़ा खोला। कहने लगा, ''मैंने अपने मुरश़द का स्नान करवाना है। आग बुझ चुकी है, आग नहीं मिल रही, उसके स्नान करने का समय हो चुका है। कृपा करके मुझे थोड़ी सी आग दे दे।''

वह बोली, ''फरीद! बड़ा प्यार है मुरशद के साथ?''

फरीद बोले, ''मेरा सभी कुछ मुरशद है। वह मेरा गुरू है यदि वह खुश है तो सारा संसार खुश है। यदि वह नाराज़ है तो सारा संसार मेरे से नाराज़ है।''

वह कहती है, ''फिर तो इसकी कीमत देनी पड़ेगी, शरीर का कोई अंग देना पड़ेगा।''

फरीद अति विनम्रता पूर्वक कहते हैं, ''बेटी! जो भी अंग कहे, चाहे सिर भी कहे तो मैं वह भी देने को तैयार हूँ पर मुझे आग जरूर दे दे।'' क्योंकि –

तन गंदगी की कोठड़ी हरि हीरिआं की खाण।
सिर दितिआं जे हरि मिले तां भी ससता जाण।

''ठीक है, मैंने तेरे शीश का क्या करना है, मुझे अपनी आँख की पुतली निकाल कर दे दे।''

फरीद बोले, ''बेटा, छुरी ले कर आ।''

वह छुरी ले आई, प्लेट ले आई। आँख सामने कर दी। कहता है, ''लो, निकाल लो।''

वह बोली, ''ऐसे नहीं, अपने आप निकाल कर दे।''

उसी समय बाबा फरीद ने आँख निकाल कर दे दी। इसीलिये फ़रमान है –

धारना – डेरा नी जिंदे, सिर तों परे है प्रेम दा – 2, 2

जउ तउ प्रेम खेलण का चाउ। सिरु धरि तली गली मेरी आउ।
इतु मारगि पैरु धरीजै। सिरु दीजै काणि न कीजै॥ पृष्ठ – 1412

बहुत मुश्किल है। उस समय गुरेज़ (आनाकानी) नहीं की, छुरी ले ली, आँख की पुतली निकाल कर दे दी। बदले में आग का कोयला लाकर दे दिया। उस आग को लाकर पुनः आग जलाकर पानी गर्म किया तथा मुरश़द का स्नान करवाया। आँख बान्धी हुई है। किसी तरह की 'हाय-हाय' नहीं की, कोई चीख नहीं मारी, सारी पीड़ा को अन्दर जर किये जा रहे हैं। उस समय इन्जैक्शन या Pain Killer (दर्द निवारक गोलियां) नहीं हुआ कती थीं। बहुत दर्द हो रहा है, आँख की पुतली निकली हुई है। उसी हालत में पहले मुरश़द का स्नान करवाया फिर आप स्नान किया तथा एक कोने में जाकर बैठ गये। वृत्ति लग गई। कोई फुरना नहीं आया। सुबह उठे भी नहीं, वैसे के वैसे ही बैठे रहे। जब उसका मुरश़द समाधि से उथान हुआ तब उसने पूछा, ''और तो सभी नज़र आ रहे हैं, फरीद कहाँ है?'' मुरीदों ने कहा, ''महाराज! वह गोशे में बैठा है, कोने में बैठा है।'' दीवार की ओर मुँह करके बैठना 'गोशा नशीनी' कहलाता है। कहने लगे, ''बुलाओ उसे।'' बुलाया गया, जब सामने पेश हुआ तो मुरश़द ने देखा कि आँख पर पट्टी बान्धी हुई है। उसे देखकर कहने लगे, ''फरीद! आँख पर पट्टी क्यों बान्धी हुई है?'' वह ऐसा वक्त था कि फरीद अपने आप बताता कि मुरश़द इस तरह से मैं गया, आग बुझ गई थी तो

एक महिला मिली, जो बड़ी ही कठोर दिल वाली थी, उसने मुझे आग के बदले आँख की पुतली देने को कहा परन्तु उसने बिल्कुल भी एक अक्षर ऐसा नहीं कहा क्योंकि विश्वास था कि मेरा मुरशद घट-घट की जानने वाला है समरथ पुरुष है, इसकी ही खेल है, इसी ने ही कसौटी लगाई है -

कबीर कसउटी राम की झूठा टिकै न कोइ।
राम कसउटी सो सहै जो मरि जीवा होइ॥ पृष्ठ - 1366

दूसरा सहन नहीं कर सकता, दुनियांवी लोग सहन नहीं कर सकते। इस प्रकार जिन्होंने तन-मन परमात्मा को सौंप दिया, अपना कुछ भी समझा ही नहीं, वह कसौटी सहन कर सकते हैं। कोई बात नहीं बताई। इतना ही कहा, ''आँख आई हुई है।'' मुरशद ने कहा, ''फरीद! गई हुई आँखे बान्धी जाती हैं, आई हुई आखों पर पट्टी नहीं बान्धी जाती।'' इतनी बात कहने की देर थी, पट्टी उतार दी। सारे मुरीद हैरान हो गये कि उसकी आँख की पुतली ठीक ठाक है परन्तु दूसरी आँख की पुतली से कुछ छोटी है। उस समय मुरशद खड़ा हुआ, अंक में भर लिया, उपदेश दिया -

जिस नो दइआलु होवै मेरा सुआमी तिसु गुरसिख गुरू उपदेसु सुणावै॥ पृष्ठ - 306

जीव तथा ब्रह्म की एकता करवा दी। दृष्टि खोल दी। अब फरीद को एक ही नज़र आ रहा है, दूसरा कोई नज़र ही नहीं आ रहा। पूरा कर दिया। जिस रास्ते पर चलकर 24 साल तप किया, कुछ भी प्राप्त न हुआ, गुरू की सेवा करने से वह रास्ता मिल गया।

इस प्रकार गुरू महाराज कहने लगे, ''राजन! बात विचार करने की है। सभी जीव 'मैं' भाव के कारण परमात्मा से बिछुड़े हुए हैं। 'मैं' के कारण ही इसे जीव कहते हैं और आत्मा तो सभी जगह परिपूर्ण है। इस जीव भाव को यदि दूर कर दिया जाये तो वह स्वंयमेव वही रह जाता है। जब तक 'मैं' रहती है, जब तक 'मैं' समझता है - अपने आपको पुण्य दान भी करता है, तीर्थ यात्रा भी करता है, भजन बन्दगी भी करता है। हर प्रकार के शुभ कर्म भी करता है। शुभ कर्मों का फल स्वर्ग की प्राप्ति हुआ करता है, पर मुक्ति नहीं हो सकती। जब तक इस जीव में अपने अस्तित्व का अहसास तथा मैं मेरी (ममता) का अंश रहता है, यह जीव अच्छे बुरे कर्मों का फल अवश्य भोगेगा तथा जन्मता और मरता रहेगा। इस प्रकार फ़रमान है -

धारना - जंमदा ते मरदा है, हउमै दा बंनिआ होइआ - 2, 2
हउमै दा बंनिआ होइआ - 2, 2
जंमदा ते मरदा है,........... - 2

हउमै एहा जाति है हउमै करम कमाहि।
हउमै एई बंधना फिरि फिरि जोनी पाहि।
हउमै किथहु उपजै कितु संजमि इह जाइ।
हउमै एहो हुकमु है पइऐ किरति फिराहि।
हउमै दीरघ रोगु है दारू भी इस माहि।
किरपा करे जे आपणी ता गुर का सबदु कमाहि।
नानकु कहै सुणहु जनहु इतु संजमि दुख जाहि॥ पृष्ठ - 466

कहने लगे, हऊमै दीर्घ रोग है लेकिन दारू भी इसी शरीर के अन्दर रखी हुई है। यदि दवाई का पता चल जाये सभी खुश हो जाये, सभी का रोग दूर हो जाये। वह औषधि क्या है? महाराज कहते हैं, वह दारू है 'नाम' की -

नउ निधि अंम्रितु प्रभ का नामु। देही महि इस का बिस्रामु॥ पृष्ठ - 293

इस देही के अन्दर ही औषधि रखी हुई है –

हरि अउखधु सभ घट है भाई। गुर पूरे बिनु बिधि न बनाई।
गुरि पूरै संजमु करि दीआ। नानक तउ फिरि दूख न थीआ।। पृष्ठ – 259

यह औषधि प्रभु का नाम है। जहाँ नाम दारू है वहाँ अनहद नाद तथा अफूर अवस्था है –

सुंन समाधि अनहत तह नाद। कहनु न जाई अचरज बिसमाद॥ पृष्ठ – 293

इसके लिये अपना इरादा दृढ़ होना चाहिये। गुरू की कृपा होनी चाहिये तब नाम द्वारा रोग काटा जाता है। अतः इस हउमै से यह जीव अलग हो गया। जितने हम यहाँ बैठे हैं, सभी मिले हुए थे। यदि इससे और आगे की बात करें तो सबसे पहले अकेला वाहिगुरू था। वह स्वंय ही एक से अनेक हुआ। हउमै का ज़ज़बा पैदा होने से इसके अन्दर 'मैं' भाव आने के कारण, वाहिगुरू से अलग होकर, अपने आपको अलग देखने लग गया। बड़ी हैरानी की बात है कि है तो सभी कुछ वाहिगुरू पर हउमै वश अपने आप को छोटा सा जीव समझना शुरू कर दिया जिससे परमेश्वर से टूट गया तथा अपने आपको निर्बल जीव समझने का अधिआस हो गया। इसकी वृत्ति बाहर आ गई। यह जीव राम का अंश है –

कहु कबीर इहु राम की अंसु॥ पृष्ठ – 871

यह प्रकृति जिसे अग्रेज़ी में Matter पदार्थ कहते हैं, हम प्रकृति कहते हैं। माया कहते हैं, इसके अन्दर मिल गया। प्राकृतिक वस्तुओं के साथ लगा ली दोस्ती और परमात्मा को भूल गया। परमात्मा को भूलने से इसका नाम परमात्मा के स्थान पर जीव चेतन बन गया। जीव चेतन होने के पश्चात यह वाहिगुरू नहीं रहा, जीव चेतन कहने लग गये तथा सारे ब्रह्मण्डों में परमात्मा जो चेतन तत्व है, उससे यह अहमभाव होने के कारण बिछुड़ गया। इसके चित्त में जब 'मैं' का प्रकाश हुआ, उस समय इसका रूख अन्दर की ओर न रहा, बाहर को हो गया। आँखो द्वारा, नाक द्वारा, कानों द्वारा, जुबान द्वारा बाहर निकल गया। अपने आपको भूल गया। जो वाहिगुरू इसके साथ अन्दर वास करता है, उसे तो भूल गया। उपमा से रहित वस्तु थी जिसके बारे में कहा नहीं जा सकता कि कितना सुन्दर, कितना सुन्दर मित्र, कितना प्यारा है लेकिन यह नौ दरवाज़ों द्वारा बाहर निकलने के कारण, अपने आत्म स्वरूप को पूरी तरह से भूल गया –

धारना – नउ घर देखि जु कामण भूली वसत अनूप न पाई – 2, 2
वसत अनूप न पाई – 4, 2
नउ घर देखि तु जामण भूली,........ – 2

'नउ घर देखि जु कामनि भूली।' दो घर आँखे हैं, दो कान हैं, दो नासिका, एक जुबान, मलमूत्र इन्द्रियां के, इन्हें देख कर भूल गया। जीव बाहर की ओर ही भागा फिरता है, अन्दर की ओर नहीं जाता। जो उपमा रहित आत्म वस्तु इसके अन्दर थी, वह इसे प्राप्त नहीं हुई। बाहर-बाहर भागा फिरता है, बाहरी काम ही करता है –

धन पिर का इक ही संगि वासा विचि हउमै भीति करारी।। पृष्ठ – 1263

वाहिगुरू तथा यह जीव इकट्ठे रहते हैं। पर हउमै के कारण हमारा बिछौड़ा हो गया। हउमै की दीवार बन गई जिसे कोई नहीं तोड़ सकता –

गुरि पूरै हउमै भीति तोरी जन नानक मिले बनवारी॥ पृष्ठ – 1263

केवल गुरू ही तोड़ने में समरथ है। संसार में व्यक्ति चाहे जितने कर्म क्यों न कर ले, 68

तीर्थों के स्थान कर ले, दान कर ले और जब तप कर ले, यज्ञ कर ले लेकिन यह मैं/हउमैं मनुष्य के हृदय में से, अन्तसकरण में से नहीं निकलती। सो वाहिगुरू जी ने माया जाल पसार कर जीव को भुला दिया है। वाहिगुरू जी हर एक के साथ रहते हैं, वह तो कभी याद ही नहीं आते। परमेश्वर को भूल कर माया में आसक्त रहता है। जो याद आता है उसे प्राप्त करने का यत्न करता है। यह शरीर ही ले लो अपना। पहले बच्चा था, फिर जवान हो गया, फिर बूढ़ा हो गया परन्तु वाहिगुरू उसी तरह ही है जैसा बचपन में था, वैसा ही जवानी में था, वैसा ही अब है, वैसा ही अरबों-खरबों साल बाद होगा और वैसा ही खरबों साल पहले था। वह बदलता नहीं है। हमने बदलने वाली चीज़ से मोह पा लिया। इसे दृष्टिमान कहते हैं। उसकी ओर जाना माया का करिश्मा है, ताकत है कि वह असली चीज़ को भुला दिया करती है। जैसे शीशा होता है, शीशे कई किस्म के हुआ करते हैं कि एक ही व्यक्ति देखने वाला होता है, उसमें उसे करोड़ों ही दिखाई देते हैं। देखता ही चला जाता है। शीश महल में चले जाओ, चारो ओर अपना आपा ही नज़र आता है। इस प्रकार से तिलसम है, माया का जादू, उसने भुला दिया। उस वाहिगुरू को अपना पुत्र कहने लग गया, उसे ही अपनी पुत्री कहने लग गया, उसे हउमैं कहने लग गया, उसे ही पिता कहने लग गया। माया के प्रभाव के कारण जीव अपने असली स्वरूप को भूलकर अनेकता प्रतीत करता हुआ भूल गया कि यह सारा खेल परमेश्वर एक से अनेक रूप धारण करके कर रहे हैं। कर्म-धर्म संस्कारों की पाप पुण्य की मैल लगती चली जाती है। यह मैल तीर्थों पर जाकर स्नान करने से नहीं उतरती क्योंकि यह मैल पानी से साफ नहीं हुआ करती, यह तो अन्तसकरण की मैल है जो केवल प्रभु के नाम से उतरती है। गुरू ज्ञान प्राप्त होने पर उतर जाती है -

धारना - तेरी हउमै दी मैल न जावे,
तीरथ भावें नहा लै सैंकड़े - 2, 2
मेरे पिआरे, तीरथ भावें नहा लै सैंकड़े - 2, 2
तेरी हउमै दी मैल न जावे,......... - 2

तीर्थों में स्नान कर ले, दान कर ले, जैसे दिल करता है, संसार में घूम ले, कर्म कर ले, पढ़ ले। महाराज कहते हैं, ऐसे तो मैल नहीं उतरेगी -

जगि हउमै मैलु दुखु पाइआ मलु लागी दूजै भाइ।
मलु हउमै धोती किवै न उतरै जे सउ तीरथ नाइ।
बहुबिधि करम कमावदे दूणी मलु लागी आइ।
पड़िऐ मैलु न उतरै पूछहु गिआनीआ जाइ।
मन मेरे गुर सरणि आवै ता निरमलु होइ।
मनमुख हरि हरि करि थके मैलु न सकी धोइ।
मनि मैलै भगति न होवई नामु न पाइआ जाइ।
मनमुख मैले मैले मुए जासनि पति गवाइ।
गुर परसादी मनि वसै मलु हउमै जाइ समाइ॥ ***पृष्ठ - 39***

सारा दुख क्यों है क्योंकि परमेश्वर को भूलकर हउमैं में आ गया। गुरू नानक पातशाह जब सुमेरू पर्वत पर गये वहाँ पर सिद्धों को यह बात बताई कि यहाँ पर वाहिगुरू ही था और कोई नहीं था। वाहिगुरू ने अपनी मर्ज़ी से अपने आपका पसार किया -

अपनी माइआ आपि पसारी आपहि देखन हारा।
नाना रूपु धरे बहुरंगी सभ ते रहै निआरा॥ ***पृष्ठ - 537***

कहते हैं, ''हे नानक! यदि परमेश्वर ही था फिर यह दुख कहाँ से आ गया संसार में? दुनियाँ

कहाँ से बन गई? तू हमारी बात मान ले कि यहाँ पर संसार भी था, जीव भी था, प्रकृति भी थी, माया भी थी तथा इन सभी ने मिलकर खेल के साथ संसार बनाया।

महाराज कहते हैं, ''नहीं, एक ही था।'' महाराज जी ने सबसे पहले अक्षर गुरू ग्रन्थ साहिब में १ लिखा है। एक पहले था, एक फिर था, एक ही अब है, जब भविष्य काल आयेगा उस समय भी एक ही होगा। इस एक को ही ऐकंकार कहते हैं। यही ऐकंकार ही औंकार है, शब्द समेत है, शब्द ब्रह्म है। फिर कहते हैं, दूसरा कहाँ से बन गया क्योंकि आपका फ़रमान है –

धारना – एको कहीऐ नानका, एको कहीऐ नानका – 2, 2
पिआरे दूजा काहे कू – 2, 2
एको कहीऐ नानका,......... –2

आपे पटी कलम आपि उपरि लेखु भि तूं। एको कहीऐ नानका दूजा काहे कू। पृष्ठ – 1291

कतहूं सुचेत होइकै चेतना को चार कीओ, कतहूं अचिंत हुइकै सोवत अचेत हो।
कतहूं भिखारी हुइकै मांगत फिरत भीख, कहूं महां दान हुइकै, मांगिओ धन देत हो।
कहूं महाराजन को दीजत अनंत दान, कहूं महाराजन ते छीन छित लेत हो।
कहूं बेद रीत, कहूं ता सिउ बिप्रीत, कहूं त्रिगुन अतीत, कहूं सुरगुन समेत हो॥
अकाल उसतति

गोरख नाथ जी! यहाँ पर वाहिगुरू जी ही थे और कोई नहीं था। न माया थी, न कोई जीव था। यह सब उसकी अगम्मी खेल है। वह समष्टि (कुल) था, माया, हउमैं के प्रभाव के कारण वही एक परमेश्वर व्यष्टि (अनेकता) में नज़र आ रहा है। यह हउमै के कारण, अज्ञान द्वारा यह अधिआस हो जाने के कारण जीव नज़र आ रहा है। संसार के रूप में अनादि, आदि, जुगादि अब तथा इसके पश्चात भी एक ही रहेगा। एक से अनेक होकर अलग-अलग प्रतीत हो रहा है। यह बाजीगर का जादू दिखा रहा है। सत तो एक ही है।

गोरख नाथ ने पूछा, ''हे नानक! फिर यह दुख कहाँ से आ गया? जब वाहिगुरू जी तो सत्त-चित्त-आनन्द है?''

महाराज जी ने कहा, ''गोरख नाथ जी! यह जीव हउमै के अधीन होने के कारण वाहिगुरू से सम्बन्ध विच्छेद हो गया तथा प्रकृति की भूल भुलैया में फंस कर, परमेश्वर को भी भूल गया। अतः दुख रूपी प्रकृति का संग करने के कारण दुखी हो रहा है –

परमेसर ते भुलिआं विआपनि सभे रोग॥ पृष्ठ – 135

परमेश्वर को भूलकर ही सारे रोग, सारे विघ्न, भूत प्रेत सभी चिपट जाते हैं। परमेश्वर को याद कर लो, प्रकाश में चले जाओ, अन्धेरा दूर हो जायेगा। सिद्धों ने प्रश्न किया, ''नानक जी, प्रश्न तो यह है कि आपका मत है, आदि जुगादि तथा आगे भी एक ही अपरिवर्तनीय एक रस रहने वाला वाहिगुरू ही है। प्रकृति ने उस पर माया की हुई है। वह वाहिगुरू से अलग नहीं है। परमेश्वर आनन्द स्वरूप है फिर इस संसार का अस्तित्व अलग कैसे प्रतीत होने लग गया तथा आनन्द स्वरूप में दुख कहाँ से पैदा हो गया –

कितु कितु बिधि जगु उपजै पुरखा कितु कितु दुखि बिनसि जाई॥ पृष्ठ – 946

गुरू महाराज जी ने फ़रमान किया कि वाहिगुरू जी ने प्रकृति तत्व का अपने आप से ही प्रसार

किया। चेतन के प्रकाश का प्रतिबिम्ब जब जड़ प्रकृति पर पड़ा तो अनेक प्राकृतिक चित्तों में चेतनता आई तथा अहम (हउमै) का अज्ञानमयी प्रकाश एकता को अनेकता में द्रष्टाता गया। समरथ प्रभु अंश अनेक होकर आत्मा तथा जीव आत्मा की उपाधि धारण करके अलग प्रतीत होने लगा। अलग-अलग प्रतिबिम्ब होकर, जीव सर्वकला समरथ चेतन ब्रह्म से अलग होकर, अल्पज्ञ, असमर्थ, अज्ञानी होकर भटकने लगा। जीवों का समूह संसार कहलाने लगा तथा प्रतिबिम्बत ज्योति ब्रह्म के स्थान पर जीव कहलाने लगी। प्रकृति पर जब प्रकाश पड़ा तो इसमें प्रकाश क्रिया तथा नियम पैदा हो गये। रजो, तमो तथा सतोगुण के प्रभाव के कारण, दुख सुख का अनुभव, जीव को प्राप्त होने लगा। यह जीव पन का अधिआस, जीव में परिपक्व हो गया। यह सारा खेल अहमभाव (हउमै) के कारण सत्य प्रतीत हो रहा है। इस सारी क्रिया को अज्ञान की सूझ कहते हैं, परन्तु जब गुरू कृपा हो तो अपने सत्त-स्वरूप का ज्ञान हो जाता है, तो इस प्रसार का असली स्वरूप परमेश्वर की हर जगह वह घट-घट में सारी प्रकृति में रमा हुआ तथा प्रकृति रूप हुआ भासित होने लगता है। इस ज्ञान को, सूझ बूझ को नाम कहा जाता है। संक्षेप में हउमै के कारण ही वाहिगुरू जी प्रसार रूप में संसार में नज़र आते हैं और नाम भूलने के कारण ही दुख प्रतीत होता है, वास्तव में न तो संसार ही कोई अलग वस्तु है, न ही जीव, प्रभु से कोई अलग हस्ती है, यह केवल हउमैं के कारण ही है, जब नाम का सूर्य प्रकाशित होता है तो यही दृष्टिमान, हरि का रूप होकर नज़र आने लगता है तथा दुख भी सुख ही प्रतीत होता है -

हउमै विचि जगु उपजै पुरखा नामि विसरिऐ दुखु पाई॥ ***पृष्ठ - 946***

नाम को भूलने के कारण ही जीव को दुख होता है। महाराज कहते हैं, एक ही सत्त हस्ती संसार रूप होकर दिखाई दे रही है -

जगि हउमै मैलु दुखु पाइआ मलु लागी दूजै भाइ॥ ***पृष्ठ - 39***

जो बन गये, एक न रहा। यदि एक समझता है फिर तो मैल बनती ही नहीं है। इतना ही अन्तर होता है - सांसारिक और ब्रह्मज्ञानियों में। वे यह समझते हैं -

मनि साचा मुखि साचा सोइ।
अवरु न पेखै एकसु बिनु कोइ। नानक इह लछण ब्रहमगिआनी होइ॥ ***पृष्ठ - 272***

वे दूसरा नहीं देखते, एक ही परमेश्वर सभी के अन्दर देखते हैं। जो संसार है, यह दूसरा देखता है। दूसरा देखने से मन को मैल लग गई। यह मैल लगते ही पहले 'मैं' बन गया। इसके ऊपर एक तो अज्ञान का पर्दा पड़ गया। दूसरा पर्दा बुद्धि का, विज्ञान का, तीसरा मन का, फुरने करने शुरू कर दिये। चौथा पर्दा प्राणों का पड़ गया, पाँचवा पर्दा साढ़े तीन हाथ की देह का पड़ गया। ऐसे समझ लो कि एक हजार वाट का बल्ब लगा हुआ था। उसके ऊपर पहले एक कागज़ लपेट दिया। उस कागज़ के लपेटने से प्रकाश कम हो गया। उसके ऊपर फिर एक नीले रंग का कागज़ लपेट लिया फिर थोड़ा-थोड़ा पता चलता है प्रकाश का लेकिन अधिकतर छिप जाता है। उसके पश्चात ब्रुश लेकर, काले रंग का पेन्ट करके बल्ब की रोशनी को बिल्कुल ही बन्द कर दिया। अब बिल्कुल भी प्रकाश दिखाई नहीं देता। बल्ब में प्रकाश है लेकिन बाहर दिखाई नहीं देता। उस प्रकाश देते हुए बल्ब को टब के नीचे मिट्टी के एक बड़े मटके को उलटा रखकर प्रकाश को ढक दिया। द्वैत के नीचे रोशनी दे दी, उलटा रख दिया। अब प्रकाश कहाँ दिखाई देगा? अब तो पूरी तरह से पर्दा डाल दिया। इसी तरह से जो हमारे अन्दर आत्मा है उसके ऊपर हमने हउमै का पर्दा डाल दिया, हमें ध्यान ही न रहा कि मैं कौन हूँ? महाराज कहते हैं यदि 'मैं' का इसे पता चल जाये फिर सारे दुखों का अन्त हो जाये इसीलिये -

मलु हउमै धोती किवै न उतरै जे सउ तीरथ नाइ॥ *पृष्ठ - 39*

इसे धो भी नहीं सकता किसी तरह से भी –

.............जे सउ तीरथ नाइ। बहुबिधि करम कमावदे........॥ *पृष्ठ - 39*

जितने कर्म करता है, जप करता है, तप करता है, दान करता है, संयम करता है, कहता है, 'मैं' कर्ता हूँ। उसमें एक चक्कर पर्दे का और बढ़ जाता है। अपने आपको जन्जीरों में बान्धे जाता है।

................दूणी मलु लागी आइ। पढ़िऐ मैलु न उतरै पूछहु गिआनीआ जाइ॥ *पृष्ठ - 39*

ज्ञानियों से पूछ लो, ''तुम्हारी मैल उतर गई?'' वे तो ऐसे कहते हैं, ''मैंने इतनी किताबें पढ़ी हैं।'' 'मैं' तो मरती नहीं, मैं जीवित रहती है क्योंकि गुरू कृपा बिना नाम प्राप्त नहीं होता। नाम वह प्रत्यक्ष सूरज है जिसमें अज्ञान की काई नहीं रहती। प्रत्यक्ष रूप में एक ही नज़र आता है, अपने आप भी वही भासित होता है –

जब लगु जानै मुझ ते कछु होइ। जब इस कउ सुखु नाही कोइ॥ *पृष्ठ - 278*

जब तक 'मैं' है, 'मैंने' यह काम किया, मैंने दान किया मैंने सेवा की, गुरूद्वारे बनवाए, यदि 'मैं' न होता तो यह काम हो ही नहीं सकता था। महाराज कहते हैं, ''तुझे पता है कि ऐसी सोच का कितना नुकसान होता है? मैं मैं तो किये जाता है। 'तब इस कउ सुखु नाही कोइ।' जब तक मैं कहता है –

जब लगु जानै मुझ ते कछु होइ। तब इस कउ सुखु नाही कोइ।
जब इह जानै मै किछु करता। तब लगु गरभ जोनि महि फिरता॥ *पृष्ठ - 278*

फिर सजा क्या मिलती है?

तब लगु गरभ जोनि महि फिरता॥ *पृष्ठ - 278*

जन्मता रहेगा, मरता रहेगा। सो यह जीव के अन्दर बड़ा भारी अन्तर है, शोर शराबा है, भूचाल है आदमी के अन्दर इसी शोर गुल में ही आयु बीत जाती है। मर जाता है, पैदा होता है, फिर मर जाता है। सारा जगत हउमै में रचा हुआ है देवता भी हउमै के अधीन है –

ब्रहमा बिसनु महादेउ त्रैगुण रोगी विचि हउमै कार कमाई॥ *पृष्ठ - 735*

शिवजी, विष्णु जी तथा ब्रह्मा जी भी ये वाहिगुरू से अलग इसी कारण से हुए हैं क्योंकि इनके अन्दर 'मैं' भावना आ गई –

जिनि कीए तिसहि न चेतहि बपुड़े.......॥ *पृष्ठ - 735*

परमेश्वर को नहीं कहते कि तू ही हैं, तूने ही हमें बनाया है, तू यह स्वंयमेव ही है। ब्रह्मा कहने लगा, ''मैं अपने आप पैदा हुआ हूँ।'' आवाज़ आई, ''तू इस कमल फूल में से उत्पन्न हुआ है।'' कमल फूल को ठोकर मार दी। ऐसा डूबा, ऐसा डूबा, 36 युगों तक उसी में ही घूमता चला गया। 43,20,000 साल की एक चौकड़ी होती है, चौकड़ी बना लो। साढ़े तीन करोड़ साल उसी के अन्दर ही घूमता रहा। अन्त में तंग होकर कहा, ''हे प्रभु! सबसे महान तू ही है। अपना ज्ञान मुझे दो, वह मुझे बताओ, मुझ पर कृपा करो।'' फिर बाहर निकाला। सो कहते हैं, यह भी रोगी है –

जिनि कीए तिसहि न चेतहि बपुड़े हरि गुरमुखि सोझी पाई॥ *पृष्ठ - 735*

यदि सूझ है तो केवल गुरू को ही है और किसी को भी संसार में सूझ नहीं है।

अत: गुरू महाराज कहने लगे, ''राजा शिवनाभ! बीमारी कोई है, इलाज कुछ और है। इस

बीमारी की दवाई गुरू के पास है। इसे हउमै का ज़हर चढ़ गया और जब तक यह दवाई नहीं लेता तब तक इसकी ज़हर नहीं उतरती।'' शिवनाभ ने पूछा, ''महाराज! इसकी दवाई क्या है?''

महाराज कहते हैं, ''इसकी दवाई अमृत है। ज़हर से यह जन्मता और मरता है। यदि इसे अमृत मिल जाये फिर यह जन्म मरण से छूट जायेगा। इस अमृत को 'नाम' कहते हैं। इस तरह फ़रमान करते हैं -

धारना - सुण मेरे मनां, अंम्रित हरि हरि नाम है - 3, 2

अंम्रितु हरि हरि नामु है मेरी जिंदुड़ीए अंम्रितु गुरमति पाए राम।
हउमै माइआ बिखु है मेरी जिंदुड़ीए हरि अंम्रिति बिखु लहि जाए राम॥ पृष्ठ - 538

परमेश्वर का नाम अमृत है, यह गुरू की मत धारण करने से प्राप्त होता है। हउमै तथा माया विहु (ज़हर) है यह नाम अमृत पीने से उतर जाती है।

महाराज! यह अमृत कहाँ है?

कहते हैं, 'अमृत गुरमति पाए राम' गुरू (गुरू ग्रन्थ साहिब) की मत धारण कर लो फिर यह अमृत मिलता है।

यदि नाम मिल गया फिर यह ज़हर उतर जाया करती है। अत: महाराज जी कहते हैं यह जो सुरत है कि यह मेरा घर है, मेरे बच्चे हैं, मेरा शरीर है आदि आदि इन बातों ने तुझे बान्धा हुआ है। प्यारे! यदि हमारी बात मानता है तो भूल जा इन्हें। यह हउमैं की सुरत है जिसने जन्जीरें डाल कर तुझे बान्धा हुआ है।

धारना - मन भोलिआ हउमै सुरति विसारि - 2, 2
हउमै सुरति विसारि - 2, 2
मन भोलिआ, हउमै सुरति विसारि,..... - 2

भोलिआ हउमै सुरति विसारि।
हउमै मारि बीचारि मन गुण विचि गुणु लै सारि॥ पृष्ठ - 1168

संसार यहाँ पर सदा रहना है, ऐसे ही रहेगा अरबों-खरबों वर्षों से चला आ रहा है, तथा अरबों खरबों वर्षों तक रहेगा। महाराज कहते हैं, नहीं। ***'हरन भरन जाका नेत्र फोरु (पृष्ठ - 284)'*** एक आँख के पलक झपकते ही सभी कुछ खत्म कर देता है। जब खत्म कर देता है फिर अपने आप ही रह जाता है। पहले भी आप ही था, आदि पूर्ण अब भी आप ही है मध-पूर्ण अन्त समय भी जब संसार नहीं रहेगा, उस समय भी वाहिगुरू जी स्वंय ही रहेंगे। ***'अति पूर्ण परमसुरह'*** साईंस वाले यह कहते हैं, पहले एक नुकता था बहुत थोटा सा, जिसकी सूक्ष्मता का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। इसे हम कहते हैं कि परमेश्वर निर्गुण स्वरूप में था। फिर कहते हैं, Big Bang हुआ, बड़ा भारी धमाका हुआ। महाराज कहते हैं, 'ओंकार' का शब्द हुआ।

ऐकंकार से शबद धुन ओंकार हुई। शब्द धुन से आकार हुए -

जब उदकरथ करा करतारा॥ प्रजा धरत तब देह अपारा॥ चौपई पातशाही १०

शब्द का फैलाव हुआ, धक्का लग गया, इसी से ही संसार का प्रसार शुरू हो गया। कितना रच दिया। कहते हैं, यह हिसाब-किताब से बाहर की बात है। सांईस वाले एक बात कहते हैं कि जब आकर्षण सा उत्पन्न हो गया उस समय उलटा चक्कर चल पड़ा, उस समय फिर नुकता ही रह जाता है।

यह हमारी समझ में नहीं आता कि यह स्थूल कैसे बन जाता है। छोटा कैसे हो जाता है, इसकी Energy (ऊर्जा) किस तरह से convert परावर्तित होकर कुछ नहीं रहती, nothing बन जाता है। अति की सूक्षता आ जाती है। यह बात प्राकृतिक है, रूहानी मत और है ओंकार का शब्द हुआ –

एक कवावै ते सभि होआ॥ पृष्ठ - 1003

कीता पसाउ एको कवाउ। तिस ते होए लख दरीआउ॥ पृष्ठ - 3

अत: यह संसार सत नहीं है। यह वाहिगुरू का खेल है, उसकी मौज है। इस प्रकार पहले जो भ्रम भेद है, इसकी निवृति के लिये महाराज जी बताते हैं कि जैसे पानी में सूर्य की परछाई पड़ रही हो, उसी तरह से यह परछाईं दिखाई दे रही है, दो बन जाते हैं लेकिन सूरज एक ही है। इसी तरह से इस शरीर में जीव भाव होने के कारण, यह अलग प्रतीत होने लग गया, इसी तरह से यह संसार है, बेअन्त गहने पड़े हुए है, वे सभी क्या है? सारा सोना ही है। पानी पर लहरें उठती है, वे क्या है? सारा समुद्र ही है। इसी तरह से सुरत भूल गई, अपने स्वरूप का भ्रम पड़ गया, जीव बन गया, ईश्वर न रहा। सुरत और नीचे उतर कर प्राकृतिक बन गई, हउमै की सुरत पैदा हो गई, आत्मिक सुरत गवाँ ली। गुरू महाराज जी चेतावनी देते हुए कहते हैं, *'भोलिआ हउमै सुरति विसारि'* इस हउमै वाली सुरत को तू भल जा लेकिन इतना सरल नहीं है – इसे भूलना, साध संगत जी! इसका जब तक इलाज नहीं होता तब तक यह हउमै सुरत आत्म सुरत में से नहीं निकला करती। इसका इलाज है – 'नाम' और कोई इलाज नहीं –

वाहिगुरू गुरमंतर है जपि हउमै खोई॥ *भाई गुरदास जी, वार*

और सूझ उस समय आती है जब नाम हृदय में बस जाये तथा हउमै का नाश हो जाये। उसके बारे में महाराज इस प्रकार फ़रमान करते हैं कि दो चीज़ें इकट्ठी नहीं रहेगी। यदि नाम रहेगा तो हउमै नहीं होगी। यदि हउमै होगी तो नाम नहीं रहेगा। अत: नाम हउमै का विरोधी है –

हउमै नावै नालि विरोधु है दोइ न वसहि इक ठाइ॥ पृष्ठ - 560

इस तरह से फ़रमान किया है –

धारना - जदों नाम हिरदे विच वसिआ,
हउमै वाला नाश हो गिआ - 2, 2
पिआरे जी, हउमै वाला नाश हो गिआ - 2, 2
जदों नाम हिरदे विच वसिआ,........ - 2

नाम तथा हउमै इकट्ठे नहीं रहा करते। नाम के प्रकाश में 'सभ गोबिन्द है सभ गोबिन्द है' ही नज़र आता है जो सत अवस्था है। हउमै में, निज में, छोटे से आपे में जो सूझ आती है, सभी कुछ अलग-अलग अपने बेगाने, लाभ हानि, हर्ष-शोक, पुत्र-पुत्रियां, रिश्तेदार अपना मज़हब, मत में रहते हैं पर नाम अवस्था में एक ही दिखाई देता है, एक जैसा व्यवहार है। जब तक हउमै है, तब तक सेवा का भी मूल्य नहीं पड़ता –

हउमै विचि सेवा न होवई ता मनु बिरथा जाइ।
हर चेति मन मेरे तू गुर का सबदु कमाइ॥ पृष्ठ - 560

गुरू का शब्द जो पाँच प्यारों ने दिया है, उसकी साधना कर, फिर तू गुरू ग्रन्थ साहिब में से शब्द ढूंढ, फिर उसे मान। जब मान लेगा –

मंने की गति कही न जाइ। जे को कहै पिछै पछुताइ।

कागदि कलम न लिखणहारु। मंनै का बहि करनि वीचारु।। *पृष्ठ - 3*

जिन्होंने माना है, उन्हें बड़ी-बड़ी पदवियां प्राप्त हो गई। सो महाराज कहते हैं तू गुरू के शब्द की साधना कर -

हुकमु मंनहि ता हरि मिलै ता विचहु हउमै जाइ॥ *पृष्ठ - 560*

जो कुछ हो रहा है, सभी वाहिगुरू के हुक्म में हो रहा है - अच्छा भी, बुरा भी। तू उसकी रज़ा में आ जा, सुर के साथ सुर मिलाकर फिर तेरे अन्दर से हउमै अपने आप ही निकल जायेगी -

हउमै सभु सरीरु है हउमै ओपति होइ।
हउमै वडा गुबारु है हउमै विचि बुझि न सकै कोइ॥ *पृष्ठ - 560*

जन्म मरण, हउमै के अन्दर ही हुआ करता है। ***'हउमै वडा गुबार है हउमै विचि बुझि न सकै कोइ।'*** गुब्बार है, मनुष्य के मन में -

माइआधारी अति अंना बोला। सबदु न सुणई बहु रोल घचोला॥ *पृष्ठ - 313*

इस शरीर में शोर गुल सा मचा हुआ है। मनुष्य के अन्तसकरण में जन्म जन्मांतरों के संस्कार संचित रूप में कर्म बनकर पड़े हुए हैं। बेअन्त वासनाओं की लहरें, हर समय उठती रहती है, कहीं परिवार की, कहीं धन की, कहीं लालसाओं की, कहीं काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार के विकारों की वैर, विरोध हित-अहित की, अपने-पराये की, उठने वाली लहरें एकाग्र मन में खूब शोर शराबा मचाये रहती है। चित्त शान्त नहीं होता। शब्द तक सुरत को उडान भरने से वर्जित करती रहती हैं तथा हउमै की भूल भुलैया में चक्कर कटवाती रहती हैं। हुक्म की सूझ पैदा नहीं होती। संस्कारों के कारण जीव हउमै जाल में फंसा हुआ जन्म मरण में ही पड़ा रहता है -

हउमै विचि भगति न होवई हुकमु न बुझिआ जाइ।
हउमै विचि जीउ बंधु है नामु न वसै मनि आइ॥ *पृष्ठ - 560*

जब तक हउमै है, यह भक्ति कैसे कर लेगा? न ही परमेश्वर के हुक्म को जान सकता है -

नानक सतिगुर मिलिऐ हउमै गई ता सचु वसिआ मनि आइ।
सचु कमावै सचि रहै सचे सेव समाइ॥ *पृष्ठ - 560*

जब सतगुरू मिल गया फिर वाहिगुरू में ही समा जाता है अन्यथा हउमै की पीड़ा से सारा संसार दुखी हो रहा है हाय हाय कर रहा है। हस्पताल भरे पड़े हैं, जेलखाने भरे पड़े हैं सारे रोगी हैं, रोग कौन सा है? सभी के मनों में हउमैं का रोग है उसके फलस्वरूप बाकी सारे रोग लगे हुए हैं -

गुर परसादी मनि वसै नामे रहै समाइ।
गुर सबदी हरि पाईऐ बिनु सबदै भरमि भुलाइ॥ *पृष्ठ - 36*

गुरू की कृपा जब हो जाती है, उस समय हउमै रोग समाप्त हो जाता है।

महाराज जी राजा शिवनाभ को समझाते हैं, ''राजन! अब बताओ, जो हठ योग करते हैं, जप करते हैं, उनसे हउमै रोग दूर हो जायेगा?'' इससे नहीं हटेगा। जब तक नाम की प्राप्ति नहीं होती, तब तक हउमै रोग दूर नहीं होता -

बिनु सतिगुर नाउ न पाईऐ बुझहु करि वीचारु।
नानक पूरै भागि सतिगुरु मिलै सुखु पाए जुग चारि॥ *पृष्ठ - 649*

अतः इसके साथ यदि तूने प्यार पा लिया जिसे नाम कहते हैं, महाराज कहते हैं, नाम के साथ प्यार करना बहुत जरूरी है, नाम कहीं बाहर से नहीं मिलेगा, तेरे अन्दर ही नाम है। बाहर से मिलेगा

मन्त्र 'वाहिगुरू' मन्त्र जो पाँच प्यारों ने देना है। उस मन्त्र ने तेरे अन्दर से नाम प्रकट करना है। जिस प्रकार धरती में पानी है, सभी को पता है कि पानी है, मनुष्य प्यासा मर रहा है, यदि वह कहे कि धरती में पानी है उसे उस वस्तु का क्या सुख? वह तो प्यासा मर रहा है। जब तक धरती में से पानी नहीं निकालता, तब तक उसे प्राप्ति नहीं होती। अतः पानी निकालने के लिये बोर किया, बोर करके पहले जाली लगाई फिर उस पर नाल लगाई फिर Reflax Ball लगाई बिजली की मोटर लगाई, बटन दबाया पानी नहीं आयेगा क्योंकि पूरी विधि का प्रयोग नहीं किया, संयम पूर्वक नहीं किया। यदि बाहर से पानी डालें फिर वह पानी जब निकालते हैं, जितना पानी डालें उतना पानी खींच कर अन्दर वाला पानी ऊपर चढ़ जाता है। पानी बहुत गहरा है। पाँच सात बार बाहर से पानी डालने के पश्चात पानी बाहर आ जायेगा फिर जब बटन दबायेंगे उस समय पानी बाहर आ जायेगा। ठीक इसी तरह से नाम तो अन्दर पड़ा है और पाँच प्यारे बाहर से अमृत डालते हैं। उसके साथ फिर गुर मन्त्र देते हैं। वह जब उसका जाप करता है, पूरी दृढ़ता के साथ यम तथा नेम की रहतों का धारणी होकर दृढ़ता पूर्वक सुरत का मेल शब्द के साथ बिठाता है तो धीरे-धीरे करते हुए, अन्दर रमें हुए नाम तक पहुँच जाता है। फिर वह औषधि प्रकट हो जाती है जो हउमै का नाश कर देती है महाराज कहते हैं, उसे 'नाम औषध' कहते हैं -

नाम अउखधु जिह रिदै हितावै॥ ***पृष्ठ - 259***

जिसके हृदय में इस दवाई से प्यार हो गया फिर उसे क्या होता है -

ताहि रोगु सुपनै नही आवै॥ ***पृष्ठ - 259***

उसे सपने में भी रोग नहीं लगता। न आधि न बिआधि, न उपाधि, न मानसिक रोग, कोई भी रोग इसके निकट नहीं आता। यदि मानसिक रोग नहीं आते तो शरीर भी निरोग रहता है क्योंकि शरीर रोगी तभी होता है, जब पहले मन रोगी होता है।

अतः कहते हैं कि नाम औषधि सभी के अन्दर है। सभी के अन्दर परमेश्वर ने दवाई रखी है -

हरि अउखधु सभ घट है भाई। गुर पूरे बिनु बिधि न बनाई॥ ***पृष्ठ - 259***

पूरा गुरू मिले तो वह दवाई संयम से प्रयोग करने की सूझ देता है कि नाम रूप औषधि यहाँ पड़ी हुई है और यह उसकी निशानी हुआ करती है -

गुरि पूरै संजमु करि दीआ। नानक तउ फिरि दूख न थीआ॥ ***पृष्ठ - 259***

फिर उसने संयम बता दिया कि झूठ नहीं बोलना, किसी की हिंसा नहीं करनी, मारना नहीं, दुख नहीं देना, न शरीर से, न मन से, न वचन से, न बुद्धि से, न अपनी शक्तियों से, सत्य का धारणी बनना। जैसा वचन कर दिया उसका पूरी तरह से पालन करना, धैर्य रखना, क्षमा भावना रखना ब्रह्मचर्य रखना इसके पश्चात मीठा बोलना, 'अलप आहार सुलप सी निद्रा' कम खाना, कम सोना, मर्यादा में जीवन व्यतीत करना फिर नितनेम, सन्तोष, मन में धारण करना। किसी की निन्दा न करे, ईर्ष्या न करे किसी से भी। दृढ़ता पूर्वक परमेश्वर का नाम जपे। ये संयम है। जैसे डाक्टर दवाई देते हैं और कहते हैं कि खट्टी चीज़ मत खाना आम-आचार आदि नहीं खाना, ठण्डा शर्बत मत पीना, अमुक चीज़ से परहेज़ करना, तली हुई चीज़ें नहीं खाना फिर तेरा अलसर की फुन्सी ठीक हो जायेगा। पूरे वैद्य ने, पूरे गुरू ने संयम बता दिया, फिर यह जो दवाई गुरू ग्रन्थ साहिब के अन्दर है, वह दवाई अन्दर से ही निकाल लो। विचार करके पढ़ो, इसके अन्दर संयम लिखा हुआ है, ***'गुरि पूरै संजमु करि दीआ।'*** फिर क्या होता है जब संयम के साथ दवाई खा ली? ***'नानक तउ फिरि दूख न थीआ।'*** सो वह दवाई अन्दर पड़ी है -

नउ निधि अंम्रितु प्रभ का नामु। देही महि इस का बिस्रामु॥ ***पृष्ठ - 293***

वह नाम सभी जगह परिपूर्ण है, हर एक के अन्दर है। महाराज कहते हैं कोई जगह ऐसी नहीं है, जहाँ नाम न हो –

नाम के धारे संगले जंत। नाम के धारे खंड ब्रहमंड। *पृष्ठ – 284*

सारे खण्डो, ब्रह्मण्डों में नाम है –

नाम के धारे आगाम पाताल। नाम के धारे सगल आकार। *पृष्ठ – 284*

जितना आकार दिखाई देता है, सारा नाम की शक्ति के फलस्वरूप ही कायम है –

नाम के धारे पुरीआ सभ भवन। नाम कै संगि उधरे सुनि स्त्रवन।
करि किरपा जिसु आपनै नामि लाए। नानक चउथे पद महि सो जनु गति पाए॥ पृष्ठ – 284

जिसे नाम के साथ लगा दिया, वह अपने असली घर में आता है। पहली बात है– पहचानना कि मैं शरीर हूँ या सूक्ष्म शरीर हूँ या कारण शरीर हूँ, तीन शरीर हैं, इस स्थूल शरीर के अन्दर। महापुरुष कहते हैं – न तो तू पांच तत्वों का शरीर है – 25 प्रकृतियों सहित, न ही तू 19 तत्वों वाला सूक्ष्म शरीर है, न ही तू कारण शरीर है जो अज्ञान का शरीर है। न तू मन है, न तू चित्त है, न बुद्धि है, न तू मैं है। फिर क्या हुआ? कहते हैं, तू तो वाहिगुरू जैसी ज्योति है। अपने आपको पहचानने का यत्न कर –

धारना – मन तूं जोति सरूप है,
आपणा मूल पछाण – 2, 2
आपणा मूल पछाण – 4, 2
मन तूं जोति सरूप है......... – 2
मन हरि जी तेरे नाम है – 4
गुरमती रंगि माणि, – 4
मन तूं जोति सरूप है.......... – 2

कितना स्पष्ट है। इसे कहते हैं शब्द की साधना करना। इस शब्द की साधना कर लो कि मैं शरीर नहीं हूँ, मैं सूक्ष्म शरीर नहीं हूँ, मैं कारण शरीर नहीं हूँ, मैं पाँच तत्वों में से कोई नहीं हूँ, मैं पाँच प्राणों में से कोई प्राण नहीं हूँ, मैं मन नहीं हूँ, मैं बुद्धि नहीं हूँ, मैं चित्त नहीं हूँ, मैं अहमभाव नहीं हूँ। मैं तो ज्योति स्वरूप हूँ। जैसा वाहिगुरू है, वैसा ही मेरा स्वरूप है –

मन तूं जोति सरूपु है आपणा मूलु पछाणु॥ *पृष्ठ – 441*

जब पहचान लिया फिर दूसरी बात याद रख –

मन हरि जी तेरै नालि है गुरमती रंगु माणु॥ *पृष्ठ – 441*

गुरू की मति को धारण करके, प्यार के साथ, इस प्यार खुमारी का आनन्द लूट जो सदा चढ़ी रहती है। कितने ही कष्ट, विघ्न, नुकसान क्यों न हो जाएं, यह प्यार का रंग उतरा नहीं करता। अंग–अंग कटते हुए, आरों के साथ शरीर को चिरवाते हुए, खोपड़ियों को तुड़वाते हुए, चरखड़ियों पर चढ़ते हुए, यह रंग नहीं उतरा करता –

सत संगति प्रीति साध अति गूड़ी जिउ रंगु मजीठ बहु लागा।
काइआ कापरु चीर बहु फारे हरि रंगु न लहै सभागा॥ *पृष्ठ – 985*

इसका नशा तो उतरता ही नहीं, हर समय चढ़ा ही रहता है –

धारना – चढ़ी रहे दिन रात, नाम खुमारी, नाम खुमारी – 2, 2
नाम खुमारी नानका – 2, 2

चढ़ी रहे दिन रात,......... - 2

पोसत मद अफीम भंग उतर जाइ परभात।
नाम खुमारी नानका चढ़ी रहे दिन रात॥ *जनम साखी*

ये तो शरीर के नशे हैं। अभी पी लो। आठ दस घंटे के बाद शरीर टूटने लग जाता है लेकिन 'नाम खुमारी नानका चढ़ी रहे दिन राति।' 'गुरमती रंगि माण' इस नशे का आनन्द ले फिर तू इस बात को समझ कि मैं ज्योति स्वरूप हूँ -

पंच ततु मिलि काइआ कीनी। तिस महि राम रतनु लै चीनी॥ *पृष्ठ - 1030*

इस काया में राम का रतन (नाम) आत्मा का प्रकाश डाल दिया। यह शबद की साधना सहित विचार किये बिना प्राप्त नहीं होता, जीव परमात्मा है तथा परमात्मा ही जीव आत्मा है -

आतम रामु रामु है आतम हरि पाईऐ सबदि वीचारा हे॥ *पृष्ठ - 1030*

आतमु रामु सरब महि पेखु। पूरन पूरि रहिआ प्रभ एकु।
रतनु अमोलु रिदे महि जानु। अपनी वसतु तू आपि पछानु॥ *पृष्ठ - 892*

वह आत्म राम सभी के अन्दर है। वाहिगुरू सभी के अन्दर परिपूर्ण है। दृष्टि ही बदलती है परन्तु परिपक्व साधन के बिना स्थिर वृत्ति पैदा नहीं होती।

बुल्ले शाह मुरीद बनने के लिये अनायत शाह के पास गया। वह पनीरी उखाड़ कर प्याज़ लगा रहे थे। बुल्ला बैठा रहा, बैठा रहा। महात्मा मौज़ में आए। कहने लगे, ''भाई कैसे आए हो?'' कहता है, ''महाराज! मैं आपकी शरण में आया हूँ, मैंने खुदा से मिलना है, परमात्मा से मिलना है।''

''क्या नाम है तेरा?''

''मेरा नाम बुल्ला है जी।''

''बुल्ले! परमात्मा का क्या पाना, इधर से उखाड़ना, उधर लगाना। मन ही है, मन को बदलना है। संसार को संसार मत समझ, वाहिगुरू समझ ले, परमात्मा मिल जायेगा। असली बात तुझे भेद की बताता हूँ। जो तेरे मन के अन्दर है, वह नकली बात है, *'आतमु रामु सरब महि पेखु। पूरन पूरि रहिआ प्रभ एकु।'* इतना ही याद रख ले कि सभी के अन्दर वाहिगुरू परिपूर्ण है। बाहर भी और अन्दर भी सभी जगह परिपूर्ण है। कोई ऐसा स्थान नहीं है जहाँ वाहिगुरू न हो -

रतनु अमोलु रिदे महि जानु। अपनी वसतु तू आपि पछानु॥ *पृष्ठ - 892*

रतन अमोल जो आत्मा है, तेरे हृदय के अन्दर है। अपनी चीज़ को तू आप पहचान ले -

जिनी आतमु चीनिआ परमातमु सोई। एको अंम्रित बिरखु है फलु अंम्रितु होई॥पृष्ठ- 421

जिन्होंने अपने स्वरूप को जान लिया, आत्मा को जान लिया वे परमात्मा बन जाते हैं क्योंकि एक ही हरि अमृत का वृक्ष है जिसे फल भी अमृत का लगता है, इस सारे प्रसार में वह स्वंय ही है–

धारना - सांई ही वरगे ने, विसरे न नाम जिन्हां नूं - 2, 2
विसरे न नाम जिन्हैं नूं - 2, 2
सांई ही वरगे ने.......... - 2

जिन्हा न विसरै नामु से कनेहिआ। भेदु न जाणहु मूलि सांई जेहिआ॥ *पृष्ठ - 397*

इसके अन्दर प्रश्न है कि जो नाम को नहीं भूलते, अपने आत्म स्वरूप को नहीं भूलते, वे

किसके समान है? महाराज कहते हैं, *'भेदु न जाणहु मूलि सांई जेहिआ।'* भेद नहीं जान सकते, वे तो स्वंय ही परमेश्वर जैसे हैं। कितना महान बड़प्पन प्राप्त हो जाता है –

ब्रहमगिआनी कउ खोजहि महेसुर। नानक ब्रहमगिआनी आपि परमेसुर॥ *पृष्ठ - 273*

आतम रस जिह जानही सो है ख़ालस देव।
प्रभ महि, मो महि, तास महि, रंचक नाहन भेव॥ *सरब लोह ग्रंथ*

गुरू दशमेश पिता जी कहते हैं, जिन्होंने आत्मा के तत्व को प्रत्यक्ष रूप में हउमै मण्डल से ऊँचा उठकर जान लिया है, उसमें और मुझ में तथा वाहिगुरू में कोई भेद नहीं। वे खालिस होते हैं, उन्हें खालसा कहा जाता है। वे तो परमात्मा ही होते हैं –

जिनी आतमु चीनिआ परमातमु सोई॥ *पृष्ठ - 421*

जिन्होंने परमात्म रूप को अपने अन्दर पहचान लिया तथा परमात्म रूप हो गये, वे इस सच को चख कर, भर गये पूरे हो गये। मनोनाश, वासना ख्वै तथा तत्व ज्ञान का प्रकाश हो गया। उनके सारे भ्रमों का नाश होकर 'सभ गोबिन्द है' की सच्ची पहचान जाग्रत हो उठी। वे अभेद अवस्था के मानने वाले हो गये –

अंम्रित फलु जिनी चाखिआ सचि रहे अघाई।
तिंना भरमु न भेदु है हरि रसन रसाई॥ *पृष्ठ - 421*

इस प्रकार महाराज जी ने समझाया। कहने लगे, "राजा शिवनाभ! नाम का यह मार्ग, सुरत शबद का मार्ग मुख भक्ति तथा सिमरण का है। सिमरण पहले माला के साथ किया जाता है। पहली कक्षा का विद्यार्थी जैसे रीठों के साथ लिखता है। इसी तरह से प्रभु का नाम माला से जपते हुए इतना परिपक्व हो जाता है, इसे फिर माला की जरूरत नहीं रहती। जब माला हाथ वाली छूट गई फिर वाहिगुरू-वाहिगुरू अपने आप ही होने लग जाता है। हरि के नाम के अक्षर ही अल्लाह बन जाते हैं। नाम जपने में भी भेद है कि बैखरी बोली में दस बार वाहिगुरू का नाम जपो तो मधमा बाणी में एक बार जपने के बराबर हो जाया करता है –

हरि हरि अखर दुइ इह माला॥ *पृष्ठ - 388*

फिर रसना से नाम जप शुरू होता है, बोलकर होता है। वाहिगुरू शबद का कीर्तन करो। सौ बार बैखरी बाणी में फिर एक बार होठों से कह दो, इसका फल दस बार कहने के बराबर होता है इतना अधिक फल है। फिर इसके पश्चात बिना बोले, होठ बन्द होते हैं, रसना धीरे-धीरे अन्दर ही अन्दर हिलती रहती है। अन्दर पता नहीं चलता। होठ नहीं हिलते, रसना चलती रहती है। उसके पश्चात नाम कंठ में चला जाता है। फल 100 गुणा और बढ़ जाता है फिर हृदय में चला जाता है। वहाँ पर 1000 गुणा फल और बढ़ जाता है। जब नाभि में सिमरण होने लग जाता है – परा बाणी में, उस समय 10,000 गुणा फल और बढ़ जाता है। बाहर 10,000 बार बोल कर कहे, परा बाणी में एक बार ही जपने से कितना अधिक अन्तर है। आज्ञा चक्र में फल और भी बढ़ जाता है। जहाँ दोनों आखों तथा नाक की जड़ है, वहाँ नाम की धुन सुनती है। जब वहाँ पर चित्त एकाग्र हो जाता है, पहचान यह हुआ करती है कि उसे नाम अपने अन्दर आप ही सुनने लग जाया करता है। बड़ी हैरानी होती है कि यह नाम की आवाज़ कहाँ से आती है। ऐसे कई प्रेमी मुझ से प्रश्न पूछते हैं। मैं उन्हें कहता हूँ कि तुम्हारे अन्दर नाम परिपक्व हो गया प्यारे! इसीलिये अपने आप ही आवाज़ आती रहती है। इससे आगे आवाज़ बढ़ जाती है।

हरहट भी तूं तूं करहि बोलहि भली बाणि॥ पृष्ठ - 1420

पहले लकड़ी के हलट घूँ-घूँ की आवाज़ किया करते थे। महाराज कहते हैं, यह भी तूँ-तूँ-तूँ करता है।

उसे सभी के अन्दर से परमेश्वर के नाम की आवाज़ आती है क्योंकि एक ही शबद है जो सभी के अन्दर बसा हुआ है। उस ज्योति में से शब्द पैदा होता है तो फिर ये जानवर जब बोलते हैं तो कुछ और नहीं लगते। ये भी ऐसे लगते हैं जैसे भजन कर रहे हो –

धारना - नाम हरी दा जपदे, सारे वणां दे पंखेरू - 2, 2
वणां दे पंखेरू सारे, वणां दे पंखेरू - 2, 2
नाम हरी दा जपदे,.......... - 2

जो बोलत है म्रिग मीन पंखेरू सु बिनु हरि जापत है नही होर॥ पृष्ठ - 1265

सो वृत्ति चढ़ गई। इस प्रकार गुरू महाराज जी ने राजा शिवनाभ पर कृपा की। मन्त्र दे दिया, नाम जपना शुरू कर दिया। धीरे-धीरे महाराज जी के सत्संग में वृत्ति चढ़ने से क्या हुआ कि सुन्न मण्डल में वास हो गया जिसे गगन मण्डल कहते हैं 'निज घर' कहते हैं। उस समय मन रूक गया शबद के बल के परिणाम स्वरूप निज घर में वास हो गया। हम अपने घर को भूले हुए, बाहर घूमते फिर रहे हैं। उस समय की अवस्था का महाराज जी इस प्रकार फ़रमान करते हैं –

धारना - निज घर ओ वासा हो गिआ - 2, 2
मन धांवदा गुरां ने थंम्हिआ - 2, 2
निज घरि ओ वासा हो गिआ,......... - 2

चित्त पूरी तरह से निरूद्ध अवस्था में लीन हो गया फिर मन कहाँ चला जाता है? अपने निज घर में चला जाता है। जब तक यह हिलता जुलता है, उडानें भरता है, तब तक बाहर ही भागा फिरता है। दुखी होता है –

सतिगुर मिलिऐ धावतु थंम्हिआ निज घरि वसिआ आए।
नामु विहाझे नामु लए नामि रहे समाए।
धावतु थंम्हिआ सतिगुरि मिलिऐ दसवा दुआरु पाइआ।
तिथै अंम्रित भोजनु सहज धुनि उपजै जितु सबदि जगतु थंम्हि रहाइआ।
तह अनेक वाजे सदा अनहदु है सचे रहिआ समाए।
*इउ कहै नानकु सतिगुरि मिलिऐ धावतु थंम्हिआ निज घरि वसिआ आए॥*पृष्ठ- 440-41

जब पूरा सतगुरू मिल गया, भागता हुआ, उछलता हुआ मन, रूक गया –

नामु विहाझे नामु लए नामि रहे समाए॥ पृष्ठ - 440

अब नाम में निवास होने पर प्रकाश हो गया तथा चारों ओर वाहिगुरू को ही देखता है। अपने स्वरूप को नहीं भूलता, वाहिगुरू को नहीं भूलता। एक ही श्रृंखला में पिरोये हुए सारे संसार को देखता है –

धावतु थंम्हिआ सतिगुरि मिलिऐ दसवा दुआरु पाइआ॥ पृष्ठ - 441

फिर क्या होता है? 'दसवा दुआरु पाइआ' यह जो दसवा द्वार है, वहाँ वास मिल गया –

नउ दरवाजे काइआ कोटु है दसवै गुपतु रखीजै।
बजर कपाट न खुलनी गुर सबदि खुलीजै।
अनहद वाजे धुनि वजदे गुर सबदि सुणीजै।

तितु घट अंतरि चानणा करि भगति मिलीजै।
सभ महि एकु वरतदा जिनि आपे रचन रचाई।
वाहु वाहु सचे पातिसाह तू सची नाई॥ *पृष्ठ - 954*

वह द्वार मिल गया, जो कठिन साधना करने के पश्चात भी बड़ी मुश्किल से मिलता है। वहाँ की निशानी क्या है? -

तिथै अंम्रितु भोजनु सहज धुनि उपजै जितु सबदि जगतु थंम्हि रहाइआ।। *पृष्ठ - 441*

वहाँ पर नाम का भोजन है, वहाँ पर नाम का रस है तथा सहज धुन बज रही है - नाम की 'जितु जगतु थंमि रहाइआ' वह शबद की धुन, वहाँ सुनाई देती है जो पहले दिन अकाल पुरुष ने औंकार कह कर संसार का प्रसार किया था यानि अपने मूल में समा गया -

तह अनेक वाजे सदा अनहदु है सचे रहिआ समाए॥ *पृष्ठ - 441*

क्या वहाँ सुन्न है? zero है?

कहते हैं, ''नहीं, वहाँ तो साजो बाजों का, रागों का, कोई हिसाब किताब ही नहीं है?''

'तिथे नाद बिनोद कोड अनंद।' वहाँ पर करोड़ों आनन्द हैं। उनकी कोई गिनती नहीं की जा सकती। *'तह अनेक वाजे सदा अनदु है सचे रहिआ समाये।'* वाहिगुरू में समा जायेगा -

इउ कहै नानकु सतिगुरि मिलिऐ धावतु थंम्हिआ निज घरि वसिआ आए॥ *पृष्ठ - 441*

जो निज घर में चला गया, आत्म अरूढ़ अवस्था में समा गया, उसकी दृष्टि बदल जाया करती है। उसे दूसरे नज़र नहीं आया करता, एक ही नज़र आता है जो सत है, अनुमान मात्र नहीं है।

श्री आनन्दपुर साहिब में बड़ा भयंकर युद्ध हुआ। उस युद्ध में बहुत से सिंघ शहीद हो गये। 6 महीने से आक्रमणकारी फौजों ने घेरा बन्दी की हुई है, अन्दर का राशन समाप्त हो गया। पट्ठे समाप्त हो गये। घोड़े मरने लग गये तथा सिंघों ने अपने शरीर को कायम रखने के लिये, पत्ते उबाल-उबाल कर पीए, वृक्षों की छालें रगड़-रगड़ कर पेट में डाल ली, गुरू दशमेश पिता एक दिन देखने लगे कि ये वृक्षों के पत्ते कहाँ चले गये?

कहते हैं, महाराज, तेरे खालसा ने अपने शरीर को बचाने के लिये, आप जी के अधिक से अधिक काम आने के लिये पत्ते तथा वृक्षों की छालें खा ली हैं, उन्होंने ये खाकर जीवन निर्वाह किया है। इधर शत्रु काफी फौज़ें लेकर आया हुआ है, घेरा काफी लम्बा हो गया है, वे भी थक गये।

आक्रमणकारी फौजी अफसर कहने लगे कि अब दो टूक फैसला कर ले, अब तो सिंघ बहुत ही कम रह गये। सिघों द्वारा पहले की तरह हमले नहीं हो रहे। उस समय रोपड़ का एक पठान मुगल खान जरनैल था, उसने बीड़ा उठाया कि आज वह या तो गुरू गोबिन्द सिंघ को पकड़ कर लायेगा या फिर शहीद हो जायेगा। बड़ी भारी सेना लेकर हमला कर दिया। उधर महाराज जी के नेतृत्व में, *'सवा लाख से एक लड़ाऊं। तबै गोबिंद सिंघ नाम कहाऊं।'* मुकाबला करने के लिये सिंघों ने सिर धड़ की बाजी लगा दी।

क्योंकि सारा बल गुरू का हुआ करता है, अपना निज बल नहीं हुआ करता। निज बल वाले हार जाया करते हैं, गुरू बल वाले जीत जाया करते हैं। अत: उस समय गुरू के भरोसे पर, सिर हथेली पर रख कर खालसा, आगे बढ़ चढ़ कर शहीदियां दे रहे हैं। भयानक युद्ध हुआ और उस युद्ध में

मुगलखान जख्मी हो गया। मारा नहीं, कहने लगे, यह अब इन घावों से ही मर जायेगा। इसे ऐसे ही पड़ा रहने दो, थोड़ा बहुत इसके मन में पश्चाताप आ जाये। शाम हो गई। बिगुल बज गया। सारे जत्थे किले के अन्दर वापिस आ गये। घायलों को उठाने वाले डोलियां लेकर मैदाने जंग में घूम रहे हैं। अपने-अपने घायल शूरवीरों को पहचान कर उठा ले जाते हैं। दोनों पक्षों से सिंघ तथा आक्रमणकारी भी अपने-अपने घायल सिपाहियों को अपने-अपने तम्बुओं में ले जा रहे हैं। उस समय वहाँ पर लड़ाई का वातावरण नहीं हुआ करता फिर वहाँ मित्रों जैसा माहौल हुआ करता है। आवाज़ लगाई जाती है, प्रेमियो! तुम्हारा आदमी ठण्डी आहें भर रहा है, इसे उठा ले जाओ। उस समय खालसा फौजों के जत्थेदार गुरू महाराज के चारों ओर इकट्ठे होकर बैठे हुए हैं। महाराज कहते हैं, ''भाई! आज के युद्ध का हाल बताओ, कैसे हुआ?'' सभी ने हाल बताया तथा शिकायत की। कहने लगे, ''पातशाह! एक सिख जो अपना ही है और हम यह समझते हैं कि शायद वह जासूस हो, दुश्मन को भेद बताता हो।'' गुरू महाराज जी ने पूछा, ''तुम्हें कैसे पता?'' महाराज! मशक उठाई हुई है उसने, जब हम पानी के लिये आवाज़ लगाते थे तो पहले यदि कोई मुगल फौज का सिपाही गिरा हुआ है या पहाड़ी फौज का जो भी पहले पानी मांग लेता उसे ही पिलाता था, फिर हमारे पास आता था। महाराज जी! बहुत बुरी बात है। मार कर हम फैंकते हैं, वह पानी पिला देता है वे फिर होश में आकर हमारे ऊपर वार करते हैं। हम मूर्च्छित करते हैं, वह उन्हें फिर पानी पिला देता है।

''कौन है, क्या नाम है उसका?''

''उसका नाम घनईया है, महाराज।''

''जाओ, हमारे सामने पेश करो।''

हुक्म हो गया। दो सिंघ बड़ी फुर्ती से गये। डेरे में जाकर पता किया। वहाँ से सिंघ ने कहा, ''भाई घनईया तो अभी आया ही नहीं।'' फिर वे मैदाने जंग में चले गये। रात का घटाटोप अन्धेरा छाया हुआ है। हाथ को हाथ नज़र नहीं आया लेकिन दूर से एक आवाज़ ऐसी सुनाई देती है -

धारना - तूं ही तूं ही मोहिना, तूं ही तूं ही मोहिना - 2, 2

वहाँ पास जाकर देखा। हैरान रह गये। उसी मुगल खान को पानी पिला रहा है। उसका सिर जंघा के ऊपर रखा हुआ है। मूर्च्छा हटाकर, दांत खोल कर मुँह में पानी डाल रहा है - चुल्लियां भर-भर कर पिला रहा है। जब मुगल खान होश में आया, कहने लगा, ''कौन?'' जरनैल था, बड़ा रौबदार था।

भाई घनईये ने कहा, ''मैं गुरू गोबिन्द सिंघ जी का अदना सा सिख हूँ।''

कहता है, ''हैं! गुरू गोबिन्द सिंघ का सिख और मुझे पानी पिलाए? प्यारे! मैं तो आज प्रण करके आया था कि आज गुरू गोबिन्द सिंघ को जीवित या शहीद करके लेकर जाऊंगा। तू मुझे पानी पिला रहा है?''

''मेरे गुरू का हुक्म है। मेरे गुरू की नज़रों में कोई दुश्मन नहीं है, सभी मित्र हैं -

बिसरि गई सभ ताति पराई। जब ते साधसंगति मोहि पाई॥ ***पृष्ठ - 1299***

हमारे गुरू ने हमारे मन को साफ करके ऐसे समझा दिया -

धारना - न दिसे बिगाना ओ,

न कोई वैरी, न कोई वैरी - 2, 2
न कोई वैरी, न कोई वैरी - 2, 2
न दिसे बिगाना ओ,........ - 2

बिसरि गई सभ ताति पराई। जब ते साधसंगति मोहि पाई।
ना को बैरी नही बिगाना सगल संगि हम कउ बनि आई॥ पृष्ठ - 1299

मुगल खान! हमारा गुरू कहता है कि संसार में कोई वैरी नहीं है, सभी कुछ अपने आप ही है। दूसरा है ही नहीं।

मुगल खान बोला, ''भाई घनईया! यह तू पानी नहीं पिला रहा, यह तो तू आव-ए-हयात (अमृत) पिला रहा है। मेरा दुख दूर कर रहा है। मेरे मन की मैल उतार रहा है, मुझे गुरू गोबिन्द सिंघ जी का प्यार उमड़ने लग रहा है। ज्यों-ज्यों पानी पिलाता है, त्यों-त्यों मैं उसका खादम बनता जाता हूँ, मेरी भी मैल तू काटता जा रहा है।''

इतनी बात हुई थी कि उसी समय सिंघों ने आकर महाराज जी का हुक्म सुना दिया। वे सिंघ भाई घनईये को महाराज जी के पास ला आये। गुरू महाराज ने कहा, ''क्यों भाई घनईया तेरी शिकायत आई है?''

''महाराज! हम तो सदा ही अवगुणों से भरे हुए हैं।''

''तू मुगलों को पानी पिलाता था?''

''नहीं महाराज।''

''फिर पहाड़ियों को पानी पिलाता था?''

''नहीं महाराज।''

''फिर खालसा को पानी पिलाता है?''

''नहीं महाराज।''

''फिर सारा दिन किसे पानी पिलाता रहा है?''

''पातशाह! आपके सन्मुख सच-सच कह रहा हूँ। जब से तूने मेरे नेत्रों का आप्रेशन किया है और मेरे नेत्रों का मोतियाबिन्द उतार दिया है और मेरे अन्दर ज्ञान का सुरमा डालकर रोशनी कर दी -

गिआन अंजनु गुरि दीआ अगिआन अंधेर बिनासु।
हरि किरपा ते संत भेटिआ नानक मनि परगासु॥ पृष्ठ - 293

तभी से मेरे मन में प्रकाश हो गया। पातशाह! अब मेरी दृष्टि, कुछ और तरह की हो गई है। मुझे हर घट में, पवन, पानी में, पर्वतों, वनस्पति, समुद्र के जीवों में एक तू ही नज़र आता है, दूसरा कोई भी नज़र नहीं आता, तू ही तू है, और कोई है ही नहीं -

धारना - गुरां ने मेरे ओ, नैण खोल ते - 2, 2
मैनू सारीआं घटां दे विच दिसिआ - 2, 2
गुरां ने मेरे ओ.......... - 2

गुरहि दिखाइओ लोइना।

ईतहि ऊतहि घटि घटि घटि घटि तूंही तूंही मोहिना॥ *पृष्ठ - 407*

पातशाह! जब से मेरे नेत्रों में ज्ञान का सुरमा डाला है, मेरे दिव्य नैन खुल गये। तू सभी के अन्दर छिपा बैठा है, पर्दा किये बैठा है, भ्रम में डाल दिया कि मैं दूर हूँ, मुझे तेरे सिवाय और कोई दिखाई देता ही नहीं। पातशाह! यदि मैंने पानी पिलाया ही है तो सारा पानी तुझे ही पिलाया है। यह सुनते ही महाराज जी उठकर खड़े हो गये, गोद में भर लिया। कहने लगे, ''गुरसिख! निहाल! निहाल! निहाल! तेरे और मेरे अन्दर अब कोई अन्तर नहीं रहा -

दास अनिंन मेरो निज रूप॥ *पृष्ठ - 1252*

ख़ालसा मेरो रूप है ख़ास।
ख़ालसे महि हौ करौ निवास॥ *सरब लोह ग्रंथ*

धारना - मेरा ही रूप है, मेरे ही बण गए जिहड़े - 2, 2
मेरे ही बण गए जिहड़े - 2, 2
मेरा हू रूप है,....... - 2

साध संगत जी! वह खालसा पदवी पर पहुँच गया, मुझमें और इसमें कोई अन्तर ही नहीं रहा। भाई घनईया! ये ले पट्टियां और ये ले मरहम। आज के बाद मेरे घावों पर मरहम भी लगाया कर और पट्टियां भी बान्धा कर तथा जल भी पिलाया कर। गरू तेरी सेवा में बरकत दें। इसे निज घर का वासा कहते हैं।

राजा शिवनाभ को गुरू महाराज जी ने यहाँ तक पहुँचा दिया। जब सुरत वहाँ तक पहुँची, दृष्टि बदल गई, दृष्टि में दिखाई क्या देता है कि सभी गुरू नानक है। जिधर देखता है, उधर एक ही नज़र आता है, भ्रम भेद खत्म हो गया, एक के सिवाय और कुछ भी नज़र नहीं आता -

सरगुन निरगुन निरंकार सुंन समाधी आपि।
आपन कीआ नानका आपे ही फिरि जापि॥ *पृष्ठ - 290*

धारना - धरत पताल अकास जिधर देखदा,
तैथों बिनां होर न दिसे - 2, 2
मेरे साहिबा, तैथों बिनां होर न दिसे - 2, 2
धरत पताल आकाश जिधर देखता,.......... - 2

सो अंतरि सो बाहरि अनंत। घटि घटि बिआपि रहिआ भगवंत।
धरनि माहि आकास पइआल। सरब लोक पूरन प्रतिपाल।
बनि तिनि परबति है पारब्रहमु। जैसी आगिआ तैसा करमु।
पउण पाणी बैसंतर माहि। चारि कुंट दहदिसे समाहि।
तिन ते भिंन नही को ठाउ॥ गुर प्रसादि नानक सुखु पाउ॥ *पृष्ठ - 293*

दृष्टि खुल गई -

मै बहु बिधि पेखिओ दूजा नाही री कोऊ।
खंड दीप सभ भीतरि रविआ पूरि रहिओ सभ लोऊ॥ *पृष्ठ - 535*

बज्र कपाट खुल गये, अवस्था उच्च हो गई, निज घर में वास हो गया, परमेश्वर का रूप हो गया। खुशी में, अपनी अवस्था का इस प्रकार वर्णन करता है -

धारना - खुल गए बजर कपाट, मिल के पूरिआं गुरां नूं - 2, 2
पूरिआं गुरां नूं मिलके - 2, 2

खुल गए बजर कपाट,......... - 2

सोहंदड़ो हभ ठाइ.........॥ *पृष्ठ - 80*

अब कोई जगह बुरी नहीं लगती, सुहावने हो गये। हर जगह से खुशी आ रही है, आनन्द ही आनन्द आ रहा है -

............कोइ न दिसै डूजड़ो॥ *पृष्ठ - 80*

अब दूसरा दिखाई देने से बन्द हो गया -

खुल्हड़े कपाट नानक सतिगुर भेटते॥ *पृष्ठ - 80*

जब पूरे गुरू से मिल गये, बज्र कपाट खुल गये।

इस प्रकार गुरू नानक पातशाह संगलाद्वीप में बिराजमान हैं। धर्मशाला बनी हुई है, हर रोज़ सत्संग होता है, वे पुरुष भाग्यशाली थे, कितने उच्च कर्मों वाले थे, जो गुरू नानक पातशाह के मुखारबिन्द से ऐसे उच्च वचन सुनकर निज घर में प्रवेश करते थे। गुरू नानक पातशाह काफी समय वहाँ रहे, सारा टापू जो था वह गुरू महाराज जी के नाम का धारनी सिख हो गया। साथ लगने वाले सात टापुओं के राजाओं को महाराज जी ने कहकर राजा शिवनाभ के साथ मिला लिया। इतिहास में ऐसा आता है कि इतनी संगत इकट्ठी होती थी कि बीस मन नमक रोज रसोई में प्रयोग होता था। 10-15 हज़ार आदमी रोज़ गुरू नानक का सत्संग किया करता था। इस प्रकार कोई भी टापू पर ऐसा व्यक्ति न रहा जो गुरू नानक जी के साथ न जुड़ा हो। समय बीतता चला गया समय किसी का लिहाज़ नहीं करता, यह रोकने से भी नहीं रूकता। यह ठहरने की जांच नहीं जानता। गुरू महाराज जी ने संगलाद्वीप छोड़ने का फुरना किया -

रही वासते घत 'समें' ने इक न मंनी, फड़ फड़ रही धरीक 'समें' खिसकाई कंनी,
किवें न सकी रोक अटक जो पाई भंनी, त्रिखे अपणे वेग गिआ टप बंने बंनी,
हो! अजे संभाल इस 'समें' नूं, कर सफल उडंदा जांवदा,
इह ठहिरन जाच न जाणदा, लंघ गिआ न मुड़ के आंवदा। *डा. भाई वार सिंघ जी*

क्षण-क्षण करके समय कम होता जाता है, सारी आयु बीत जाती है और आज वह दिन आ गया। गुरू नानक पातशाह ने कहा, "राजन! संसार जल रहा है। बहुत से ऐसे प्रेमी है जो अभी रूके हुए हैं। अतः तुम अब अपना मन बनाओ और हम अब जायेंगे।" बड़ी अजीब सी बात लगी, "हैं! गुरू महाराज जी ने सारे संसार में भ्रमण करना है फिर क्या होगा? हम गुरू महाराज जी के बिना कैसे जीवित रहेंगे क्योंकि जो जानवर भी हैं उनके बारे में भी ऐसा फ़रमान है -

जिउ मछुली बिनु पाणीऐ किउ जीवणु पावै। बूंद विहूणा चात्रिको किउकरि त्रिपतावै।
नाद कुरंकहि बेधिआ सनमुख उठि धावै। भवरु लोभी कुसम बासु का मिलि आपु बंधावै।
तिउ संत जना हरि प्रीति है देखि दरसु अघावै। *पृष्ठ - 708*

धारना - दसीं प्रीतमां कदों होणगे दीदारे - 2
होणगे दीदारे कदों, होणगे दीदारे - 2, 2
दसीं प्रीतमां कदों......... - 2

संगत ने प्रार्थना की, "पातशाह! बड़ी मुश्किल से तो आपके दर्शन हुए थे, काफी देर से सुनते थे, हमारा महाराज, वैराग में एक तरह से मस्ताना हो गया था। काफी देर प्रतीक्षा करने के बाद आप

आए, थोड़ा सा समय महीना भर रहकर आप जा रहे हैं, कृपा करके बताइये फिर दर्शन मेला होगा या नहीं।'' गुरू नानक पातशाह कहने लगे, ''प्रेमियो! गुरू को पहचानो गुरू ज्योति होता है –

सतिगुरु जागता है देउ॥ *पृष्ठ – 479*

गुरू शरीर नहीं हुआ करता। शरीर बदल जाया करते हैं। गुरू ज्योति सदा अटल, परिपूर्ण, सर्वज्ञ, हर घर में रमी रहती है। सो मिलना शरीर का नहीं हुआ करता। मिलाप शबद का हुआ करता है। इसलिये –

संजोग विजोगु दुइ कार चलावहि लेखे आवहि भाग॥ *पृष्ठ – 6*

उस स्थान पर पहुँचो, जहाँ निज घर है, वहाँ पर फिर सदीवी मेल है, वहाँ बिछोड़ा नहीं हुआ करता। बाकी जो शरीर का मेल है, उसके बारे में तो इस तरह है भाई –

धारना – कदे होणगे संजोगां नाल मेले, नदीआं दे वहिण विछड़े – 2, 2
मेरे पिआरे, नदीआं दे वहिण विछड़े – 2, 2
कदे होणगे संजोगां ना मेले,........ – 2

नदीआ वाह विछुंनिआ...........॥ *पृष्ठ – 439*

छोटे-छोटे नाले, नदियों में से निकल जाते हैं –

...........मेला संजोगी राम। *पृष्ठ – 439*

कहने लगे, ''प्रेमियो! यह संसार इस तरह है जैसे दरिया का रेत होता है। लहर आती है इधर का रेता, उधर चला जाता है, उधर का इधर आ जाता है। समुद्र तक जहाँ-जहाँ वह पानी जाता है, अन्त में समुद्र में पहुँच कर सारा जल मिल जाता है। सो जिसने परमपद की प्राप्ति कर ली जीवन मुक्त अवस्था जिसे प्राप्त हो गई, वह अमर जीवन तुम्हें प्राप्त हो गया है अब निज घर में सच खण्ड में –

सच खंडि वसै निरंकारु। करि करि वेखै नदरि निहाल॥ *पृष्ठ – 8*

जहाँ हमने रहना है, वहीं पर ही तुम सभी ने धीरे-धीरे आ जाना है बाकी तुमने भूलना नहीं है जो उपदेश हम देकर जा रहे हैं –

जबलगु जोबनि सासु है तबलगु नामु धिआइ।
चलदिआ नालि हरि चलसी हरि अंते लए छडाइ।
हउ बलिहारी तिन कउ जिन हरि मनि वुठा आइ।
जिनी हरि हरि नामु न चेतिओ से अंति गए पछुताइ।
धुरि मसतकि हरिप्रभि लिखिआ जन नानक नामु धिआइ।। *पृष्ठ – 82*

वह दिन भी आ गया, जब सतगुरू नानक देव जी भाई बाला जी तथा मरदाने के साथ संगलाद्वीप छोड़कर जाने के लिये तैयार होकर संगतों का धैर्य बन्धा रहे हैं। प्रेमियों के नेत्रों से छम-छम वर्षा हो रही है, ठण्डी आहें निकल रही है। विरह के बाणों की पीड़ा को सहन करने का यत्न कर रहे हैं पर नेत्रों से गिरने वाले आंसू पीड़ा को साकार कर रहे हैं। गुरू महाराज जी शबद मिलाप का ज्ञान दे रहे हैं पर मनुष्य पत्थर तो है नहीं। यदि वृक्ष की टहनी भी तोड़ो तो उसमें से भी पानी निकलता है। विरह पीड़ा सहन करना बहुत कठिन है –

कबीर बिरहु भुयंगमु मनि बसै मंतु न मानै कोइ।
राम बिओगी न जीऐ जीऐ त बउरा होइ॥ *पृष्ठ – 1368*

पागलों जैसी हालत, विरही पीड़ितों की हो जाया करती है शारीरिक वियोग सहन करना बहुत

कठिन होता है –

जिसु पिआरे सिउ नेहु तिसु आगै मरि चलीऐ।
ध्रिगु जीवणु संसारि ता कै पाछै जीवणा॥ *पृष्ठ - 83*

गुरू महाराज जी ने राजा शिवनाभ को इस टापू का अगुआ बना दिया। गुरमुख पदवी प्रदान करके, नेत्र खोल दिये, सत्संग की स्थापना करके धीरज बन्धाया कि गुरू सदीवी अंग-संग रहता है।

आप वहाँ से चले गये, दूर तक संगतें टकटकी लगाकर देखतीं रहीं, बहुत वैराग में आ गई, ज़ोर-ज़ोर से रोने लग गईं। राजा शिवनाभ ने सभी को धैर्य बन्धाया और कहा गुरू सत्संग में सदीव ही बिराजेंगे। शब्द की साधना करो, जब यह शरीर छूट जायेगा तब गुरू की दरगाह में निवास मिलेगा तथा सदीव मिलाप की अवस्था प्राप्त हो जायेगी। गुरू तथा सिख अभेद हो जाया करते हैं, गुरू ही अजली ज्योति है, मनुष्य भी आत्म ज्योति है। दोनों एक हैं। गुरू के साथ अभेद अवस्था, गुरू प्रेम द्वारा ही प्राप्त हुआ करती है।

यह प्रेम की अमर कहानी है जो सदा-सदा अमर रहेगी। जिज्ञासु, साधकों को भक्ति मार्ग का सरल रास्ता बताती रहेगी तथा पीर मुरीदों को अभेद अवस्था प्रदान करती रहेगी।

प्यारे! गुरू सदीवी जाग्रत ज्योति है सदा सदा है, उसे प्यार करो, वह अपने रोम-रोम में रम रहा है, वह सत पुरुष है, सदा सदा है, अमर है, उसकी कहानी भी अमर है।

यही अमर कथा शिव जी महाराज ने पार्वती को अमर नाथ की गुफा में सुनाई थी जो कि एक तोते ने सुनी, वही तोता मनुष्य जन्म प्राप्त करके शुकदेव मुनि के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

अमर कहानी सुनकर, पढ़कर, साधना करने वाला अमर पदवी प्राप्त कर लिया करता है।

वाहिगुरू जी हमारे ऊपर भी कृपा करें।